दिव्य वाणी भाग – 3

सन् - 2021

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	आत्मज्योति का दीया जलाएं	06 -14
2.	डिविनिटी में रहने का अभ्यास	15 -17
3.	दीक्षा में दिया आदेश	17-18
4	सुषुम्ना में प्रवेश और निरन्तर अभ्यास	18-22
5.	आत्मा का दर्शन	22-26
6.	कुंडलिनी शक्ति का जागरण	26-27
7.	आत्मशक्ति का विकास	28-30
8.	नवीन प्रारब्द्ध का निरोध	30-43
9.	चार लोक	43-45
10.	समाज के मुकुट बनिए	46-51
11.	सत्य-सुना गया,देखा गया, किया गया	51 -56
12.	गुरु कृपा पर दृढ़ विश्वास	56-66
13.	सम्यक जीवन	66-70
14.	अनन्य भक्ति	70-75
15.	गृहस्थ धर्म की आवश्यकता, योगाभ्यास	75-83
16.	प्रेम की व्याख्या	83-85
17.	सूर्य रूपी आत्मा का प्रकाश	85-94
18.	श्री गुरुजी द्वारा दिये गए आशीष	94-97

19.	मेरा और तेरा	97-100
20.	शिव शक्ति का मिलन	100-102
21.	एकनिष्ठता	102-105
22.	साधक सभी ग्रंथों में श्रेष्ठ ग्रंथ	105-115
23.	कड़ी अनासक्ति के साथ आत्मानुंसंधान	116-125
24.	निष्ठया शाष्ठर्य	125-126
25.	त्रिवेणी संगम में स्नान	126-133
26.	क्रोमोसोम्स जीन्स रचना	133-137
27.	अट्रैक्टिव लाइटनिंग्स,शिवजी का तांडव	137-141
28.	आत्मा रूपी चिराग	141-149
29.	कर्तव्य पालन	149-151
30.	जीवन में जीवनमुक्त होना ही हेतु है	151-155
31.	नवरात्रि के बाद प्रभात होना	155-157
32.	कृष्ण नाम आत्मा,आत्मा का धाम	157-168
33.	आचरण और ऊर्ध्ववत सेंटर	168-172
34.	अपने आप में रत होना, अयं आत्मा	172-176
35.	स्वानुभूत्या विराजयते	176-185
36.	आत्मा,दिव्यशक्ति की ओर झुकना	186-190
37.	भौहों के बीच लक्ष्य लगाकर, तीर मारना	191-194
38.	हमारी संस्कृति है, इस देश में है, साइंस, प्रचार हो प्रसार हो, स्थापना करें	195-202
39.	आदर्श धर्मात्मा होते हैं न कि महात्मा	202-217
40.	ईश्वर की देन क्या है?और न देन क्या है?	217-221
41.	गूढ़ भावयुक्त आदेश,श्री गुरुजी के शब्दों में आदेश माने पालन हो	223-294
42.	शिष्यानुभव	296-320
43.	विविध आत्मदर्शी पुरुषों की अमृत वाणी	322- 524

॥ श्री सद्गुरवे नमः ॥

लाखों, करोड़ों, अरबों, खरबों, पदम् नील में कोई एक आत्मक्रीड़ सतगुरु होते हैं, जो सभी सम्प्रदायों के सैकड़ो लोगो को, जीवों को, आत्मा रूपी अपने स्वरूप में स्थित करा देते हैं, उन्हें अपने जैसा बनाकर अपने वास्तविक घर परमात्मतत्व, स्वधाम तक पहुँचा देते हैं। अतः इनका स्थान हमारी संस्कृति में परम् पिता परमात्मा से भी ऊँचा होता है। ऐसे ही श्री गुरुजीश्री वासुदेव रामेश्वर तिवारी जी हैं, हैं का अर्थ भौतिक शरीर से नहीं है।

श्री गुरुजी की जीवनी दिव्याम्बुनिमज्जन, स्मरणिका, गुरुजी की कुछ लिपिबद्ध वाणी, कई अवसरों पर स्वयं गुरुजी से, गुरु भाई मोहन गोस्वामी भैय्या से, आदरणीय श्री जयप्रकाश वर्माजी से, गुरु भाई बड़कऊ भैय्या से, गुरुभाई अमरीश श्रीवास्तव जी से, गुरुभाई हरपाल सिंह चौहान भैय्या से, गुरुभाई राजू कान्नव जी से, गुरु पुत्र श्री अशोक भैय्या से, उद्बोधन, गुरुवाणी, कैसेट, और भी अन्य श्रोतों से तथा गुरुजी के वचनामृत का संकलन पूर्व में कई वरिष्ठ एवं समर्पित गुरुभाई, बहनों, द्वारा किया गया था और किया जा रहा है, वे सब आदर के पात्र हैं, सभी जाने-अनजाने, पूज्यनीय हैं, उन्हें सादर चरण स्पर्श प्रणाम है।

इन्ही साधनो से, उन सबके प्रयास से प्राप्त, गुरुजी के श्रीवचनों का गुरुपरिवार के एक मूढ सदस्य के द्वारा कम से कम शब्दों को,

वाक्यों को लेकर, कुछ वाक्यों को और, पुनः आये हुए शब्दों को छोड़ते हुए, भावों में, उद्देश्य में परिवतर्न नही हो, इसका समुचित ध्यान रखकर श्री गुरुजी के शब्द वाक्यों को कैसेट से सुनकर लिखकर संकलन करने का प्रयास किया गया है। ताकि सभी पुस्तकों के कुछ सारगर्भित वाक्यो, भावों को, गुरुपरिवार और दिव्यमार्ग के पथिकों को गुरूजी की श्रीवाणी, अमृत वचनों को एक पुस्तक **"दिव्य वाणी भाग- 3"** शीर्षक के रूप में सबके लाभार्थ , (आचरण की उपयोगिता में) उपलब्ध कराई जा सके।

किसी भी कारण वश दिव्य पुरुष श्री गुरुजी की दिव्य वाणी के संकलन में कुछ भी त्रुटि दिखाई दे तो गुरु परिवार के इस साधक को, दुर्ग भिलाई के इस सदस्य को, (मो.न.९३०२८३४०७६) संकलनकर्ता को, हृदय से क्षमा करने की महती कृपा करेंगे। ऐसी आप सबसे विनम्र याचना एवं कर बद्ध प्रार्थना है, कृपया स्वीकार करेंगे ऐसी अपेक्षा है।

दिव्य वाणी भाग-1 में श्री गुरुजी की दिव्य-जीवनी का संक्षिप्त परिचय दिया जा चुका है, जिनका अवलोकन भाग-1में हम कर सकते हैं।

सादर प्रणाम
जय जय जय गुरुजी |

।। श्री गुरुजी की दिव्यवाणी ।।

(भाग – 3)

।। आत्मज्योति का दीया जलाएं ।।

- ये संधि जो स्वर्ण है इसे नहीं छोड़ना चाहिए। ये दीया तो अवश्य जलाना चाहिए। आगे मत बढ़ो, समाधि में मत जाओ, कहीं भी मत जाओ लेकिन दीया तो जलाइये।

  बोलते है न भई, सायंकाल हो गया अपने अपने देव घर में दीया जलाओ। देवघर क्या है? देव तो इसके अंदर है, ये देवालय है। शरीर जो अपना है, और ये देव उसी के अंदर है, देव ही तो बोल रहा है, और कौन बोल रहा है।

  लेकिन देव - ये शक्ति क्यों नहीं प्राप्त होती आपको देव की। क्योंकि हमारा जो व्यवहार है - वो कामना से गन्दा हो गया, क्रोध से सारी गंदगी फैल गई। लोभ से और गंदगी फैल गई। मोह से और गंदा होता चला गया। मान, मेरा मान नहीं मेरा कुल नहीं, मेरा मान वान नही। क्यूँ जायेंगे? ये जो अभिमान अहंकार है, और गंदे,और गिर गये। और मत्सर ये जेलस बिना कारण सबसे जलना, बताइये आप? कहाँ से हमको प्राप्त हो?

  तो तात्पर्य ये है जिससे ये सब चीज जाते है, ये दीया जलाना चाहिए। ये जो क्लेश है इसी में जो फंस जाते हैं। और जो प्रारबद्ध लेकर आये हैं , जो भाग्य में हैं, वो तो मिलेगा ही। कृष्ण ने आश्वासन दिया है, अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहं। उस साधक का योग और क्षेम मैं वहन करता हूँ, जो चाहिए उसको मैं बराबर व्यवस्था कर देता हूँ और सब बन जाता है। और उसका मन बुद्धि चित्त अहं, सब निर्मल कर देता हूँ। क्षेम माने उसका कल्याण मैं कर देता हूँ। क्षेम माने कल्याण, कल्याण माने निर्मल। उसका

मन चित्त बुद्धि अपने पर हो जाता है। अन्यथा। अत्यंत मलिनो देहो, इस देह सरीखा मलिन और कोई देह नहीं। मलमय देह जरा भी पक जाय, तो देखो खून निकलता है उसमें, मक्खी बैठे तो ध्रान आता है उसमें। कितना बढ़िया देह है आपका? अत्यंत मलिनो देहो, लेकिन ये मलमय है और क्या चीज है, इससे तो पनही भी तो नहीं बनता है। चप्पल भी नहीं बनता। ढोर का तो वो भी बनता है।

देहि चत्यांत निर्मलाः। देहि माने शरीर में रहने वाला जो आत्मा है, जीवात्मा है। अत्यन्त निर्मल है वहाँ मल का विक्षेप नहीं जरा भी स्पर्श नहीं होता उसको। ऐसा जो जानता है अभ्यास करके, ऐसा जो गुण ज्ञान हो गया है। दीया जलाकर वो चिराग ले जाती है, वहाँ तक। जो चिराग तक पहुँच के और अनुकरण करके जहाँ तक जो पहुँच गया है। वो क्या है?असङ्गो अहं इति ज्ञात्वा - तब वो असङ्ग हुआ। शौचं इति प्रच्छ्यते, तब वो पवित्र हुआ। नहीं तो बदबू आती है, खाली इसमें।

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा य विसर्ग यःस्मरेत् पुण्डरीकाक्षः स बाह्याभ्यंतरो शुचिः। माने अंतर भी शुद्धि हो गया बाहर भी शुद्धि हो गया, उठाये पानी हो गया? भैय्या, फिर ऐसा अभ्यास करने की क्या जरूरत है? अगर इस मंत्र से बाह्याअभ्यंतर आप असङ्ग हो गये पवित्र हो गये, शौचं इति प्रच्छ्यते। ऐसे शौच करते है। शुद्ध होते है, ऐसे ही होता होगा तो फिर हम शब्द अपने वापस लेते है। आप तो फिर संत है और महंत है। फिर आपमें न क्रोध है न कामना इच्छा वासना है, और न कोई लोभ है, न भय है, और न कोई मद है, न मत्सर है, विद्वेष है, न जलन है। सोचिये ये छः बताया ये पांच बताया। ये क्या क्या आपमें से गया, क्या क्या विदा हो गया, कि सब है, अभी। तो तात्पर्य ये है-

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते। स्वल्पम्पयस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात।

कृष्ण ने कहा है - मेरे चिंतन में जो रात दिन लगा हुआ है, अहर्निश लगे हुये है। अखण्ड रूप से जो लग गया है डूब गया है। उसका संसार सब, पगला गया है, उसका रखवाला मैं हूँ। कृष्ण कहता है- उसका रख वाला मैं हूँ, योगक्षेमं वहाम्यम। मैं उसका सब कारोबार सम्हालता हूँ। मैं करता हूँ सब। इससे बढ़कर क्या आश्वासन चाहिए? और जब इस शरीर से आप जायेंगे, अच्चिदानंद मार्ग में ब्राइट लाइट में आप जायेंगे। ऐसे लोकों को क्रास करते करते ऐसे अनेक जन्म बीतेंगे। हजारों जन्म बीतेंगे। लेकिन फिर से माँ के पेट में नहींआयेंगे। ऐसा तो कभी भले कभी आ जाओ ये मैं नहीं कह सकता हूँ। लेकिन वो महिला हो तो सिद्धा होगी और पुरुष होगा तो सिद्ध होगा। जहाँ तहाँ अंर्तध्यान अपियर हुए डिसअपियर हुए। सिद्ध पुरुष हो गये। जैसे गजानन महाराज उनको स्वयंभू कहा गया। सिद्ध पुरुष है, वो। अभी तो उनको कई जन्म होना, जिसको परम पद कहते है। मैं नाक क्षोभ नहीं करता हूँ। तो तात्पर्य ये है हमारे कहने का, ये जो आप लोग अभ्यास करिये जो दिया है। आप दीया जलाइये। ये दीया इसका कोई उपमा ही नहीं है।

उपमा, इसलिये नहीं है। वही आत्मा को, आत्मा ही परम है। इसी को परम आत्मा कहा। इसी आत्मा को लोगों ने उपद्दष्टा कहा, अनुमंता कहा, भर्ता कहा भोक्ता कहा, महेश्वर कहा। और परम आत्मा को ही परम कह के परमात्मा कहा। नाम में भेद है लेकिन चीज एक ही है।

ये जो आप आभ्यंतर याने भीतर की ओर अभी आप प्रयत्न करके जा रहे है। जो आपने दीया जलाया। इसको बुझने मत दो, बुझ भी गया तो भी

जलाना, शाम को भी जलाना संधिकाल आ गई फिर भी जलाना। रोज जलाना, बुझता है बुझ जान दो, अपना काम है, जलाना। बिच्छू का काम दंख मारना है, हमारा काम है बचाना। इस तरह से ये जीवन यापन करना चाहिए। ये दीया आपने जला दिया। और जिस दिन से दर्शन होता है, आपको, उस दिन से नया प्रारबद्ध नहीं बनता।

इतना मैं शास्त्र के आधार और अपने ये आधार से मैं बोल रहा हूँ। अपने जो स्वानुभूति विषय जो है।

जिस देह पर तुम गुमान करते हो, गर्व करते हो वो मल का भंडार है और कुछ नहीं है। अत्यन्त मलिनो देहो, देहि चत्यांत निर्मलाः। देहि माने आत्मा अत्यन्त निर्मल है। ये तो हमने आरोप करा है उसके ऊपर। असङ्गोअहं इति .. जब ऐसा दीया जलाने पर जब ऐसा जब दर्शन होये, तब आप असङ्ग होते है। तब ये बाहर भीतर आप पवित्र होते है। उस ज्योति से उस मणिवत ज्योति से उसके दर्शन मात्र से बार बार दर्शन होता है। दूसरा को तो दिखता नहीं ये स्वानुभूत विषय है। ये स्वयंभू है। वो ज्योति स्वयंभू है। आत्मा स्वयंभू है, ऐसा है। तो वो ज्योति के रूप में दर्शन- जिसको ये एक बार भी, एक बार भी अगर दर्शन हो जाय तो इस जन्म में आपका कल्याण हो गया।

ऐसी संधि (सतगुरु और शिष्य का, इस तरह मानव जन्म का संभवतः) मिलने पर गंवाना नहीं चाहिए। यही उत्तरायण है। ज्योति ही उत्तरायण है। जब जायेंगे तो इसी ज्योति में मार्ग जायेंगे। और जिनकी ज्योति नहीं जगी, जो अंधेरे में अभी भी है, वो जब जायेंगे तो अंधेरे मार्ग में जायेंगे (दीक्षा होने पर और कुछ नहीं तो, आप मृत्यु के समय में ज्योति के साथ जायेंगे-श्री गुरुजी) सीधे चन्द्रमंडल यमलोक में जायेंगे। ये चन्द्रमंडल

नहीं सूर्यलोक में जाते है। ये जो आप जाते है, बड़ा अंतर है इसमें। ये जो विषय है छोड़ देता हूँ। लंबा हो जायेगा। तो तात्पर्य ये है कि कृष्ण ने कहा है, तुम्हारे योग क्षेमं को मैं वहन करता हूँ, फिर क्या चिंता है। अगर कृष्ण भगवान भारत में प्रकट हुए है। महाभारत हुआ हो, और मंदिर इधर उधर है। संप्रदाये हैं, अगर ये सत्य है। तो मैं कह रहा हूँ, ये भी सत्य है। इसलिए हमारा क्या होगा, ये कोई चिंता न करें। जन्मतः बालक तो कुछ अपना करता नहीं लेकिन लोग हैं उसकी माँ करती है दाई करती है सब लोग मिलकर करते है। सब पालन पोषण होता है। जिस समय वो मेजर होता है, उस समय जब माने न माने करे न करे। तब तक पालक उसका उत्तरदायित्य रहता है, १८ साल का हो गया, तू जान तेरा कारोबार जान। फिर सरकार का, उसका उत्तर दायित्य है। ये क्या करता है क्या नहीं करता है, सरकार के किताब में उसका नाम आ जाता है। कि सरकार सर्विस देती है। १८ साल के बाद, १८ के भीतर सर्विस नहीं देती, तब तक माँ बाप जो है पालक जवाबदार है। तो तात्पर्य ये है ये मनुष्य का जन्म मिलते हुए, मनुष्य का जन्म मिला। स्वास्थ लाभ हुआ, और अच्छे वर्ण में अच्छे कुल में। भारत जैसे देश भारत-भूमि, पवित्र-भूमि, पवित्र- देश, में जन्म लेकर के अगर ये संधि हमने गवां दिया।

तो आई हुई गाड़ी, अगर वो नहीं, टिकट कटा लिए ठीक है-आप दीक्षा ले लिए ठीक है। लेकिन गाड़ी में बैठना चाहिए कि नहीं। अगर गाड़ी में नहीं बैठोगे तो कोई गाड़ी जो है तीन मिनट खड़ी होती है कोई दस मिनट खड़ी होती है कोई स्टेशन पर बीस मिनट खड़ी। अगर आप नहीं बैठे गाड़ी में तो क्या करती है पुक् करके निकल जाती है। जो गाड़ी में बैठ गये वो पुक करती है तो कितना अच्छा लगता है वो पुक, और जो बैठे है

स्टेशन पर और गाड़ी चली, उसको कितना अच्छा लगता है। और जो स्टेशन के बाहर दौड़ के आ रहा है पुक कितना अच्छा लगता है। पुक एक ही है माने सीटी एक ही है, लेकिन देखिये व्यवहार भेद से परिणाम कितना अंतर है। वही सीटी है, बैठ गया अंदर तो आनन्द मिल गया। और जो लटक गया उसको तो दुःख हो गया। माने हुत हो गया वो, अरे हुत। क्या ऐसा भी अर्थ हो गया उसका।

तात्पर्य ये है संधि मिली है-दीया जला लो। तुलसी दीया अनूप है-उसकी कोई उपमा नहीं। आत्मा की कोई उपमा नहीं, वही परमात्मा है। परमात्मा एक ही होता है। चाहे हिंदू हो मुसलमान हो यहूदी हो, जर्मन हो, पारसी हो कोई भी हो कितने वो एक ही है। परम आत्मा जो है एक ही है। सब के लिए है उसमें कोई अंतर नहीं। इसलिए उसको कहा कोई उपमा नहीं। क्योंकि वह एक ही चीज है उसके जैसा कोई दूसरा कोई है, ही नहीं।इसलिए वो उपमा रहित कहा। अनूप माने अन उप।उपमा नहीं दे सकते आप।तुलसी दीया, ये जो दीया जो है-जलाने के लिए, ये दीया जब जला दिये तो, कोई उपमा नहीं है। वो तुम्हीं हो। और कोई नहीं, वही बोल रहा है। नहीं तो अभी आप नहीं बोल रहे है।आपकी वासना बोल रही है। क्योंकि आत्मा पर आपने आरोप कर दिया। आपने जो आरोप कर दिया यहाँ अहं जो शब्द है-मैं ये जो मैं बीच में जो है। दलाल एजेंट कमीशन एजेंट। ये जो सब.अद्भुत.वाले है सब। मैं करता हूँ, मैं देता हूँ, मैंने किया। नहीं तो तुम मर जाते ऐसा हो जाता वैसा हो जाता। ये सब ठीक है। तुलसी दिया अनूप है, दीया करो, सब कोई। दिवाली के दिन सब कोई दीया करते है कि नहीं ये तो बिल्कुल टाइम बीइंग है। ये अंदर का दीया है-उसको जलाओ सब कोई जलाओ, वैसे महात्मा बनो।

महान है आत्मा यस्य महात्मा। ये महान आत्मा हो गया। वेद हो गये मनीषी हो गये। ये जो बिकते है ऐसा नहीं है। अभी जो डण्डा खाया वो नहीं।

तुलसी दिया अनूप है दीया करो सब कोई, कर को धरो न पाइयो जो कर दिया न होय। अंधेरा है बिजली चमक आई, अगर हाथ में दीया न हो तो कुछ मिलता है क्या? घर में कौन सा चीज कहाँ रखा है, कभी नहीं मिलता। तो भई दीया ले लो, दीया हाथ में लो, वो ले जाके ढुंढो मिल जायेगी।

इसी प्रकार से नाना जन्म बीत गये, नाना जन्म हो गये उस कारण से और जन्म होने वाले है। इसको जानने के लिए ये दीया जलाओ। ये दीया जब जला दोगे। ये दीया-जब तुम्हारे हाथ में आ जायेगा। तो भूत भविष्य सब तुम्हारे समझ में आ जायेगा। जो आपने कर्म किया शुभाशुभ है। शुभाशुभ मिश्रित है। जो कुछ है ये सब आपके समझ में आ जायेगा। और बिना दुःख भोगे, आपको दुःख नहीं होगा। भोगना तो होगा लेकिन दुख सुख नहीं होगा। भोगना तो पड़ता है लेकिन दुख नहीं होता (अर्थात दुःख सुख में सम हो, आनन्द हो, सम्भवतः) अभी हम दुःख सुख में कट जाते है। ये आश्वासन है। कृष्ण ने दिया राम ने भी दिया, बड़े बड़े संत आये उन्होंने भी दिया। इस प्रकार से जीवन में परिवर्तन हो जाता है।और ये आश्वासन है चिंता की बात नहीं। इस दीया से बढ़कर और कोई दीया नहीं, तब आदमी पवित्र होता है।

वो मंत्र (ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा य विसर्ग यःस्मरेत् पुण्डरीकाक्षः स बाह्याभ्यंतरो शुचिः) है। वो मंत्र से तो कुछ होता नहीं। ये सब कर्मठ पना है। कर्मठ पना से स्वर्ग होता है। दीया, दीया तुलसी दीया

अनूप है। अरे बाबा, कुछ न कुछ अपने कमाई में से से देना चाहिए। ये व्यवहार है वही दोहा है। क्योंकि जो आप दोगे अगले जन्म में वही तुमको मिलेगा। उसमें कोई फर्क होने नहीं, गेहूं दोगे गेहूं मिलेगा, पैसा दोगे पैसा मिलेगा। कपड़ा दोगे, कपड़ा मिलेगा, रोटी दोगे, रोटी मिलेगा। तो तात्पर्य ये है तुलसी दीया, दिया करो, देना चाहिए। अपने कमाई में से, दिया करो सब कोई। सबको देना चाहिए। सब कोई सीखो। अपने हिस्सा में से अपनी कमाई में से देना चाहिए। निकाल के रखना, देना चाहिए। कहाँ देना चाहिए बात अलग है। दुःखीजन है वहाँ देना चाहिए। भूखे प्यासे जो है। वे, हट्टे कट्टे मांगते है उनको नहीं।

क्योंकि अगर आप दिये नहीं आप, तो जन्म लेने के बाद आपको क्या मिलने वाला है। कर का धरा न पाइयो, जो कर दिया न होय। नहीं दिया तो हाथ का धरा हुआ भी नहीं मिलेगा आपको। माने हाथ का धरा इस जन्म में भी अगर तुमको माँ बाप, ने दे दिया, या किसी ने दिया आपको, जीवन है,अच्छा बनाओ। अगर तुम्हारे हाथ ने दिया नहीं होगा तो वो भी तुमको तुम्हारे काम में नहीं आयेगा। क्योकि तुमने दिया नही, लोगों ने दिया। हिंदी में कहा - फूस का तापड़ और उधार का खाव, कितना दिन चलेगा। ठण्डी खूब पड़ती है, घास का ढ़ेर लगा दिये, फुरर पुप, कितने देर तक तापते है आपके हाथ पैर, और उधार का कब तक मिलेगा खाने को आपको ये। ऐसी बात है, कहाँ तक हाथ का धरा चीज जो हमने दिया नहीं है तो कितना भी कोई दे, ऊहूँ ऊहूँ, वो हाथ नहीं आता।

- चन्द्र और उसकी किरणें दोनों एक है। इसी तरह से हमारा क्रिया, सत्य जो है। जो कुछ हम कर्म करते हैं आत्मानुसंधान में । तो मैं, जो और

आत्मा है, ये दोनों एक हैं, सम्बन्ध विच्छेद नहीं है । उसका क्रिया, क्रिया फल तत्काल है। उसका फल क्या है, प्रकाश। जिस दिन ये स्थिति बनती है वो अंतिम स्थिति है। सारी दुनिया है - वसुधैव कुटुंबकम । सारा वसुधा उसकी है । होना है, कहीं भी जाय, वो ज्यों के त्यों है। उसकी आवश्यकता है, होगा । होता है, योगक्षेमं वहाम्यहम। कृष्ण कहता है। वो कृष्ण मैं ही हूँ। वो वासुदेव स्वरूप है, वासुदेव है वो। वो सबमें है, सब उसका है । सारा विश्व जो है। ऐसा जो सर्व व्यापक जो है । ऐसा जो है, तो मांगना कहाँ जानता है? कहाँ मांगना है? कहाँ छुपाना है? कहाँ अभाव है? इसलिए जो आवश्यकता है, तत्काल उसको मुहैय्या सब है। सब उपस्थित है। ब्रम्हचर्य बताया - जिसका मन और बुद्धि आत्मतत्त्व में लीन है। कामिहि नारी पियारी जिमी, लोभी जिमी प्रिय दाम, तिमी रघुनाथ निरंतर ही प्रिय लागो मोरे राम। रघुनाथ माने आत्मा । ये आसक्ति है, अंतर में चौबीस घण्टे लगे है। बस, आंनद, आत्मानंद में रमा हैं, डूबे हुए है। तो अहं ब्रम्हास्मि हो गया। ये सोहं अस्मि है। उसके बाद कुछ नहीं है, कुछ नहीं है। अपने आपको देखता है, उसी में मस्त, उसी में लीन हो गया। एक ही तत्व है और कुछ नहीं । एक मन, एक तत्व । स्थितप्रज्ञ। तब वो प्रज्ञावस्था में स्थित हो गया।उस स्टेट में आ गया है, उसके लिए स्टेट हो गया वो। डिवाइन ओशनऑफ लाइट में रहता है। अपिरिग्रह जहाँ हो गया, अनेक जन्मों का बोध हो जाता है, उसको । है, मुझे है। स्वरूप जो है। डिवाइन ओशन ऑफ लाइट, ये भी नहीं रह जाता। बुद्धि नहीं रह गई, अंदर जाकर बुद्धि चूर हो जाती है । यही कैवल्य है।

।। डिविनिटी में रहने का अभ्यास ।।

- परम जो है न, और न होकर के, ये आदत तो डालो। जैसे सबका आदत डाल दिये हैं। ये भी आदत तो डालो। डिवाइन ओशिन ऑफ लाइट में। इसलिए वो किरण को पकड़ के रखिए, आत्म सूर्य में। वो ही है, वो आपके अंदर बाहर है, वो जो आत्मा है सूर्य जैसा । वो आपके अंदर बाहर है वो, वही आप है। क्या। वोही आप है। इतना ब्यूटीफुल है आकर्षक है, इतना बढ़िया, (आदमी का) मैं जो है, खत्म हो जाये । मैं क्या बताऊँ । हिरण्य गर्भ, पांडु रंग जो कांति है । वो स्वर्ण सोने की तरह, उसके गर्भ में, उसके बीच में हम है, चारो तरफ वो है। ओत - प्रोत है वही प्रकाश है। आगे पीछे दसों दिशा में वही है। वही अनन्त वही अनादि, वही परमात्मा है। ये सारे भूत उससे उत्पन्न हुए। वो सबका पति वो है। जगतपति (स्वामी, पालक) कहते हैं ना। सारे जग का एक हि पति, एक ही ईश्वर। वो जो है, हिरण्य गर्भ के रूप में, आपके वो सगुण है। वो जो आकृति है वो सगुण है। सगुण का दर्शन होता है, निर्गुण का नहीं । निराकार का नहीं, साकार का होता है। जब वो अपने आपको साकार करता है तभी आपको दर्शन होता है। निराकार तो बिगिनलेस एंडलेस् है। जाना गया केवल साकार सगुण। क्योंकि अपने आपको ज्योति रूप में प्रकट करती है, आपकी बुद्धि में। और केवल बुद्धि नहीं, आपके संकल्प। एक आसीत, माने बहुत पहले ऐसा जो था, वो। सबसे पहले। सृष्टि के पहले ऐसा जो था, वो। आपको, इस प्रकार से। पांडुरङ्ग कांति दिव्य तेज झलकती, तो दिव्य तेज, तो दिव्य तेज ऐसा आकर्षण होता है, क्या बताऊँ। सत् आधार, उसी को वो सत कहा। यही वो शक्ति है। सत् माने शक्ति। महाशक्ति। कर्तुम अकर्तुम् स सक्तः। सबका आधार वो है। वो

सत् ही सबका आधार है। शक्ति ने सबको धारण किया है। अगर शक्ति नहीं, आप इसको धारण नहीं कर सकते, शक्ति ने धारण किया है, इसको। आपने नहीं किया, वो शक्ति ने किया। वो शक्ति माने आप। लेकिन हम अपने आपको अलग समझते हैं। और शक्ति को अलग समझते हैं। ये जो भ्रांति पैदा हुई है, आज। वो भ्रांति उत्पादक जो सारी, तोडचंद् और पुस्तके, लेन देन सब। क्योंकि अब वो व्यापारी है। न एक्सपीरियेन्स है न एक्सपीरीमेंट है। केवल उसके पास किताब है। कि मनमानी अपना जोतते है। माने वो आधार पृथ्वी, अंतरिक्ष, पृथ्वी से लेकर अंतरिक्ष तक सबको धारण किया है। अब ऐसा जो महान देव है, विश्व पति, ऐसा जो है। जो विश्व का प्राणी, जगत, जगतकर्ता जो है। सृष्टि कर्ता जो है। ऐसा जो एक ईश्वर है। ऐसा देव और दूसरा है ही नहीं। और दूसरा देव कौन सा है, जो माने, उसे नमस्कार करें। प्रातः स्मरामि देवस्थ सवितुर्भर्गुर आत्मनँ वरेण्यं तदधियो योगः चिदानंदे प्रचोदयात। वही सत् चित आनन्द है। आत्मा को सत् कहा गया। वरेण्यं धियो योनः। धीमान जो है, माने धीमान को क्या कहा। माने आपमें वो आत्मा है जो परम है।परम शक्ति है। इसे तो हमने छोड़ दिया और बाहर में है आप। कुछ तो कुछ तो करते है। चिदानन्दे प्रचोदयात। चित माने बुद्धि में उस आत्मा रूप अनन्त देव को धारण कर लेना। और ऐसा देव से दूसरा बढ़कर और कोई नहीं हैं। कबीरदास ने अच्छा गाली दिया है, मालूम है आपको। राम माने आत्माराम, रामपियारि छाड़ि के करे और का जाप, वेश्या केरा पूत जो कहै कौन को बाप। कितना, बहुत बढ़िया गाली है ये। इसको तो छोड़ दिये। इसलिए आज हमारी दुर्गति है। आज जो निरक्षर बताये न अभी डा. साहब बताये, ये हमारे निरक्षर होने का कारण है। अक्षर माने अविनाशी।

बाहर, बाहर है, निरक्षर है। अब जो साक्षरता फैला रहे हैं। इससे क्या होने वाला है। इससे कुछ होने वाला है। कुछ होने वाला नहीं। आपको विवेक होना चाहिए। अक्षर, अलभ्य है, ये दर्शन का सूत्र है। ये तीन शब्द है, जो दर्शन शास्त्र है। अव्यय, अक्षर, निरक्षर। अव्यय वो है जो आलमाईटी है । अक्षर जिसको आल्माईटी का ज्ञान है।और योगी लोग, जो परिवर्तन शील है हमारे पास में, वो हेय है। और जो अपरिवर्तनशील है, वो आत्मा है।

।। दीक्षा में दिया आदेश ।।

- हो गया । तो कभी भाई मेरा मान और मैंने किया अनुभव किया। तभी तो ऐसा संग हो सकता है। तब ऐसा संग होगा-ये है सत्संग। प्रसंग नहीं। ये है सत्संग- क्रिया योग भी यही है। ज्ञान योग भी यही है। और भक्ति योग भी यही है। जैसा चाहे अपने आपको रख सकते हैं।और आज से कभी भी अपने आपको धारणा (अखण्ड विराट ज्योतिर्मय-आत्मा) यही है। है कि नहीं। प्रेम यही है । क्या, है कि, नही माने अपने आपको सारा सुधार यही है। मनुष्य जैसे सोचता है वैसे हो जाता है, ये सिद्धांत सत्य है। ये भौरा ठीक रोज आता है उसे बंद कर देता हूँ, भूं भूं करता है एक दिन ऐसा आता है भौरा है वो उड़ जाता है। उसने क्या किया भौंरे को गुंजार को उसके शरीर में, क्या होता है? वाइब्रेशन हो जाता है। वो वाइब्रेशन जो धीरे धीरे मालुक्यूल्स जो है, चेंज होते होते वो भौरा हो जाइये। भौरा हो जाते है। माने पूर्व से हम भौरा थे। लेकिन वासनाओं के पकड़े जाने से फिर शून्य है । वैसे भौरा नहीं रह जाता लेकिन उसका गुंजार जो है, गुंजार ध्यान में रखे, कोई दिन में आता है वो भौरा हो जाता है। इस चीज को आप आदेश में डालिये। दीक्षा में आदेश ये है। कर दिया, कर दिया, बन

गया, बन गया, माने हो गया, हो गया। आपको क्या है? जन्म मरण सब रचना है है, बस। ये समझ खाली काम ये है।

।। सुषुम्ना में प्रवेश और निरन्तर अभ्यास ।।

- अग्नि माने सुषुम्ना।अगर इस अग्नि में आपका स्नान हो जाय।बापटिस्म हो जाय। सुषुम्ना में अगर आपका प्रवेश हो जाय।उसका मुंह खुल जाय। फिर क्या होगा, ऊर्ध्व गति आपकी होगी। फिर तमोगुण भी नही रह जायेगा। रजोगुण भी धीरे-धीरे, रजोगुण माने संशय, नाना प्रकार की शंकाएं, ये सब दूर हो जाते हैं। और अनाहत चक्र में आने पर वहां आप सतोगुण की ओर आप अग्रसर होते हैं।सतोगुण में जहां आप आये,योग प्रतिष्ठा।वो जो शक्ति है,जिसको कॉस्मिक ऐनर्जी कहते हैं।या जो आत्मशक्ति है,या ब्रम्ह शक्ति है,परम शक्ति है।परमा शक्ति है।या जो आप नाम देवे।वो आपको बोध होने लगते हैं।वो गुण आपमें सम्पन्न होने लग जाते हैं।ये उन गुणों के,आपमें लक्षण है प्रकट होने लग जाते हैं।ये साधक में,ये लक्षण जैसे अदृश्य शक्ति है,अवतारों की शक्तियां है,ये सब बोध होते जाते हैं।

- अभय-अभ्यास बनाये रखने से / अंतर रहित, चरित्र दोषों से मुक्त होता है। इस आत्म शुद्धि के बाद विकार रूपी जितने कार्य होते है, वे सब समाप्त हो जाते हैं। एवं अक्षुण्य रूप से शुद्ध कार्य होने लगते हैं। ऐसा होने पर हम अभय प्राप्त कर पाते हैं।

  संयत आत्मा-विज्ञानमय कोष / सेंटर ऑफ पीस, साधना करते हुए हम वहां पहुंचे। यह साधना की एक अवस्था है, इसे सहजा अवस्था भी कहते

है। उस स्थिति को जो प्राप्त कर ले, वही संयत आत्मा है।

सम्यक चरित्र-अक्ष-याने संशय है। स्व-अक्ष का संशय दूर हो जाता है। तो अपने आपमें आ जाता है, वह स्थिर हो जाता है। इस स्थिरता को ही सम्यक चरित्र कहा गया है।

आत्मा-जिससे धारण किया या धारण कर लिया। म-महान याने वह जो ब्रम्ह है, जिसका आदि अंत नहीं है। म से मकार, मकार से तीन कर्म-उत्पन्न होना, अस्तित्व में रहना, एवं लीन हो जाना। ये उदय, वर्तमान, अस्त-तीन गतिविधियां है, जिसमें वह मकार है, जो बिंदु स्वरूप है। ॐ यह स्वर निकलता है, यह स्वर ही महाशक्ति है। यह अनुच्चार्य (उच्चारण नहीं होता) है। सोना, उठना, बैठना यह सब महाशक्ति के द्वारा होता है। यह महाशक्ति ही शरीर के भीतर, आत्मा है। यह महाशक्ति आत्मा ही वह बिंदु है, जो आज्ञाचक्र में है।

धर्म व कर्तव्य-उस आत्मा को धारण करना / उसकी शक्ति को धारण करना। उससे सामाजिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त अपने आप होते चला जाता है। यही धर्म है।यही मानव मात्र का कर्तव्य है। धर्म याने आत्मा। ज्ञान ही धर्म है, अज्ञान ही पाप, अज्ञान ही भय का कारण है।

ज्ञानी / धर्मात्मा-अनुस्वार / मकार, की चार अवस्थाएं है, जाग्रत, स्वप्नावस्था, देह एवं तुरीयावस्था। इन चारों अवस्थाओं में जो समाज के कल्याण हेतु स्वाभाविक रूप से समर्पित है-वही ज्ञानी है, वही धर्मात्मा है। वही कह सकता है, कि वह धर्म को जानता है। अन्यथा विद्वेष फैलाना, षडयंत्र रचना धर्मी का उद्देश्य या तात्पर्य बिल्कुल नहीं है। ज्ञानी ही अपने ज्ञान से विवेक से लोगों का भला बुरा समझता है, और धारणा शक्ति से युक्त हो जाता है।

शांति / स्थिरता-सेंट्रल केनाल में घुसने के बाद ही स्थिरता अथवा शांति मिलती है।

मुक्ति-सतगुरु की सहायता से सेंट्रल केनाल खोलना पड़ता है-हम इसे मुक्ति कहते है। सुषुम्ना खुलने के बाद फिर कर्मफल नहीं बनता, आगे बढ़ता है, गिरना नहीं है। धर्म माने आत्मा-यह जो परम है, उसे ही परमात्मा कहा गया। उस परमात्मा का साक्षात्कार-इन दोनों में कोई भेद नहीं है, एक ही है। यही साक्षात्कार ही मुक्ति कहलाती है।

मोक्ष-समाधि की अवस्था प्राप्त होती है, वह उन्नत स्थिति है, जबकि एक भी संस्कार नहीं रह जाते। बुद्धि तब प्रकृति में, एवं प्रकृति पुरुष में लीन हो जाती है - यही मोक्ष है।

साक्षात्कार-आत्मा के योग से बुद्धि तीक्ष्ण होती चली जाती है। यही बुद्धि आत्मा के योग से सूक्ष्मतर होती जाती है। बुद्धि की सूक्ष्मता की सीमा ही साक्षात्कार है।

वेदांत-ऐसे ज्ञान की चरम सीमा जिसके आगे जाना (जानना) कुछ भी शेष न रहा-वही वेदांत कहा गया। वह ज्ञान कौन सा है, परम सत्ता / आत्मसत्ता, का ज्ञान।

सच्चा वेदांती व सच्चा व्यवहारिक-आत्मस्थ रहकर व्यवहार एवं वेदांत दोनों करते चला जाने वाला ही सच्चा वेदांती और सच्चा व्यवहारिक है। आत्मा स्वयं बोध स्वरूप है, अतएव आत्मस्थ रहकर ही सारे संसार का व्यवहार हो जाता है। विशेष प्रकार से आपकी भाषा, कुशलता, का बोध होते हुए, उसकी प्राप्ति एवं अपना काम, अपने द्वारा करा लेना ही व्यवहार है। मन-वचन कर्म से व्यवहार करना ही, व्यवहार है।

मुक्त-सद्गुरु कभी धन लेता नहीं वह केवल मन को लेता है। ये सब

(हमारा) सद्गुरु का है, ऐसी भावना जिस दिन, जिस क्षण आ गई, उसी दिन से आप मुक्त है। जातिअब तो इंद्रियाधीन है सब्, बस अब तो वर्ण संकरता है। जाति कहाँ है? जाति का मेरा अर्थ अलग है। जाति माने आत्मज, आत्मा से जो उत्पन्न हो-वह जाति है। ज=उत्पन्न, ति=उपसर्ग है।

निर्मल होना / पवित्र होना / आत्मस्थ होना-साधक जब साधना करता है, तो आत्मा तीसरी आंख में पहुंचता है। इस तीसरी आंख के भीतर एक प्रकाश है। (किसी बच्चे के तालू के नीचे एक ग्लैंड है-वही आंख है, तीसरी आंख) इस तीसरी आंख या आज्ञा चक्र को गोलोक, शक्तिपीठ, कैलाश, साकेत या निराम्बुज कहा गया-यहां पहुंचकर, मनुष्य निर्मल हो जाता है, सदा के लिए निर्मल हो जाता है। इस स्थिति में अपिवत्रता विनष्ट होकर-पवित्रता प्रविष्ट हो जाती है। इसे ही पुंडरीकांक्ष कहा गया। (ॐ अपिवत्रः पवित्रों ...बाह्याभ्यांतर शुचि) ये शुचि ही पवित्र होना है-तभी व्यक्ति आत्मस्थ होता है। स्थिरता प्राप्त करता है।

सम्भव (है सब)-बुरे विचारों से रक्त संचार की गति मंद पड़ जाती है। व्याधि उत्पन्न होने का कारण यही है। सबमें अपने रोग निवारण करने की शक्ति गुप्त रूप से मस्तिष्क में विद्यमान रहती है। भय या शंका से शरीर में जड़ता छा जाती है। मस्तिष्क के विद्युत प्रवाह के संचार में रुकावट पैदा हो जाती है, अतः इनसे बचो। हमारी आकांक्षाएं पूर्ण न होने कारण है-मन में संदेह, नकारात्मक विचार, अधैर्य व अपनी ही उच्चतर शक्तियों में आस्था का अभाव है। अतः आप जो चाहते है, उसके विषय में संदेह या अस्पष्टता नहीं होनी चाहिए। अपनी इच्छा के लिए सुनिश्चित विवरण तैयार कीजिए, दृढ़ निश्चय से जुट जाइए। आपका अचेतन मन

उसे कॉस्मिक विश्व में तरंगों से जोड़ देगा-और ऐसा दृढ़ निश्चय फलीभूत होकर रहेगा। चेतना या आत्मा या गुरुजी मेरी इच्छाओं को साकार रूप में दुनिया में ला रही है। चूंकि आत्माराम / गुरुजी के लिए कुछ भी करना पूर्ण रूप से सम्भव है-अतः मैं जानता हूँ, यह अब हो गया है। इस प्रकार की धारणा नित्य 15 मिनट सुखासन या शवासन में करिये।

।। आत्मा का दर्शन ।।

- कृष्ण नाम आत्मा का है । कृष धातु से ये कर्ष शब्द है, जो खींच रखा है। जिसने सबको आकर्षित किया है । धारण किया है। ऐसा जो महान है वही ब्रम्ह है। कृष्ण को योगेश्वर कहा, प्रत्येक शब्द उसका योग है। इस आत्मा का दर्शन (जैसे जुगनू चमकती है, वैसा) एक बार भी अभ्यास के द्वारा हो जाये तो वो माँ के पेट में फिर नही आता। दस अश्वमेघ के बराबर फल होता है। निष्काम व्यक्ति ही आत्मा का दर्शन करते है। दस अश्वमेघ करने वाला का पुनर्जन्म है। लेकिन, कृष्ण प्रणामी न पुनर्भवाय। याने जन्म मरण के फेरा से निकलकर, मोक्ष के मार्ग में आगे बढ़ता है।

  कृष्ण के जैसे एक भी सारे संसार में नही हुआ है। लेकिन आदर्श को एक एक शब्द को भूल गए। एक शब्द भी अनुभव में नही आया, केवल गप्पा मारते है। जरा भी संकोच नही आता कि हम क्या करते है।

  कृष्ण ने अर्जुन से कहा था, की तू खाली निमित्त बन, ये देख मैंने सब करके रख दिया है। अरे काहे को काँपता है, का हे को डरता है? अर्जुन कांप गया था।

  कृष्ण ने हमको कितना बढ़िया समझाया है की निरोध कब होता है। ये निरोध बिना सतगुरु के भी होता है, लेकिन कब? उत्कट इच्छा हो और

चल पड़ा। फिर आगे क्या है, आगे क्या है? अवश्य उस पद को प्राप्त कर लेगा जिसका नाम परम पद है।

मामेकंशरणम् ब्रज। ब्रज माने टू गो। जाओ। तुम वहां जाओ। अर्थात वो जो आत्मा है उसकी शरण में जाओ। माने अपने आप में समर्पित होओ।

अनेक जन्म संसिद्धि।अनेको जन्मों के बाद कृष्ण, कृष्ण हुए। तद्धाम परमं मम्। वो (आत्मा) मेरा धाम है।वहां पहुँचने के बाद आज कृष्ण, कृष्ण है।

गीता एक ग्रन्थ है जो शास्त्र के बराबर है। कृष्ण ने उसका निचोड़ ही रख दिया है। नेहाभिक्रम नाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते, स्वल्पमपस्य धर्मस्य त्रायतो महतो भयात्। ये जो अभिक्रम है अभी माने भीतर। अंदर अंदर में दीप। न नाशम् इसका नाश नही होता। उल्टा फल दोष भी नही है। तो जो कर्म (निष्काम, आत्मज्ञान हेतु) करने पर दोष न हो। नाश न हो। अभाव न हो। तो क्या समझेंगे उसको। एक बार भी फ्लेश हो जाए तो सब भयों से मुक्ति हो जाती है। निष्काम कर्म ही धर्म है।

गीता में सब पूर्व नियोजित है, कहा गया है। अतः सिद्धि, असिद्धि, हानि, लाभ को बराबर करके कार्य करो। यही व्यवहार है। दिव्यम् ददामि ते चक्षुः। जिससे जो पूर्व नियोजित है, देखा जा सके।

कृष्ण ने कहा है, अखण्ड रूप से मेरे चिंतन में दिन रात लगा हुआ है, डूब गया है। पगला गया है, उसका रखवाला मैं हूँ। इससे बढ़कर और क्या आश्वासन चाहिए? जब वह अपने आप में लीन हो जाता है तो योगक्षेमं वहाम्यहम् स्वयं होने लगता है।

सारा जगत वासुदेवमय है, अर्थात वासुदेव ही प्रकृति है। इसलिए जो कार्य होते है, वह प्रकृति ही करती है। प्रकृति अपना कार्य स्वयं करती है।

आप कुछ नही करते। उसको सहायक मिल जाती है।

श्रीमदभागवत सम्पूर्ण योग है, ऐसा कौन सा विषय है, जो उसमे न हो।

कृष्ण जैसे महान, दिव्यशक्ति सम्पन्न सारे जग में नहीं है, उनने भी कहा बुद्धि जड़ है। एक भी संकल्प बाकी है तो काहे का योगी और सन्यासी? ये कृष्ण बोल रहे **हैं**, मैं नही बोल रहा हूँ।

कृष्ण जैसे डिवाईन बीइंग जन्मते नहीँ प्रगट होते है मानव जाति को सही मार्ग बताने के लिए।

- उसका संरक्षक नहीं है । दृढ़ता है, तब संरक्षक है।

प्रप्रर्कषेण, माने आत्मा वो महाशक्ति है। वही सत है, सत्पुरुष है, पुरुष है। वही सतगुरु है, वही सर्वशक्तिमान है।आप बस उस ईश्वर का शरण लें।

वही सर्वत्र है, सर्वशक्तिमान है, वही सर्वज्ञ है-वही है । आप।

वो फेथ है और कॉन्फिडेंस है, वो संकल्प है, अपने आप वो, करा लेंगे।अगर ये फेथ है, अगर बढ़ते जायेगा, सब कर्म कटते जायेंगे।।

वरना करते चले जाओ, भोगते चले जाओ, और रिटायर हो गये। जहां से आये है वही पहुंचना है, वही तौबा है । वही मोक्ष है।

वासना बोले तो दुख होता है, संकल्प बीज है, जो संकल्प किया है । यही अंतराय है।

यही अंतराय है । हमको होता है, नहीं होता।

हृदय ग्रंथि माने-मन में जो संशय है जब तक दूर नही हो जाते, तब तक।

शवासन में दो बातें होती है या तो नींद आ जायेगी, या अनुभूतियां शुरू होती है।

वही निर्गुण है । सगुण रूप में, आत्मज्योति है।

राम नाम सत्य है, सत्य बोलो गत्य है। गत्य माने निकल गया । सत्य माने रचना, अनुभूत विषय।

पंचम केंद्र / विशुद्ध चक्र, में जाने पर भी वह, भयंकर हो सकता है। क्रास करके ऊपर नहीं गया, विधाती कर्म जन्म-मरण बना रहता है। ऊपर नहीं जाता तब तक वो ऊर्ध्वगमन हो नहीं सकता। जब वो विशुद्ध को क्रास करके आज्ञा चक्र पहुंचता है, तब वो, केवली। उन्हीं को त्रिकालज्ञ, सर्वज्ञ, केवली कहा है।

- आत्मा अजर अमर अविनाशी है । मोक्ष के लिए सम्यक ज्ञान चाहिए। स्वशरीर का बोध नहीं रहता माने बाहर के बंधन से छुटकारा मिल गया । माने मृत्यु का भी भय नहीं रहता यही प्रत्याहार है।

  शरीर का ज्ञान नही रहता, जगतीय व्यवहार छूट जाता है, तब साधु बना। साधु माने कल्याण माने एक शुद्ध बुद्धि, केवल सतोगुण बुद्धि में रह जाता है। अभय हो जाता है, बुद्धि स्फटिक मणिवत हो जाता है, तब साधु हुआ। गोनाल्ड रस। पीनियल में पैदा होता है, यह बदल कर ज्योति के रूप में आ जाती है । यहां तीसरी आंख है। पीनियल बॉडी माने ज्ञान ।पीनियल बॉडी में प्रवेश होते ही बुद्धि आत्मस्थ होती है।

  स्वास्तिक माने आशीष ,शुभ कार्य की सम्पन्नता के लिए विघ्न विनाशक, आत्म देवत्व।

  गीता। ब्रम्होपनिषद। अर्थात उससे महान और कोई नहीं।

  मैं [कृष्ण, परमात्मा] सबमें अपने को स्थापित किया हूँ। मनुष्य योनि में आत्मा के साथ बुद्धि है, जो ऊर्ध्वरिता बनाकर उन्नति करे। आत्मा तो

सबमें है, ही लगन से ध्यान धारणा से उसे प्राप्त करें । आत्मज्योति का दर्शन, यही दीपज्योति का भाव, यही दीपावली का भावार्थ है।

दीपावली की ज्योति तो ध्यान में आ गई । यही ज्योति का, आत्मज्योति का प्रतीक, बुद्धि में समाहित होकर, चित्त में संचित हो गई। जो आगे चलकर जन्म जन्मान्तरों तक रहेगी।

ज्ञान का प्रवेश सुषुम्ना के द्वारा होकर कोष में पहुँचता है। तुर्यावस्था में तीनों काल भूत भविष्य और वर्तमान का बोध स्वयं होता है । इसके बाद आनन्दमय बीज निर्बीज होकर आत्मा में समाहित हो जाती है, केवल आत्मा याने स्वरूप विद्यमान रहता है।

।। कुंडलिनी शक्ति का जागरण ।।

- मनुष्य अपने भीतर के नियम विरुद्ध, प्रवृत्तियों को मनमानी करने दे, ऐसा निरीह / अशक्त नहीं है। उसे अपने आपको बदल सकने की शक्ति प्रदत्त है। वह चाहे तो अपने आपको उत्कर्ष एवं परमोत्कर्ष पर ले जा सकता है। जन्म एवं पुनर्जन्म उस पर निर्भर है।

धन्य हैं जो इस घृणापूरित संसार में घृणा से बचकर जीते हैं ।

बुद्धि की पाँच वृत्तियां हैं। प्रमाण संकल्प विकल्प निद्रा स्मृतया । इन पांचो वृत्तियां से जब वह रहित होती है, तब बुद्धि शुद्ध हुई। वह प्रकृति में लय हो जाती है, इस स्थिति को कैवल्य कहा जाता है।

जब बुद्धि "रूप" में, सम्यक रूप आत्मस्थ होती है, तब समाधि है। एक चैतन्य [सबीज] दूसरा निर्बीज समाधि [सिद्ध अवस्था]। आत्मानुसंधान रूपी कर्म यही निष्काम कर्म है । इस निष्काम कर्म रूप धर्म रूप के

प्रभाव से बुद्धि शुद्ध होकर स्फटिक मणिवत आत्मप्रकाश से जब युक्त हो जाती है, तब ऐसे अनुभव प्राप्त होता है। जीते जी वह जीवन मुक्त है। यही चैतन्य समाधि है।

अभ्यास करते करते जब कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है तो इतनी उष्णता बढ़ जाती है कि आग लगी है शरीर में, ऐसा अनुभव होता है। जो सप्त धातु है उसको चाट जाती है। चाटने का अर्थ ये होता है वो हमारे नाना जन्मों के किये गए वासना द्वारा कर्म राशि, जो सुख-दुःख का भोग है और शरीर में जो इन्द्रियाँ है। मन, बुद्धि और विषय से विषाक्त हो करके जो हमारी इन्द्रियाँ दूषित हो गई हैं और बार बार उस ओर आती जाती है । तो कुण्डलिनी शक्ति जगने के बाद ये स्थिति जब आ जाती है तो शरीर का शोधन हो जाता है। एक एक सेल में, एक एक कोष में वो घूम जाती है और घूमने के बाद जितने दोष है, जितने मल है, उसको जलाकर भस्म कर देती है। माने अपने विष से उन सबको साफ़ कर देती है। जनम - जनम के संस्कार जो हैं उन सब को दूर कर देती है। जब वो दूर हो जाते है, जब सब वो चाट लेती है । तब प्रसन्न हो कर के ऊपर जाकर खड़ी हो जाती है। कभी गिरता है, कभी बोलता है, कभी हंसता है, कभी गाता है, कभी नाचता है, कभी पागल जैसा हो जाता है । और कभी लकड़ी जैसा पड़ा रहता है उसका शरीर है या नही ये भी बोध नही रहता। वह सत्व शुद्ध हो जाता है । तब जो खजाना सहस्त्रदल कहते हैं। वहाँ जा के seat बनाती है माने वहाँ जा कर के घर बन जाता है। वहाँ रहने पर नाना प्रकार की शक्तियां जो आप में भरी पड़ी हैं , वो सारी शक्तियां अपने आप काम करने लग जाती हैं।

।। आत्मशक्ति का विकास ।।

- आत्मज्ञानी सर्वज्ञ होते है । तत्वदर्शी होते हैं।

  तुम्हारा कोई एफर्ट नहीं, तब ये अहंकार चला जाता है । ये रहस्य है।

  आप जीवनमुक्त हो गये। अब आपका चित्त, मन, बुद्धि, ब्रम्हतत्त्व में लीन है।

  ऐसा ध्येय होना कि, अभी भी, आगे भी, कभी भी । हमारा कल्याण हो और हमको देख औरों का भी कल्याण हो।

  दिव्य शक्ति। आपके शरीर के अंदर, सर्वत्र वही है। नाम स्मरण ही, संभव अभ्यास है।

  मन को, आत्मरूप करना यही समाधि है।

  आप सत्पुरुष से पाने, जो भजन - पूजन, यज्ञ करते हैं - वही आत्मयज्ञ है।

  आत्मदेव से बढ़कर कोई देव नहीं, वो तुम्हारे इष्ट हैं, वो तुम्हारे अंदर ही है। (हजारों सूर्यों का सूर्य, अनंत सूर्यों का सूर्य है)

  जब तक मैं करता हूँ, यह रहता है, तब तक कुछ भी नहीं मिलता। (तुम्हीं करोगे और तुम्हीं सब कुछ हो, यह निश्चय हो)

  गुरुजी को जानते हैं ,आपको विश्वास हो, तो सब सीधा हो जाता है। साँप भी आ जाय, तो सीधा हो जाता है।

  क्या नहीं हो सकता इससे? इस शक्ति से (गुरुजी से, उनकी शक्ति से, आत्मिक से, आत्मा से, अहंकार हीनता में, पूर्णसमर्पण से, सम्भवतः) क्या नहीं हो सकता?

  बुद्धि की वृत्ति, आत्मा की ओर भीतर, अग्रसर होती चली जाती है ।

तुम्हारे प्रयत्न से कुछ नही होता । वो अपने आप रास्ता बनाते, और जाते रहती है।

जब बाहर के वस्तुओं से, जो अट्रैक्शन हैं, वो आप अस्त हो गया। तब तीनों / गुण / प्रकृति, पर संयम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) होगा।

गुरुजी ने कहा, ये है रखो। रखो, माने रहो (चरणों में निश्चल मरे, पड़े रहो, तभी जीवित हो, सम्भवतः) मतलब खाली (माने सम्पूर्ण रूप से खाली होकर, कठपुतली की तरह सम्भवतः) आपको खाली मात्र रहना है।

बुद्धि से परे जाना है, वही बंध है । बन्द है, अभ्यास से खुला तो ऊपर गये । आज्ञा में (आज्ञा-चक्र), आप पहुँचे। फिर ये संशय कहाँ? आप विशुद्ध हो गये।

बताये मार्ग पर अभ्यास करना है । लेकिन रेग्युलर और दृढ़ संकल्प, तब काम होता है।

अभ्यास से आप बराबर मल रहित / दोष रहित / गुण संपन्न, हो जायेंगे। खाली उसे विकसित करना है । प्रक्रिया से - दिव्य / स्थिर होना है। तब जो आपके भाव में आएगा वह बराबर होगा। अशांति दूर होगी।

शरीर पर नियंत्रण होना चाहिए। जिससे की आत्मा को निर्मल बनाने में बल मिले। बस, आत्मशक्ति को विकसित करना है। और कुछ नहीं।

गुण ग्रहण करना पड़ता है। वही गुण परिर्वतित होकर शक्ति हो जाती है। इसलिए शक्ति के सिवाय कुछ नही । इसको अनंत कहा, ये ज्ञान है - ये आपको प्राप्त करना है।

धर्मफल ये है, कि हम भय से दूर हो। सुषुम्ना में घुसकर, मृत्यु केंद्र को

पारकर जब आज्ञा में आयेंगे तब अभाव दूर हो जायेंगे। जीवन सम्यक होगा। शांत्यावस्था होगी। संकल्प मात्र से सब होता है, इससे / योग से, यही लाभ है।

आचरण में लाना है। आचरण हीन होने से (वासना, कामना, काम, क्रोध, मद, लोभ, भय, आदि) ये कम नहीं होते।

यहाँ देर है, वहाँ देर नहीं है। इसलिए अपने आप को पढ़ो, हम क्या करते हैं, क्या नहीं करते, हम कैसे हैं?

आपको आदर्श होना है । इसका नाम है सत्संग। हमारा काम है, सदा सत का संग । ये सत्य, सत्य परम पद है । इसके प्राप्ति से आप महान व शक्तिमान हो जाते है। बाकी वो सब प्रसगं (है), उनसे भय दूर नहीं होता। भोग के त्याग से ही - सारी चिंताये समाप्त हो जाती हैं। जगत भगवान से भरा हुआ है । तुम्हारे अविश्वास से मंगलमयी माँ ढकी हुई है।

।। नवीन प्रारब्द्ध का निरोध ।।

- जलमग्न समाधि, नौ साल का था मैं। कृष्ण का दर्शन तीन घण्टे तक होता रहा।उसके बाद जलमग्न संसार,कृष्ण का दर्शन हुआ।उसके बाद 1983 में अमरावती में २६ जुलाई २७ जुलाई, महासमाधि में, मर गया। फिर से जीवित रहा। उसके बाद दूसरे दिन, ज्योति।आत्म ज्योति सारे संसार में नौ बजे से लेकर सुबह, १२ बजे तक आत्म ज्योति। या कारणाने जितुके होईल तितुके करावे सत्कर्माने भरून द्यावे भूमंडल। सारा भूमण्डल आत्म ज्योति से भर गया।और मैं अकेला, उसके बीच। आनन्द, आनन्द।

आत्म ज्योति में आनन्द, तीन घण्टे तक।सारा भू मंडल आत्म ज्योति से भर गया। स्वामी रामदास, गवाह। महावीर स्वामी, गवाह हैं। अब मेरा काम हो गया। मैं जीवनमुक्त हुआ।जो चाहिए था वो पूरा हो गया।अब हमें कोई चिंता नहीं। सातिशय।जो इन आँखों से नहीं दिखता,सब दिखता है।अष्ट सिद्धि सब आती है।वो मैंने सब करके देख लिया।और मैं कोई,मैं योगी हूँ।मैं तात्विक नहीं हूँ।मैं कुछ नहीं चाहता। अर्जुन को कृष्ण ने कह दिया था, काम तो मैं करता हूँ। सारा युद्ध मैं, सब मार दिया।तुम तो खाली निमित्त है।तू तो खाली निमित्त मात्र है। तुम्हारा सारा नाम होगा दुनिया में।काम तो मैंने कर दिया है। इसी प्रकार से, जो चाहिए, जैसा चाहिए, सब मिल जाता है। सब मिट जाता है।होता है। हमको जो चाहिए,अपने आप बस।हमने ऐसा आदमी एक भी भारत में नहीं देखा। कपड़ा बदलते हैं।और पैसा कमाते हैं। और चोरी करते हैं।और बाबाजी करते हैं।हरि ऊँ,तत्सत। मैं कुछ नहीं करता। कृष्ण है वो करता है। मैं जीवनमुक्त हूँ।अहं ब्रम्हास्मि।अयं ब्रम्ह।सच्चिदानन्द रूपोऽहं। नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त। हमको कोई जानता नहीं, न हमें कोई जनवाना है। मेरा काम भगवान जैसा है।मैं परवश नहीं हूँ। तुलसीदास जी ने भी कहा है, वो सब काम करता है, तुम खाली बैठे रहो बस। अहं ब्रम्हास्मि। एकोऽहं बहुस्याम।मैं एक होते हुए बहुत हो गया हूँ। वो निर्गुण भी है। सगुण भी है। जैसा है, वैसा रहे। एकोअहं बहुस्याम। एक से बहुत हो जाते हैं। ऐसा बोलने के साथ में सारी सृष्टि खड़ी हो जाती है। बार-बार बोलना (जन्म लेना) नहीं पड़ता। खड़ी हो जाती है,ज्यों के त्यों।इसका प्रमाण है।संचित माने क्या?अनेक जन्म होता है, तब संचित आती है।अगर ऐसा न हो,

संचित कहाँ से आती है?ये प्रश्न आज तक किसी ने सारे भारत में, ये मैं कहता हूँ।ये है पुर्नजन्म।ये आत्म ज्योति है।ये सब लीला है। ये सब करके रखा है। खाली लीलाधर है, लीला चलते हैं। नाटक है उनकी और हम नाटक करने वाले हैं। और हम नकल करते हैं। हम कुछ नहीं करते,अपने आप होता है।जब ज्योति हो जाती है। और देख लिया है। उसका काम, भगवान, ईश्वर सब कुछ करता है। जैसा है वैसा है।वो सब कुछ करते रहता है। हम कुछ नहीं करते, अपने आप होता है। मैं अनुभव कर रहा हूँ। उम्र के साथमें आज तक हम कुछ नहीं करते। न क्षेम करते न वहन करता हूँ। कुछ भी नहीं करता हूँ।वो सब करता है।कर रहा है और हो रहा है। हम कुछ नहीं करते,वो खुद होते जाते रहता है। डूबने से भी बुढ़ने से भी। शब्द ब्रम्ह है। मैं नहीं कुछ। वो चैतन्यता,ये शास्त्र है। योगिक शास्त्र है। इसी के लिए जन्म हुआ है,ये प्राप्त करना। और संसार में जगत में, गाँव गाँव में मनुष्य के पास जा करके शिक्षा दीक्षा देना और प्रसार करना। ये मेरा काम है। हरि ऊँ। योग शास्त्र में दिया है, एक ही समय में अनेक जगह प्रकट होना और अपने भक्तों को जो विश्वास करते हैं,संकट के समय में।ऐसे लोग जो भगवान समझते हैं।ऐसे लोगों को डूबने से गिरने से बचा लेने का काम हमारा है।और बचाते रहना।जब कभी भी संकट आ जाये।याद करते हैं, उनकी मदद कर देना।और बचते हैं। आज सैकड़ों उदाहरण है। ये मेरा काम है।धर्म किये धन ना घटे, ये कौन सा धर्म है?जो सहाय रघुवीर। वो कौन सा रघुवीर?तुलसी पंछिन के पिये घटे न सरिता नीर।

- तरुणाई में होत हैं, योग-भोग-उद्योग। यही सत्य है। आनन्द मंगल हो। सबका भला हो। हानि कभी न हो किसी की। न अपमान हो, न निरादर हो, हम बस यही चाहते हैं। जिसको जो व्यवहार, व्यापार है। उसका सुख-दुख वैसा है।अभ्यास करते करते जब कुन्डलिनी शक्ति जग जाती है। तो इतनी उष्णता बढ़ जाती है, कि आग लग गई शरीर में ऐसा अनुभव होता है, बोध होता है। चाहे धूप हो गर्म हो, हवा कुछ भी हो उसके सामने कुछ भी नहीं लगेगा। निकल जाती है। शांत हो जाती है। जब वो जाग जाती है, जो सप्त धातु है, उसको चाट जाती है। अर्थ है, नाना जन्मों के किये गये वासना द्वारा कर्म राशि, जो सुख दुख का भोग है। शरीर में जो इन्द्रियाँ हैं। मन, बुद्धि और विषय से विषाक्त होकर, इन्द्रियाँ जो दूषित हो गई हैं।बार बार उस ओर आती जाती हैं।तो शक्ति जगने के बाद ये स्थिति जब आती है, शरीर का शोधन हो जाता है। सब दोषों को निगल जाती है। खा जाती है।विष माने व्यापक।विष्णु माने सर्वव्यापक। गरल माने विष। पहले गरल उगलती है। उसके बाद उस गरल से सब संशोधन (सब खा जाती है दोषों को) होता है। जब वो जगती है, (उस जगह से फूटती है) जब खड़ी होती है। तो सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो जाती है। याने क्या होता है, फैल जाती है। एक एक सेल में एक एक कोष में वो घूम जाती है। घूमकर जितने मल है, दोष है,जलाकर भस्म कर देती है। माने अपने विष से उन सबको (दोषों को) साफ कर देती है। बाहर में जो विषय, इन्द्रियों में जो आदत है, दूषित जन्म-जन्म के संस्कार जो हैं, उन सबको चाट लेती है। दूर कर देती है। तब प्रसन्न हो करके ऊपर जाकर खड़ी हो जाती है। लकड़ी पड़ी है सूखी, वैसा पड़ा रहता है। सत्व शुद्ध, पवित्र हो जाता है। तब खजाना जो है सहस्त्रदल/सेरिब्रम/दसवी

खिड़की/ब्रम्हरंध्र/इंट्रावेंट्रिकुलर फोरमेन ऑफ मोनरो/ आनन्दमयकोष /सत्यलोक कहा वहां जाके सीट / घर बनाती है। नाना प्रकार की शक्तियां जो भरी पड़ी हैं। वो सारी अपने आप काम करने लगती हैं। जो विषय हमारा है वो सारे विषय को दूर करके। अपने विषयों को न्यूट्रल कर देती है। बाह्य संवेदना शून्यत्व है। बाहर वो रहता ही नहीं कहीं। शरीर है या नहीं ये बोध नही रहता। जगने के बाद वो क्षुब्ध होती है। क्योंकि वो स्वयं ज्ञान (कुन्डलिनी) शक्ति है। जो अनेक जन्मों की वासनाओं से दबते - दबते इतना दब गया है, कि वो ज्ञान (आत्मज्ञान) हमारे पास रह नहीं गया। खाली (विषयज्ञान) अज्ञान मात्र हमारे पास है। ये वो शरीर में वो आग है। जो बुझ जाती है। ये ज्ञान है। क्षुब्धि माने क्या? ये अज्ञान जो हमारे मन, बुद्धि, चित्त, अहं सारी इन्द्रियाँ जो दूषित हो चुकी हैं। जो मल हैं, दुख **हैं**, पाप **हैं**, दोष **हैं** जो आप नाम दें । पर्याय में उन सबको निर्मल कर देती है।उससे वो पवित्र हो जाता है।ये जलन क्या चीज है? हमारे वृक्क / किडनी / उपवृक्क जो है (ये) दो ग्रंथियाँ और हैं।उसके पास थोड़ी सा ऊपर, उपवृक्क का नाभि से सम्बन्ध **हैं**। उसमें एक द्रव्य है, जो दाह उत्पन्न करता है। उसको मणिपुर / अग्नितत्व / कहा गया है।तात्पर्य यह है, एंड्रेनल्स जो ग्लैंड्स **हैं**। हमारे वो सीक्रेट करते **हैं**। अभ्यास करने पर सारे अवयवों पर प्रभाव पड़ता है। सूझबूझ देता है/ निकल जाते है/सोई शक्ति जग जाती है। माने ज्ञान की भूख हजारों जन्मों से दबी हुई, अज्ञान के मल से दबी हुई। जब वो खड़ी हो जाती है, तो अंधेरा, मल सब चाट जाती है। रास्ता बना कर ऊपर चली जाती है।असली रूप में आ जाती है। ज्योतिर्मय पिंड में पहुंच जाती है, एक छिद्र में ब्रम्हरन्ध्र में। सारे शरीर में कोष- कोष में रोम-रोम में रम जाती

है। सर्वव्यापिका हो जाती है। ये चीज विज्ञान है, सुषुम्ना ।माने (वो कहाँ है मुझे मालूम है) वहां जाने पर होता है, ये सब। केनाल के अंदर जो लाइनिंग है, वही सुषुम्ना है।वो भूखी कुन्डलिनी शक्ति, जब जगती है। ज्ञान की भूखी रहती है। सारे अज्ञान को दूर करके स्वयं का ज्ञान / ज्ञानमय मंडल या जिसके अंदर जा करके वो जो स्वयं ज्ञान हैं। वो ज्ञान प्राप्त होता है/सारा ब्रह्मांड ज्योति से भर जाता है। फिर क्या होता है? उसका उपयोग समाज के लिए हो जाता है। स्वयं पवित्र हो करके, समाज का दुख दूर हो जाता है।

- मरता कोई नहीं है। ये संकल्प वहाँ चाहिए। लेकिन मनुष्य घबरा जाता है। ये जग- बहुत बड़ा मोह है। ब्रम्ह और माया इन दोनों की गाँठ पड़ गई। ये छूटेगा कैसे? छूटता नहीं, क्योंकि मोह है। मोह ही कारण है। ये छूटता नहीं क्यों नहीं छूटता है? जीव हृदय तम मोह विशेषी, छूटी ग्रंथि परै न देखी। ये जीव विषय में, हृदय माने मन। हृदय माने हार्ट नहीं। तो ये मन में अनेक जन्मों से मोह है, लोभ है, भावना है। ये सारी जो मोह है। अगर मोह नहीं तो? मोह है, इसलिए कामना है। तो मोह है।

  एक ऐसी आपके पास एक युक्ति है, कि जीव के मन में इतना मोह तगड़ा है। कि वो बैठ ही नहीं पाता। इससे जो गाँठ है, छूटी, ग्रंथि जो चाहिए। झूठा है, वो सच्चा है, एक तरह की वो गाँठ बन गई है। छूट जाता है । असम्भव नहीं, लेकिन कठिन है। मोहान्वित हो गया। मोह माने अविद्या, अन्धकार।कि मोह में अंत तक बना रहता है। मोह में चला गया। तो हो गया। तो मोह एक ऐसी शक्ति है कि हम । षष्टम भूमिका (आज्ञा चक्र)में जब पहुँचता है, मौत को (विशुद्ध केंद्र, पंचम में) दर्शन करके, विशुद्ध को

पार करके। ये कारण शरीर है। कारण शरीर, ये पाप पुण्य और वासना के द्वारा होता है। इसे कारण शरीर कहा। कारण शरीर के बाद, जिसे महाकारण शरीर, एस्ट्रल बॉडी कहते हैं। वहाँ पहुँचने पर भोग, छूटता है।

वासना से हमारे, दुःख होता है । ये वासना दूर हो। ये महाकारण शरीर है। महाकारण् माने ज्योति। यहाँ से और ये जो ज्योति है। ये ज्योति भी है और शक्ति है, लाइट भी है । और ये जो ज्योति है और शक्ति है । ये दोनों एक हैं । न ज्योति को आप अलग कर सकते है, न शक्ति को। शक्ति को अलग करना चाहते हैं , तो वो ज्योति बन जाती है। ये शक्ति और ज्योति याने लाइट और ऐनर्जी । लाइट और ऐनर्जी ये वहाँ दर्शन होता है। भूत-भविष्य दिखता है। कई जन्मों के संस्कार जो हैं, पूरी तरह चित्र की तरह सामने आते हैं । उसमें सुख भी है दुःख भी है। यहाँ पहुँचने पर ऐसा जो महान है, उसका आत्मा भी महान हो जाता है। क्योंकि उसको भूत-भविष्य दिखता रहता है, वहाँ करने धरने कुछ है नहीं।

जिस दिन से आपने दीक्षा ली सेंट्रल केनाल खुला, ज्योति दिखी उस दिन से प्रारब्द्ध बनता नहीं। पुराने भोगते जा रहे है। लेकिन नया प्रारब्द्ध नहीं बनता। सुषुम्ना में आने के बाद ज्योति दर्शन करें। और ज्योति दर्शन हमेशा करता रहें। तब ये सब विषय अपने आप मुड़ गये। लेकिन रह गये तो हरकत नहीं है। याने मोह ही कारण है, अनभ्यास होने में। आत्मानुसंधान में देखिये क्या बनता है। ये जो विद्या है।

तो ये मोह कारण है और कुछ नहीं। तो तात्पर्य है कहने का षष्टम भूमिका में जब वो आता है।

महाकारण शरीर में होता है, और महाकारण शरीर में, ऐबव टाइम एंड

स्पेस हो जाता है। महाकारण शरीर में जब वो होगा, अब शरीर नहीं है, शक्ति नहीं है। अब गुरुकृपा जो होगा, और कि आप ही (सदगुरुजी) कुछ करते तो ठीक होता। तो षष्टम जो है उसमें, वृहत मस्तिष्क में वहाँ पहुँच जब जाता है। वहाँ पहुँचने तक, आप अनेक जन्मों का संस्कार षष्टम भूमिका पहुँचने तक, भोग बाकी हैं भोगना ही होगा। इसमें दुःख नहीं होता, साक्षी होकर वो भोगता है। जैसे कोर्ट कचहरी ने साक्षी बना दिया। वो सत्य बोलते जाता है और मुकदमा खत्म होता है । छोड़ देते हैं, साक्षी को कोई सजा नहीं है।

- भय माने चिंता। अगर आप चिंता नहीं करें, इतने में हो सकता है? यहां (बाहरी दुनिया में) आप लोग, बंधे हैं काम करने के लिये। इसको क्या कहते हैं, बद्ध। ये बद्ध है, इस तरह से यहां इसको बांध देते हैं। ये बाइंडिंग्स हैं, ये बांध देते हैं।

  अगर आप कुछ नहीं कुछ करेंगे, आप विषयातीत है। यहां कोई किसी का दोस्त नहीं है, हां। सब लोग सर्विस करते हैं। अगर आप न पहुंचे समय पर, न आये। आप को लोग बोलेंगे,अरे आप तो आये ही नहीं।

  और ये जो अभ्यास (गुरूपदिष्ट, आत्ममार्ग) है, ये तो आपका इनरवर्ड के लिए है। इनर सेल्फ के लिए है। इनरसेल्फ़ के लिए, ये अभ्यास करना (है)। धीरे-धीरे-धीरे, बाइंडिंग में हैं, सब कटते चले जाते हैं। कितना अंतर होता है, ये । तो बाहर के अभ्यास से और भोग जो हैं, भोगो की ओर होते, चले जा रहे हैं।

  और ये(इनर सेल्फ हेतु) अभ्यास करने, से जो दोष भरे हुए हैं। जो बंध हैं। कर्म प्रधान जो शरीर है। जो बंध लगे हुए हैं, ये सब कटते चले जाते हैं।

इसका नाम है-संवर। ये अभ्यास का क्या नाम है- संवर है। संवर माने जिस प्रकार से, जिस पद्धति से- ये जो सत्पुरुष के द्वारा सतगुरु के द्वारा दिये गये, अभ्यास करने की जो पद्धति है, प्रकार जो है । ये, जो शक्ति दी जाती है अभ्यास करना, इसी पद्धति में करना है। इसी पद्धति में रहना है, ये जो वाक्य, ये जो दिया गया है, ये आदेश है । ये उपदेश नहीं। ये आदेश है, खाली। जैसे आफिस में आर्डर (ली) होते **हैं** ऐसे आप आर्डर ली **हैं**।

खाली आर्डर जो है, पालन करना है, और कुछ नहीं। इसलिए यहाँ न, आई(।) रहता है न इगो रहता **है**।

और बाहर (की) दुनिया, बाहरी दुनिया में।ये, चाहे कोई भी विषय में हो, ये आई और इगो दोनों रहते है। इसमें आप बंधे पड़े रहते है, और जन्म-जन्म ये भोगने । गर्भ में या नर्क में वासना, और वासना भोगते हुए आते-जाते रहते **हैं**।

ये अभ्यास जो है, इनर वर्ड के लिए इनर सेल्फ के लिये(है)। इनर-जो सत्य है । उसमें जाने के लिए है।

ये जो कारणमय शरीर (पुनः पुनः जन्म लेने के सब कारण, संस्कार, भोग, सम्भवतः) है। सब कटते चले जाते **हैं**। बंध जो है, वो कटता चला जाता है।

इसी का नाम है- सत। बंध, कटते-कटते, जो बंध (सब) कट जाता है, वो स्थितप्रज्ञ हो जाता है। स्थितप्रज्ञ माने जैसा बोले वैसा होता है। वो जैसा चाहे वैसे होता है।

वही चाह गई चिंता गई, ये संवत्सर होता है। ये संवर के बाद, सत है।

चाह गई चिंता गई मनवा बेपरवाह, जिनको कछु न चाहिए वो शाहों के शाह। ये स्थिति में है। फोकट में नहीं होता है।

सत तत्व होता है, सत माने बुद्धि सामर्थ्य। शापादपि-शरादपि जो

आशीर्वाद देगा बराबर हो जायेगा। जो शाप देंगे तो बराबर होंगे। सामर्थ्य है आपमें। तो ये अभ्यास है। वो (भौतिक संसार सिर्फ हेतु में) अभ्यास, और ये अभ्यास में कितना अंतर है। बहुत अंतर है।वो बंध है।और ये बंध सब, कट जाता है। पश्चिम मार्ग है न। सारे बंधों को तोड़ के, चिंतामुक्त। इसलिए वो मुक्त हो गया।

नाना जन्मों के किये गये कर्मों का जो आज जन्म लेकर के भोगना पड़ता है। ये सब चिंता सब मिट जाता है। समाप्त हो जाता है। सब मिट गया, कुछ नहीं रह जाता। समर्थ हो जाता है, सिद्ध हो गया। तो ये अभ्यास में और वो अभ्यास में अंतर है। ये अभ्यास है। ये अभ्यास, अपने आप को जानने के लिए है।

और वो अभ्यास अपने आप को, बांधने के लिए है। खूब पढ़ो, खूब लिखो, लिखाई करो, नौकरी करो। तो भई एक (की) करो न। नौ (की) क्यों करते हो? माने आत्मा के हो जाओ। एक (के) हो जाओ। जिसमें कोई बंधन नहीं, बंधन कट जाता हैं।

और नौ का करिये, नौ का चिंता है । नौ बंधन हो गया। नौ -नौ माने मिट जाना। नव-नव, माने नये-नये अंतराय उत्पन्न हो जाना। ये अभ्यास में अंतर है। इसलिए -सतगुरु के द्वारा, सत्पुरुष के द्वारा, बताये गये पद्धति से। पद्धति जो अभ्यास किया जाय, वो साधक जो आर्डर ली (आदेश में नियुक्त, आदेश से युक्त, आदेश में परिचालित, सम्भवतः) लाइफ होता है। खाली मैसेज जो है, (आदेश में लाइफ में) इकठ्ठे रहता है। इसमें न आई रहता है, न ईगो रहता है। इसलिए ये एफर्टलेस है।

इसमें वो दृढ़ हो जाता है। अब इस प्रकार से नशा उसमें वो रहता है। क्या?,

वो (सिर्फ भौतिक की हेतु में) तो बाइंडिंग में रहता है। न चाहने से जहाँ

बैठा। आगे देखा जायेगा। क्या होगा? लेकिन उसमें (उससे) क्या होगा? कुछ नहीं है (सिर्फ मूलतः भौतिक में बना रहता है, सम्भवतः) समाप्त है (जीवन समाप्त हो जाता है, सम्भवतः)। तो किया क्या ?

गुरुजी को आपने, अपने आप में, रक्षण के लिए है। जैसा गुरुजी कहे, आपको जैसा कराये। रिलाय अपान सेल्फ, यहां अपान सेल्फ है।

और आप योग्य नहीं तो मैसेज (में, आदेश में, रत, सम्भवतः) वहां रह नहीं पाते, ये है। पुस्तक से, हम कुछ नहीं कर सकते। मालूम तो नहीं है। तो मालूम होने से, और अपना है। मैं करती हूँ, मैं नहीं करता, मैं करता हूँ, मैं करता हूँ।

यहाँ आई का कोई स्थान नहीं है । जब आई नहीं रहा, कैपिटल(I)आई। तो ईगो भी नहीं, दैट्स गो। ई माने कम, गो माने आउटर साइड।

ईगो का अर्थ होता है, आउटर वर्ड में खूब फंसे हैं।और आगे है और आगे है। और बड़े बड़े बंधनों में है आप। आपके काम में।

इसलिए यहाँ पर न मैं रह जाता है, न अहंकार रह जाता है। यही समझ की फेर है। ये बाते हैं, मैं करता हूँ, मैं करती हूँ, मैं सब कुछ हूँ, मुझे करना है। और दूसरा कौन कर सकता है, जो करेगा, ये कोई बात है। ये खाली ये समझ रहेगा, सतगुरु के द्वारा दिये गये आदेश का पालन हो बस। खाली आउट ऑफ डिमांस्ट्रेशन बस। इतना समझ लिया आपने तो आपके जीवन में, आपके, सब कुछ करते हुए, आप नहीं करते, यही कर्तव्य है। ना कोई रह गया, माने आपने जो वर्क किया सब कुछ किया,आपने। लेकिन वहां(मैं) न हो, न वर्क वो तुम्हारा है। न वो मैसेज तुम्हारा है, मैसेज जो गुण (मीनिंग) है वो भी तुम्हारा नहीं। खाली वो समझ के जैसा आप बराबर मोल्डेड हुए। गुण में आप मोल्ड हुए, जैसे(वैसे ही) आप मोल्डेड

होते चले गये। इसलिए वो क्या? तुम्हारे क्या है?

लेकिन गुरुजी वो आपको दे देते हैं। वैसे (मैं से युक्त होते रहने पर सम्भवतः) गुरुजी नहीं देते। क्या विशेष बात है -आज जो तुम अभ्यास करते हो। विटनेस (साक्षी भाव में) करते हो। सब कुछ करते हुए, तुम घर में हो।

घर में जो जमा करते हो। नौकर को देते हैं, क्या? जो नौकर तुम्हारे यहाँ सर्विस करते हैं, जो आपका काम करता है। आप जो बाइंडिंग है। बाइंडिंग (वेतन आदि के अलावा, सम्भवतः) के बाहर आप देते हो उसको? लाख रुपये कमा के जो आप अपने घर में रखते है। (अर्थात आप देते है क्या? और यहां उनका लाखों की कमाई ऐसे अर्थात मैं न होने पर, आदेश में परिचालित होने पर, वो दे देते है, सम्भवतः यही भाव हो)

लेकिन सत्पुरुष, सतगुरु तुम्हारा। वो जो कमाई होती है। ये बंध जो कट जाता है। कटने के बाद में जो परिणाम होता है- बड़ा गोल जो मिलता है। महान शक्ति जो प्राप्त होती है, गुरुजी के सानिध्य में। खाली गुरुजी आपको मेथड बताते हैं, ये देखो वर्शिप। इस प्रकार से आप वर्शिप करिये, ये सेल्फ वर्शिप है। इसमें सब कुछ किया। इसमें जो सेल्फ वर्शिप होता है। इसमें जो रिजल्ट होता है-वो विजीन। हेपनिंग्स जो होता है। जो गोल है, गुरुजी आपके अंदर दिखाते हैं, दे देते हैं। इसलिए आई और इगो जो है । माने मैं और अहंकार, ये दोनों नहीं रह जाते।

लेकिन हम इतने अहंकारी हैं। गुरुजी को मारो गोली, और मैं करती हूँ, मैं करता हूँ। ये मैं क्या दूर हो जाती है? और इसी में मर गये।और न जन्म, न मरता है। बस इसी में वो होता, ये बात उतना ही सत्य है। ये सब समझने की बातें है। लेकिन अहंकार है हमारे कुछ समझ में नहीं आता है। मैं

बस, मुझे दिया, मैं। मैसेज जो हैं , गुरुजी का सब है। खाली तुमको मैसेज जो हैं, बताये हैं ये करना है।

गुरुजी का मैसेज गुरुजी का काम है कि तुम्हारा काम है? लेकिन नहीं मैं, मैं। मैं गुरुजी, मैं गुरुजी का बड़ा प्यारा हूँ। है वही बात। ये जो मैं है न, ऐसा लात मारता है, क्या। तो तात्पर्य ये है, कि आप करें, जो कोई ऐफर्ट नहीं। ये एफर्ट लेस किया जाता है। तुम्हारा एफर्ट कोई एफर्ट नहीं, तब ये मैं और अहंकार चला जाता है। इतने गुप्त रहस्य है। एकदम मैं और अहंकार चला जाता है। लेकिन मैं क्या?

ये सब देवलोक वासी हैं। इनको कर्म वगैर कुछ नहीं, इन्हें न सुख है न दुःख है, न जन्म है न मरण है। न कुछ नहीं। ये देवलोक वासी हैं ही, श्रेणी नहीं। है ही, कुछ नहीं। उन्हीं से है, ये आत्मकार है। आप ये सुनते होंगे ब्रम्ह लोक, यहाँ भी लोग है जो कि अभ्यास के द्वारा वहां पहुंचा जाता है। माने फिर भी शरीर है। आत्मा शरीर दोनों का आदान संयोग है। नाना प्रकार के शक्ति संपन्न हैं, माने वो कुछ करना नहीं पड़ता। न वहां जन्म है । न मरण है । गुप्त प्रकट कहीं भी आ जा सकते हैं। कुछ भी कर सकते हैं। ऐसे लोगों को हमने भगवान कह दिया।

(पहला) ब्रह्मलोक। दूसरा प्रजापतिलोक । हम सुनते है न भई, फला थे। ये मनुष्य मानव, फला मन्वंतर, फला व्यक्ति से था वो सामर्थ्य, जैसे मनु हुए, मनुमानव चला।

इस प्रकार से वो प्रजापतिलोक है वो भी सारे शक्ति संपन्न हैं। जैसे आपने सुना दक्ष प्रजापति, सती जाकर उसमें फिर अग्नि में योगाग्नि से अपने आप को जला दी थी। ये प्रजापति याने, नाना प्रकार से शक्ति संपन्न।आत्मशक्ति सम्पन्न ये लोग होते हैं। इधर किसी प्रकार से बंधन

नहीं। अपने आप में सब शक्तियाँ हैं। ब्रम्हलोक, प्रजापतिलोक और इंद्रलोक। जैसे इंद्र को, देवताओं के राजा इंद्र हैं। बहुजन जिन्हें कहते हैं। इन्हें भी कुछ करना-धरना नहीं । न मौत है, न जन्म है, न मरण, कुछ नहीं। केवल भोग-विलास । आना-जाना । सब कुछ करना जो है, लोगों के बीच पहुँच जाना, या सहायता करना। जो कुछ हैं। ये सब कर सकते हैं। सब छूट है। चौथा है । पितृ लोक । ये पितृ लोक होता है, इनके भी कुछ जन्म नहीं । नाना शक्ति संपन्न हैं।

।। चार लोक ।।

ये चार लोक हो गये। इस प्रकार से, मनु स्मृति में लिखा है। उस मनु के काल में, ये मानव प्राणी । अपने तप के बल से, मंत्र के बल से, साधना के बल से, देवताओं को बुलाकर, पितरों को बुलाकर के, संतान उत्पत्ति करते थे। जैसे उदाहरण के लिए कुंती जो है, महाभारत काल में, द्वापर में। कर्ण जो है, सूर्य को बुला करके, उनके संतान हुए। और बाकी जो दिकपाल है, उनको बुला करके। इंद्र को बुला करके। अर्जुन कौन है इंद्र है। उनके माने आशीर्वाद से या उसके शक्ति से उत्पन्न हुए। तो तात्पर्य ये है कहने के, उस काल पर्यंत मानव प्राणी मंत्र के द्वारा देवताओं को और पितरों को बुला करके, संतान उत्पत्ति करते थे। लेकिन आजकल असम्भव है। अब तो बिना बोले संतान पे संतान चले आते है। तो ये चार हो गये। चार और है, वो है गंधर्व लोक, यक्ष लोक, लोक माने प्राणी, राक्षस लोक और पिसाच लोक। ये आठ देवलोक वासी हैं। ये सब बिल्कुल समान हैं, सब। ऊँच निवास नीची करतूती देख न सकहि पराई विभूति। पिसाच् और राक्षस सब एक हैं। सब एक ही हैं। नाना प्रकार शक्ति संपन्न,

इनका जन्म-मरण नहीं। मतलब ये है, ये नाना लोकों में चले जाते हैं। ये कहीं भी जा सकते हैं। लोक है, ये देवलोक। माने दिव्य शक्ति सम्पन्न। इनको जन्म -मरण नही हैं। ये किसी भी लोक में आ-जा सकते हैं। बहुत से लोक हैं। आपको मालूम है, न ? मालूम है। लेकिन लोक और हैं। ये सब लोक हैं। लोक हैं। ये सब बातें हैं। तो तात्पर्य ये दिव्य शक्ति संपन्न,ये लोक होते हैं। ये लोक। (ये फ्रीडम है) कुछ भी करने की जरूरत नहीं। कुछ नहीं करते-धरते। मस्त हैं, अपने में मगन हैं।

अब रहा तिर्यक लोक जिसे तिर्यंत कहते हैं।तिर्यंत जो है, ये आहार हैं। ये पशु, पशु, दूसरे हैं। पक्षी, तीसरे हैं। सरीसृप माने रेंगते हैं , सुनने वाले प्राणी। मगर, जो होते हैं। तेज से चलने वाले, इनको सरीसृप कहा गया। और चौथा जो है । की भई हिरण, हिरण पशु में गिनते हैं, हिरण ये दूसरी जाति है। ये चार। और पांचवा है स्थावर । ये बीज से उत्पन्न होते हैं। जैसे लता हो, वृक्ष हो, पौधा हो, कोई भी हो, इसे तिर्यक योनि कहते हैं। इसका नाम है स्थावर, माने ये न, चलते-फिरते, हिलते-डुलते । न कहीं आते जाते हैं, ये। तो स्थावर जो है। और ये चार प्राणी जो हैं। पेड़ पर चढ़ने वाले। पंक्षी होते हैं उड़ने वाले। पशु जो इस प्रकार से पैदा होने वाले। जरायुज जो है। ये पांच तिर्यक जो हैं। ये अपने आप को ये बचा नहीं सकते। इससे आप काम लेना सिखावे, काम लेवे, कुछ नहीं, भूल जाते हैं। ये जो पांच है ये तिर्यक लोक है।

यहां, अब एक मानव।

मनुष्य लोक। हम सब मनुष्य लोक है। और ये आठ, देवलोक वासी। और ये पांच तिर्यक लोक वासी। याने उसके बीच में ये मानव प्राणी है। जो कि तिर्यक, भौतिक जो है। नाना प्रकार से हिसाब से, जंतु, हवा, अगन, आदि

इत्यादि माने इनका जीवन, संकट में पड़ जाते हैं।

इसी प्रकार से ये देवलोक वासी भी आप तपस्या करके आगे न बढ़ पाये। समर्थ न हो पाये। आपके नाना प्रकार के.विघ्न उत्पन्न करते हैं। आपको जहां-तहां, रोकने के लिए, तैयारी रहती है। जो कि मंत्र के द्वारा ये सब मुक्त होते हैं। मंत्र से भी सिद्धि प्राप्त होती है। सिद्धि माने पावर।सिद्धि और कोई चीज नहीं, पावरफुल होना है। मंत्र सिद्ध होना है।

जन्म, औषधि, मंत्र, तपः, समाधि..।

जन्म से व्यक्ति पावरफुल रहता है, जिसको सिद्ध कहते है। जन्म से सब यहां-वहां, यहां-वहां सब प्रकार से सिद्धियां हैं। चमत्कार दिखाने वाले होते हैं।

(दूसरा) एक औषधि से भी चमत्कार होते हैं।

तीसरा मन्त्र से भी होता है। ये सांप पकड़ने वाले होते हैं ये सब मंत्र वाले हैं।

तप तपस्या करके, जंगल में जा करके तप करते हैं। तप करने वाले जिसको हठ कहते है। तप करके तप माने। अपने आपका तपना है।

और समाधि जो हमारा मार्ग है।बुद्धि को केंद्रित करके बुद्धि को अपने वश में करके, और डायरेक्ट, ये अच्छे मार्ग। सबकांसश में डायरेक्ट होते हैं। किसी भी केंद्र में ले जाकर पहुंचा देना। सारी शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं। इसे समाधि कहते है। तो समाधि जातस्य..। ये जो लोग हैं। ये मानव के ऊपर।

।। समाज के मुकुट बनिए ।।

- परिवर्तन होता है। (अभ्यास में रहने पर) बदलकर के गुण हो जाते हैं। यही दोष गुण हो जाते हैं।अभय हो जाते हैं, भय से अभय हो जाते हैं। द्वेष से आप मुक्त हो जाते हैं, राग और द्वेष दोनों से। शत्रु -मित्र से समान हो जाते हैं। और अपने अज्ञान अंधकार तम ये सब दूर हो जाते हैं। प्रकाश हो जाता है, ये बोध है, आत्मा पर, हो जाता है। ये शक्ति आपको मिल जाती है। इच्छा, क्रिया, ज्ञान। आपकी इच्छा तब शुभ होगी। तब आप शोभित होंगे समाज में, तब समाज आपको शोभा वान करके और अपने गले का हार बना लेती है। सिर का मुकुट बना के रख लेती है। मैं न द्वारिका जाता हूँ न मान्धाता जाता हूँ, ऐसा जो कहा गया है वो क्या चीज है?

  ये सत शक्ति जब उदय होती है। अंदर जब वो संचार, वो शक्ति जब ऊपर-नीचे, ऊपर-नीचे होने लग जाती है। तब ये इच्छा, इत और छा। जो हमारी बुद्धि इधर (विषय भौतिक, सब) छाई हुई है। तब ये समाज के प्रति में, तब वो शुभ और शोभा, शोभायमान तब होता है। तब आप शोभित होते हैं। इस प्रकार से, जे का रंजले गांजले त्यासी म्हणे जे आपुले।तो चि साध ओकखावा। माने, तो उसे साधु कहते है। साधु का ये पद है। ये खिताब है, ये सर्टिफिकेट है, ये उपाधि है । अलंकार है, ये। साधु बोलने के बाद ये, गुण होना चाहिए, उसमें।

  अन्यथा वो साधु नही। हम तो पानी भी नही पिलाते ऐसे लोगों को, न मालूम कितने संन्यासियों से वैरागियों से हमारे झगड़े हो गये। तुम कुछ भी नहीं कर सकते, तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है।

  ये तुकाराम महाराज का कहना है, उसको साधु जानो। जिसके सुषुम्ना

खुली है, आना जाना है, शक्तियां मिली हैं। और निरपेक्ष वृत्ति से, अहैतुकी कोई अपेक्षा नहीं, कोई लेना देना नहीं, और मगन है, सेवा करता जाता है, उसको साधु समझो।

लेकिन उसको हम साधु नहीं समझेंगे। वो तो, वो साला डर के मारे करता है, ये। हां, ये ढोंगी आते है, न वेशान्तर होकर के, उनके पीछे तो केसेस है, (कोर्ट) केस है हम पागल हो जाएंगे। सोचो, समझो।

तो लोकैषणा तब होती है, ये लोकैषणा यह है। स्वार्थ है, क्रोध है, भय है, सब कुछ है, और पुत्रैषणा । ये साधु है। व्यवस्था है, बाल बच्चे भी होते हैं। नाम भी है। तो ये हमारे बाप दादा ऐसे योगी लोग थे। आज हम उनके नाम से बिक रहे हैं। गोत्र माने क्या मूल पुरुष। उनके नाम से आज हम बिक रहे हैं। अगर आपको गोत्र मालूम नहीं तो कोई नहीं पूछता, समाज में। कन्या, संतान का विवाह करने कही जाते हैं, तो कुल गोत्र पूछते हैं।

कुल माने कुन्डलिनी । कुल माने महाशक्ति, कुल माने अनन्त शक्ति, सदा साध्वी। कुन्डलिनी सदा साध्वी है। जागी।यही जगा है याने पहले से थी। सबकी आयु जगाई, याने पहले से थी। सोई नहीं। एक दफे वो सोई, फिर जागी नहीं। यही सुलाये, क्योंकि वो सुलाकर सोती है। ऐसी सोई, फिर जागी नहीं। कितनी बढ़िया बात है।

तो तात्पर्य ये है हम सब लोग साधु हैं। कोई साधु है चोरी करने का साधना करता है, कोई खून करने का साधना करता है। वो मिल गया है। कोई धन के लिए साधना करता है, कोई पढ़ने के लिए साधना करता है। याने जितने भी संस्थान हैं, जितने भी कला, विद्या है। साधना बिना तो प्राप्त नहीं होता है। और प्राप्त होने पर भी, आपको अपना शरीर बेचना पड़ता है। आपका भय तो दूर गया नहीं, मित्रता शत्रुता तो दूर गई नहीं। मित्रता तो है

ही नहीं, शत्रु -ही- शत्रु, निर्माण होते हैं। प्रकट होते हैं। और मरण का भय बना रहता है। तो ये साधना जो है, ये साधना, प्रपञ्च में, जगत में, दुःख ही दुःख है। सुख कहीं भी नहीं है। जगि सर्व सुखी असा कोण आये, विचारी मनः तू जिस सोधु न पाए। ऐ मन, कौन सुखी है, संसार में। लोकेषणा, पुत्रैषणा, वित्तेषणा। पुत्रैषणा बाल बच्चे होना है, सन्तति होना। सारी दुनिया हमारी बात माने, सब कोई हमारे द्वार पर आये, हाथ फैलाये, सब कोई हमारी सलाह माने। और पुत्र ऐसे होना हमारे जैसे।

तो जब तक ये आत्मशक्ति जाग्रत नहीं होती है, तब तक ये बातें पूरी नहीं हो सकती हैं। और सब साधु ऐसे नहीं है। कोई कोई एक है, जो श्रीमंत है। कोई कोई एक है, जिनके भविष्य में है, आखिरी तक है। कोई बोला, आज तक है, हमारे।

गोत्र माने कुल पुरुष। कुल माने कुन्डलिनी वो जगी, इनको योगी कहा। हमारे गोत्र जो है, नाम है हमारे गोत्र का । वो योगी थे। आज तक उनके प्रताप से, नाम से हम बिक रहे हैं। समाज में हमारा मान सम्मान आदि है। ये हम सब भूल गये हैं।

ये है शुभेच्छा। प्रथम भूमिका। समाज में अगर तुम्हें रहना है, और ऐसा होना है, साधु होना है, साधना करना है। मरना है, पागल । और मरना है। शुभेच्छा ये, प्रथम भूमिका तैयार करिये आप। सत्पुरुष के पास जा करके, सतगुरु कहा उनको। ये सतगुरु शब्द का अर्थ है। जो अंधकार मिटा करके, अंधकार मिटाना माने अंधकार को हटा दें, मिटा दें और ज्योति में आपको प्रकाश में ला दें। ये सतोगुण को प्रकाश कहते हैं ये प्रकाश को ज्ञान भी कहते हैं। ये ज्ञान प्राप्त करा देने वाला सत ऐसा जो विशेषण है, ये शक्ति दबी हुई है, सोई हुई है। वासनाओं के आवरण से जो

दबी हुई है। उन वासनाओं को किस प्रकार से निरोध हो हटा दिये जाये।और अपना रास्ता मिल जाय। कश्मीर में बर्फ खूब पड़ती है। बसेस आती जाती हैं। सवेरा हुआ, याने चार बजे रात को बुलडोजर लग जाता है। और सब बर्फ हटा करके, पिछली जैसा रोड को कर देते हैं। तो सतगुरु के पास पहुंचने पर वो, जो आदेश है। वो बुलडोजर है, अगर बुलडोजर को नहीं छोड़ोगे, ये सारे जितने, आपत्ति-विपत्ति जितने संकट है, सब किनारे-किनारे, सब हो जाते हैं। आपको रास्ता दे देते हैं।

पुत्रैषणा, हमारा पुत्र हो। भाग्य में नहीं है, गर पुत्र नहीं हुआ, तो क्या करेंगे। रोयेंगे? कोई कोई है जिनके संतान नहीं होते। मैं तो कहता हूँ, वो सुखी है, जिनको संतान नहीं। लेना देना नहीं, दुनिया में उसे। संतान माने ऋणानुबन्ध है। नहीं आये तो क्या बिगड़ा? मैंने तो देखा है, जो सुनता नहीं उनके बात को। मारपीट करता है, लूट करके, छीन करके और कैसा भी करके भागता है। मारा-मारा फिरता है। ऐसा संतान जीते-जी मर जाय तो अच्छा है। वेदांत सिद्धान्त के आधार से। मैं किसी को कुछ बोलता नहीं हूँ। ये होता है।

तब उसको शुभेच्छा कहते हैं। प्रथम भूमिका। इच्छा। इत+छा, ये ऐसे बनाना है ऐसा करना है। ऐसा होना है। ये इच्छा, इत, छा, माने समाज में जैसे वो सबको देगा, वैसा उसको मिलेगा। प्रथम भूमिका है। उसके बाद है, विचारना। रामदास स्वामी ने कहा, जगी सर्व सुखी असा कोण आये, कौन है बोले, जो सम्पूर्ण सुखी हो? विचारी मनः,अरे अपने को तू देख।

(मां महालक्ष्मीजी या गणेश जी का व्रत था। सतगुरुजी की पूजा उपरांत, व्रत किये, मां महालक्ष्मीजी या गणेशजी ध्यान में, या सुबह स्वप्न में प्रकट हुए ज्योति के साथ, तब) और हिंदी में जवाब दिये तुम चिंता क्यों करते

हो? तुम्हारा काम बराबर है। क्यों चिंता करते हो ? चिंता करने कोई जरूरत नहीं। इतना जब कहे तब उनकी आंख खुल गई। फिर बैठे सोये नहीं, आंख खुलने के बाद । अपना उठे, योग ध्यान में लग गये। अब क्या होता है, ये तो सब हो गया। नहाना बिना कुछ नहीं होता । सतगुरुजी की लक्ष्मीजी हो कुछ भी हो। दस बज गये, बारह बज गये, बारह बजे के बीच में, बाहर से इतना काम आ गया, इतना काम आ गया (अर्थोपार्जन हेतु) कि काम में हमको फुर्सत भी नहीं मिली। इतना धन भी मिल गया (जितनी उन्हें उस समय जरूरत थी से अधिक) मेरा सारे उत्सव छूट गया।

ये कहना था, मेरा और कुछ नहीं। अगर तुम्हें ये भरोसा है। मैं तो अपनी जगह बैठा हूँ मैंने क्या किया? इसी तरह से बहुत हैं।

तात्पर्य ये कहने का भरोसा।

विश्वास माने ऐसा है, श्वस धातु है। विश्वास माने जब तक तुम बिना श्वास नहीं होते, तब तक तुम्हें अभ्यास करना है। क्योंकि विशेष श्वास हो जायेगा, जब तुम मर जाओगे।अभ्यास करते करते, तो वो श्वास दूसरा है। वो श्वास है, एक दूसरे रास्ते से चल करके ऊपर आती है।और ऊपर आने के बाद, उसका संकल्प सिद्ध होने लग जाता है।

जो चाहिए उसको, भरोसा सत्पुरुष पर है, सतगुरु पर। वहां जाकर अपना जो कुछ कहना है (मन से ज्यादातर) कह देता है। किंतु स्वयं का भरोसा है, या स्वयं पर भरोसा है, स्वयं सतगुरु पर भरोसा है, ये दोनों एक है।

यहां न स्वयं पर भरोसा है। न सत्पुरुष पर है। मैं, मैं, मैं। मैं करता हूँ, तो होता है। मैं नहीं करूंगा तो कुछ नहीं हो सकता।

तो तात्पर्य ये है, कहने का ये भरोसा होना चाहिए। अपने आप काम बन जाते हैं आप लोगों का। मैं तो कुछ पूछता नहीं, किसी को।

वो बड़े प्रसन्न है, खुश है।मैंने मना किया था, अभ्यास करने का, इन लोगों (श्रीमती मंजू देशपांडे जी) का अभ्यास बहुत अच्छा है,पति पत्नी का। इतना उत्तम अभ्यास है, क्या बताऊँ, मना कर दिया। वे थी, ना टाइपिस्ट। आफिस जाके काम कर रही है, बैठी है। घण्टों न सांस है, न पलक है। उनका बॉस सामने आकर खड़ा रहता है। क्यों क्या बात है, घर की याद आती है क्या? सोई भी नहीं है। कई बार बोलने पर, फिर जवाब देते है। टाइपिंग भी गलत करने लग गई। वो सर्विस छोड़ दी अब, घर में बैठ गई। कहती है घर में बाल बच्चों की कौन देख रेख करेगा।अब तो कुछ हो नहीं रहा है, कुछ होने का नहीं, अपना भी कुछ नहीं होता। बंद करो अभ्यास। रोका उनको बंद कर दिया। उसके बाद सर्विस भी करती है ।

ये हो गया । तो कभी भाई, मेरा मान, मैंने किया ये सब है।

तभी तो ऐसा संग हो सकता है। तब ऐसे संग होगा तब होगा सत्संग, प्रथम है ये। ये है सत्संग। क्रिया योग भी यही है, ज्ञान योग भी यही है, और भक्ति योग भी यही है।

जैसा चाहे आज से (दीक्षापरांत) कभी भी अपने आपको तारना यही है। हाई थिंकिंग, प्रेम यही है। क्या, हाई थिंकिंग, माने अपने आपको, सदा सुधार अपने आपको कर रहे है।

।। सत्य-सुना गया, देखा गया, किया गया ।।

- अनुभव के बाद ये बोली बोले है, जिसका नाम है, सत्य। सुना गया, देखा गया और किया गया। इन तीनों के सम्मलित रुप जो परिणाम मुझे प्राप्त

हुआ है। वह ऐसे आप सब लोगों को प्राप्त है(हो)। करने वाले को ये प्राप्त होता है। चाहे वैदिक काल हो, उपनिषद काल हो, चाहे पौराणिक काल हो, चाहे दर्शन काल हो, आधुनिक काल हो, वर्तमान काल हो। जो करेगा इस पद को प्राप्त होगा। परम-आत्मा (परमात्मा), पद को प्राप्त होगा। और जब तक ये परम पद जो है, जो कि न घटता,न बढ़ता।सब जगह इस पद को जब तक नहीं,प्राप्त होता है। जब तक तो आप बहुत दूर है। आप कौन है? क्या है? कानून कहता है, कानून माने मानस शास्त्र। प्रत्येक मनुष्य निर्दोष है। किसी व्यक्ति को आप दोषी मत समझो। नाम मत लो, कि चोर है, छिनाल है, ये बदमाश है, गुंडा है। कुछ मत बोलो। खाली तुम बचो उससे, किसी को कुछ मत बोलना। प्रत्येक व्यक्ति निर्दोष है। कब तक? कि जब तक उसका दोष जो है, अपराध जब तक उसका साबित न हो जाय। तब तक दोषी मत कहो।

वही परम शक्ति है। वही परम धाम है, वो सत। कृष्ण ने भी कहा तद्धाम परमं मम। वो धाम है, वहां पहुंचने के बाद, आज कृष्ण नाम कृष्ण भगवान है। कृष्ण नाम आत्मा का है। आकर्षण, कृष धातु से है। जो एक सत, पहले था, अभी भी है और आगे भी रहेगा। नेह नानः कश्चिनः। पहले कुछ नहीं था, अभी भी कुछ नहीं है, और आगे भी कुछ नहीं (रहेगा)। इसलिए इसको, ये जो गुरु संग है, भज द्विज। भजन उसका अर्थ होता है, सेवा। हम किस प्रकार सेवा करें, युज माने मिलकर। जोड़कर, अलग होकर नहीं। भक्त हम उसको कहते है, जो समाज से विभक्त नहीं वो भक्त है। आचार्य उसको कहा है, शास्त्रार्थ हो, चयन करता है, संचय करता है।और संचय करके क्या करता है, समाज में जा करके, समाज के व्यक्तियों में ये सदाचार की वो नियुक्ति करता है।सदाचार में उसे

नियुक्ति करता है। समाज में एक- एक व्यक्ति के पास जा करके, सदाचार में उसे नियुक्ति करता है। ऐसा करो ऐसा करो, तुम्हारा कल्याण होगा। और सबका कल्याण होगा, समाज का, राष्ट्र का, सबका कल्याण होगा। तुम अपने आपको जानो। कितनी सामर्थ्य है, तुम्हारी।

- हजारों साल । युग-युगांतर की बात है । एकाध आदमी जगत में कोई। और आते **हैं**। ये सहज नहीं है। हमने मजहर खान से सुना है,और उन्होंने बताया है, क्या बताया है। वर्धा में कहा था (सम्भवतः 95) उनने, हमारे तरफ मुंह करके हजारों साल नरगिस अपने बेनूरी पे रोती है। बड़ी मुश्किल से होती है, चमन में चश्म ऐ दीदवर पैदा। बड़ा मुश्किल से पैदा होते है चमन में, बड़े मुश्किल से आते है चमन में। इस चमन में, चमन माने जगत । बड़ा मुश्किल से आते है, इस चमन में, चश्म ऐ दीदवर पैदा। ऐसा ज्ञान नेत्र वाला, थर्ड आई वाला, ये ज्ञान चक्षु वाला, ये आदमी। ऐसे, बड़े मुश्किल से युग-युगांतर । हजारों-हजारों सालों के बाद में, एकाध भेजे जाते **हैं**। या आते **हैं**। लोगों के कल्याण के लिए। ये रोज की बात नहीं है। ये रसगुल्ला नहीं है। ये साधना, योगाभ्यास कोई रसगुल्ला नहीं । क्षमा करना।

- आज एक व्यक्ति दूसरे पर भरोसा विश्वास नहीं करता। इससे घर-घर में व्यक्ति-व्यक्ति में फूट है। हमारी जो शक्ति है, राजविद्या है, उसे भूल गए है।यही कारण है।

  आज क्या है, ऊपर से नीचे तक एक ही चीज मिलती है । वो है दुर्गति। ये तभी जा सकती है, जब प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को जानें-समझें । तब

चरित्र का निर्माण होता है।

वरना, चरित्र एक पुस्तकीय नाम है।चरित्र का अर्थ है। धर्मम् चर सत्यम् वद । सत्य बोलो, धर्म से चलो।धर्म माने आत्मा, आत्मधर्म- आचरण। सत्य आचरण है, सत्य को नहीं छोड़ना है। ये सत्य परमपद है।

आत्म साक्षात्कार यही धर्म है आपका । तब वो धर्मात्मा होता है। तो उस सत् वस्तु को न छोडो, बाकी सब कुछ छोडो और सत् को पाओ। सत् है आत्मा। वो महाशक्ति है।

औरों को भी अपने जैसे तैय्यार कर सकता है। आचरण में लाओ तब अपना। समाज का राष्ट्र का तरण तारण होता है।

इस प्रकार आत्मयोग, योग से ही चरित्र निर्माण होता है। नई शक्ति मिलती है, नया उत्साह मिलता है। अपना कल्याण और राष्ट्र का कल्याण, समस्त विश्व का कल्याण सम्भव है। ऐसा मेरा मत है।

सत्य कहना, सत्य करना, उसी तरह चलना । और उसी का अध्ययन एवं अभ्यास करें । समाज में भी कराये । अंतिम श्वास पर्यन्त अभ्यास में रहे हैं। आचरण में रहे हैं।

चरित्र से काई हट गई, फिर न आये यह होना चाहिए। यह स्थिति अन्तर रहित अभ्यास से, जन्मजन्मान्तरों तक चलने वाले अभ्यास से प्राप्त होती है। इसे सतत बनाये रखने से चरित्र दोषों से मुक्त होता है।

सत्य के जरिये त्रिगुणमय संसार वश में आता है । किसी भी प्रकार का भय जो मनुष्य को शाश्वत मार्ग से दूर करता है । वो दूर हो जाता है।

आत्म शुद्धि के बाद विकार रूपी जितने कार्य हैं,समाप्त हो जाते हैं।

अभ्यास से मुँह मत मोड़ो। सभी को शांति, अनुभूति, आनन्द, जो जो चाहिए सब मिलता चला जायगा। आप सामर्थ्यवान बनते चले जायेंगे।

समाज का उपकार, अपना उपकार इसी से होता चला जाता है।

मैं और मेरा के आवरण से मुक्त होते चले जायेंगे, समाज में विभेद नहीं एकता बढ़ेगी। वसुधैव कुटुम्बकम चरितार्थ हो सकेगा।

सद्गुरु अपनी शक्ति शिष्य को देता है। शिष्य से पुनः गुरु की ओर जाता है, पुनः गुरु से शिष्य की ओर जाता है । यही क्रम चलते रहता है। जिस प्रकार मैग्नेट के प्रभाव में कैसा भी लोहा लाया जाय कुछ प्रभाव तो पड़ता ही है । बहुत समय तक सम्पर्क से लोहा भी मैग्नेट हो जाता है । दूसरों को शक्ति प्रदान करने में सक्षम हो जाता है। साधक लोहा, गुरु मैग्नेट है।

अभी तुम जीव हो । वासना से बंधे हो, अपना पराया ऊंच नीच बना है, इन्द्रियों की तृप्ति के लिए केवल बाहर बाहर घूम रहे है। अभी हम दोषों से भरे हैं। आहार से हम लाचार है यह उपजीविका है।

जैसे-जैसे हम आत्मा की ओर जायेंगे । ये सारे बन्धन ये इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती है और ये दुर्गुण दूर हो जाते हैं। यही विष जो दोष है, वह निर्दोष होकर गुण बन जाते हैं।अभ्यास करने के बाद यह दोष, गुण में बदल जाते हैं।

यही जीव ईश्वर है। ये क्लेशों अविद्या, राग-द्वेष, अस्मिता, अभिनिवेश को काट देता है अभ्यास के द्वारा तब वह विशेष पुरुष, ईश्वर कहलाता है। अब क्लेश मिट गया, कर्म अब बाधा बनता नहीं । और अनेक जन्मों के जो परिणाम है उदय होते नहीं ।सहस्त्रदल में भूसे की तरह जल जाते हैं। तब वो सहायक होता है । समाज का, समाज के लिए अहैतुकी अपेक्षा रहित होकर, निरपेक्ष बुद्धि से सब कार्य करता है।

इस वास्ते राम को, कृष्ण को, साधु सन्तों तक को भी ईश्वर कहा । सद्गुरु को भी ईश्वर कहा।

अखण्ड प्रवाह से । अमोघ गति से, अन्तररहित ध्यान करने से मनुष्य इस मल रूपी संसार से मलरूपी भण्डार से समर्थ होकर । औरों को भी इस कीचड़ में से, पंक में से, निकालने में समर्थ हो जाता है । अपने जैसे औरों को तैय्यार करता है, यही विज्ञान है।

।। गुरु कृपा पर दृढ़ विश्वास ।।

- हमारा न नाम है, न रूप है। हम वह विराट रूप हैं। किंतु नाम हुआ, कहा गया लड़का या लड़की, सीमित कर दिया गया।यह पहली काजल की रेख है।

  फिर(लड़का या लड़की) नाम रखा गया । यह दूसरी काजल की रेख है। हमें इन दोनों को भूलना है, नाम, रूप (देह)।

  वह विराट पुरुष है। जग ही तो विराट है। सारा ब्रम्हांड वही है। और वही उसे चला रहा है।

  जब हम आत्मा की प्रेरणा से कार्य करते हैं। तब मन ब्रम्ह है। नाम और रूप से अपने को मुक्त करना है।

  जब मन आत्मसात हो जाता है, तब आप वही हो । जिसे तलाश कर रहे हो। जिसे अनन्त महाशक्ति और कॉस्मिक एनर्जी कहा गया।

  शरीर का बोध न रहे, इतना मर डूबो (जब तक शरीर का बोध है तब तक आप बाहर है) आना जाना किसको है? शरीर को हुआ क्या? नाम और रूप का लोप।

  नाम रूप से परे (भाव) होकर जग में रहना है।

  आत्मा की सही अनुभूति आनन्द या मगन रहना। या अनन्य भाव में रहना जहाँ पर मन और बुद्धि समाप्त हो जाती है।

अपने आप को जानने की जो साधना है इसी को पुरुषार्थ कहा गया है।

दीक्षा के समय गुरु, शिष्य के अन्तर में प्रविष्ट होकर अन्तर्यामी रूप से शब्द ब्रम्हमय ज्ञान का दान करता है।

नाना प्रकार के दृश्य दर्शन करता हुआ, शब्द श्रवण करता हुआ वह आगे बढ़ता है। गुरुकृपा पर दृढ़ विश्वास श्रद्धा अचल रखना यही शिष्य का कार्य है।

आनन्द,शांति,चैतन्य ज्योति प्रस्फुटित होती है, यही ज्ञान चक्षु का उन्मीलन है। गुरु सहायता के बिना काम की प्रबलता उत्पन्न होती है।

ये जैसा दिखता है, वैसा नहीं है, इसमें जो अभिव्यक्ति है, वो महाशक्ति है, वह सर्वशक्तिमान है,सब जगह विद्यमान है।

जिस दिन आपने दीक्षा ली, गुरुचरणों की पूजा की, उसी दिन से मुक्त है।

आपको स्थायी होना है, सेल्फ पर होना है, जो गुरुजी ने बताया है उसमें बने रहना है।

उसमें बने रहने से, कभी भी चिंता नहीं होती और आपका कार्य आपका फल अपने आप हो जाता है।

- अभ्यास, निष्काम कर्म धर्म रूप बन जाये,तो वह ऐसा व्यसनी हो जाता है कि रात और दिन बगैर बोले चाले उसके मुँह से हरे राम हरे कृष्ण निकलते रहता है। वो कार्य करता रहता है तो भी निकलते रहता है, सब काम करते वो होते रहता है।वो उसका धर्म बन जाता है, माने निश्चल अटल हो जाता है।

  आत्मा से भिन्न अनात्म पदार्थों का चिंतन न करना मन का मौन है। असत्य अप्रिय क्रोधमय अभिमान युक्त लोभमय, न बोलना-वचनमौन कहलाता है।

शरीर से अध्यात्म भाव की ओर अग्रसर होना, तन का मौन है।

जब आपने सब दे दिया तो मेरा तेरा कहाँ रह गया,ये तो दीवार डालना है फिर से? मेरा होता नहीं,मुझे कुछ मिलता नहीं, ऐसा कहा तो शरण कहाँ? ध्यान से हमारी बुद्धि शुद्ध हो जाती है, जो हमारे विषय **हैं**। बाहर चले जाते **हैं** हम निर्विषय हो जाते **हैं**।

तत्व तो वह है जिसकी प्रतीति हो, इसकी तो प्रतीति नहीं बोध होता है, वह सत्य है।

स्त्री या पुरुष बाहरी रचना है, भीतर एक आत्मा के सिवा क्या है?

जो पहले से नही था, आज वो आ नहीं सकता, दुनिया में पहले से हुआ, वही आज भी है।

इन आँखों पर, मन पर, सारे शरीर पर,अधिकार है, दिल को बिगाड़ने से बिगड़ता है आदमी, जिसने इसे सम्भाल लिया वो सम्भल गया।

खुद बिगड़े हुए **हैं** ,दूसरे का नाम लेते **हैं**।

सत्य के सिवाय कुछ नहीं है मेरे पास, मेरे पास अनुभूति है, सत्य है।

हम शुद्ध **हैं**, सारी दुनिया शुद्ध है, मेरे मुँह से कभी आप निंदा नहीं सुनते है। वही मेरे में है, वही सब में है।

यहां हम सब एक **हैं** , और भेद नहीं फिर भेद कैसे आ गया भाई? व्यवहार में भेद है, लेकिन बोध में अभेद है।

तीनो गुण से परे होने के लिये सिर्फ शरणागत होना है। सब गुरूजी कर रहे, करवा रहे, क्रिया के प्रति उदासीन होकर, मुस्कुराते हुए सहज अवस्था में, सतचिदानन्द रूपोंअहं को प्राप्त हो जायेंगे।

उनको कर्ता मानकर उन्ही के अधीन रहकर कार्य करना, यह तीव्र

वैराग्य में होता है। मैं दूर हो जाता है।

जब तक मानव का मन जगत के प्रलोभनों में फंसा रहता है, तब तक उसका अन्तःप्रवेश नही होता है।

सब कुछ गुरूजी पर छोड़ दो । गुरूजी तुम्हारे रक्षक हैं, सेवक हैं।

ब्रम्ह के अनुभव से आत्मा सबमे दृष्टिगोचर होने लगती है । उसे वस्तु न समझकर, आत्मा समझने पर उसका प्रभाव मन पर नही पड़ता है। शरीर भाव समाप्त होने पर सोअहं की स्थिति आती है।

- मनुष्य अपने आप में पूर्ण है।

सारी सृष्टि में केवल चार ही प्रकार है । चार वर्ण है, पाँचवा नहीं है। अब यूं तो पढ़ेंगे, टीकाकरण देखेंगे । तब ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र ऐसा है। लेकिन ये विज्ञान के द्वारा कसने पर खरा नहीं उतरता।

लख चौरासी योनि। लख माने देखने का है,लख लिया माने देख लिया, समझ लिया। चउ माने चार, राशि माने समूह।

तो चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः। ये मेरे ख्याल से विज्ञान सिद्ध है । माने १.स्वेदज-जो स्वेद से पैदा होते हैं। २.उद्भिज-जो बीज से उत्पन्न होते हैं।३.तीसरी जाति है अण्डज-जो कि अण्डो से पैदा होती है। ४.चौथी है जरायुज-चार पाये, चौपाये जो प्राणी होते हैं। ये चार ही वर्ण हैं , पाँचवा है ही नहीं।

स्व।पर।परम्।ये तीन सिद्धान्त हैं। स्व माने स्वतः के लिए। पर-दूसरों के लिये, तो ये पुण्य कार्य हो गया।

एक जगह चाणक्य नीति में पढ़ने में आया कि -धर्म एको ही निश्चला।

धर्म तो निश्चल है, अटल है, ध्रुव है, शांत है, परम् है।

तो वो कौन सा धर्म है, जो निश्चल है, अटल है, शांत है। जिसको धारण करने से बुद्धि में एक बार भी उसका प्रकाश पड़ जाये । तो जन्म मरण का महान भय हैं, उससे छुटकारा मिल जाता है।

तो तात्पर्य यह है कि जो कर्म आत्मसाक्षात्कार हेतु किया जाता है, वही निष्काम कर्म है। न नाशम, इसका नाश नहीं होता। उल्टा फल दोष भी नहीं है, न अभाव है।

बाकी सब कर्म वे सब नाश प्राय है। ये पुण्य और पाप-एक सोने की बेड़ी है, एक लोहे की बेड़ी है। लेकिन बेड़ी तो बेड़ी है, चाहे लोहे की हो या सोने की।

अभ्यास करते करते निष्काम कर्म जब धर्म का रूप धारण कर लेता है, माने अटल, निश्चल हो जाता है। आपकी बुद्धि जब शुद्ध हो जाय, अभ्यास से। तब दिव्यत्व प्राप्त हो जाता है।

तात्पर्य यह है, अभ्यास से थोड़ा भी हमारे बुद्धि में प्रकाश आ जाय । तो जन्म-मरण के भय से छुटकारा पा जाते । इससे बढ़कर और कोई भय नहीं है। एक-एक सेकंड तो हम जा रहे है, जहां जन्म-मरण निश्चित हो हमारे कर्मों से वो जीवन, जीवन नहीं है।आप बुद्धि को आत्मस्थ करिये, समाधि माने बुद्धि को समाहित करें। आत्म समर्पण कर दिया फिर क्या चिंता है?

जब वो सर्वज्ञ है सब जानता है । सर्वत्र है,सर्वव्यापक है, सब जगह है, सर्वशक्तिमान है। अंदर-बाहर सब जगह है तो हमें चिंता किस बात की है और कहाँ जाये उसे ढूंढने के लिये?

सुख-दुख का कारण हम ही हैं, और कोई नहीं है । सोचिये, ये मैं क्या कह रहा हूँ।

वो धर्म । वो महाशक्ति, वो दिव्य शक्ति, अनादि अनन्त कहा गया है, उसको।

- सद्गुरु क्या करता है? तुम्हारा भार ढोता है। वह तुम्हारा नौकर हो जाता है। वह तुम्हारा भरण पोषण के लिये सक्रिय हो जाता है। वह दिखता नही है, वह तुम्हारा चाकर हो जाता है।

  सतगुरु हो उस पर भार डाल देना, उस पर भरोसा होना। गुरु माने भारी। स्वास् है जब तक विश्वास होना। निरन्तर जब तक स्वास् है, स्वास् रहित होने पर एक रास्ता और है वो सुषुम्ना खुल जाता है। जिनको भरोसा है, उनका काम बन जाता है। कैसी भी परिस्थिति आये अभ्यास को नही छोड़ना है।

  भरोसा माने भार डाल देना।स्वयं पर भरोसा या सद्गुरु पर, दोनों एक है।

  अनुभव ही तो अमृत है। ज्ञान ही अमृत है। अभ्यास से उसे अनुभव में लाना चाहिए।

  सतवस्तु माने महाशक्ति । सदशक्ति को धारण करना, फिर नही छोड़ना उसको। अन्तररहित अभ्यास होना चाहिए।

  हम अपनी संस्कृति को बिलकुल भूल गए, क्योकि पढ़ाया नही जाता।

  ये साधना जो मिली है,उसे नही छोड़ना है। ये विशेष होना चाहिए, अन्तररहित होना चाहिए। जो काम करो वो भरोसे से करो। आचरण में होना चाहिए। आचरण माने भरोसा। दे दिया माने दे दिया। यहाँ आने के बाद सब तेरा । मेरा वो होता नही, ये होता नही फिर कहाँ?। आदेश का पालन हो। नही होता तो घर में बैठो। आपको विषयातीत होना है। आपने

अपने कल्याण के लिये दीक्षा लिये है। विषयोँ के लिये नही। हेतु रहित जो सेवा करता है, वो साधना है। कोई हेतु नही, कोई अपेक्षा नही।

मान रहित, संग रहित, मोह रहित, कोई भी हो। सेवा करना। महाशक्ति हममे भरी पड़ी है, उसको कैसे कार्य में लाना हम नही जानते।

सुषुम्ना वो खुल जाता है, ऊपर नीचे वो संचार होता रहता है। आवागमन होते रहता है।

हमारी कृति हमारी वाणी हमारे विचार सबके लिये शुभ हो। कल्याण माने विमल, वहां कोई दोष नही।

महान भय से जो स्वयं मुक्त है। तब जाके सबकी वो सेवा करता है। वो अभय है, उसमे दोष है नही। गुण ही गुण है।

निर्दोष, निर्मल, पारदर्शक। सजनी किसको कहा, जागी यही जगाये, यानि प्रीतम को जगाकर,आयुपर्यन्त वो सोई नही।सोई , जिसको वो जगाए, फिर जागी नही, क्योकि शरीर की आयु है। सद्गुरु माने सत से सम्पन्न है, वो ऐसा। आप मानते है, जानते कहाँ है ? राग ये अपना है, द्वेष ये अपना नही है। ये महाक्लेश है। ये अंधकार है।

ये शक्ति प्राप्त होने पर सब दोष दूर होकर, निरोध होकर ।अपने अपने स्थान चले जाते हैं , गुण हो जाते हैं। अज्ञान, अंधकार ये दूर हो जाते हैं।

जिसकी सुषुम्ना खुल गई है। जो निरपेक्ष वृति से सेवा करता रहता है, वो साधु है। कुल माने, कुण्डलिनी । अनन्त शक्ति, महाशक्ति।

जब तक अपने आप को समर्पित नहीं कर देंगे, तब तक मैं का पलड़ा छूटता नहीं है।और जब तक मैं करता हूँ यह रहता है, तब तक कुछ भी नहीं मिलता।

एक बार भार डाल दिया उस पर तो डाल दिया, फिर लेना देना उसका काम है। अपना काम सिर्फ ऐसा करना है, बाकी सब तुम्हारा है। मेरा कुछ (भी) नहीं है । सौंप दिया है तो तुम्हारा काम है करने का।

तुम्हीं करोगे और तुम्हीं सब कुछ हो । ऐसा बोझ उस पर डाल करके दृढ़ निश्चय विश्वास भरोसा, पूर्ण श्रद्धा के साथ बैठना (रहना) है।

गुरुजी के सामने रोते क्यों नहीं ? (अंधेरे में रात में और सो जाना, जरूरत पड़े तो अकेले में रात में गुरुजी से झगड़ा करो) कुछ दिनों बाद आपका सब काम हो जायेगा।

उठते समय प्रणाम करना, कहना आपने मुझे उठाया है मैं चला (आप साथ चलो) लाभ-हानि तुम जानो । ये बोलकर अपने काम में लग जाना/तू जान तेरा कारोबार जाने। मैं नहीं जानता।

जैसा बताया गया है (अभ्यास) खाली वैसा करो। आपका ये लोक परलोक दोनों सिद्ध हो जाते **हैं**। आपके जीवन में, आचरण में, भाषा में, कृति में, परिवर्तन आ जायेगा। माने संसार में रहकर सब सुख दुख भोगते हुए (हो सके तो साक्षी भाव से) जैसा बताया गया है (दीक्षा आदि में) वैसा करिये। जिस दिन से वो निर्भर हो गया । संसार के प्रपंच से, सुख दुःख से, पुनर्जन्म से, तत्काल वो मुक्त हो गया। चिंताओं / दुःखों का रुक जाना ही, उन पर पूर्ण निर्भर रहने का सच्चा स्वरूप है। निश्चिन्त माने तीनो **हैं** , न उद्धार की चिंता, न जीविका की, न संरक्षण की। हमारे परिवार में प्रत्येक निश्चिन्त हो रहे **हैं**, यदि नहीं **हैं** तो हो जाएंगे।

गुरुजी के आदेशानुसार कर्तव्य पालन में लग गए, बाकी समय गुरुजी को मन दे दिया। अपना कोई विचार नहीं अपना कुछ नहीं है। बस गुरुजी के चरणों में बिछे रहना है। गुरुजी का आदेश है प्रपंच छोड़ना नहीं ह।

प्रपंच भी चाहिए और आत्मानुभूति भी चाहिए। कामिनी-कांचन में रहकर ये ध्यान में रहना चाहिए। जो आपको बताया गया है।

ये सब गुरुजी का कारोबार है। सारा संसार गुरुजी का है। हमारा संसार भी गुरुजी का है।

हम तो (केवल) उनके आदेश का पालन करते हैं। फिर जीवन यापन के अंदर न राग रहेगा, न द्वेष रहेगा। ना काम रहेगा, ना क्रोध रहेगा, ना लोभ रहेगा, ना मोह रहेगा। केवल भोग मात्र रह जायेगा।

मेरा क्या है, सब तेरा है। ये तेरा में ही भारी रहस्य है। कुछ नहीं होता है तो उनका काम है। सब उन्हीं का है, ऐसा समझकर चलिए।

चिंतामुक्त होकर सद्गुरु के ऊपर सब कुछ छोड़ दीजिए।अर्थात कर्तापन का अहं भी।जो कार्य तुम्हें करना है,नहीं बन रहा है, बिगाड़ हो रहा है। यदि केवल संकल्प करोगे-माने मन में रहना है। बताया नहीं जाता, वह धीरे से अपने आप हो जाता है, सभी काम ऐसे बन जाते हैं। अतः साधक को कोई चिंता नहीं रह जाती है।

मनुष्य अपने कर्मों को घटनाओं को गुरुदिश मार्ग से नियंत्रित करने में समर्थ है। (क्योंकि) जो सत्य (आत्मा/महाशक्ति) मुझे मिला वही दीक्षा के रूप में दिया।

मुक्ति पाने कर्म में अनासक्त होकर निरत रहो, सदा प्रत्यक्ष करते रहो कि तुम कुछ नहीं करते। गुरु अर्पण करो। आप / आत्मा द्दष्टा मात्र है, क्रियाएं शरीर का अंग है। सद्गुरु पर अधिक से अधिक विश्वास करो, निर्लिप्त बहुरूपिया बनकर काम करो रहो, साक्षी भाव में रहना है। दोषों से बचते रहें, इन्द्रियों पर काबू रखें।

द्वेषी जनों से भी प्रेम करो, अंधे को जैसे रंग नहीं दिखता वैसे ही दूसरों के

दोष न दिखे। हमें गुण ग्राही होना चाहिए, दोष का उन्मूलन गुण से होता है, गुण देखना चाहिए। प्रत्येक में (स्त्री, पुरुष, पदार्थ, पंच महाभूत, विचार, भाव, व्यवहार, घटना, निकृष्ट, उत्कृष्ट सबमें आदि आदि) ब्रम्ह का दर्शन करो। आत्मा सर्वव्यापक है।

सद्गुरु है। सत्पुरुष है, सर्व शक्तिमान है । उनकी बातें मानकर, उनके आदेश का पालन कर आप दिव्यशक्ति सम्पन्न हो सकते हैं। और समाज को भी अपना गुण दे सकते हैं। सिर्फ बैठने की आवश्यकता है। समय नियत कर लें इतने से इतने समय हम नित्य आसन में बैठेंगे।

बैठकर भावना करना हमारे इष्ट शक्ति देने में समर्थ हैं। भक्ति, वैराग्य, श्री, मोक्ष, मुक्ति देने में समर्थ हैं इन भावनाओं से मन को ओत प्रोत कर देना। इस प्रकार इष्ट के गुण मन में लाकर भावना देते जाना । मन संसार में न जाकर, आपको सफलता की ओर ले जाती है।

बहिर्मुखी रहने पर दूसरों के गुण-दोष दिखते हैं।अन्तर्मुख होने पर सबमें स्व-स्वरूप दिखता है।

अपने प्रिय पर रीझें नहीं। गाली देने वालो पर खीझे नहीं । अनासक्त भाव से मौनावस्था में रहकर सब, गुरुजी पर अर्पित कर आनन्द में डूबे रहो।

मौन रहने का प्रयत्न करो अधिक से अधिक काल पर्यंत डूबे रहें। यही साधना अब आपको करनी है।

इच्छा कम करो। काम, क्रोध, लोभ, मोह, सब भाग जाएंगे।

जिसमें जितना देहभाव होता है । वह उतना ही डरपोक परावलम्बी व आलसी होता है।

अपने स्वरूप को भूल जाने से हम निर्बल हुए हैं। अपनी आत्मशक्ति को

विकसित कर, अपने आप को पहचानकर, हम पुनः समर्थ हो सकते हैं।

शांत्यावस्था में मन शांत हो जाता है । उसकी कोई भी इच्छा नहीं रहती । करने की, पाने की, जमा करने की। हम अभय होकर कार्य करते है।

सतगुरु के वचनों को आचरण में लाना अतिआवश्यक है । अन्यथा हम कुछ भी नहीं कर सकते।

सतगुरु को जानने (ब्रह्मरूप, आत्मा, महाशक्ति, सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वत्र,अनादि, परमात्मा) के बाद जीवन से मुक्ति मिल जाती है। वासुदेवमय जगत।

कोई भी प्रसंग हो। उसको सहन करने की शक्ति होना चाहिए। परिस्थितियां कटने आती हैं।

जब तीनों गुण शुद्ध होकर प्रकृति में लीन हो जाते है, प्रकृति शुद्ध होकर पुरुष में लीन हो जाती है । तब उसकी शक्ति अलौकिक हो जाती है । तब वह राम और श्याम से कम नहीं।

दृष्टा, दृश्य रहित, स्थिति में ऐसी सन्धि पड़ती है, उसमें आपको ठहरना है। सर्वदा इस स्थिति में रहने से समाधि आनन्द हो जायेगा । उस स्थिति में साधक जो बोलेगा वही होगा।

।। सम्यक जीवन ।।

- एक सेंटर में रहना चाहिए उसको तो क्रॉस करना ही है।लंघन तो करना ही है, उसी को लांघों। चतुर्थ(अनाहत) में आये, चतुर्थ जो है, उसे लांघों, और लाना (विशुद्ध में) है। मरता है,आदमी बिल्कुल मरता(विशुद्ध में)है, लेकिन मरता नहीं।जी जाता है। वहां से नवजीवन शुरू होता है।ज्ञानेश्वर ने कहा न ,समाधि साधन संजीवन नाम।मैं यहां इसका अर्थ ऐसा कहता

हूँ। तब उसका सम्यक जीवन शुरुआत होता है। ये कोई जीवन है,जिसमें ये पतन के सिवा कुछ भी नहीं है। समाधि माने बुद्धि जो समाहित हो गई आत्मा में तब, तब सम्यक जीवन शुरू होता है।ऐसा बताया गया है कि तीन मायावी है।योगमाया है, योगमाया माने आपत्ति विपत्ति में आपके रहस्य हो जाय, आपके सारे कारोबार हो जांए। धीरे धीरे सब काम होता जाता है।वो धीमान होते जाता है, वो धैर्यवान होता चला जाता है, और आनन्द होते चला जाता है। मरण जब आता है तब यहां जो चाहिए।वो हो जाता है। किसी किसी को मलत्याग हो जाता है। इस प्रकार के किसी को सब कुछ हो जाता है किसी को बिल्कुल कुछ नहीं होता। ये सब की तैयारी हो, तो बात अलग है, एक जैसे सब नहीं। तीनो (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर) से जब ऊपर आ जाता है। तभी ब्रह्मविद होता है, याने अनाहत चक्र में होता है, तब। तब उसकी तपो भूमि सिद्ध हो जाती है।अवधूत माने धूतपाप देह में ये सारे जो दोष भरे हैं।तब(मृत्यु केंद्र के बाद,सम्भवतः)ये देह के सारे दोष दूर हो के। ये जब,पंचतन्मात्रा बताया ये आपको। शब्द, रस, स्पर्श, रूप, गन्ध, तो ये शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। यही सूक्ष्म शरीर है। छुटता नहीं इसीलिए आप करते हैं।लेकिन ये पांच प्रकार से,आपको जो बताया है।उससे स्पर्श हो जाता है। निकलता है,आप देखेंगे पड़ा रहेगा।उसमें घुसने की जरूरत नहीं।ये तन्मात्रा सिद्ध होने के बाद ये सत्य में।ऐसे हमारे पास है एक दो नहीं कई है।ये तन्मात्रा तब आप कही सिद्ध हुए।और आगे चलकरके ये मृत्यु केंद्र।निकल जाता है, जैसे हनुमान जी सुरसा के मुंह से बगल में होकर निकल गया। यह अवस्था आता है। यहां जब आता है,तब पॉवरफुल हो जाता है।नाना प्रकार की शक्ति सम्पन्न हो जाता है।यहां आने के बाद क्या ,अवधूत।अनाहत चक्र में यहां सन्त होता है।सन्त माने जिन्होंने अपने

मरण को देख लिया।मृत्यु पर पैर रखकर ऊपर निकल गया,सन्त कहा।यहां आने के बाद उसको क्या कहते है।क्या कहते है?हँस कहा आज्ञा चक्र में पहुंच गया।हँस हो जाता है।हँस माने दूध में पानी मिला दो । दूध अलग ,पानी अलग, हो जाता है। बोलता नही,लेकिन समझता है।

- अपमान सहन के लिए तो हम जग में आये हैं। ये बहुत दिनों के बाद समझ में आता है। आचरण में याने अनुभव में तो नहीं, समझ में आते हैं। और समझ के वैसा रहना हो जाये, तो क्या कहना पड़ता है।

  सद्गुरु की कृपा से अपने आप लौकिक और अलौकिक लाभ प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से मिलता है। मनुष्य अपने कर्मों को, चरित्र को, घटनाओं को, गुरुदिश मार्ग से, नियंत्रित करने में समर्थ है।

  आप बराबर मलरहित हो जायेंगे । केवल अभ्यास करना है। जो रास्ता बताया गया है, ऐसा-ऐसा बैठना है । ऐसा-ऐसा ध्यान में लाना है। ये भव है, कुरु नहीं। भव माने अपने आप होता है।

  विचारों का उदय औऱ अस्त होना बन्द हो जाता है । तभी एकाग्रता होती है। एकाग्रता माने एक (आत्मा) के सिवाय कुछ न रहे।

  अपने आप को जानने की जो साधना है, इसी को पुरुषार्थ कहते है। चाहे जैसी परिस्थितियां आये अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए,परिस्थितियां आपको उबार देती है।

  संसार में व्यक्ति सबको प्रसन्न नहीं कर सकता । लेकिन अपने आप को वो प्रसन्न कर सकता है।

  निष्काम व्यक्ति ही आत्मा का दर्शन करते है, उन्हें शाश्वत शांति मिलती है। जब तक उस अन्तर्यामी गुरु का प्रकाश नहीं होता। बाह्य उपदेश

व्यर्थ है। अहं आ गया तो वह समाप्त हो गया, गिरते चला जायेगा।
जो कार्य तुम्हें करना **हैं**। नही बन रहा है, बिगाड़ हो रहा है, यदि केवल संकल्प करोगे, माने मन में रहना है। बताया नहीं जाता, वह धीरे से अपने आप हो जाता है। सभी काम ऐसे ही बन जाते **हैं**, इसलिए साधक को कोई चिंता नहीं रह जाती है।

- अपने आप को जानने की जो साधना है इसी को पुरुषार्थ कहा गया है।
दीक्षा के समय गुरु, शिष्य के अन्तर में प्रविष्ट होकर अन्तर्यामी रूप से शब्द ब्रम्हमय ज्ञान का दान करता है।
नाना प्रकार के दृश्य दर्शन करता हुआ, शब्द श्रवण करता हुआ वह आगे बढ़ता है। गुरुकृपा पर दृढ़ विश्वास श्रद्धा अचल रखना यही शिष्य का कार्य है।
आनन्द, शांति, चैतन्य ज्योति प्रस्फुटित होती है । यही ज्ञान चक्षु का उन्मीलन है। गुरु सहायता के बिना काम की प्रबलता उत्पन्न होती है।
ये जैसा दिखता है । वैसा नहीं है, इसमें जो अभिव्यक्ति है, वो महाशक्ति है । वह सर्वशक्तिमान है,सब जगह विद्यमान है।
जिस दिन आपने दीक्षा ली, गुरुचरणों की पूजा की, उसी दिन से मुक्त है। आपको स्थायी होना है, सेल्फ पर होना है, जो गुरुजी ने बताया है उसमें बने रहना है।
उसमें बने रहने से, कभी भी चिंता नहीं होती और आपका कार्य आपका फल अपने आप हो जाता है।

- जब तक आशीर्वाद या आदेश प्राप्त नही होता है, तब तक गुरु प्रदत्त प्रवृत्ति को आप पकड़ नही सके, उस पर आपकी धारणा दृढ़ ही नही हो सकी, तब तक जीव भाव या देह भाव जा नही सकता।

  देह भाव गये बिना सच्चिदानन्द प्राप्त नही हो सकता। यह आत्म विद्या है। ब्रह्मविद्या है, शेष अविद्या है। आत्मानन्द प्राप्त होने से आप सुख- दुःख से उदासीन हो जायेंगे ।आप साक्षी भाव से रहेंगे।

  वहाँ द्वैत नही होगा। इंद्रियाँ वहाँ तक पहुँच नही सकती। तब वहाँ स्वानन्द का अनुभव करेंगे, उसका नाम परम सुख है।

  वहाँ दो नहीं, केवल एक कैवल्य है । कंचन-कामिनी आपको आकर्षित नही कर सकते।

  ।। अनन्य भक्ति ।।

- उसी दिन से मुक्त हो गया वो जिस दिन से समर्पित हो गया।

  शरण में गए माने तन, मन, धन सब समर्पित हो गए।

  अरे आप तो सुख के राशि हैं। लेकिन नही, हम तो दुखी हैं । हम तो पापी हैं । हम यू हैं।, हम त्यु हैं।, क्या है ये, सब? इस कारण से ये है, कि हम अपने आप को, संस्कृति को। हम अपने गोत्र को, मूल पुरुष को भूल गए हैं।

  खाली मै मेरा, तै तेरा, मैं और तू, अगर भूल गये तो आप महान है, और आप पक्के धर्मात्मा हैं। वरना धर्मात्मा नाम के हैं विष से वेश बना है, वेश बना लो, वो (विष से) साफ़ हो जायेगा।

  एक शब्द भी अनुभव में नही आया, केवल गप्पा मारते हैं, जरा भी संकोच नही आता कि हम क्या करते हैं।

तू ही तू है। सब जगह एक और अनेक सब तू ही तो है,बहुत कठिन है।

और किसके शरण में जाये? अरे हम अपनी शरण में आते हैं। वही महाशक्ति है । वही कुण्डलिनी है । वही सर्वत्र है, वही आत्मा है । वही आप है।

पहले दिल साफ़ करो, फिर आईने ए साफ़ करो, ख़ाक खुदी से उनकी सूरत या अपनी सूरत दिखाई नही देती है।

दुनियाँ से उऋण होना है, छुटकारा पाना है। तो बका की गर तमन्ना है, तू हस्ती से गुजर पहले, यही होता है वस्ल उसका तू जीते जी मर पहले। इसके बिना नही होता है, नही होता है,नही होता है। दूसरा कोई रास्ता ही नहीँ है।

शब्दों के द्वारा ये जाना नही जा सकता। यहाँ शब्द का काम तो है ही नही। यहाँ अभ्यास, अभ्यास, अभ्यास । एक तत्व के अभ्यास के बिना निरोध नही होता।

हद तक पहुँचा दे, हद से अनहद होना है। तब खुदा बन्दा से पूछता है, बता तेरी रजा क्या है।बाकी हाथी के दाँत खाने के कुछ और दिखाने के कुछ और है।

तुम्हारे पास अखण्ड शक्ति का भण्डार पड़ा हुआ है । उसको प्रयोग करने में, मानव शरीर मिला हुआ है।

मानव शरीर के अंतर्गत स्वर्ण सन्धि प्राप्त हुआ है। वो है अन्तः करण। मन, बुद्धि, चित्त और अहम। वही सर्वज्ञ बीज है, वही ब्रम्ह बीज है। अगर समझ में आया तो वही सर्वज्ञता के लक्षण है।वही सर्वज्ञ बीज है।

- जो मालूम है,वही बोलना है । उतना ही बोलना है, और आचरण में लाना चाहिए। आचरण माने धर्म। सत्यम् वद धर्मम् चर।

क्या आचरण में लाना चाहिए? ये व्यक्तिगत धर्म है । इसमें रिलीजन नहीं आता। उसको षट् सम्पत्ति कहा है।

वो है-शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान।

शम माने शांति कभी गरम न होना।

दम। इन्द्रिय निग्रह।अपनी जीभ, अपना मन, अपनी इंद्रियों में काबू। उपरति।न कोई अपना न पराया। न कोई ऊँच, न नीच। न कोई छोटा न बड़ा। ये भाव होना चाहिए। कुछ दिनों के लिए इस बाजार में आये है,अपना घर दूसरी जगह है।

तितिक्षा।सहनशक्ति। कैसी भी आपत्ति विपत्ति संकट आ जाय, धैर्य धीरज न छोड़ना, बल बनाये रखना। सहनशक्ति बढ़ाना चाहिए।

समाधान। अपनी जीविका के लिए जो कुछ मिलता है, उसी में समाधान। यथा लाभ सन्तोषः।

श्रद्धा। सत +धा।जिसको आप भजते है,आप वही है। हरि को भजे तो हरि ही होइ। सत, सत्ता। सत्य, सत्य आचरण है। परमपद। सत है आत्मा, वो महाशक्ति है।

ये षट् सम्पत्ति है। सत मत छोडो। तो सत के बांधे लक्ष्मी फिर मिलेगी आय। ये आचरण में आना चाहिए।

सत्यम् वद,धर्मम् चर। इसको बोर्ड में लिखकर टांग देना और अपना जीवन व्यतीत करना। कभी कमी होने का नहीं। तुम्हारे घर में भीड़ बनी रहेगी।

ये सत्ता कहा है । पुरुष कहा है। तो ये सत्पुरुष की पूजा है।

तो ये सत जिसमें है, वो सत्पुरुष जो है, ये उस सत् की पूजा है।

पहले वही था, अभी भी वही है, आगे भी वही रहेगा।

वो सर्वत्र है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान है । फिर चिंता किस बात की?

- यहां देर है, वहां देर नहीं है। उल्टा बोलते है लोग, वहां तत्काल है। इसलिए अपने आपको पढ़ो हम क्या करते हैं। हम क्या नहीं करते। हम घर बनाते है। चारित्र्य क्या है? चरित्र (ही) घर बनाना है, यह न भूलो।

  बड़े बड़े मंदिर, मस्जिद, चर्च, देवालय बने हैं क्यों? जो याद दिलाते है कि अभी भी चेतो।

  अपने आपको जानना है, पहचानना है । मनुष्य सर्वगुणसम्पन्न है।

  जिनके स्मरण मात्र से किसी का भी काम बन जाये । चाहे वह शिष्य हो या न हो ऐसा सद्गुरु, सत्पुरुष होना चाहिए।

  आत्मोत्थान के लिए जो प्रक्रिया चाहिए, आपको वो अवश्य मिली है । उसे प्राप्त करने के बाद । जिस प्रकार से सारे कार्य करते है, उसी प्रकार अपने लिए भी कुछ करिये।

  हमारी शिक्षा- दीक्षा केवल उपजीविका के लिए है । जीविका (मुख्यअर्जन) को हमने छोड़ दिया । और उपजीविका के लिए फिर रहे हैं। अपने आपको । तत्व को, आत्मा को, जानने के लिए हमारे पास समय नहीं है। यही भोग है।

  सब लोग आपसे काम लेते हैं। समाज वाले, राष्ट्र वाले, घर वाले, सब कहते हैं। हमारा करो । और अंत में कह देते हैं कि हमारे लिए क्या किया?

  कोई ये नहीं कहता कि तुम्हारा कुछ काम हो तो हम सहायता करें। तात्पर्य यह है । हमको स्वयं के लिए अपने लिए स्वालम्बी होना चाहिए।

  माने, स्व जो आत्मा है । उस पर अवलम्बित होना है।

  अपने बाल बच्चों के बीच स्त्री से व्यवहार करते हुए अपने आप को न भूले । एकांत में बैठ चित्त शुद्ध कर जो आपको प्रक्रिया दी गई है, उसमें लग जाओ।

फिर जो सुख है वो अपार है । उसका अंत नहीं अनन्त है।
आप महान हो जाएंगे।

- जो मात्र सद्गुरुजी को ही अपना गुरु मानते हो, दूसरा और कोई को नहीं हैं। व उनके मार्गदर्शन पर चल रहे हो या चलना चाहे उनके लिए ये आश्रम है। वे सब गुरू परिवार है।

  चाहे किसी को सद्गुरुजी का मार्गदर्शन या दीक्षा किसी भी माध्यम से प्राप्त हो । माध्यम जो है वो गुरु नहीं है । वह केवल निमित्त मात्र है, गुरुजी ही एकमात्र सद्गुरु है।

  जैसे एक हिंदुस्तानी महिला एक पति के प्रति पूरी तरह समर्पित होती है दूसरे के प्रति स्वप्न में भी विचार नहीं करती । ऐसी एक निष्ठा सिर्फ को अव्यभिचारिणी भक्ति कहते है।

  समय पर मन्त्र वन्त्र कहाँ याद आता है । गुरुजी शब्द ही याद आएगा, सारा सार सब कुछ गुरु शब्द में छुपा है। खाली स्मरण करना है। जिनकी निष्ठा एकमात्र ही श्री गुरुजी पर हो, सद्गुरु पर हो, अव्यभिचारिणी भक्ति हो।

  सत्य आचरण है, हमारी जो धारणा है । यानी सत्य को नहीं छोड़ना है चाहे प्राण निकल जाए। हमारा काम है सदा सत का संग। ये है सत्य । सत्य परमपद है । इसके प्राप्त होने से आप महान व शक्तिमान हो जाते है। शक्तिमान होना है तो उस सत वस्तु को पाओ, उसको मत छोड़ो । बाकी सब कुछ छोड़ो। अभ्यास से जो चाहिए आपको वो मिल जाता है। समाज से, देश से, कुटुम्ब से, परिवार से, हितजन से, मित्रजन से, सबसे आपका काम बनता चला जाता है । आनन्द मिलता चला जाता है, सत्संग का अर्थ हमने ऐसा समझा।

थोड़ा बहुत सत जो है, हमारे पास उसी से हमारी समाज में प्रतिष्ठा है, उपकारी है हम जो अच्छे माने जाते हैं। जन्म-जन्मान्तरों के वासनाएँ जो भरी हुई हैं। वे ही निर्विचार होने में बाधक है, मौन सहायक है, सदा सावधान रहते हुए कार्यरत हो। गुरुआज्ञापालन, शास्त्र का अध्ययन, असत सत का विचार करना विवेक है।शरीर से कही भी रहो, मन से मेरे पास आते रहो । मेरे स्वरूप का हृदय में ध्यान धरो, सदैव तुम्हारे साथ रहूँगा, सारथी बनकर। मैंने जो आत्मज्योति का बीज बोया है वह पूर्ण है। वह अखण्ड है । हम ही है सब जगह। अपने आपको पहचानकर आत्मशक्ति को विकसित कर पुनः समर्थ हो सकते हैं। केवल दासी के समान सब कार्य करना चाहिए, सब कार्य करती है, किन्तु किसी को अपना नहीं कहती।

यहां आकर बारबार प्रणाम करने से मैं खुश नहीं होता। जैसा बताया गया है वैसा । करने वालो से खुश होता हूँ। मैं जैसा हूँ वैसा वही चाहता हूँ, आप सबसे।

।। गृहस्थ धर्म की आवश्यकता,योगाभ्यास ।।

- स्वस्वरूप का ज्ञान मनुष्य के लिए परम पुरुषार्थ है । श्रेय है। इस श्रेय का ज्ञान एवं अनुभव इसी मनुष्य शरीर में रहते हुए होता है। यह मानव देह अपने आप में पूर्ण विकसित प्रयोगशाला है । विराट सृष्टि की प्रतिकृति है, जो विराट विश्व में है वह सब इस प्रतिकृति में है । इसलिए अपने घर में बैठकर भी इस देह रूपी प्रयोगशाला में प्रयोग शुरू किया जा सकता है।

  इस सृष्टि में मानव ही केवल ऐसा है जिसे इस सृष्टि का बोध होता है । बाकी सब तो भोग योनियां ही है। कोहम की खोज ही सब दर्शनों का मूल है।

भिन्न भिन्न मताचार्यों ने अनुभूतियों के आधार पर अपने अपने सिद्धान्त दुनिया के सामने रखे। वेदान्त भी कोहम का उत्तर है । यह सनातन है । सनातन वही होता है, जो सदैव नूतन होता है। दूसरे शब्दों में वेदान्त इतना विशाल है, कि वह अपने आप में सदैव होने वाले नित्य नूतन शास्त्रीय अनुसंधानों को समेट सकता है।

जहाँ तक कुछ जानने योग्य है, वहां तक ज्ञान पाने की मर्यादा होगी । वह मर्यादा जहाँ समाप्त हो जाती है वही स्थिति वेदान्त है।

ब्रम्ह ही वेदों का प्रतिपाद्य विषय है, यही स्वसंवेद्य आत्मरूप है । इसे पाने ही साधक अनेक जन्म साधना रत रहते हैं। यही सबका गंतव्य है । इस सृष्टि का मूल है । यह शुद्ध अस्तित्व याने टू बी है।

स्फुरण होने से ही बीइंग हो जाता है, वही मूल प्रकृति, परा प्रकृति, मूलमाया है । पिंड में यह तुर्यावस्था है। इस अवस्था में प्रकृति तथा पुरुष दोनों का ज्ञान होते रहता है, इस अवस्था का प्रतीक/देवता अर्धनारी नटेश्वर है।

तत्वज्ञान याने ब्रम्हस्वरूप का आत्मस्वरूप का ज्ञान। तत का ज्ञान याने तत्वज्ञान। तत्वज्ञान यह जीवन धारणा है, प्रत्यक्ष अनुभूति है।

जिसके मन में स्वयं को जानने की इच्छा पैदा हो जाती है उसे बड़ा भाग्यशाली कहना चाहिए। विचार करने पर ऐसा दिखता है कि हमारे दैनिक व्यवहारों में अपने लिए कुछ भी नहीं रहता । प्रायः सभी व्यवहार औरों के लिए ही होते हैं। यह सब व्यवहार मैं और मेरा से भरे होते है यही आसक्ति है। यह आसक्ति ही सब दुःखों का मूल है।

घटनाएं तो घटित होती ही रहती हैं। उनके / जिन परिणामों से हमारे काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय तृप्त होते है वे सुखद कहे जाते हैं। इसके विपरीत को दुःखदायी कहते हैं।

दुःख नष्ट करने के दो ही मार्ग दिखते हैं। घटनायें दुःख देने वाले घटित होना बंद करना चाहिए । या तो दुःख हेतु घटने वाले कारणों को परिणाम प्रूफ करना चाहिए।

पहला मानव के बस की बात नहीं, दूसरा रिसीविहंग ऐंड / अन्तःकरण मन बुद्धि चित्त अहं को ठीक करना यह योगाभ्यास द्वारा हो सकता है।

योगाभ्यास यह गृहस्थ धर्म की आवश्यकता है । उसके बिना यह अधूरा ही रहेगा। सब दायित्यों को पूर्ण करते हुए, आत्मोन्नति के मार्ग पर बढ़ना तथा इस संसार के सामने अपने आपको रखना जरूरी है।

तत्वज्ञान वह पढ़ने के लिए नहीं, जीने के लिए है ।, वह तो जीवन ही है। इस रास्ते पर चलते हुए साधक ऐसी अवस्थाओं में पहुंच जाता है, कि जो छोड़ता है वह छूट जाता है। जो पाना चाहता है वह पा जाता है। वह स्वयं कुछ भी नहीं करता । सब व्यवहारों से उसका कर्तव्य भी समाप्त हो जाता है, वह केवल निमित्त मात्र होता है । कार्य के होने न होने से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। यही है अपने रिसीविहंग ऐंड / अन्तःकरण को ठीक करना।

योग का अर्थ भी मिल जाना / जुड़ जाना होता है। किससे?अपने आप से। आज हम अपने आप से बिछुड़ गये हैं। अपने विचारों के दास बन गये हैं, हम पर उनका ही नियंत्रण चलता है। उनसे, अपने आपको छुड़ाकर सही अर्थों में स्वतंत्र होना ही योग का उद्देश्य है। अपने स्वरूप का अनुसन्धान करते रहना ही योग तथा भक्ति का मूल मंत्र है।

- जब तक आपकी इन्द्रियाँ बाहर की वस्तुओं से उनका सम्बन्ध हटा नहीं पाती हैं। यही दृश्य बन्धन का कारण है , यही दृश्य मुक्ति का कारण है।

सलंग्न हो जाये तो संस्कार आपमें बढ़ेंगे । दूर से देख लिया जाय, आनन्द ले लिया जाय तो अपवर्ग नाम मोक्ष है।

प्रयत्न से ये सब होते हैं। अगर आप प्रयत्न करेंगे तो बाहर की वस्तुओं से आपकी इन्द्रियाँ अवश्य हट जायेंगी। इन्द्रियाँ जहां हट गई वे अपने गोलक में चली जायेंगी।

गुरुजी के बताये हुए मार्ग से जब तक आप निरन्तर सक्रिय न बने रहेंगे । नहीं होंगे तब तक ये स्थिति नाम तमोगुण कभी दूर नहीं होते।

अपने आप को जानने की जो साधना है इसी को पुरुषार्थ कहा गया है। अभ्यास करते करते साधक अहं से मुक्त हो सकता है। अभ्यास करते करते अंतर्मुखी होकर साक्षी भाव से देखते जाइये । सब कुछ अपने आप होते चला जाता है । धीरे-धीरे अहं भाव समाप्त हो जाता हैं। भोग समाप्त हो जाते है, तब अपने आप में वह स्थिर हो जाता है । इसी को सम्यक चरित्र कहा गया है । यही मोक्ष है।

- अगर मनन नही करेंगे तो उस मन्त्र से आपकी रक्षा नही होगी। अपने आप को ओत प्रोत कर देना है। तब एकाग्रता बढ़ जाती है, और जहां पहुंचना है, केवल वही रह जाता है।

  केवल दासी के समान मन, भाव रहना चाहिए। वह सब काम करती है, पर किसी को अपना नहीं कहती है।

  इच्छा । इसलिए आप भोगे जाते हैं , लोग आपसे कामना करते हैं। इच्छा ही स्त्री है।

  जगे कि निर्भय हो गये, आपमें पुरुषत्व आ गया। ब्रम्ह हो गये।

  इच्छा कम करो। काम, क्रोध, लोभ, मोह सब भाग जायेंगे।

- बाहर के आकर्षण से ही उसकी सब कृतियाँ होती रहती हैं। अंतिम स्वास पर्यन्त कोई भी उसका भरोसा नहीं करता कि वो कब बदल जाएगा। शरीर के नौ द्वारों से हम बाहर के संस्कार लेते हैं और उस ओर खिंचते चले जाते हैं। मनुष्य के मूल संस्कार इतने जबरे हैं कि वो जानता है कि ये अच्छा नहीं, फिर भी उस ओर चला जाता है। वो बाध्य होकर सब करता है। आज हमारी बुद्धि भौतिक प्रलोभनों की ओर इन्हीं मूल संस्कारों के कारण जाती है।

  विषय में आपके जो संस्कार हैं, जो मधुर स्मृतियां हैं। मन बुद्धि में। रस की जो अनुभूति है जिव्हा में रसना में उससे क्या आप इस तरह छुटकारा पा सकते है?

  केवल न धारण करने से । न खाने पीने से । रस न लेने से । क्या वे संस्कार नष्ट हो जाएंगे? नहीं। वो जा नहीं सकते क्योंकि हम लोगों ने उन मूलसंस्कारों के आधार से अपनी आदत बना ली हैं। व्यसन बना लिए हैं। हम विचारों के आधीन हैं।

  हम कुछ नहीं जानते । और कहते हैं सब जानते हैं। मनुष्य, सुख-दुख मोह-लोभ, मृत्यु-भय, और कामवासना इत्यादि को पूर्ण करने के लिए चाहे-अनचाहे नियम बना लेता है। तो क्या हम क्लेश को ही आनन्द मानकर उसमें चले जाय? नहीं। अभ्यास के द्वारा गुरुदिश मार्ग से चलने पर ये क्लेश अपने आप मिट सकते हैं। आप समर्थ हो सकते हैं , आप ऐसी ताकत प्राप्त कर सकते हैं कि आप अपनी डेस्टिनी को बदल सकते हैं, इसी जन्म में बदल सकते हैं।

  गुरुदिश मार्ग से सद्गुरु सत्पुरुष के आदेशानुसार जहां लक्ष्य लगाने, कहा जाय वहां लक्ष्य लगाओ । और बिना सन्देह शंका व संशय के

आदेश पालन करें । तो वो उसी प्रकार ओट देता है जैसे सूर्य अपने प्रभाव से किरणों के द्वारा अंधकार को दूर कर प्रकाश को ओट देता है।

आप भी अभ्यास करके आत्मशक्ति प्राप्त कर सकते हैं। उस परमपद परमधाम में अपने आपको ले जा सकते हैं। लेकिन वो मार्ग है अन्तरमार्ग। आत्मा जो परम् है। तो ऐसी तैय्यारी होनी चाहिए जिस प्रकार हम बाहर के अभ्यास अध्ययन की तैय्यारी करते हैं। उसी प्रकार तन्मयता तल्लीनता दृढ़ निश्चय से उस परमपद को प्राप्त कर लेना चाहिए।

तो अंदर एक मार्ग है सुषुम्ना में वो रास्ता खोलना पड़ता है। वो सब कुछ है। आपने जो बाहर की प्लानिंग बनाई है वो किसी काम की नहीं। भीतर की धारणा भीतर की प्लानिंग चाहिए । सद्गुरु द्वारा जो दी गई है। जैसा आपके पास रहकर, सूझबूझ देकर, आश्वासन देकर, आदेश दिया गया उस प्रकार से बुद्धि में रखकर अभ्यास में लग जाना चाहिए । और किसी प्रकार की चिंता नहीं करनी चाहिए। लेकिन हम चिंता करते हैं कि हमारा होता नहीं, तो जब ये तुम्हारा आ गया तो सब गया।फिर आप शरण में कहाँ आए? शरण याने जितना अधिक से अधिक दे दिया गया। कम से कम बीस मिनट, दस मिनट, पांच मिनट, दो मिनट तो करो, इससे अधिक तो चाहिए भी नहीं। ये अपनी आदत बना लो। ये धर्म है।

हम उसको आत्मा कहते हैं। वो हमारे भीतर है, सब जगह है, सबमें समान है। जैसे जैसे आप आत्मा की ओर पहुँचते जाएंगे, वैसे वैसे ये काम- क्रोध, लोभ-मोह, भय आदि ये सब बदलते जाएंगे। आपकी बुद्धि में जो दोष दुर्गुण है वो सब बदलकर गुण हो जाएंगे। वो डेस्टिनी को बदल सकता है सब टाल सकता है। ये विषय नहीं विषयातीत है। समाज व राष्ट्र सब प्रसन्न होंगे । आपस के बैरभाव सब दूर होंगे।

जब तक हम अपने आपको नही जानते हम कुछ भी नहीं जानते। तब तक न हममें कोई क्षमता है न हमारा कोई विश्वास करता है । हम अपने पर विश्वास नहीं करते तो हम पर कौन करेगा? इसलिए पहले हम अपने आप को जानें। राम, कृष्ण आदि सब हमारे जैसे हैं। अनेक जन्म संसिद्धि, अनेक जन्मों के बाद कृष्ण, कृष्ण हुए, तात्पर्य यह है हम पहले अपने आपको जानें। यह अधिकार हर मानव प्राणी को है, यहां सारे भेद समाप्त हैं।

- जब तक वासना हैं, सिद्धि सम्भव नहीं है । अधिसूक्ष्म, अतिसूक्ष्म, अपने जन्मों के संस्कार हैं। मन का मैल निकाले बिना न साधना होगी न भक्ति । सदा मुस्कुराते हुए, सावधान रहते हुए, साक्षीरूप से जगत के व्यवहार देखते चलो। बुद्धि को आत्मा की ओर मोड़ दो। मन से विकारों का ध्यान न हो ऐसा प्रयत्न करो। जहां मन विकारों से मुक्त हुआ कि आत्म साक्षात्कार सुलभ हो गया।

  आत्मा ही सबकी त्राता है। हमें अपने आप में रहना हैं यही भावातीत होना है। इसे ही मौन स्थिति कहते हैं। संसार छोड़ने की आवश्यकता नहीं है, अंदर से उसकी प्राप्ति की इच्छा होने पर दर्शन सुलभ हो जाता है। जब तक हमारी बुद्धि, मन और इन्द्रियों के द्वारा वस्तु या विषयों के भोगों की आसक्ति में फंसी रहती है। तब तक वह असन्तुष्ट, असुरक्षित एवं परेशान रहता है।

  बुद्धि को आत्मसंयोग प्राप्त होने से वही बुद्धि, आत्मबुद्धि हो जायेगी।और ज्यों-ज्यों वो तीक्ष्ण होती जायेगी आप सर्वज्ञ होते जायेंगे। मन-बुद्धि को विषयों से परे अपने आप से परे अपने आप में केंद्रित कर देते हैं। तब हम पूर्ण रूप से संतुष्ट हो जाते हैं, यही संतोष है। मस्तिष्क ही प्रधान है, नवनिधियुक्त है।

- घरेलू अथवा प्रापंचिक कार्य में भले ही भूल हो जाये किन्तु आत्म कल्याण के मार्ग में भूल न होना चाहिए।

  जन्म ऋणानुबन्ध है,ऋण चुकाने के लिए जन्म होता है। फिर सबकी आयु निर्धारित है, समय के अनुसार सब मिलते बिछुड़ते हैं।

  मोह और ममता यही दुःख के कारण हैं। संसार में सुख तो नहीं, दुःख ही भोगने के लिए आते हैं।

  जो अपना मोक्ष चाहता है। संसार में आनन्द से जीवन व्यतीत करना चाहता है, वह उसकी शरण लें। मैं उनकी शरण लिया हूँ।

  प्रत्येक अणु-रेणु, हर अक्षर, हर आकृतियों में वह समाया हुआ है, इससे मेरी आँखों के सामने कोई सेक्स नहीं है। यह मेल है, फीमेल है, यह न्युटरल है, यह कुछ नहीं।

  उस ओर जो नहीं जाएगा, नहीं जाता तो विषयानन्द है । विषयानन्द को प्राप्त रहेगा। मारा मारा फिरेगा यहा-वहां, यहा-वहां। मैं और मेरा, तैं और तेरा, मेरा उज्ज्वल तेरा काला, यह चलता रहेगा।

  उस ओर जो जायगा, परमानन्द को प्राप्त होगा। व्यक्तिगत ऋण जो स्वयं का उद्धार करना है, कोई (बाप बेटा न कोई) नहीं कर सकता है । स्वयं करने से होता है।

  अब मनुष्य गिरता चला जा रहा है। यह दुर्गति क्यों है? क्योंकि हमने उस सत्ता को छोड़ दिया है। आत्मा, माने अपने आपको जानने का कभी भी प्रयत्न नहीं किया।

- हमारे परिवार में ऐसे लोग हैं। जो, Golden Light में स्नान करते हैं , कृष्ण नाम आत्मा का है । इस आत्मा का दर्शन, एक बार भी जैसे जुगनू

चमकती है, वैसा हो जाये, एक बार भी जीवन में हो जाये । या संत, महंत, योगी पुरुष का मिलना हो जाये, दर्शन हो जाये। तो पुनर्जन्म नही होता, याने वो माँ के पेट में नही आता है। बार-बार जो संसार में आते हैं, अपने आप को पहचानने के लिये आते हैं। अपने आप को पहचानने के लिये स्वर्ण सन्धि मिलती है । ये स्वर्ण सन्धि जो है जीव-आत्मा का भेद जो जान लेता है, वही योगी है। समाधि धि माने बुद्धि को आत्मस्थ रखो और गुरूजी को याद करते हुए 5मी 10 मी 15 मी 20 मिनट, 1, 2 सेकण्ड भी आत्मा को गुरूजी को याद करते हैं। आत्मा मणिवत प्रकाश है, आत्मा स्वयं ज्योतिर्भवती । उस मन्त्र पर अपने आपको निर्भर करके, उसको कार्य के प्रारम्भ, मध्य, अंत में । जहाँ-तहाँ, आना-जाना, करते हुये, तो आपका कार्य अवश्य होगा । आपमें जो बल है और विश्वास है, ये गुण अवश्य प्रगट होंगे । संशय, अविश्वास, शंका, आदि ये दोष है दूर होके, शांति, आनंद, अवश्य आएगी। निर्विघ्न, भोग तो हैं। वो भोगना होगा, किन्तु ऐसा आया और गया, ऐसा आया और गया। कष्ट होने का नही और कष्ट रहित भोग भोगते हुए, परमधाम जो आत्मा है धीरे-धीरे, शनैः-शनैः पहुँच जाते हैं। आप अभी भी मुक्त हैं और आगे भी मुक्त हैं। माफ़ करना ये वाणी से समझाया नही जा सकता । ये अभ्यास से जाना जाता है।

।। प्रेम की व्याख्या ।।

- एक कैसेट में है गुरूजी जो बोले हैं, गाए हैं, प्रेम पर, वैसे ही कुछ शब्द है जो आगे लिखा गया है-1, प्रेम न बाड़ी ऊपजे, प्रेम न हाट बिकाय। राजा परजा जो चहे, सीस देय ले जाय -

  प्रेम प्रेम सब कोई कहे, प्रेम न जाने कोय। आठ पहर भीगे(भजता)रहे,

प्रेम कहावे सोय।।
छिन ही चढे छिन उतरे, सो तो प्रेम न होय। जा घट प्रेम पिंजर बसे, प्रेम कहावे सोय।
जा घट प्रेम न संचरे, सो घट जान मसान। जैसे खाल लुहार की, सांस लेत बिन प्राण।।
आठ पहर चौसठ घड़ी, लगा रहे अनुराग। हृदय पलक न बीसरे, तब साँचा वैराग।।
प्रेम पियाला सो पिये, सीस दच्छना दे। लोभी शीश न दे सके, नाम प्रेम का लेय।।
वाणी तो है अगम की, कहन सुनन की नाहिं। जो जानत बोलत नहीं, बोले सो जाने नाहिं।
पहले अग्नी विरह की, पीछे प्रेम पियास। कहै कबीर तब जानिये, प्रभु मिलन की आस।
सभी रसायन हम पिया, प्रेम समान न कोय। अनचक तन में संचरे, तब तन कन्चन होय।
नैनों की कर कोठरी, पुतली पलंग बिछाय। पलकों की चिक डालके, पी को लिया रिझाय।।
कांची ते सांची भई, जब ही प्रीत की पीर। पाछे पाछे हर फिरें, कहत कबीर कबीर।
मारग चलते जो गिरे, ताको नाहीं दोष। कहे कबीर बैठा रहे, ता सिर करड़े कोस।
करनी बिन कथनी कथे, गुरु पद कहे न सोय। बातों के पकवान से, धीरा नाहीं कोय।

जैसी मुख से निकलती, वैसी चाले चाल। साहिब संग लागा रहे, पल में करे निहाल।

सुख के माथे सिल पड़े जो प्रभु का नाम बिसराय। बलिहारी उस दुःख के जो पल पल नाम जपाय।।

संतोषामृततृप्तानां, यत् सुखं शान्तचेतसाम्। कुतस्तद्धनलुब्धाना मितश्चेतश्च धावताम्।।

भिद्यते हृदयग्रंथि छिद्यन्ते सर्व संशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाहिं। प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समांहि।।

प्रीति बहुत संसार में, नाना विधि की सोय। उत्तम प्रीति सो जानिये, सतगुरु से जो होय।।

।। सूर्य रूपी आत्मा का प्रकाश ।।

- अपने में जन्म- जन्मान्तरों की बुनियादी वासनाएं भरी हुई हैं। ये ही निर्विचार होने में बाधक हैं। इसमें मौन सहायक है। उससे ही आगे बढ़ते है , सावधान रहते हुए कार्यरत हो।

यह सब अभिनय है। जो संसार के लिए कर रहे हो । यह नाम किसी का दिया हुआ है। उस स्व में ठहर / स्थिर गए, तो पूर्णता की ओर चले । अपने आप को स्व में लाना है।

अकर्ता होना है । स्वास चल रही है, आप कुछ नहीं कर रहे हैं। मात्र दृष्टा है। ईश्वर अंदर है । रुको क्षण भर, देखो कि जिसे तुम खोज रहे थे, उसे तुम पाये हुए हो।

मैं की समाप्ति की, वह पास में।

समदर्शी महायोगियों के देवता सर्वत्र है।
सदा स्मरण मनन किया करता है, मन का योग रहता है।
संसार की रचना ईश्वर ने की है, इसे छोड़कर भागा नहीं जा सकता । यह शरीर भाव है। शरीर भी संसार है, छोड़ना हैं तो मन से छोड़ो।
जहां भोग है वहां चिंता । भोग के त्याग से ही सारी चिंताएँ समाप्त होती हैं।
ज्ञान (ज्ञान की सात भूमिकाएं हैं-शुभेच्छा, विचारना, तवमानसा, सत्वापत्ति, धूतपाप, पदार्थभावना) से अज्ञान दूर करो । विज्ञान से दर्शन होता है, बातचीत होती है। साथ रहता है। ये सौदेबाजी से कुछ नहीं होता। अपना दोष देखो । दूसरों का क्यों देखते हो? हम कुछ नहीं करते और सब पाना चाहते हैं। परजीवी। पात्रता की तैयारी चाहिए। सम्यक रूप से पूर्ण रूप से आप जो काम किये । यह कृति है-संस्कृति है । प्योर है-स्योर है।आपके सामने यह परिणाम आ जाता है। हमारी संस्कृति का स्वरूप बदल दिया, ये मंदिर मस्जिद वालों ने। आज हम संस्कृति को रसातल में ले जा रहे हैं।

- इच्छा-इत और छा, इत माने इस ओर, जगत को ओर। पहले इच्छा, उसके बाद कामना माने प्लान बनाते हैं, ऐसा ऐसा करना है, फिर वासना-ये हो जाना चाहिए। बहिर्जगत के प्रलोभनों से सम्मोहित होकर, मनुष्य अपने आपको भूल जाता है। यदि नहीं मिला तो क्रोध आ जाता है। जगत का सारा व्यापार केवल मानकर होता है । जानकर नहीं।
  मनीषीगण हो गए हैं हमारे । उन पुराण पुरुषों ने घर में देवपूजा रखे, देवपूजा लाये। वो देवपूजा कौन सी है? तीन पद से युक्त ऐसा एक शब्द

है जिसे गायत्री कहा गया है। लेकिन उसका आकार बना दिया गया, जिसकी कोई आवश्यकता नहीं। पद जो होता है, किसी का नाम नहीं, ओम, ऐसा जो अक्षर है । उसी को पद कहा गया है। ऐसा कौन सा देव है जिसे प्रातः उठ करके स्मरण करना चाहिए? उस देव का, जो अपने में स्थिर है, स्थित है। सूर्य का सा, स्वर्ण जैसा वर्ण है, स्वयं ज्योति है, वो आत्मदेव है। वही हमारे अंदर बाहर , ऊपर नीचे है और हम उसके अंदर हैं। इस आत्मदेव से बढ़कर कोई देव नहीं है । बाकी जो देव हैं। सब स्मारक है। स्मारक में कुछ नहीं होता, कारक ये है जो हमारे भीतर है। वो सूर्य की तरह प्रकाशित है, अनन्त सूर्यों का सूर्य है, वो तुम्हारा बल है । आधार है, वही सत्ता है, सत है और कुछ नहीं है। एक ही सत आगे था, आज भी है, आगे भी रहेगा। और जो कुछ कहते हैं वो कुछ भी नहीं है। उस सूर्य का स्मरण करके कार्य करना चाहिए।

ये संकल्प है । लोग खाली कल्पना करते हैं , जो कभी सत्य नहीं हुई, संकल्प ही सत्य होता है। सूर्य का सा वर्ण है । सूर्य माने क्या, सूर्य माने प्रकाश । प्रकाश क्या? प्रकाश है ज्ञान । तब आपको ज्ञान होगा, आत्मज्ञान होने पर क्या होगा? आत्मा वही सत है, वो कालों का महाकाल है। वही अकाल है, वह देश और काल से परे है। आत्मदेव के प्रभाव से नाना जन्मों का जो कुछ बाकी है, जैसे सूर्य की किरणों से अंधकार दूर हो जाता है, वैसे वो भी दूर हो जाता है। आत्मा रूपी सूर्य के उदय होने पर पहले शांति मिलती है। एक ऐसी अवस्था आ जाती है, कि मादकता बढ़ जाती है, कुछ नशा सा लग जाता है। ऐसा होते होते लाइट बहुत बड़ी हो जाती है, फिर स्थिर हो जाती है । और सब कुछ मिल जाता है। इसी जन्म में सब कुछ होता है। भरजक माने भस्म कर देने वाला । नाना जन्मों में

वासना के द्वारा किये गये कर्मों से सुख दुख का फल जो अनन्त जन्मों से भोग रहे हैं। और आगे भी हम भोगते चले जायेंगे (को भस्म कर देने वाला)। आत्मा रूपी सूर्य जब प्रकट हो जाता है, तो उसके प्रभाव से क्या नहीं हो सकता? वो जैसे बोलेगा, वैसा होगा, वो चलेगा तो दुनिया चलेगी हैं। वो जैसा करना चाहेगा, वैसा होता चला जायेगा।

तो ये जो हमारी कामना वासना हैं जिसमें हम फंसते चले जाते हैं। आत्मा रूपी सूर्य के स्मरण करने पर उसके प्रभाव से जैसे पौ फटती है । उसकी किरण फूटती है तो जैसे अंधकार मिट जाता है । वैसे ही बुद्धिरूपी मन में जो अंधकार है अज्ञान है अविद्या है, दूर हो जाते हैं। जिससे हमें सब दिखाई देने लगता है, भला-बुरा, मेरा-तेरा समझ में आने लगता है। वो अपने कल्याण करने, सर्व कार्य सिद्ध करने । अर्थ धर्म काम मोक्ष को प्राप्त करने में सहायक हो जाता है। केवल संकल्प मात्र से कार्य होते रहते है। लोग आकर जमा हो जाएंगे । कहेंगे हमें आपका कार्य करना है, सहायता करना है। इस प्रकार कार्य निःशुल्क कर देंगे।

सूर्य आपको वह दिखे या न दिखे स्मरण कर (कुछ समय, 5, 10 मिनिट घर में बैठकर अभ्यास, ध्यान) कार्य करें। ये समझे कि हमने ऋण चुकाने जन्म पाया है, केवल ऋण चुकाने ही नहीं अपने आत्मदेव को प्रसन्न करने के लिए हमने जन्म पाया है। इस प्रकार आत्मारुपी सूर्य की ओर झुकने से गृहस्थाश्रम में रहकर, अपने आपको जानें ।और हंसते हुए ऋण चुका दें। व्यवहार तो ये है कि आपको ऋण होगा और वेदान्त ये है कि हंसकर क्यों न चुकाये? ऋण है तो कार्य करना होगा, ये कर्तव्य है। समय-समय पर जो करने योग्य है, यही कर्तव्य है । योग्य रूप से याने प्रसन्नतापूर्वक। हंसकर करना है। हम रोयेंगे (क्रोध करेंगे) तो सारे परिवार को रुलायेंगे ।

क्रोध करेंगे तो खुद का नाश करेंगे। क्रोध से अगर बचना है तो अभ्यास करना होगा।

सब में वही आत्मा (सूर्य रूपी) है । इसलिए जब हम देखें तो सबमें वही (सूर्य रूपी) आत्मा देखें, सबकी आंखों में वही ज्योति दिखेगी। रोना माने क्रोध । क्रोधी वही होता है जो रो देता है। दो बाजू है एक व्यवहार दूसरा वेदान्त। व्यवहार ये जो कर्तव्य है, वेदान्त दूसरा बाजू है अपने आप को नहीं भूलना (आत्मा रूपी देव सूर्य को स्मरण कर रहना, चलना, करना) ।

- जीवन में फुर्सत नहीं **हैं** ऐसा कहने के साथ आत्मा रूपी सूर्य से आत्म विद्या से दूर चले जाते **हैं**।

हर व्यक्ति अपने जन्म जन्मान्तरों में बोये हुए को ही काटता है। भविष्य का बनना पूर्व जन्मों के देना पाने पर निर्भर है।

मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का विधाता होता है, अतएव उसे सदमार्ग में सत्कार्य में जैसा बने जितना शीघ्र बने लग जाना चाहिए।

जिसे प्रेम और सत्य कहना चाहिए उस पर चलो। करके दिखाओ आचरण में तब सेवा होगी, इसी से समाज में साफ सुथरे होंगे।

कामना-वासना का संकल्प न करें ,विचार ही समय पाकर मूर्त रूप धारण करता है।

कामना है, किन्तु निष्काम । आत्मानुसन्धान जो है। इससे क्या होता है? ये आधिदैविक, आधिभौतिक, आधिदैहिक ये तीनों ताप दूर हो जाते **हैं**। आपकी बुद्धि शुद्ध होकर आत्मा जो परम् है, उसको प्राप्त होंगे।

अपना काम है सहन करना। उल्टा उसका हित मन वाणी शरीर से पहुँचाये।

आत्मा ही दैविक है। योग की दैविक शक्ति अत्यधिक शक्तिशाली होती है। मन अत्यधिक शक्तिशाली हो जाता है । और सभी घटनाये वैसे ही घटती है, जैसा आप चाहते है।

जैसा बताया गया है । वैसा खाली बैठना है, चुपचाप। अपने आप होने दो जो होता है। इससे उत्तम और पवित्र करने वाला मार्ग ही नहीं है। इसी जन्म में होता है। आपको बोध हो सकता है। प्रत्यक्ष कर सकते है। अभ्यास उत्साहित होकर करना चाहिए। अपने आप होता है। एक ही जन्म में होना।

कोई काम का नहीं अगर सुषुम्ना को खोलकर ऊपर नहीं आये तो। तभी मुक्ति है।

रंगते जाना है । माने उत्साहित होकर अभ्यास करना चाहिए, रोकर या सुस्त होकर नहीं।

माने तुम अपने आप में समर्पित होओ। आत्मा अपने आप को मुक्त कर लेता है। और ये जो विकार है, मन में, बुद्धि में, ये ही सब गुण हो जाते हैं।

यही गुण अब आपकी शक्ति है। तब न सोचते हुए, न करते हुए, सब अपने आप होता है।

मनुष्य को रिसीवर होना चाहिए, रिसीवर हुए । कि दिव्य शक्तियाँ अपना कार्य प्रारम्भ कर देती हैं।

- हृदय माने मन। मन में जितनी वासनाएँ हैं । अनेक जन्मों के सँस्कार आदि हैं।

  ये, (तब तक है) जब तक मृत्यु केंद्र का भेदन न हो, और भेदन करके आज्ञाचक्र में नहीं आते।

ये मृत्यु केंद्र के बार बार भेदन के द्वारा यही दूसरों की भाषा में निर्जरा है । बार बार जो विधाती कर्म, जो बार बार जन्म लेना पड़ता है। ये सब जलते जाते हैं।

याने जो जीते जी मर चूका है, वो है पंडित। पंडित माने पंच तत्वों का बोध हो । ज्ञान हो।

आज्ञा चक्र में आते हैं। यही है मन का केंद्र। बुद्धि को, मन को, चित्त कहा गया है । ये भेदन होने पर शुद्धि हो जाती है।

सारा संसार हमारी बुद्धि में हैं। बुद्धि शुद्ध हो जाती है।

सत्व नाम बुद्धि का है। मृत्यु भय चला जाता है। पंच क्लेश-अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश (मृत्युभय) ये सब शुद्ध हो जाते हैं। इसी को सत्व शुद्धि कहते हैं।

तब ये ज्योति आयगी- जायगी।आयगी-जायगी।

- ये जो सारे विकार हैं, आपके मन में बुद्धि में ये ही सब गुण हो जाते हैं। और यही गुण आपकी शक्ति है। तब न कुछ करते हुए, न सोचते हुए सब अपने आप होता है। जैसा बताया गया है वैसा अभ्यास करना चाहिए, तब आप निर्भय हो जाएंगें । ये जीवन पूर्ण हो जायेगा।

  इसे छोड़ना नहीं है करते रहना है और उस शक्ति को प्राप्त करना है। शक्ति माने आत्मा वो महाशक्ति है । डिवाइन पावर है, उसको प्राप्त करना है, उसकी शरण में जाना है अर्थात अपनी शरण में जाना है।

  इसे पूरी तरह गुरुदिश मार्ग से प्राप्त कर आप सारे बन्धन रुकावट अवगुण दुःख दूर कर सकते हैं।आप शुद्ध हो जाते हैं और सक्षम हो जाते हैं।

- रघुपति!भक्ति करत कठिनाई।कहत सुगम करनी अपार,जानै सोई जेहि बनि आई।....।सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवै निन्द्रा तजि जोगी।सोई हरिपद अनुभवै परम् सुख,अतिसय द्रवैत बियोगी। सोक, मोह, भय, हरष, दिवस, निसि,देस काल तहँ नाहीं।तुलसीदास यहि दसाहीन,संसय निर्मूल न जाहीं। ऐसी स्थिति हो जाती है।तुलसीदास यह दशा हीन।जब तक इस दशा को नहीं प्राप्त होता है।तब तक संशय दूर नहीं होती है।तंत्र में भी है।भिद्यते हृदय ग्रंथि शिंद्यन्ते सर्व संशया छियन्ते चास्य कर्माणि तेषां दृष्टि परावरे। उसको भूत भविष्य का ज्ञान हो जाता है। और सर्वत्र होकर के दिव्य भगवत का स्वरूप धारण हो जाता है। जन्म-मरण से रहित हो प्रकाशमय लोक में चला जाता है।तब तक शंका,संशय दूर नहीं हो सकती है।वो चाहे कोई भी हो।

- अभ्यास के द्वारा गुरुदिश मार्ग से चलने पर क्लेश अपने आप मिट सकते हैं। आप समर्थ हो सकते हैं। आप ही अपने भाग्य के निर्माता और आप ही उसमे परिवर्तन लाने में सक्षम हैं। गुरुदिश मार्ग से आप ऐसी ताकत प्राप्त कर सकते हैं। की आप अपनी डेस्टिनी को बदल सकते हैं। इसी जन्म में बदल सकते हैं।

  अन्तर्धाम । अन्तरमार्ग में उसकी सदैव लौ लग जाना, उसको अंदर ही अच्छा लगता है । अंदर जाकर जो कुछ मिलता है, वह अपने स्वजन परिजन को बताया करता है, कि बड़ा आनन्द आता है । सदा प्रसन्न चित्त रहता है , क्योकि उसे कोई चिंता नही रहती। मोक्ष का यही अर्थ है, यही लक्षण है ।

  समस्या बोले, तो कुत्ते की दुम। और उसका इलाज है फुलस्टाप।

फुलस्टाप लगाने का तरीका है, धीरे धीरे व्यवहार कम करते जाना।

वही कुण्डलिनी या आत्मा। शक्ति स्वरूपिणी है, वही परमब्रम्ह है । जो अपना मोक्ष चाहता है। संसार में आनन्द से अपना जीवन व्यतीत करना चाहता है, वह उसकी शरण ले । मैं उसकी शरण लिया हूँ। अरे वही तो है, वही तो बोलती है, वह न बोले तो बोले कौन ? अगर वह न हो तो बुद्धि तो जड़ है।, बुद्धि में जीव थोड़ी है। तो ईश्वर ने क्या किया? सबको बना करके, रचना करके अपने आप को स्थापित कर दिया।

व्यक्तिगत ऋण अर्थात हमें अपने आप का उद्धार करना है। कोई नही कर सकता है । न बाप, न बेटा और न कोई दूसरा । यह सब झूठ बात है कि बेटा उद्धार करता है । स्वयं करने से होता है।

सभी कहते हैं कि आप में आत्मा है। लेकिन वह प्रभाव है क्या? क्या ये सारी शक्तियॉ अष्टसिद्धि-नवनिधि आदि आपमें विकसित है क्या? आत्म शक्ति आपमें विकसित है क्या? इसलिये मैं क्यों, क्या, कैसे नही पूछता । मैं आज भी सत्य के खोज में हूँ।

- आत्मा स्वयं ज्योतिर्यभवती।

यही अग्नि है। इसके उदीयमान होने के बाद सम्भलकर रहने की आवश्यकता है। अन्यथा जो हम कहते, करते हैं, भोगने आना पड़ेगा। जो भोगना है। अभी भोग लो। दोषों से बचते रहें । इन्द्रियों पर काबू रखें । जब तक आप ध्यानमग्न हैं , आप सतचिदानन्द स्वरूप हैं। आप भी वही हैं।

तुर्यातीत अवस्था प्राप्त करना ही लक्ष्य है, जिसमे साधक को कोई होशो

हवास नही रहता । अपने मस्ती में मस्त रहता है।

जब साधक अभ्यास करते करते ब्रम्हरन्ध्र में पहुँचता है। तब पूर्ण हो जाता है । ब्रम्हांड ज्योति से भर जाता है।

ब्रम्हरन्ध्र में संशय निर्मूल हो जाता है। अनन्त जन्मों की, कर्मो की, भूत भविष्य की पूरी सफाई हो गई। तब वह परम ब्रम्ह हो गया।

उत्साहित होकर अभ्यास करना चाहिये। रोकर या सुस्त होकर नही। एक ही जन्म में होना।

ये जो विकार **हैं**। आपके मन में और बुद्धि में, ये ही सब गुण हो जाते **हैं**।

तब न कुछ करते हुए, न सोचते हुए । सब अपने आप होता है।

परम् पद क्या है? आत्मा अपने आप को मुक्त कर लेता है।

जो अपने आप को जानता है कि, मैं ही वह अद्वितीय आत्मा हूँ। वह किसकी इच्छा में शरीर को क्लेश देगा। यह आत्म ज्ञान की बात है।

तदरूप होने पर, नाम लेते लेते जब वह मिला तो पता चला। वह मैं ही तो था।

।। श्री गुरुजी द्वारा दिये गए आशीष ।।

- गुरुजी के आशीष को एकत्र कर लिखने का प्रयास उनकी कृपा से कुछ हुई है, कृपया हो सके तो हम सब ग्रहण करेंगे-

  जिस तरह से आशीष देकर गया था, उसी तरह से आज हम सब फिर से इकठ्ठे हुए है, हम अपने परिवार को आनन्दमग्न पा रहे है, जिसे देखकर मुझे अत्यंत हर्ष हो रहा है, कोई भी कार्य करने के पहले वैदिक मन्त्र के आधार पर हम आशीर्वाद देते **हैं**।

ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽ अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु। ये सब हैं, ये सब आपकी रक्षा करें।

ॐ द्यौ शान्तिः पृथिवीं शांतिः अंतरिक्षग्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि सुशांतिर्भवति, ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित दुःख भागभवेत। ये सब शांत हों । जब हम आये, जब हम लोग मिलें । कश्चित कोई भी दुःख आपको, कोई भी दुःख से आपको हम दुःखी न देखें। ऐसा हमारा आशीर्वाद है। सामा, सा-मा, प्रकृति और पुरुष । ये सारी सृष्टि है । दो के बिना तीसरे की उत्पत्ति नहीं माने ये दो होकर जो कुछ उत्पन्न होते हैं। ये भी शांत हो। माने जो कुछ भी उत्पन्न हो , अपने अनुकूल हो, समाज के भी अनुकूल हो । राष्ट्र के लिए भी अनुकूल हो, जगत के लिए भी अनुकूल हो। आनन्द-मंगल हो । हम बस यही चाहते हैं, सबका भला हो । हानि कभी न हो किसी का, न अपमान हो, न अनादर हो। सबका कल्याण हो । सब प्रकार के दुःख, आपत्ति विपत्ति संकट शांत हो । सब प्रकार की शांति आपको प्राप्त हो । जीवन सफल हो, जीवन कार्य सफल हो । जीवन यशस्वी हो, जीवन निर्मल हो । और आप सत्पथ पर अग्रसर हो ऐसा, मेरा स्नेहपूर्ण आशीष है। शांतिः शांतिः शांतिः।

आप ये गुण सम्पन्न हो, मेरी आशीष है। ये सब शांत हों । और जो सतगुण है, वो आपमें उदय हो। आचरण हो । सत आचरण हो।

सबको ये उत्तम रूप दें कि आपको लौकिक-अलौकिक दोनों सुख भोगते हुए । माने सुख-दुख भोगते हुए । आनन्द को, आनन्दमय सागर में

डूबते हुए, अंत समय में अर्चिरादि मार्ग में माने तारापद में आपका परलोक गमन हो। सबका कल्याण हो, सबका भला हो, सब आनन्दमय जीवन व्यतीत करें।

ॐ तमसो मा ज्योतिर्गमय । असतो मा सदगमय । मृत्योर्माअमृतं गमय। मैंने जो पाया है, वह सबको मिले । सब आनन्दित हों ।

अच्छा । आंनद हो, मंगल हो, कल्याण हो । सबका भण्डार भरपूर हो, जीवन सफल हो, षट सम्पत्ति युक्त हों । तुम्हें आत्मबल मिले, राजबल मिले, धनबल मिले । सब प्रकार के बल प्राप्त हों । दसों दिशा अनुकूल रहें । आंनद मंगल हो, कल्याण हो। पुरुष हो, स्त्री हो, बालक हो, बालिका हो । कल्याण हो । मेरी आशीष सबके लिए समान है।

मैं हमेशा प्रत्येक शिष्य के साथ हूँ । अब हम आपके (दीक्षा के बाद) बंधुआ हो गए, चाकर हो गए।

सप्तर्षि आपकी रक्षा करें। सब शांत हों , विघ्न बाधा दूर हो। ....ॐ शांतिः शांतिः ....हरि ॐ तत्सत। हमने कल्याण का बीज बोया है।

भक्ति-भक्त, भगवंत-गुरु, नाम चार वपु एक । जिनके सुमिरन जो किये, बिनसहिं विघ्न अनेक। इत्यलम । ॐ शांतिः शांतिः।

आशीष का दूसरा अर्थ है शक्तिपात ।आपका उत्साह बढ़े, उत्साह जिससे आपका अपना अध्ययन और अभ्यास करके उतीर्ण हों । आपको बल प्राप्त हो।

यहां आपको शक्ति दी जाती है । उसी के बीच में ट्रांसफ़्यूजन (एक प्राणी का खून दूसरे के शिरा में प्रवेश करने का कार्य) लगा है । बस इतना ही कहना पर्याप्त है। अगर आपको समझ में बात आई हो तो मेरी आशीष सर्वदा आपके साथ है। ॐ शांतिः शांतिः।

आप सदाचारी हों , सच्चरित्र हों । संसार से उऋण हों, कर्तव्य पथ पर दृढ़ हों। सत्य में जीवन आपका रहे, ऐसी मेरी स्नेहपूर्ण आशीष है।

जो ये आशीष है, बल है । आपको बीच-बीच में जो स्नायविक दौर्बल्य होती है, ये दूर हो जाते हैं। जो आशीष मिला है, बराबर हम यशस्वी होंगे। गुण से आप वर्धमान हो, गुणज्ञ हों । और औरों को भी अपना गुण देने में समर्थ हों। विद्या विदुषी भवः, कला विदुषी भवः । आत्म विदुषी भवः, आनन्द मंगल भवः।

आनन्द मंगल हो, कल्याण हो । आत्मज्ञानी भव । विद्याविद भव, कलाविद भव ओम शांतिः शांतिः, सदैव हम सबके साथ हैं।

मंगलं भगवान विष्णु मंगलं गरुड़ध्वजः, मंगलं च पुण्डरीकाक्ष मंगलायतनों हरिः। तुम्हें सामर्थ्य प्राप्त हो । मेरा स्मरण कर कार्य करते जाओ मैं सदा साथ हूँ। गुरुजी सक्षम हैं। आप याद तो करिये आपका कार्य अवश्य होगा।

आंनद मंगल कल्याणमस्तु- १.आंनद-आपको आत्मानन्द प्राप्त हो। २.मंगल-मंगल माने आपके द्वारा परोपकार होता रहे । आपके पास इतनी धन संपदा हो जाये कि स्वयं भी खायें , औरों को भी खिलायें । अपना भी हित हो औरों का भी हित हो। ३. कल्याण-माने आपकी बुद्धि निर्मल होती जाए, किसी के लेने-देने में प्रपंच में न रहें । इससे बढ़कर आशीष और क्या हो सकता है।

विश्वास रखो सतगुरु सदैव तुम्हारे पास है।

।। मेरा और तेरा ।।

- माया का अर्थ होता है, मेरा और तेरा। यह मेरा और तेरा की प्रवृत्ति स्थिर

नहीं होने देती। इस भाव से दूर होने के लिए-अयं निजः परो वेत्ति, (वसुधैव कुटुम्बकम) के भाव के आत्मसात होने के लिए आत्मबल की आवश्यकता है।

यह आत्मबल अभ्यास (निष्काम कर्म) से प्राप्त होता है। अभ्यास से मुँह मत मोड़ो । सभी को शांति अनुभूति आनन्द और जो जो चाहिए, सब मिलता चला जायेगा। भूमि दृढ़ होकर सामर्थ्यवान बनते चले जायेंगे, इसी से योगी (रामदास जैसे) समर्थ होते हैं। समाज का उपकार व अपना उपकार इसी से होते चला जाता है। हम सब, मैं और मेरा, के मायावी आवरण से मुक्त होते चले जायेंगे । समाज में विभेद नहीं, एकता बढ़ेगी। वसुधैव कुटुम्बकम, चरितार्थ हो सकेगा।

जैसे जलाशय के पानी में काई पड़े रहने से जल पारदर्शी नहीं रह पाता। लाइट आया पत्थर रूपी, काई के खुल जाने से उस आत्मा के प्रकाश में हम आगे बढ़ते चले जाते हैं। आत्मा का यह प्रकाश । चरित्र रूपी जल पर विषय वासना रूपी काई को हटाने का कार्य करता है। चरित्र से काई हट गई । काई फिर न आए यह होना चाहिए। यह स्थिति निरन्तर अंतर रहित अभ्यास से जन्म जन्मान्तरों तक चलने वाले अभ्यास से प्राप्त होती है। अभ्यास बनाये रखने से चरित्र दोषों से मुक्त रहता है।

इस आत्मशुद्धि के बाद विकार रूपी जितने कार्य होते हैं वे सब समाप्त हो जाते हैं । एवं अक्षुण्य रूप से शुद्ध कार्य होने लगते हैं। ऐसा होने पर हम अभय प्राप्त कर पाते हैं।

विज्ञानमय कोष। सेंटर ऑफ पीस। साधना की एक अवस्था है, इसे सहजावस्था भी कहते है। वहां आकर स्थित हो जाये वही संयत-आत्मा है।

आनन्दमय कोष की अवस्था में शोक, चिंता, दुःख, साधक को कुछ नहीं व्यापता । सब कार्य अपने आप होते रहते हैं। साक्षी भाव से भोगते हुए वह आगे निकलता जाता है।

सेन्टर ऑफ पीस के भी ऊपर साधना द्वारा जब चले जायेंगे। यहां पर आकाश है। पर इसके ऊपर आकाश नहीं है। जिसे एबव टाइम एंड स्पेस, कहा गया।देश काल जहां तक हो उसे हद कहा है । इससे परे जो है वह अनहद चले जाने की स्थिति है। यहां तक (हद तक) आकाश है । इससे आगे आकाश नहीं है । आकाश से ऊपर चले जाने के बाद शून्य है, वहां स्नान किया।

यह अलभ्य स्थिति केवल वास्तविक पुरुषार्थ से साध्य है । यह शून्य ही सुषुप्तावस्था कहा गया है । यहां प्रकृति सो जाती है। शून्य से आगे याने अकार, उकार एवं मकार के आगे जो गये वह तो प्राप्त अनुभूतियों में मगन रहता है । मुस्कुराता रहता है।

शून्य शहर तक सब गये, शून्य से आगे नाहि। शून्य से आगे जो गये, ते मन्द मन्द मुस्काहिं। यह कबीर की अनुभूति है।

हमारे परिवार में भी ऐसे साधक हैं। एक साधिका है।

- अभ्यास इतना करो की आत्मज्योति के सिवाय कुछ भी न रहे। यही अहम ब्रम्हास्मि है। यही परमब्रम्ह है।यह सत् है। लाईट ऑफ़ गॉड सराउंडस् मी। यह सत्य है।

  ॐ को ही कहा गया । ढाई अक्षर प्रेम का । या तीन पद से युक्त शब्द जिसे गायत्री कहा गया। और उसका आकार बना दिया गया जिसकी

कोई आवश्यकता नहीं है। पद जो होता है,उसका कोई नाम नहीं। ॐ को ही कहा गया, वो आत्मदेव है।स्वयं ज्योति **है**।, सूर्य का सा वर्ण है। स्वर्ण जैसा।जो अपने आप में स्थित है। वही हमारे अंदर-बाहर, ऊपर-नीचे है और हम उसके अंदर **हैं**।

सूर्य माने ज्योति। माने ज्ञान। आत्मा रूपी सूर्य जब प्रकट हो जाता है, तो क्या नहीं हो सकता? केवल संकल्प मात्र से सब कार्य होते रहते **हैं**।

ये जो अखण्ड ज्योति है । सारे ब्रम्हाण्ड में फ़ैल जाती है। एक ज्योति के सिवा ब्रम्हाण्ड में कुछ नहीं है।आत्मज्योति इतना सुंदर है कि इसमें लीन होने से सब कुछ आनन्दमय हो जाता है। पुण्य-पाप से परे हो जाता है।

दृढ़ विश्वास चाहिए कि वो हमारे अंदर बाहर है। ऐसा मानकर चलने से ही लाभ होगा। इसके बाद होगी गुणलीनता।

इसके बाद प्रकाश भी नही रहेगा । शरीर भी नहीं रहेगा । स्वरूपशुन्यम। ये जो ज्योति दिखती है,वो भी नहीं रहेगी। कुछ भी नहीं रहेगा।

यही समाधि है।

।। शिव शक्ति का मिलन ।।

- सतत अभ्यास(अखण्ड, नित्य)से दिव्य ऊर्जा पिनियल बॉडी (आज्ञा चक्र, शिव नेत्र) को स्टूमिलेट करती है।

  पिनियल बॉडी के स्टूमिलेट होने से नर्व टर्मिनल्स (जो की भृकुटि मध्य से 13 की संख्या में निकलती है) भी स्टुमिलेट होते हैं।

  जो की आल्फेक्टरि नर्व (नर्व टर्मिनल की पहली संख्या) के साथ अंदर प्रवेश करती है, अंदर जाकर आप्टिक नर्व (नर्व टर्मिनल की दूसरी संख्या

या दूसरा नम्बर) के साथ आक्सीपुट में पहुँचती है।

इसके बाद दिव्यऊर्जा रीढ़ का उच्चतम सिरा यानि विशुद्ध चक्र के लेवल पर पहुँचती है। तब कुण्डलिनी जग जाती है।

फिर मेडुला ऑब्लांगिटा को क्रास करती है, यही मृत्यु केंद्र है, और वह मर जाता है। (प्रभाव-सारी शारीरिक क्रियाएँ शून्य पड़ जाती हैं। ज्ञान बना रहता है । प्रतिक्रिया व्यक्त नही कर सकता । आत्मा ज्योति के रूप में प्रकट हो जाती है । अष्ट सिद्धि नौ निधियों का ज्ञान हो जाता है । पसीना निकलना बन्द हो जाता है)।

सतत, अखण्ड अभ्यास से दिव्य ऊर्जा मृत्यु केंद्र से ऊपर (मेडुला ऑब्लांगेटा को पार करते हुए) फोर्थ वेंट्रिकल में जाती है।

इसके बाद दिव्य ऊर्जा (अक्विडक्ट ऑफ़ सिलवियस से गुजरकर)थर्ड वेंट्रिकल में पहुँचती है (यह मिड ब्रेन के स्तर पर पाया जाता है)।

फिर दिव्य ऊर्जा ब्रम्ह रन्ध्र के द्वारा लेटरल वेंट्रिकल (दो की संख्या में, सेरेब्रल कोर्टेक्स के मीडियल सरफेस में पाया जाता है) को चार्ज करती है। जिससे पूरे मस्तिष्क में दिव्य ऊर्जा का संचरण हो जाता है।

अब यह दिव्य ऊर्जा आज्ञाचक्र (शिवनेत्र)पर पुनः वापस आ जाती है। और पूर्ण शक्ति के साथ यहाँ पर स्थिर हो जाती है।

इस प्रकार सारी शक्ति, स्थिरता के साथ। शिवनेत्र पर दिव्यऊर्जा का मिलन ही शिव शक्ति का मिलन है।

शिवनेत्र+दिव्य ऊर्जा=शिव शक्ति का मिलन। आत्मयोग से शुद्ध होकर वह योगी हो गया।

दिव्य ऊर्जा का आज्ञाचक्र से मस्तिष्क के सभी वेंट्रिकल्स को पार करते

हुए ब्रम्ह रन्ध्र के द्वारा । पुनः आज्ञाचक्र, तीसरा नेत्र, शिवनेत्र पर आकर स्थिर हो जाना ही, शिव शक्ति का मिलन है। (प्रभाव-सारा भूमण्डल प्रकाशमय हो जाता है । संशय निर्मूल,तीनो बन्धनों से मुक्त, अनन्त जन्मों के संस्कार समाप्त । दिव्य ज्ञान से युक्त, ब्रम्हमय हो जाता है।) ब्रम्ह रन्ध्र में पहुँचकर साधक, आज्ञा चक्र में नही आ पाता ।

21 दिनों के अंदर शरीर त्याग हो जाता है। श्री गुरूजी जैसे सतगुरु, अवतारी पुरुष ही लोक कल्याण हेतु ब्रम्हरन्ध्र से वापस आकर शिवनेत्र में स्थिर होते हैं।

।। एकनिष्ठता ।।

- मैंने कठिनता से पाया है । वह परिवारजनो को सहजता से दे रहा हूँ।

किसी भी प्रकार का भय जो शाश्वत मार्ग से हमे अलग करता है। वह दूर हो जाय ऐसी स्थिति हमे प्राप्त करनी है।

अंदर से प्राप्ति की इच्छा रखने पर दर्शन सुलभ हो जाता है। संसार छोड़ने की आवश्यकता नही है।

जब तक वासना हैं सिद्धि सम्भव नही है। जब मन, बुद्धि को विषयो से परे, अपने आप में केंद्रित कर देते हैं , तब हम पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो जाते हैं, यही सन्तोष है।

जब हर जगह उसका आभास होने लगे । सम्पूर्ण वस्तुये सजीव मालुम होने लगे। रूप तो खोल मात्र है, अंदर वही है।और मैं ही वही हूँ। ज्ञानियों का यही भाव है । और यही ज्ञान है।

- बस यही भगवान है । इनसे मेरा सब काम हो रहा है और मेरा कोई नहीं है । ऐसी धारणा होनी चाहिए।

  जिस दिन वो निर्भर हो गया । संसार के सुख दुःख से प्रपंच से पुनर्जन्म से, तत्काल वो मुक्त हो गया। पूरी तरह से समर्पण नहीं होने पर अहंकार बहुत दबायेगा। सब तेरा है ।इस तेरा में ही भारी रहस्य है।

  अपना कुछ नहीं है,बस गुरुजी के चरणों में बिछे रहना है। सारा संसार गुरुजी का है। हमारा संसार भी गुरुजी का है।

  हम तो उनके आदेश का पालन करते **हैं**। गुरुजी का आदेश है, प्रपंच नहीं छोड़ना है और आत्मानुभूति भी चाहिए।

  कामिनी कांचन में रहकर ये ध्यान में रहना चाहिए, जो बताया गया है। कुछ भी नहीं रहेगा । केवल भोग मात्र रह जायगा। मनुष्य है न आप, तो आपमें गुण है। उसको बढ़ाइये आप । जो दोष है, अभाव है, वो दूर होते जायगा। एक एक बूंद से घड़ा भरता है।

- अपने मन को अपने रीढ़ के स्पाइनल कॉर्ड के प्रत्येक मनको में फेरो, १, २, ३, ४, ५, ६, ७ जैसे जैसे आप घर्षण के द्वारा अंदर बाहर जाएंगे घर्षण से अग्नि प्रकट होती है।

  माने सोई हुई जो शक्तियाँ **हैं** अपने अपने केंद्र से विकशित होने लग जाती है, विकसित होकर बाहर निकलने लगती **हैं**। आप शक्तिमान हो जाते **हैं**। आपके सारे कार्य होने लगते **हैं**। उस मार्ग (सुषुम्ना) में गमनागमन होना चाहिए।

  अभ्यास से धीरे-धीरे मस्तिष्क में आते **है**। तो मस्तिष्क भारी हो जाता है,

मस्तिष्क में वह सेल, जिसका नाम ऐम्पर कैथेपिक है । उसमें रस भरा है, जिससे एंडोर्फिन सेक्रेसन होता है । यह फैलते-फैलते सारे मस्तिष्क में भर जाता है । तो जैसे अफीम खाने जैसे नशा होता है, वैसे ही होता है। और आप कई दिनों तक पड़े हुए **हैं**। न खाना-न पीना, न शौच-आदि, कुछ भी नहीं।

वही व्यक्ति इसका विकास करके महान हो जाता है । माने उत्साहित होकर अभ्यास करना चाहिए । रोकर या सुस्त होकर नहीं। अभ्यास से अपने आप होता है, जब आपने सरेंडर कर दिया। और रेंडरिंग माने भटकना भटकाना छोड़ दिया। इसी जन्म में हम सभी आत्म शक्ति को अपने पद को प्राप्त हो। एक ही जन्म में होना।

इसलिए इस शरीर को स्वर्णमयी कहा गया है । नहीं तो यह कचरा है, कोई काम का नहीं । अगर सुषुम्ना को खोलकर ऊपर नहीं आये तो। गुरुकृपा से सुषुम्ना खुल जाना चाहिए। यह सुषुम्ना मार्ग से आत्मशक्ति को, प्राण को लेकर । जब ऊपर-ऊपर सब जगह पहुँचा देते **हैं** , तब होता है । उस मार्ग में गमनागमन होना चाहिए।

आत्मा प्राणों समेत जैसे पीनियल बॉडी में प्रवेश किया । वैसे ही प्रकाश आ जाता है, वह निराकार आत्मा ज्योति के रूप में प्रकट हो जाती है । ज्योति रूप में साकार हो जाती है। तब सम्पूर्ण शक्ति कौन सी अष्टसिद्धि-नवनिधि, आज्ञाचक्र में प्रवेश कर जाती **हैं**। भूत भविष्य देखता है।

जब साधक अभ्यास करते-करते ब्रम्हरन्ध्र, इंट्रावेंट्रिकुलर फोरमेन आफ मोनरो, मेडिकल टर्म में कहा। एक छिद्र है, प्राण स्थापित करते **हैं**। तो सारा ब्रम्हांड ज्योति से भर जाता है। इतना आनन्द आ जाता है कि

जिसको वर्णन नहीं कर सकते, यही अद्‌भुत रस है। पूर्ण हो जाता है। वह अकेला उस आत्मा को निराकार ब्रम्ह को देखता है। कबीरदास जी ने आज्ञाचक्र में ज्योति प्रकट होने पर सोअह्म कहा। ज्योति जहां-जहां तक जाती है मन वहां-वहां, तक पहुँच जाता है। निरतिशय अवस्था ब्रम्हरन्ध्र में स्थापित होकर अहं ब्रम्हास्मि हो गया। संशय वहां निर्मूल हो जाता है। क्योंकि वहां देश है न, काल है न, भय है न, न काम, न क्रोध है।अनन्त जन्मों का, कर्मों का, भूत-भविष्य का पूरी सफाई हो गई। तब वह परमब्रम्ह हो गया।

- समाज का हम पर बहुत बड़ा ऋण बहुत बड़ा उपकार है। अतः माता-पिता के साथ-साथ मन-बुद्धि-द्रव्य तन, जैसा जिस समय, जिस रुप में बने समाज का ऋण चुकाते चलिए । निष्पक्ष भाव से सेवा करिये, यही धर्म का व्यवहारिक रूप हैं। समाज से जो विभक्त नहीं वही भक्त हैं।
  अच्छे मार्ग में आप आइये । आपकी जीविका / उपजीविका, आदि सभी कार्य होने लगते हैं। चरित्र का निर्माण होकर, आदर्श कहलाते हैं । इसी से समाज का कल्याण होता हैं। ऐसे एक से अनेक हो गये, तो राष्ट्र का विश्व का हित नहीं होगा क्या?

।। साधक सभी ग्रंथों में श्रेष्ठ ग्रंथ ।।

- अपने आपको बढ़िया समझो न। धर्मात्मा समझो, पुण्यात्मा समझो। वो सब जगह है, तो हमारे में भी हैं। और सबका भला करते हुए सहायक बने रहें ।
  वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया जो करेगा सो भरेगा। हम ईश्वर के अनुयायी

होते हैं। अपना काम भी यही होना चाहिए । अपने को भी आना चाहिए। समझ में आते हैं, और समझ के वैसा रहना हो जाय, तो क्या कहना पड़ता है। आपकी बुद्धि मणिवत हो जाए । परोपकार होता रहे, औरों का कार्य होता रहे । आपकी बुद्धि निर्मल बनी रहे, आत्मानन्द प्राप्त हो, बस यही मुक्ति है।

बीता कल तो मर चुका और आने वाले कल का जन्म नही हुआ है। भविष्य की चिंता क्यों जब वर्तमान (लगे रहना) हमारे हाथ में है। श्रद्धा सत - अर्थात सत्य, जिसका ये जग है उसके प्रति होना चाहिए। चाहे जो परिस्थितियां आये अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए । परिस्थितियां आपको उबार देती हैं।

तुम घर बैठो और अन्तः के भीतर ही उपनिषद के तत्वों / तत्व, कि खोज् करो। तुम सभी ग्रंथों में श्रेष्ठ ग्रंथ हो। मन का संयम करो । इंद्रिय निरोध करो। वैज्ञानिक जिसे मस्तिष्क या ब्रेन कहते हैं , वही कल्पतरू है । सभी प्रकार कि इच्छा शक्ति को प्रणाली बद्ध योग से दृढ़ किया जाना चाहिए। प्रत्यक्षानुभूति होने पर मनुष्य - धर्म, अधर्म आदि सभी प्रकार के द्वन्दों से परे चला जाता है।

व्यवहार की भूमिका जो इस तन में मिली है । उसका निर्वाह तो करना ही है, बिना निर्वाह के निवृत्ति कैसे होगी? सब आत्माएं है (बेटी बेटा स्त्री पुरुष सब) ऐसी धारणा ही समत्व योग कहलाती है। संसार में कर्तव्य ही प्रमुख है । इसकी शुरुआत परिवार से होती है, फिर समाज देश विश्व और अखिल ब्रम्हांड। संसार-वेदांत और व्यवहार के ताने बाने से ही सरक रहा है, या संसार इसी का ही ताना बाना है। मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है अतः उसे सत्कार्य में सदमार्ग में जैसा बने जितना शीघ्र बने लग जाना चाहिए।

आप अंदर जायेंगे और अधिकारी होते हैं और जो आप कार्य करते हैं उसका डर नही होगा । बनेगा की नही बनेगा, ये सब चला जाता है। जब तक यह शरीर आपके हाथ में वर्तमान है, तब तक कर लो। जो करना है। किसी भी कार्य के पूर्ण करने में, हमारा दृढ़ संकल्प हमारी निष्ठा के अनुसार ही हमें सफलता मिलती है । केवल शारिरिक और मानसिक श्रम में सफलता नही मिलती। दुसरों को कच्चा अपने को पक्का बताने की अपेक्षा, विद्या से, कला से, उनके जानने वाले से, प्रेम करें । हमारा ज्ञान, बना रहे।

जो बोयेंगे वही काटेंगे। सब अपनी सेवा करते हैं। यही वेदांत है। मधुर वाणी बोलो, जितना मिले उतने में संतोष करो । गन्दी बातें, गंदे विचार, किसी के (मन में भी) सुनने में न आये इसे ही तप कहते है। यह तपस्या, साधारण कोई बात नहीं है। जिसे प्रेम और सत्य कहना चाहिए, उस पर चलो, करके दिखाओ आचरण में । इसी से समाज में साफ सुथरे होंगे। सत्य बोलो, प्रिय बोलो। जिस सत्य से आघात हो वह पापकर्म हो जायेगा, ऐसे पापकर्म से बचना हैं। पाप कर्म से बचता हूँ, ऐसे अहंकार से भी बचते चले जाना हैं। दुसरो को दुःख न पहुंचे यही सबसे बड़ा परोपकार है, इसी में दुसरो का और अपना हित है। मान अपमान तो आते जाते रहते है, पैसा कोई ऐसी चीज नहीं जिसके पीछे हम भागते फिरे, ये सब बातें अपने आप समझ में आने लगती है। गुण वृद्धि के लिए आदर करना सीखे। मन वचन कर्म से व्यवहार करना ही व्यवहार है।

मायसेल्फ को जानने पर हीलिंग पावर विकसित हो जाती है। मन अत्यधिक शक्तिशाली हो जाता है । सभी घटनाएं वैसे ही घटती है जैसे आप चाहते हैं। केवल व्रत उपवास से नहीं, ज्ञान में डुबकी लगाकर ही

कुछ हासिल होता है। आप डेस्टिनी को बदल सकते हैं। नाना प्रकार के सुख दुःख जो आपके सामने है बदल सकते हैं।

यह देह पूर्ण है । और सब कुछ प्राप्त करने में सक्षम है। अपनी भूमिका दृढ़ करना । बस आप लगे रहिए। आप विषयातीत और इंद्रियातीत होकर निर्मल, निर्विषय हो जायेंगे। अपने आप को, अपने ही पद् पर फिर से नियुक्त करने के लिए । नियुक्त भी नही, युक्त होना है । यही अभ्यास है।

आप संसार के लिए उपयोगी है,औरों को भी अपने जैसा तैयार कर सकते है। आपकी सब कामनाएं पूर्ण हैं। कोई वासना नही, निर्वासनिक जीवन हो जाएगा। सम्यक् रुप से पूर्ण रुप से जो कार्य किये, यह कृति है यह संस्कृति है । प्योर है, स्योर है। आनन्दमय जीवन व्यतीत होगा तब आप समाज के लिए है। जो कुछ आपका है समाज का है । दिन ब दिन आप बढ़ते जाते है। वसुधैव कुटुंबकम चरितार्थ हो सकेगा।

आप हमेशा आनन्द में डूबे रहेंगे। अवस्था रहित हो जायेगी, धीरे-धीरे भूत-भविष्य का ज्ञान होने लगेगा। प्राप्ति हो जाएगी।और आगे जाना चाहते, हो तो मौन हो जाएंगे।

- खाली स्मरण करना है । समय पर मन्त्र वन्त्र कहां याद आता है, गुरुजी शब्द याद आयेगा । सारा सार सब कुछ गुरु शब्द में छुपा है।

  जो आपको उपाय बताया गया है, आत्म साक्षात्कार करने हेतु या जो आप योगाभ्यास करते हैं। उसके द्वारा जो गुण मिलते हैं, उन गुणों से समाज में आपको आदर, सम्मान, प्रतिष्ठा मिलेगी। प्रत्येक व्यक्ति आपको हृदय मन से चाहेगा।

निष्काम कर्मयोगी कैटेलिस्ट की तरह होते है, वो कुछ करते धरते नही, केवल स्व का अध्ययन करता है । और किसी का अध्ययन नहीं करते है। कैटेलिस्ट केवल अपने आप में रहता है, न घटता है न बढ़ता है, न कुछ करता धरता है । लेकिन उसका विद्यमान रहना काफी है। उसके प्रभाव से द्रव्य जहां तहां पहुंचना चाहिए पहुंच सकता है। वह बिल्कुल रूपांतर करके जहां तहां पहुंच जाता है, वो कुछ करता धरता नही है। उन्हें समर्थ कहा गया है, ये है निष्काम कर्मयोग।

ध्यान की स्थिति में एक ऐसी अवस्था है, जिसमें साधक या योगी को जब जैसी इच्छा होती है, उसके संकल्प मात्र से पूर्ण हो जाती है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति के इन अवस्थाओं के परे, भूत, भविष्य, वर्तमान का ज्ञान ही नहीं । उसका संकल्पित कार्य भी स्वयं सिद्ध हो जाता है।

इस भूमि को स्पर्श करके पाताल से आकाश तक दिव्य लोक पर्यन्त एक ही पुरुष है।और कुछ नही यही वेद है। पुरुष माने नवद्वार के अंदर जिसका निवास है। वही जानने योग्य है। वही आत्मा है महाशक्ति है। कुण्डलिनी है, ब्रह्म है । गॉड है, ऑलमाइटी है।

- बीता कल तो मर चुका। आने वाले कल का अभी जन्म नहीं हुआ है, भविष्य की चिंता क्यों जब वर्तमान हाथ में है।

  मात्र मनुष्य में अपने आपको बदल सकने की क्षमता प्राप्त है, तथा स्वयं को वह उत्कर्ष, चर्मोत्कर्ष पर ले जाने की क्षमता है। तभी तो यह सिद्ध है कि मनुष्य का जन्म एवं पुनर्जन्म उसकी इच्छा पर निर्भर है।

  मनुष्य अपने कर्मों को, चरित्र को, अपनी घटनाओं को नियंत्रित व परिवर्तित करने में समर्थ है।

यदि मानव मानवता की सीमा तक रहे तो वह मानव नहीं देव है । यदि बिना साधना के अपने में देवत्व अनुभव करे तो वह मानव नहीं दानव है।

आत्मा की मुक्ति ही अक्षय सुख है, जिसका कभी अंत नहीं होता। दूसरे सारे सुखों का अंत हो जाता है।

साधक आज्ञाचक्र के बाद जैसे जैसे साधन के द्वारा ऊर्ध्वगति प्राप्त करता है, तब उसका स्थूल शरीर न रहकर देवालय हो जाता है।

साधकों की बुद्धि जब स्फटिक मणिवत हो जाती है, तब आकाशवाणी के द्वारा उसे श्रवण में आता है । उसे ही नाद ज्ञान कहा गया है।

मैं शिष्य नहीं बनाता मैं तो अपने शिष्य साधक को समकक्ष बनने का मार्ग प्रशस्त करता हूँ।

अंतर्मुख होकर यदि हम पुरुषार्थ करें, अपने आपको जानेंगे । अपने आप में रत हो जाएं, तल्लीन हो जाएं। तो प्रत्येक आत्मा, परमात्मा बनने में सक्षम है।

मनुष्य सब रंगों से परे है याने जीवन्मुक्त। किसी भी आश्रम में रहकर आप जीवन्मुक्त हो सकते हैं। और जीवन्मुक्त होना ही हेतु है।

साधना का केंद्र आत्मा ही। साधना के माध्यम से जीवन-मरण को संवारना सुधारना और ज्योतिर्मय बना देना यही लक्ष्य होना चाहिए।

घृणा नहीं गई तो क्या गया? वही तो जाना चाहिए। अतः वे लोग धन्य है जो घृणापूरित संसार में घृणा से बचकर जीते हैं।

अखण्ड आत्मशक्ति प्राप्त होने पर साधक अपनी रक्षा, अपनी जीविका, अपने उद्धार के साधनों के प्रति चिंता रहित हो जाता है।

साधक, दपेन्द्रियों तथा मृत्यु केंद्र पर विजय पाकर 92वें केंद्र पर पहुंचता है तब उसे पसीना आना बंद हो जाता है। उसका शरीर देवालय हो जाता है।

साधक जब आज्ञाचक्र में पहुंचता है, तब उसके अधोगति का भय रहता है। यहां gonedal का स्राव होता है जिससे कामवासना को बढ़ावा मिलता है। यही अपने आपको रोक नहीं पाता और उसका पतन हो जाता है। जब तक अपनी मौत देखकर आज्ञाचक्र के आगे नही बढ़ता, उसके पतन होने की संभावना बनी रहती है।

अपने मृत्यु केंद्र को पार कर पुनः साधना के द्वारा जब आगे की ओर बढ़ता है। तब उसे अष्ट सिद्धियां (अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, व्याप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व)प्राप्त हो जाती हैं।

मृत्यु केंद्र पर विजय प्राप्त करने पर साधक का अवरोहण हो जाता है । विधाती कर्मों के नाश होने पर अवरोहण होता है।अवरोहण के बिना साधक को साक्षात्कार नहीं होता।

सतगुरु शक्तिपात के द्वारा अपने शिष्य को दीक्षा के रूप में बीजारोपण करते है। जब तक साक्षात्कार उसे नहीं होता है वह बीज पथप्रदर्शक बना रहता है। जैसे कहा है-भक्तिबीज पलटे नहीं जावे युग अनन्त, ऊंच नीच घर अवतरे अंत संत का संत।

प्रारम्भ में जो शरीर पाया है केवल भोग भोगने के पश्चात। निष्कामकर्म रूप धर्म के प्रभाव से बुद्धि शुद्ध होकर स्फटिक मणिवत आत्मप्रकाश से जब युक्त हो जाती है। यही चैतन्य / सबीज, समाधि है। जीते जी वह साधक जीवन्मुक्त हो जाता है।

पुरुष में एक्स व वाय दोनों बीज होता है स्त्री में केवल एक्स बीज होता है। केवल एक्स बीज होने से उसे अर्धांगिनी कहा है। अबला कहा गया है। (एक्स+एक्स=कन्या, एक्स+वाय=पुत्र)

हमारे शरीर में अनेक ग्रंथियां है, योगियों ने इन्हें योग चक्र कहा है ।

पिनिअल ग्रंथि-सहस्त्रचक्र,पीट्यूटरी-आज्ञाचक्र, थायरॉइड विशुद्धचक्र, थाइमस-अनाहत,एंड्रिनल-मणिपुरचक्र,गोनाडग्रंथि-स्वाधिष्ठान व मूला धार चक्र। हमारे योगशास्त्रों में इन चक्र केंद्रों का जो स्थान व आकार बताया गया है, आज उसे शरीर शास्त्री मान रहे हैं।

गंगा यमुना की धाराओं के बीच से लकीर सी दिखती है यही सरस्वती है। इसी प्रकार भूलोक बीच में है। मानव यही से ऊपर को जाय चाहे नीचे जाय, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। अतः त्रिवेणी संगम का तात्पर्य मनुष्य जन्म (सुवर्ण संधि) और भूलोक (सुवर्णभूमि) से है। गुरुदिश मार्ग से सहज अभ्यास से आज्ञाचक्र में त्रिवेणी संगम (इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना के मिलन से) होता। जो सदा ही इस प्रकाश में स्नान करता है। उसे गंगा, यमुना, पुष्कर से क्या प्रयोजन? असली तीर्थ ये है, इतना बड़ा तीर्थ आपके अंदर हैं, कि आप सबको पार पहुंचा सकते हैं।

- यद्यपि ज्योति अंदर है। लेकिन उसको हम जान नहीं पाते, देख नहीं पाते, जन्म-जन्मांतर से। एवं इस जन्म के हमारे कार्य, हमारे जो संकल्प हैं,जगत के इतने प्रगाढ़। इतने डूबे हुए हैं, नाना प्रकार के विक्षेप के कारण वो कर नहीं पाता। जिसको हम बाह्य,संकल्प,ये करना,वो करना,नहीं जाएंगे तो ये होगा। ये हमारे नित्य संस्कार नित्य करने के। जिसको हम कर्तव्य कहते हैं। बाह्यजगत में, वो हमको अंदर घुसने नहीं देते, इसलिए इसको जड़ कहा, ये सब बौद्धिक है।निरोध इसके आगे का विषय है।ये अभ्यास करते-करते होता है।अभ्यास और वैराग्य, माने विशिष्ट हैं ये।प्रकार सबके भिन्न है,लेकिन एक ही सत है। कोई भी कार्य

में जब तक रंगेगें नहीं, तब तक आत्मसात तो होगा ही नहीं।जब तक आत्मसात नहीं होगा, तब तक तो आपकी शक्ति बढ़ेगी नहीं। वो, विकसित होगी नहीं। तो योगाभ्यास और कुछ भी नहीं।तो रंग जाना चाहिए। बुद्धि आत्मा के योग से सूक्ष्मता को प्राप्त होती है। बुद्धि की सूक्ष्मता की सीमा (बुद्धि शुद्धि से बुद्धि बुद्धि न रहे, आत्मवत, सम्भवतः) साक्षात्कार है। वह सर्वव्यापक है,सर्वत्र है,सर्व शक्तिमान है।ये सब परस्पर विरोधी हैं।(अतः) उसको अद्‌भुत कहा गया । सत माने कान्सट्रक्टिव। लाभ अपने लिये।समाज के लिए भी।राष्ट्र के लिए भी।जग के लिए भी।लाभकर हो वो कर्म।

- आत्म ज्योति का जो है, उसका थोड़ा भी प्रकाश बुद्धि में आ जाय तो क्या? कौन सा भय है?

  जीवन मरण का, जीविका की चिंता है। हमको कोई बन्धन नहीं होना, मुक्त / स्वतंत्र रहना चाहिए।

  इस प्रकार से जीवन मरण (उद्धार)कुछ नहीं होना चाहिए और बस मगन रहें। और जीविका (पालन पोषण) की कोई चिंता भी न रहें , रक्षा सुरक्षा की कोई चिंता नहीं ।

  तीन ही तो चिंता हैं। मनुष्य के पीछे, इन तीनों (पालन, उद्धार, रक्षा सम्भवतः) चिंताओं से जो मुक्त है, वो है मुक्त।

  आत्मा अपने आप को मुक्त कर लेता है । और जो सारे विकार है, आपके मन में, बुद्धि में, ये ही सब (विकार) गुण हो जाते हैं। और यही गुण आपकी शक्ति है।

- अभी आप सोचते हैं कुछ बनता नहीं कुछ होता नहीं,

  तब (थोड़ा भी आत्म ज्योति का प्रकाश का आ जाते हुए, उत्कट इच्छा हो और परमपद प्राप्ति हेतु चल पड़ा, प्रथम प्राथमिकता) न कुछ करते हुए, न सोचते हुए, अपने आप सब होता है।

  ये जो निष्काम कर्म है उस पर जब हम दृढ़ हो जाते हैं। बिना सतगुरु के, बिना सत पुरुष के नहीं होता। अभि माने आंतरिक । वो जो कुछ क्रिया सक्रिय होकर करता है। बिना बोले, बिना चाले, रात और दिन, उसके मुंह से वो निकलते रहता है। वो कार्य करता है, तब भी निकलते रहता है। वह व्यसनी हो जाता है, करते करते उसका धर्म बन जाता है। माने यह कर्म रूप धारण कर अटल हो जाता है।

  वो निश्चल हो जाता है, जो चलायमान है हममें। बुद्धि जिससे सारे कार्य, हमारे भौतिक होते रहते हैं। और उधर से वापस नहीं आते । जब (बुद्धि) उस कर्म से धर्म रूप बन जाये। धर्म शब्द-यह कर्म है।

  एक सत पहले था, सबके आगे वही था। बाकी कुछ नहीं था। उसे सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वत्र और सर्व शक्तिमान कहा गया है। वो सत सबसे पहले, जिसने विश्व को उत्पन्न करके, सबको अपने में धारण किया।

  ज्ञान म्हणजे आत्मज्ञान । बाकी सर्व ज्ञान, अज्ञान आहे-रामदासजी ने कहा है। ये लौकिक है । ये उपजीविका के लिए है, रहने के लिए है। आज हमारे माता-पिता पेट भरने की खाली विद्या सिखाते हैं। बाकी और कुछ नहीं।

  तो अभय होने के लिए एक ही पद्धति है, पहावे आपणासि आपण । यही निष्काम कर्म है। यही भक्ति है और यही ज्ञान है।

आप में जो आत्मा है वो है शक्ति । वो शक्ति ही सब कार्य करती है। वो शक्ति सर्वज्ञ, सर्वत्र ओर पूर्ण है। अपने आप मे, वही आपके भीतर है। आत्म शक्ति और वही दिव्य शक्ति है।

हम ही हमारे सुख-दुःख के जन्म-मरण के जो कुछ हम करते हैं, उसके उत्तरदायी है। स्वयं के लिए जिम्मेदार हैं। मनुष्य स्वयं अपना चरित्र और भाग्य बना सकता है।

दूसरों पर आरोप करना। बचो, भागो उसका नाम है, माने दोष के सिवाय हमारे पास कुछ भी नहीं है। उसके छुपाने के लिए नाना जन्म लेते चले आ रहे हैं। फिर भी हमें बोध नहीं हो रहा है। औरों पर मढ़ देंगे और अपने आप को बचा लेंगे। दोष को देखेंगें तो उसका परिणाम होकर रहेगा। गुण तो दिखता नहीं अगर गुण दिखने लग जाय तो आप धर्मात्मा हो जाएंगे।

एक-एक सेकंड तो हम जा रहे हैं। जहां जन्म मरण निश्चित है हमारे कर्मों से । वो जीवन कोई जीवन है।

हमने कर दिया सरेंडर, आत्म समर्पण कर दिया । फिर क्या चिंता है? ये विचार ये तर्क समाप्त हो जाना चाहिए कि वह यहां नहीं, वहां है। जब वो सर्वज्ञ है। सब जानता है, सर्वत्र है, सर्वव्यापक है, सब जगह है । सर्वशक्तिमान है। अंदर बाहर सब जगह है, तो हमें चिंता किस बात की है? और कहाँ जायें उसे ढूंढने के लिए? सबके अंदर है माने सबको उत्पन्न कर, धारण कर, अपने आपको रिप्लेस करता है । और भी सबके बाहर है। सबको निगल जाता है।

।। कड़ी अनासक्ति के साथ आत्मानुंसंधान ।।

- मैं इतना देखा हूँ कि मनुष्य,चर्चा राम की करेंगे,काम करेंगे दाम के लिए।और रात को बगल में लेकर कामिनी के इच्छा और अपनी इच्छा के कारण करेंगे।और अपना सारा जीवन ये तीन विषय में-१,लेक्चरबाजी। २,शरीर को बेचना रोटी के लिए। ३,और जिसको ऊपर चढ़ाना है।उसे कुवाँ में पानी भरना है।ये तीन में आज तक अधिकतर पाया हूँ।अभी तक कोई आत्माराम का अनुभव वाला व्यक्ति नहीं मिला।मेरे दृष्टिकोण से,ये लोग बदनामी करते हैं। कनक कांता, कनक कांता,पैसा और औरत। ऐसा जो घृणा-घृणा दृष्टि से, हमको ये जँचता नहीं। हमारे दृष्टिकोण से,मैं और तू ये न रहे। ये संकल्प होना चाहिए।मर जाएंगे लेकिन छोड़ेंगे नहीं,तब वो चेला, चेला, शिष्य है। वरना वो ठग है, ऐसे ठग हजारों हमारे हैं। हमको कोई नहीं मिले। सब धोखा देने वाले मिले। यहां विद्या काम नहीं देती,न पौरुष काम देता है। भोगो, भोगना ही पड़ता है, इसके सिवाय वह कटता नहीं है। अनेक जन्मों के संचित कर्म और वर्तमान कर्मोंदोनों के मिश्रण के फल है। आप किसी पर दोषारोपण नहीं कर सकते हो।तुमको अधिकार नहीं है। संचित कर्मों व वर्तमान कर्मों के मिश्रण का फल ही दुख है। वह तुम्हें मन से भोगना ही होगा।आनन्द हो।आनन्द हो। सत क्या है? डिविनिटी।डिवाइन पावर, क्या है? वह सत।आदि में भी वहीं है।और सबके अंत में भी वही है।जैसा है वैसा ही रहेगा।बुद्धि में अपने आपको प्रकाशित करके,संसार को चला रहा है।कितना कुशल है,वह ईश्वर।संसार को चलाने वाला कितना कुशल है।ऐसे ईश्वर की मैंने शरण ली है।मैं शादी किया हूँ।मेरे पास कुछ नहीं था,कैसे चलेगा?लेकिन चिंता दूर हो गयी।और अपने आप सब कारोबार

होने लग गया।पांच रुपये लेकर डॉ भारती के पास से विदा हुआ था।और अपने आप सब दुनिया हमारा काम करने लग गई।और आज तक दुनिया हमारा कार्य कर रही है। वह कौन करता है?वह भगवान श्रीकृष्ण आज भी हमारे साथ है। और वह कर रहा है,मैं कुछ नहीं करता हूँ।हरिओम,हरिओम।न दिखता है।न समझ में आता है।न उसका आदि न अंत है।लेकिन आप उसको एक रूप दे सकते हैं।तुम्हारे बिग थाट के सांचे में आ सकता है।तो हमारा मन रूपी साँचा,हमारी बुद्धि रूपी साँचा।जो अहं साँचा है।वह जो संचित है।वह जो बिग थाट है जिसे हम ज्योति कहते हैं।वो ज्योति इतनी फैलती है।कि सारा विश्व,सारा जग उससे भर जाता है।सारा ब्रम्हांड भर जाता है, ज्योति से। यह जो बिग थाट है, बड़ा आनन्द है। जैसे जैसे ज्योति फैलती है, वैसे वैसे भूत भविष्य सब जान लेते हैं।आत्मा के ध्यान में अपने को बिल्कुल डुबो देना चाहिए, तब निश्चित ही सफलता मिलेगी।मन को लौकिक पदार्थों में और ऐसी बातों में,जिसका सम्बन्ध दूसरों से हैं, भटकने नहीं देना चाहिए। मनुष्य को दूसरों से, चाहे वे कितने भी बुरे क्यों न हो, घृणा नहीं करनी चाहिए। कामना और घृणा-दोनों से बचना चाहिए। मनुष्य जो कुछ दूसरों को देता है, वह सब अपने को ही देता है। यह सत्य यदि समझ में आ जाय तो क्या कोई औरों को कोई भी चीज देने से इंकार करेगा?विचार जैसे ही मन में उठे,उन्हें इस छानबीन द्वारा(मैं कौन हूँ?आत्मा)तत्काल वहीं उनके मूल स्रोत पर ही नष्ट कर देना चाहिए। जब तक शत्रु किले के भीतर है।वे आक्रमण करते ही रहेंगे।यदि उन्हें सिर उठाते ही नष्ट कर दिया जाय तो किला हमारे हाथ में आ जाएगा।विचारों को,जैसे ही वे उठे,उनके मूल स्रोत पर ही नष्ट कर देना अनासक्ति है। जिस प्रकार गोताखोर अपनी

कमर में पत्थर बांधकर समुद्र की तह में उतरता है,और वहां से मोती ले लेता है।उसी प्रकार हमें कड़ी अनासक्ति के साथ भीतर गोता लगाना चाहिए, और आत्मा का मोती ले लेना चाहिए।ये जो सिद्ध पुरुष होते हैं, उनका औरा रहता है। याने वलय रहता है,उसे भाव मंडल कहा है।वो जो भाव मंडल है, वो जितने क्षेत्र में फैला रहता है।उस क्षेत्र के अंदर जो कोई भी आता है,उसको मिलता है।क्या मिलता है?शांति।तभी तो वो बार-बार आता है। ये वलय काम करते हैं, याने वलय द्वारा क्रिया होती है। महापुरुष ने कुछ बोला नहीं, सिद्ध पुरुष ने कुछ बोला नहीं, लेकिन काम हो गया। वलय से काम हो गया, वलय से प्रभाव पड़ता है। इसलिए वो करते हुए कुछ नहीं करता, और नहीं करते हुए सब कुछ करता है। यही पैराडॉक्स है, परस्पर विरोधी है,यही कांट्रेडिक्टरी है। इसलिए कोई समझता नहीं। ये है,प्रभावोकिंचमुच्च्यते।ये जो प्रभाव है, इससे क्या नहीं हो सकता? कर्तुम अकर्तुम अन्यथा कर्तुम ससक्तः। कर्तुम अकर्तुम-करते हुए भी नहीं करता,और अन्यथा कर्तुम-याने क्या नहीं कर सकता? वही तो है कर्ता।प्रकृति ही विराट स्वरूप है, और हम कृति होने के नाते, प्रकृति के अंग होने के नाते, उसी में हैं। इसलिए कर्ता कौन है?वही जो शक्ति है, जो प्रभाव है। भाव का प्रभाव है, भाव मंडल का प्रभाव है, वही तो है कर्ता। यदि वलय द्वारा क्रिया न होती, तो उसका परिणाम कैसा होता? वलय प्रवेश किया, घुसा उसमें तो क्रिया हुई, इसलिए प्रकृति की क्रिया का नाम धर्म है।इसलिए तुम कुछ नहीं करते।ये प्रकृति है। उसकी सहायक मिल जाती है।ये जो प्रकृति है वो ले जाती है।हम नहीं जाते।कृष्ण ने अर्जुन से कहा-देख मेरा विराट स्वरूप अपने सम्बन्धियों और गुरुजनों को तुम नहीं मारोगे। उन्हें तो हम पहले ही मार चुके हैं।

इसलिए ये वाक्य कितना अच्छा है।गॉड इस वर्ब। प्रक्रिया का नाम धर्म है।धर्म माने नियम। वो (प्रकृति)अपने नियम के अनुसार, नियमों के अंतर्गत कार्य करती है, तुम्हारे बोलने से नहीं करती। वो तुम्हारे हाथ में नहीं है। एक तालाब में तुम ढेला डालते हो,तो उससे वलय बनते हैं।वह किस जीव को लगती है, किनारे तक जाती है या नहीं, कितने लोगों को हानि होती है, ये तुम्हारे वश में नहीं। तुमने बस ढेला मारा।वहां वो गया या नहीं, बस तुम्हें सिर्फ यह देखना है, तरंगे कहाँ तक जाती हैं, क्या होता है, वो नहीं। तुमने जो किया वो देखो। क्या होने वाला है, ये देखना तुम्हारा काम नहीं है। तुम्हें जो देखना है वो देखते नहीं,और जो नहीं देखना है, वो देखते हो। उस औरा से क्या नहीं हो सकता? उससे बड़ा और कोई नहीं है।वो महान है।उसे अनादि और अनन्त कहा गया। हम कुछ करें या न करें,परन्तु हमारे भीतर जो शक्ति है, कुंडलिनी शक्ति। महाशक्ति। दिव्यशक्ति। वो सदैव सक्रिय है, हम जागें या सोयें, वो अपना काम निरन्तर करती है। आप अपने को महान बना सकते हैं। कैसे?योग से।बुद्धि, आत्मयोग से सूक्ष्मता को प्राप्त होती है।और बुद्धि की सूक्ष्मता की सीमा साक्षात्कार है। विशुद्धाक्ष ही बैकुंठ है। यहाँ पहुँचने पर अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों की पूर्ति स्वयमेव होने लगती है।अब साधक के ऊपर निर्भर है कि ऊपर जाएं या इसी स्थिति में मगन रहे।सत्यलोक की प्राप्ति करे। या पुनः वासनाओं के प्रलोभन में जाकर नरक भोग स्वीकार करे। सन्यास का अर्थ है, इच्छारहित होने का। मन पर कोई परिणाम नहीं (चाय मिली तो पी लिया, नहीं तो कोई बात नहीं)। जीवित रहते हुए आप, इच्छारहित होकर शेष आयु व्यतीत करे। यही साम्यावस्था है। यह अवस्था प्राप्त करने का अभ्यास करना है।इस मार्ग का अवलम्बन कर

स्वयं तथा समाज का कल्याण करते हैं।ऐसे लोग ही बिगडों को बनाने वाले हैं।और स्वयं मगन रहते हैं।अतः आप चाहें इस बैकुंठ में स्थाई रूप में रहें।या वासना का शिकार हो जाएं।पँचमभूमिका में पहुँचना स्वधाम है। बैकुंठ की प्राप्ति होने पर बैकुंठ लोक प्राप्त हो गया।इसमें बेफिक्र से रहकर।मरते रहो।या आगे बढ़ो। ये जो साधक हैं,जिनकी भूमिका दृढ़ हो चुकी हैं।उनके केवल प्रभाव मात्र से होता है।वो कुछ करता धरता नहीं है। ये कुछ न करते हुए सब करते हैं।और बहुत कुछ करते हुए भी,नहीं करते।इन्हें समर्थ कहा गया है। आपको कैटेलिस्ट लाइक जीवन व्यतीत करना चाहिए।आपका ये जो प्रभाव है।अपने आप तारीफ है।योगाभ्यास के दौरान,कुंडलिनी जागरण करते करते पॉवर्स आने लगते हैं।यम की प्राप्ति हो जायेगी।यम पांच कहे गये हैं।अहिँसा(सहज बैरी भी उनके औरा के प्रभाव से मित्रवत व्यवहार करने लगते हैं।औरा के बाहर जाने पर फिर बैरी हो जाते हैं।)सत्य,अस्तेय,ब्रम्हचर्य(मन बुद्धि ब्रम्ह तत्व में लीन परिणामतःऊर्ध्वरेतस)अपरिग्रह(कहीं से कुछ भी ग्रहण न करना,कल के लिए कुछ नहीं)।गुरुजी की पद्धति से रहने बैठ जाने पर-जितने भोग हैं।कब आते हैं।कब जाते हैं।पता नहीं चलता है। भक्ति हो तो इस तरह से,दे दिया माने दे दिया।फिर गुरुजी जाने हम नहीं जानते।ये नहीं भूलना चाहिए।इस प्रकार से निर्भर रहना चाहिए।न तपस्या,न त्याग,खाली समझ के रहना चाहिए।मैं जैसा हूँ,वही मैं(आपसे भी सम्भवतः)चाहता हूँ।तुम इंद्रियों के वश में हो,उसी को जीतना है।इंद्रियों के जो देवता हैं उसे जीतना है।सुषुम्ना खुलने पर अभ्यास से आप जैसा सोचते हैं।वैसा करते हैं।और परिणाम होता है।सुषुम्ना खोल लेने पर परलोक की प्राप्ति सम्भव है।आत्मा की शक्ति सुषुम्ना में खेलती रहती

है।आत्मा का गुण ऊपर की ओर जाना है।सत्य के जरिये त्रिगुणमय संसार वश में आ जाता है।विकार रूपी कार्य समाप्त हो जाते हैं।किसी प्रकार भय जो शाश्वत मार्ग से उसे अलग करता है।वो दूर हो जाता है।सुख-दुःख दोनों एक है।सत्य एक, आत्मा है।तन-मन मिलकर जो विकार है। ये विकार बाहर है, संस्कार जो, बंधन जो हैं,सब, मन है।आत्मा ही शक्ति है, वही सब कर रही है। मैं- आत्मा हूँ, इसे हमने छोड़ दिया। मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ।हमें अपने पर भरोसा नहीं। निष्काम कार्य में जब आप रत होंगे। तब प्रकृति उसकी पूर्ण व्यवस्था यथासंभव या समय आवश्यकतानुसार करती है। या करा देती है। ये शरीर एक-एक सेकंड काल के गाल में जा रहा है।भय के सिवाय कुछ नहीं।इत्थम जन्म निर्थतकं।सार्थक कब होगा?विष्णु मार्ग माने सुषुम्ना।इससे घुसने के बाद वो विष्णु(व्यापक)बन गया।जब आप याद करेंगे,तो ज्योति में आप आ जाते हैं।तो ज्योति जहाँ तक फैलती है,वहां तक व्यापकत्व सिद्ध होता है।एक दिन ऐसा आता है,कि सम्पूर्ण ब्रम्हांड में अंदर बाहर,सब जगह आप पहुंच जाते हैं।ज्योति जो है, फैलती है,पसरती है।उस आत्मा के साथ भी हमारी बुद्धि और मन फैलता और पसरता है।मन धारण करता है और बुद्धि अनुभव करती है।ऐसा हमारा मन फैलता जाता है।आत्मा के साथ।अभ्यास में,ये लाभ होता है।आत्मानुसंधान से।और इसी को भक्ति कहा गया। मौन हो जाइये। हृदय ज्ञान किरणों से भर जायेगा। सच्चिदानंद रूपोअहं,से सामर्थ्यवान होने का भाव स्वयं जाग्रत होगा। और कार्य होकर रहेगा।साधना द्वारा,अभ्यास से बुद्धि सामर्थ्य को बढ़ाना है।अपने आपको सामर्थ्यवान बनाना है।जैसी धारणा रहेगी वैसी सिद्धि होगी।प्रयत्न करो और इच्छित वस्तु प्राप्त करो।मात्र ईश्वराधीन रहने से

कुछ नहीं मिलता।वासना से रहित होओ।आत्मा में स्थिर रहो।हर मनुष्य को अपने आपमें रहना चाहिए।यह जग उस सत्ता से ओत-प्रोत है,यही प्रेम है।तभी शुद्ध प्रेम होता है।आत्मानुसंधान जो है, अखण्ड, नित्य, अनब्रेकेबल होने से ये जो तीन ताप हैं।दूर हो जाते हैं। निष्काम कर्म अखण्ड होने पर,पूर्व के संस्कार नष्ट हो जायेंगे।माने सब कुछ भूल गया।न देह की सुध है।न जग की सुध है।न आने-जाने,न सोने की,न जागने की माने किसी प्रकार की सुध नहीं है।आत्मा प्राणों समेत जैसे ही पिनियल बॉडी में प्रवेश किया।वैसे ही प्रकाश आ जाता है।वह निराकार आत्मा।साकार,ज्योति के रूप में,साकार हो जाती है।धर्म किये धन न घटे,जो सहाय रघुवीर।आत्मा में रहकर जो प्रेरित करता है।उस प्रेरणा को धारण करके,जब कार्य करता है।तब।तुलसी पंछिन के पिये घटे न सरिता नीर।वस्तु बनी है,वह हमी तो है।उसे वस्तु न समझकर,आत्मा समझने पर।उसका मन पर प्रभाव नहीं पड़ता है।यही सर्व-संकल्प के त्याग का रहस्य है।ये है त्याग आश्रम कि पति-पत्नी दोनों एक साथ रहते हैं।लेकिन उनका व्रत ये है कि,मैत्री है दोनों में।भोग के त्याग से ही सारी चिंताएं समाप्त होती हैं।नाना विद्या-कला में वो पारंगत हो कोई जाने न उसको।मैं फला हूँ, में फला हूँ।वो तो सब अहंकार है।जब आत्मा सर्वज्ञ है।सर्वत्र है।तब चिंता किस बात की?सब कुछ तुम्हारे गुरुजी पर छोड़ दो। गुरुजी तुम्हारे रक्षक हैं, सेवक हैं। वो महाशक्ति हैं। वो सर्व-व्यापक हैं। सर्व-शक्तिमान हैं।और सर्वत्र हैं। इस चीज को भूल गए।और बाहर ही बाहर भटक रहे हैं।अगर आपका स्मरण बराबर है।तो वो जो नख है,मणिवत चमक उठते है।स्फटिक मणि की तरह, वो दसों नख हो जाते हैं।तब जाकर के मन के ग्रंथि(संशय, संदेह,शंका)जो हैं।जो कट-मर रहे

हैं।तब वो ग्रंथि मिट जाती है।जैसे पानी के नीचे काई रहता है।क्लियर वाटर है।तो नीचे सब चीज दिखता है।ऐसे इस दुनिया में रहकर या बैठे-बैठे सारी दुनिया,सब कुछ।बैठे-बैठे उसमें दिखाई देने लग जाते हैं।वही योगी(योगिनी)हो जाता(जाती) है।ये आत्मयोग हो गया।जहां आत्मयोग हुआ।वो निश्चिन्त हुआ।तन्मय।करने से क्या होता है?वहां मैं नहीं रहता है।फिर चटपट दर्शन हो जाता है।इस प्रकार जो सौंप देता है।एक के सिवाय छवि या विचार ना आये।इस प्रकार जो उपासना रत रहता है।ऐसा जो पंगुवत भक्त है।गूंगा है,बहरा है।नित्य-युक्त सतत योग है।जो जो परिणाम है,हो जाता है।मैं उसकी सेवा करता हूँ।उसका प्रमेय व सिद्धान्त हो गया है।वो व्यक्ति है।वही सिद्ध है।ये दर्शन होने से अभाव दूर हो जाते हैं।भाव में आ जाते हैं।स्थायी होने पर तब सर्व गुण-सम्पन्न।ये आनन्द है,ये सुख है।नमः माने मैं नहीं।मैं देह नहीं।आत्मा हूँ।आज्ञाचक्र में जहाँ महाकारण देह होती है।जहाँ शुद्ध सतोगुण उत्पन्न होता है।इसमें दुःख नहीं होता है।सुख-दुःख कुछ भी हो वो मस्त रहता है।आपकी बुद्धि सम्यक शुद्ध हो जाती है।आप अभय हो जाते हैं।केशव।कोशव,कौन शव?जिसे आत्म साक्षात्कार नहीं है।वह शव है। हम क्या करते हैं।मूल में पानी न डालकर,पत्ते में पानी डालते हैं।मूल में पानी डालने से सब जगह पहुंच जाता है।ऐसी स्थिति आ जाती है कि कर्म नहीं बनता।भाग्य नहीं बनता।हमारे परिवार में ऐसे लोग है।अपनी बुद्धि को आत्मा में समाहित कर देना,ये समाधि है।हमारा जो कार्य है।अब वो भारतीय लोगों को नहीं हैं। प्रत्येक स्थिति में भगवान के मंगलमय स्वरूप को देखो।इष्ट पर कायम रहना है।मुझे उस पर भरोसा है।पैदा होने से पहले वो भोजन की व्यवस्था कर देता है।मैटर ही कन्वर्ट होकर एनर्जी बना।एनर्जी और

लाइट।ये दोनों द्वंद कहा गया,द्वैताद्वैत कहा गया।फोटोन में ये एनर्जी और लाइट दोनों है।धर्म। वो जिससे महाकारण शरीर या ज्योतिर्मय पिंड जो परम है, प्राप्त कर लेते हैं।मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ।मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ।यह रात है,यह दिन है।मैं यह,वह हूँ।अपने को आरोपी करो।गुनहगार बनो और भोगो।अभ्यास और कोई चीज नहीं।इन आरोपों को काटो।दूर करो।"आत्मा" सर्वव्यापक है।इस देह में वो परमपुरुष है।तो परमात्मा माने आपमें जो है वो परमात्मा है।मेन इस डिवाइन एसेंस।जैसे विराट ब्रम्ह है।

- शंकर। पशुपति। दसों इन्द्रियों पर मन, बुद्धि, चित्त पर, जिसका अधिकार है। मन बुद्धि में विमल, निर्मल, निर्दोष होना,छल कपट छिद्र का न होना-ये कल्याण है। कल्याण माने शिव। अपने चरित्र में व्यवहार में जितने लघु हो सकते हैं, उतना ही अच्छा है। अंतिम श्वास पर्यन्त आचरण में रहें। अभ्यास में रहें। अगर हम स्वयं आचरण नहीं करते तो दूसरों को कहने का अधिकार नहीं है। अन्तररहित अभ्यास से, जन्म जन्मान्तरों तक चलने वाले अभ्यास से, इसे सतत बनाये रखने से, चरित्र दोषों से मुक्त होता है। सारा आचरण आपका समाप्त हो गया अगर घृणा नहीं गई तो। घृणा जाती है, ये अभ्यास से होता है। योग से बुद्धि समर्थ होती है अर्थात सब बोध होता है। सोना, उठना, बैठना ये सब महाशक्ति के द्वारा होता है। यह महाशक्ति आत्मा ही वह बिंदु है जो आज्ञाचक्र में है।इसलिए कर्ता कौन है, वही जो शक्ति है जो करते हुए भी कुछ नहीं करता और नही करते हुए भी सब कुछ करता है।, उससे बड़ा और कोई नहीं, वो महान है, इसलिए उसे अनादि और अनन्त कहा गया। हमारे

अंदर वो शक्ति है जो निरन्तर अपना काम वो करती रहती है।, दृढ़ विश्वास चाहिए कि वो अंदर बाहर है, ऐसा मानकर चलने से ही लाभ होगा। इसके बाद प्रकाश भी नहीं रहेगा। शरीर भी नहीं रहेगा। स्वरूपशुन्यम, ये ज्योति दिखती है, वो भी नहीं रहेगी कुछ भी नहीं रहेगा। यही समाधि है।

।। निष्ठया शाष्ठर्य ।।

- मेरा जो सिद्धान्त है। वो सिद्धान्त है-हमें सब कुछ चाहिए। हमारी सृष्टि है-शाष्ठर्य। हमको ये सृष्टि चाहिए। निष्ठया शाष्ठर्य, शाष्ठर्य।हमारा जो इष्ट है। क्या इष्ट है? हमको, धन-दौलत, घर-द्वार मोटर- गाड़ी, बाल-बच्चे और सामर्थ्य। आत्मदर्शन संसार में- यही सम्यक सार है। संसार में।इसलिए हमारा जो मार्ग है, वो ध्यानयोग है। निष्काम कर्म। और कर्मरहित हो जाना। इसलिए हमारी जो मुक्ति है वो शाष्ठर्य।, छः प्रकार की मुक्ति कहा गया है, सिद्धान्त बताया गया है। छः प्रकार के सिद्धांत है। सिद्धान्त कौन से है? द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शाष्ठर्य और कैवल्य। विषया शाष्ठर्य इष्ट, विष माने इष्ट। शाष्ठर्य माने। षा तो, इष्ट है। सिर्फ इसका रहस्य जानना है, रहस्य जानने के बाद। योग मार्ग में कृष्ण के जैसा आदर्श कौन हो सकता है? दुनियाँ में, ये है आप। इसलिए मेरा सिद्धान्त शाष्ठर्य। संसार में रहकर बाल बच्चों के बीच रहकर सब कार्य करते हुए।अमृत टपकता है । वो योगी है, गुप्त रहता है, ये मेरा सिद्धान्त है। सत्य माने कर्म करना । सत्य माने रचना। सत है। नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः। वो स्पष्टीकरण रख दिया गया है। प्रकार दो है, या तो स्वयं पैरों पर खड़े

होओ। या आधार हो। ईश्वर आधार हो, रामाधार हो । आत्माआधार हो। जो कोई हो। ईश्वरार्पण मस्तु, ब्रम्हार्पन मस्तु। जो अंदर जो है बोलने को लगाता है, उसी प्राण में है सब। लेकिन बुद्धि आत्मिक बुद्धि चाहिए। ये वैषयिक बुद्धि है। आत्मिक बुद्धि नहीं। तब वो बद्ध जीव मुक्ति की ओर बढ़ता है। सर्च आफ्टर ट्रूथ ये मेरा सिद्धान्त है। और प्रिंसिपल सिद्धान्त शाष्ठर्य है। बोलने से नहीं होता।

।। त्रिवेणी संगम में स्नान ।।

- स्व-स्वरूप का अनुसन्धान। रिसर्च।ये कभी नहीं छोड़ना है। उसको देखना और साक्षात्कार करना है। यह सहज होना चाहिए। सवेरे उठकर नित्य कर्म से निवृत होकर दस बीस मिनट। जैसा बताया गया है, वैसा खाली बैठना है, चुपचाप। अपने आप होने दो जो होता है। केवल चित्त को मन को एक देश में बांधना है। अपनी भूमिका दृढ़ करना है। अभ्यास करके जिस समय प्राण तप जाता है। सुषुम्ना में प्रवेश (पश्चिम मार्ग से) करता है। कभी चन्द्रमा जैसा कभी सूर्य जैसा ज्योति दर्शन होने लगता है। ऐसा होते होते संघर्ष करते करते आप ऊपर बढ़ते चले जाते है। फिर मृत्यु जैसा मालूम पड़ता है, कुछ नहीं होता ऊपर चला जाता है। सबका अलग अलग है किसी को बहुत कष्ट होता है। दोष प्रक्षालन हो जाता है। ये पद्धति है- याने बाहर के श्वास प्रश्वास बन्द हो जाते हैं। फिर भी आप जीवित रहते हैं। यही श्वास प्रश्वास बन्द होकर-प्राण ऐसी सिंगल किरण को, डायरेक्ट करके सेंट्रल केनाल (सुषुम्ना) में ले जाते है। तो कभी सूर्य ज्योति दिखाई देती है। हमारा वृहत मस्तिष्क है-जिसका व्यास दस अंगुल है । त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्-आपको वहां जाना है। इसमें ब्रम्हरन्ध्र में वहीं प्राण पश्चिममार्ग (रीढ़ की हड्डी की ओर से) से ले जा करके-मृत्यु को

लांघकर, आज्ञाचक्र का लंघन करके, जब प्राण सहस्त्रार में जाते है। उस परम को जब हम वहां स्थापित करते है-तब वो ज्योति सारे विश्व में फैल जाती है। जैसा बताया गया वैसा बिना शंका संशय के करेंगे तो आप में ये लक्षण उत्पन्न होंगे-हाथ पैर में झटके आना, पसीना आना, मूर्छा आना। ज्योति भी आ सकती है। अभ्यास करते रहे, नहीं छोड़े तब। सुषुम्ना में प्राण प्रवेश होने पर बाहर का श्वास प्रश्वास शक्ति के रूप में कभी चन्द्रमा कभी सूर्य बन जाता है। और श्वास प्रश्वास के अभाव में भी शरीर बना रहता है। जैसा रखो वैसा रहता है गिरता भी नहीं सड़ता भी नहीं, फिर चाहे कितने बरस रखिये आप। जब तक आप सुषुम्ना में हैं, काल मंडराता रहेगा, पर कभी आपको छू नहीं सकता।, ये सारे लक्षण उत्पन्न होते है। दिव्य दर्शन होते है। दिव्य लोक में पहुंचे हुए जो संत महात्मा अवतार हैं, वो सब मिलते है। उनसे बातचीत होती है, समाधान होता है। ऐसी जो महाशक्ति है जो स्वयं अनुशासित है जिससे सारा जग अनुशासित है। आत्मा-तम रज सत सबसे परे। उसका आदित्य सा वर्ण है। ये लक्ष्य में लाना है। ये आदेश है। ये गोल / गोला ध्यान में बने रहे-ये अभ्यास करके प्राप्त कर लेना है। अभ्यास से केवल प्राण को सुषुम्ना मार्ग से योग के बल से ले जाना है। योग जो इसी शरीर से होता है। बलपूर्वक आज्ञा चक्र में ले जाकर रख देना। ये जो प्राण है, वहां उसे स्थापित कर देने पर। वो जो पुरुष है- दिव्यत्व को प्राप्त हो जाता है। तब स्थिर होता है। उसकी बुद्धि इतनी प्रखर हो जाती है, कि भूत-भविष्य, आदि का ज्ञान हो जाता है, वो कालजित हो जाता है। तब उसको एस्ट्रल बॉडी प्राप्त होती है। जिसे इलुमिनेटिंग बॉडी भी कहते हैं। दुनिया कहेगी / डॉक्टर कहेगा वो मर गया। लेकिन वो मरता नहीं। ये हो गई देह स्थिति।अब रही रूपस्थिति।

रूप=ज्योति। वो ज्योति इतनी प्रचण्ड हो जाती है, कि अखण्ड मण्डलाकार, लाइट इतनी अधिक बढ़ जाती है कि सारा लाइट ही लाइट हो जाता है। व्यक्ति लाइट से भर जाता है।,तो गुरुदिश मार्ग से चुपचाप मौन होकर अभ्यास कीजिये। अंदर एक मार्ग है-सुषुम्ना में वो रास्ता खोलना पड़ता है। शरण माने जितना अधिक से अधिक दे दिया गया। कम से कम, बीस मिनट, दस मिनट, पांच मिनट, दो मिनट तो करो। इससे अधिक तो चाहिए नहीं। ये अपनी आदत बना लो-ये धर्म है। धर्म याने धारणा करके जो सत्य (सुप्रिमसेल्फ / इंडिविसुलसेल्फ़ / अब्सलूट ट्रूथ) आपको मिला है। उस अब्सलूट ट्रूथ में आप इन्वाल्व हो जाइये। केवल बैठने से सब शुद्धता आ जाती है। जिसको बाह्य संवेदना शून्यत्व कहा गया है। इससे आप में गुण आ जाएंगे। बुद्धि जो विकारों से युक्त है-जैसे जैसे अन्तरमार्ग में घुसते जाएंगे वैसे वैसे ये गुण में बदलते चले जायेंगे। नाना प्रकार के सुख दुख जो सामने है वो बदल सकते है।आप डेस्टिनी को बदल सकते है। इसी जन्म में आप उसे मिटा सकते हैं। लेकिन निश्चय चाहिए दृढ़ता चाहिए। जितनी दृढ़ता तत्परता पूर्वक आप दूसरे कार्य करते है। उतनी तल्लीनता तन्मयता इसमें हो तो, बुद्धि में जो दोष दुर्गुण है, सब बदलकर गुण हो जाएंगे। देश काल से परे वो परमधाम है, वही परम पद है, वही सबका गुरु है, और वहां पहुंचने पर ही हम पाते है। बिना सतगुरु सत्पुरुष के वो मार्ग मिलता नहीं। वो महाशक्ति है। वो परम शक्ति है। परम धाम है-हम सबका। कृष्ण ने भी कहा-तद्धामं परमं मम। वो मेरा धाम है। वहां पहुंचने के बाद आज कृष्ण कृष्ण हैं। कृष्ण नाम आत्मा का है कर्ष शब्द है- जो खींच रखा है। उस एक सत को। जो पहले था, अभी है,आगे भी रहेगा।

- तो वो जो, चिंता मत करो कहता है, उसको साधु कहते हैं। वो वाला साधु,वो साधु नहीं है। साधु वो है। साधु का नाम बहुत है। साधना करता है वो साधु है । इसके आगे है। मैं नहीं जानता हूँ। ये है वो साधु जो कि ऐसे पीड़ितजनों के, दुःखीजनों के। जो जल रहे हैं , अब जा रहे हैं अब चले जायेंगे, देह पात हो जाएंगे, उसकी सहायता वो करता है। सहायक बन जाय, तो उसको साधु कहते हैं। तो तुकाराम ने अपने अभंग में बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है। अभी जो, आपने कहा मैं केवल देव नहीं हूँ। नाना प्रकार के आशा है (आशय है), नाना प्रकार के भय, काम, क्रोध सब कुछ है, हमारे में। जो आपने उच्च आसन दिया और आदर सम्मान दिया, लेकिन एक बात और भी है। कि गंगा बह रही है, ये गंगा है। ये गंगा वो गंगा यमुना सरस्वती जल में नहीं है। अगर आप छुड़ा देते हैं तो गंगा भी तो उसमें है। यहां ज्ञान, गंगा, यमुना, सरस्वती के रूप में। ये जो ज्ञान गंगा बह रही है, ये त्रिवेणी है। जो कोई इस संगम में स्नान करेगा, तो क्या होगा ? इडा सुषुम्नेशिवतीर्थकेस्मिन, ज्न्यानाम्बुभिर्केय ततः शरीरे; ब्रह्माम्वुभिस्नाति तयो सदायं, किं तस्य गांगेरपि पुष्करर्वा। ज्ञान क्या है? ये ज्ञान गंगा बह रही है। ईड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, नाम जिसको गंगा, यमुना, सरस्वती कहा गया है। ये त्रिवेणी संगम है। इस त्रिवेणी सङ्गम में, ज्ञानँ रूपी सत्पुरुष (सतगुरु) के द्वारा ये जो ज्ञान प्राप्त कर लिया। ये जो इस प्रकार से, स्नान करना चाहिए। इस प्रकार से ये स्नान करने के बाद, उसका फल है। सदा सर्वदा, नित्य समझकर के, समझ के कह रहा हूँ, अनुभव जो हमारे पास है। वो कर्तव्य है होना चाहिए। हमारी बुद्धि में बनी रहे। इस प्रकार से सत्पुरुष के द्वारा प्राप्त कर इसी शरीर में ये गंगा है । यही त्रिवेणी है। इस त्रिवेणी में, ब्रम्हां रूपी ,इस प्रकार से। आत्मानन्द

रूपी सागर में जो सदा स्नात है,स्नान करता रहता है सदा,स्नान किया है। उसको जो है। गंगा,यमुना,सरस्वती का क्या प्रयोजन है? याने कोई प्रयोजन नहीं है। ये गंगा,यमुना,सरस्वती में जो आप नहाते है,वहां तो कुछ भी नहीं मिलता।अभी उनने कहा न,भई ठीक है,गंगा जल है पवित्र है,एक कटोरी दे दो।उसमें है त्रिवेणी सङ्गम जल,ये ठीक है।तो इस प्रकार से स्नान जो करेगा, क्या कोई नाप जोख करेगा।तो तात्पर्य ये है,अनन्त शक्ति है । ज्ञानांम्बुज है,अनन्त है। इसलिए इसमें अनन्त मल रूप संसार में- ये सुखसागर है।आत्मानन्द रूपी सागर में अगर है वो,अगर तल्लीन हो जाय । तो आप गृहस्थ में रह करके भी आप समाज में आदर्श हो सकते है। और आप समाज का कारण,आपको समाज में उत्तम विषय ये हो सकता हैं। और आप लोग भी उसी में हो करके,और प्राप्त हो सकते हैं। बताया गया है कि-जब भगवान रामचन्द्र राज्य करते थे। जब न्याय को सुनाने बैठते थे।तब वो योगी लोग आजू बाजू में बैठते थे। और जितने जो हैं छुड़ाते थे मुकदमा । मुकदमा छुड़ाते थे। न्याय प्रक्रिया जो होती है।लोगों की शिकायतें दूर होकर के, लोग आते थे,जो उलाहना देते थे। लोग आते थे जो अपने, पीड़ा सुनाते थे। जिससे उससे, जिनसे वो तंग हो जाते थे।फिर जब आते थे,तो जो ऋषि मुनि लोग थे वहां, वो योगी थे । उन योगियों के विचार, उनके जो विचार हैं-सत, असत, विवेक बुद्धि वाले, वे लोग अपना मत सामने रखते थे। और मत रखने के बाद राजा रामचन्द्र जो हैं सद्बुद्धि का दर्शन करते थे। न्याय, सुनाते थे । योगी लोग जो थे, माने राजा जो है, ये योगियों के अनुशासन में, अनुशासित रहते थे। और ये जो लोग हैं, जो समाज में लोग हैं (प्रजा) ये राजा के अनुशासन में रहते थे। राजा के ये अनुशासित और योगियों से अनुशासित राजा। तब वो- राष्ट्र,

हितकर, सुखकर, लाभकर, तब फिर राज्य (राष्ट्र) जिसको रामराज्य कहे हैं। हो सकता है। ऐसा मेरी अल्प मति है, अल्प बुद्धि है। इसलिए आज की परिस्थिति जो है। ये साधु लोग, महंत लोग, बाबा लोग, इनको बाहर निकलना चाहिए। और धर्म जो है, इसका प्रचार होना चाहिए। और घर घर, ये मणि को पहुंचा देना चाहिए और प्रखर कर देना चाहिए। इस प्रकार से तब ये राष्ट्र का भला होगा। एक आदमी से नहीं होता, ये ठीक है, ऐसा कहते हैं। माने चैलेंज किया, ऐसा उन्होंने (सम्भवतः47 तक अंग्रेज शासन) कहा, याने चैलेंज है। मैं तो नहीं जानता ये चैलेंज, को स्वीकार किया हूँ। लेकिन आज जो हम निकले हैं जो मुझसे मिले हैं। हमारे आगे पीछे आप सब लोग है। कुछ न कुछ, इनलाइटमेंट होकर आपको कुछ न कुछ प्राप्त है। उस प्रकार से अवश्य ही उसमें परिवर्तन हुआ है। आपके चरित्र में हुआ है। आपके मानस में हुआ है, आपके समाज में हुआ है, आपके घर में हुआ है। आपके लौकिक पारलौकिक दोनों में परिवर्तन हुआ है, ऐसा हमारा मत है। मैं अपने आपमें, जो अनुभव करता हूँ,वही अनुभव वही अनुभूति आपको प्रकट है।आतिशय, ऐसे रूपाम ये है। जिससे गति की जाय। जिसकी गति से तन्हा है, अवश्य उसे सुरती प्राप्त होती है। सम्यक। सम है, सम्य गति। सम्यक माने पूर्णतया सब प्रकार से, बहुत विधि से, अनेक प्रकार से, वो जो गति हीन है। उस गति के कारण इस प्रकार से वो बना रखेगा। उसमें, अपने आपको गति रहित रखा है। हिलेगा नहीं डुलेगा नहीं अगर सचमुच । आपमें है वहां। तो वही साधक या वही व्यक्ति या वही मनुष्य, पार उतरता है। जो अपने आपको बिना हाथ, बिना पैर, बिना आंख, बिना कान, बिना वाणी और बिना विचार का जो होता है। वो पहले पहुंच जाता है। और बाकी जिनके पास मेरी ये

आंख है, मेरे पैर, मेरे हाथ है, मेरे कान है, नाक है। वो बहुत पीछे रह जाता है। तो जब तक वो मैं, जब तक अहं है, जिसको कहते हैं-मैं। जब तक वो अहंकार करता है।अहंकार-माने करना। मैं करता हूँ, मैं करता हूँ, मैं करता हूँ। मैं कहने वाला व्यक्ति, कभी भी आरोप संग है। सैकड़ों जन्म पीछे रह जाता है। और जिसने अपने आपको समझ लिया, कि यहां तो कुछ भी नहीं है। वही सब कुछ है। जो कहता है, यहां कुछ भी नहीं है, वही सब कुछ है। ऐसा मेरा मत है। क्योंकि जब तक। कबीरदास का एक दोहा है-आत्म अटपट रूप है, ये जो आत्मा है इसका रूप है अटपट है। तुलसी रामायण में है, भगवान श्रीराम जो है, प्रेम लपेटे अटपटे, अटपट जो रहता है उसका बिना हाथ, बिना पैर के ऐसा हो जाता है। ये आप, अटपट जो है। आत्मा जो है आत्मकल्याण के लिए है, अपने कल्याण के लिए है। हम निर्मल हों, हम निर्दोष हों। और हमारी जो गति है, अवरोध न हो, माने सुरति बनी रहे। क्योंकि सम्यक बताया, सम माने उत्सर्ग, माने पूर्ण प्रकार से, जिस प्रकार से आपके गति उसमें हो। और कोई धक्का दे दिया, धक्का भी कर दिया, अगर आप उस गति से आप चलते रहे। अपने आपको गति में रखेंगे। या जो विधि बताया आपको, रहने के लिए, इस प्रकार से आप रहे। तो क्या होगा? आतम अटपट रुप है, झटपट लखै न कोय, झटपट दर्शन नहीं होता, समझ में नहीं आता। आत्मा का दर्शन नहीं होता, और समझ में नहीं आता।, झटपट दर्शन, नहीं हो। आतम अटपट रुप है, झटपट लखै न कोय, क्या कारण है? आपका कहना जिसको है, जैसे आप अपने आपको जो कहा है, मैं तो कहूंगा, आपकी सतवृत्ति होगी। सत, सत्ता जो है। डिवाइन ऐनर्जी, दिव्य शक्ति है। जैसे ज्ञान वानी भूतानि.. यज्ञतः तब विच्छन्ति, तब ब्रम्ह, तब विधि विद्या

तत्व।, ब्रम्हांन्द प्राप्त है, उसको आत्मानन्द कहते हैं। आत्मानन्द, महान है आत्मा वो महान है । तो ब्रम्ह का अर्थ होता है, ये महान है। ये महान आनन्द जो है, ये तभी प्राप्त होता है। जब हम हर प्रकार से साधना के द्वारा, विचार के द्वारा, कर्तव्य के द्वारा, बुद्धि के द्वारा और व्यवस्था के द्वारा भी अपने आपको जब तक तन्मय नहीं कर देता है। तन्मय कर देने से क्या होता है? मैं जो है, रह नहीं जाता। जब मैं नहीं रह जाता। उसका जो है एक भी उसकी नहीं रही। उसकी बुद्धि नहीं है, उसके सामने संकल्प विकल्प नहीं है। उसको ना हाथ है, ना पैर है, ना आंख है, ना कान है । कुछ भी नहीं रहा। जब कुछ भी नहीं रहा, तब सब कुछ उसको प्राप्त है। क्यों? क्यूं वहां पे क्या चीज नहीं है? दर्शन जो है, दर्शन भी होता है। उसका फल क्यों नहीं बनता? लेकिन आपके द्वारा प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नहीं होता। क्या होता है? खटपट मन की जब मिटै चटपट दर्शन होय, हमारे मन की जो खटपट है न मैं। मैं करता हूँ, मैं करता हूँ, मैं करता हूँ। ये मेरा है, मेरा है,सब। जब तक आपमें, ये आपमें बने रहेंगे। ये जो खटपट है आपमें, ये मिटे, जब तक ये मिटती नहीं। खटपट मन की जब मिटै चटपट दर्शन होय। फिर देर नहीं, उंगली बजाते हुए चट से बजता है इतनी देर से आपमें दर्शन होता है। इतने ही देर है, अपने आपको जानने के लिये। इतनी देर है, अपने आपमें समाहित होने के लिये। बाकी जिस रुप में आपमें समाहित होना है।

।। क्रोमोसोम्स जीन्स रचना ।।

- क्रोमोसोम देखा, जिन्स देखा, जो इलेक्ट्रोमैग्नेटिक पावर से वोल्टेज से सैकड़ों वोल्ट के बाद भी माइक्रोस्कोप को लगाकर जो जिन्स देखा गया।

जो जीन्स साइंटिस्ट लोग जिसे शोध कर रहे है वो जीन्स मैंने 1981 अप्रैल श्रीनगर में देखा। जो चमक रहे हैं, जिन्स हैं। सब। उनको बताया ये शेप है ये ऐसा है। ऐसा-ऐसा-ऐसा है। उनने एनाटॉमी कहाँ पढ़ने का है। किसको फुर्सत है, किताबे पढ़ने फिजयोलॉजी के। जो आदमी घर बार नहीं है, 15 साल की उम्र से घर बार नहीं । कुछ भी नहीं। हम तो बस भटकने वाले आदमी है। मैं तो साफ बोलता हूँ। पढ़ना, लिखना तो कुछ आता नहीं हमको, लेकिन अनुभव जो है, वो हम बोलते हैं। और आप लोगों से मैं, खोज में लगा रहता हूँ। जैसे डॉक्टर है आप। डॉक्टर हैं। इसलिए आपको बोलता हूँ, टाउ ऑफ फिजिक्स जो है, उसको आप मंगवा लीजिये। आप पढ़ लिजिये, आप। जिसको, क्वांटम ऑफ ऐनर्जी । डबल चेम्बर में जब, लाइट को ब्लास्टिंग किये, जो लाइट का शेप है और कलर जो हैं। ये उसी तरह से, ब्लास्ट करने के बाद वही शेप वही लाइट, वही ज्यों के त्यों। जैसी ऐसे बाहर निकलकर और फिर से वापस उसी में आ गया। लेकिन उसका जो फोटो लिया, वन थाउजैंड फ्रेक्सन ऑफ सेकंड में उसमें फोटो ले लिया गया। माने वही चीज शेप स्थायी है और वही चीज में गति है, समझ में आया, न। हां। यही कंट्राडिक्ट्री है। मूवमेंट भी है और अनमूवेबल भी है। माने हिलता डुलता नहीं और हिलता डुलता भी है। तो ऐसी सब बातें हैं, हमारे लोग बोलते हैं लेक्चर देते रहते हैं। लेकिन नहीं हमारे पास तो भई प्रमाण हैं। मैं बिना प्रमाण तो एक शब्द नहीं बोलता हूँ। और मैं प्रमाण ढूंढते ही रहता हूँ। आप लोग मिल जाते हैं तो हम बहुत खुश हो जाते हैं। ऐसा है कि हमें कुछ मिल जायेगी, आपसे । ऐसा है। जैसे रिंग बोलते हैं, न हैं। आपने । पहले के जो है, साइंस जो है कैमेस्ट्री जो है। आपमें कैमिकल्स जो हैं। आपने क्या किया, पहले लाइट

का ब्लास्ट किये, अनुसंधान किया। बैंगोइन्स तो बैन्गोइन्स जो है उसको रिंग मिलता था, वो सांप जैसे मिलता था। शेप है उसके मुंह में, ये सब बातें हैं। ये सब साइंटिफिक बातें हैं, बिल्कुल बराबर हैं। पदार्थ में ये चीजें है वो। तो ये जो पदार्थ है आपका विषय हैं। मेरा विषय नहीं है, मैं जो सुना हूँ गलती हो सकती है। क्योंकि मैं पढ़ा लिखा तो हूँ नहीं। माफ करना, मुझको। आप ये धीरे-धीरे आपको सपना भी आया। जिन भी आया। वहां से फिर चला तो आज तक यहां तक आ पहुंचे हैं। इस तरह से बताते हैं कुण्डलिनी जो है । एक सांप के जैसी है, वो सांप अपनी पूंछ मुंह में दबा ली है। माने बोलते जरूर है, किताबे छापते हैं। बेचते हैं। लेकिन उसको पूछा जाय, कि भई व्यवहार और वेदांत ये दोनों एक है। अगर उनके सामने रख जाय तो वो नाराज हो जायेंगे। क्योंकि एक ब्रिटिसर ने जिसका नाम है, पालब्रैंटन। वो एक पेपर वाला आदमी था। वो इंडिया आया और आकर हिमालय देखा। इधर उधर जाकर, मिल गया कोई उनको, और उनने फिर अभ्यास किया। अभ्यास करने के बाद गुरुजी पीछे रह गये, वो आगे निकल गये। पालब्रैंटन, उसने लिखा है, इस यूनिवर्स के लिये । माने जिसको मैटर कहते है, या जड़ कहते है।, ये जड़ है, ये ड्रीम है ये माया है । ये कुछ नहीं, फलाना है, ऐसा जो नाम रखते हैं। वो ब्रिटिसर लिखता है- इफ दि यूनिवर्स हेड नाट बीन फार्म आउट ऑफ डिवाइन एसेंस, नन ऑफ दि क्रियेसन विदिन इट, कुड होप ह्यूली टू ट्रस्ट टू कम इन टू डिवाइन स्टेज। नहीं तो ये डिवाइन वर्ड डिक्शनरी में से निकाल दीजिये। इसलिए हमारे जो विराट, यूनिवर्स जो विराट कहा । विराट ब्रम्ह, ये विराट की पूजा है, ये। ये बिल्कुल सच है। लेकिन केवल बोलने मात्र से, नहीं होता। देखिए पाल ब्रैंटन है ये ब्रिटिसर है, और उसने ब्रिटिसर्स बंधुओं के

लिए ये शब्द लिखे हैं। माने बाहर वाले कितना मेहनत करते हैं, सोचो। इसने क्या किया, ये मिस्र के पिरामिड में घुसा । आज तक जो गये वापस आये नहीं, लेकिन वो जा के बराबर वापस आया। मेन इस ऐ माईक्रोकास्म । अरे, मेन इस नाट ऐ माईक्रोकास्म। मेन इस डिवाइन एसेंस, अगर ऐसा न होता तो , डिवाइन स्टेट में कभी नहीं आता। ऐसा तभी हम बोले हैं। हेलिक्स हमने देखा। डॉ खुराना ने देखा। यहां आकर हमने देखा, उसके बाद उसका फंक्शन देखा। वो क्या था, वो रस्सी जैसी बन गई । वो रस्सी कहाँ जाता है, और कहां तक है। डी. एन. ए., आर.एन.ए. देखा। हमको एक ने कह दिया, आपने सुना होगा कहीं । मैंने कहा, सुना नहीं, ये सुना नहीं हूँ, मैं। सुनने की बात नहीं, मेरे पास सच है। ब्रिटिसर है। एक रशियन बैठी हुई थी, श्रीनगर की ही बात है ये, एक पंजाबी के पास में थी वो। हमें बताया आपने, सुना होगा। बोला, मैं सुनकर नहीं बोला हूँ। और एक मोहम्डन था पी. टी. आई वो तो पैर पकड़ लिया, पैर में लिपट गया । और मैं, जहां, कहाँ था । रिजिनल ऑफ इंजीनियरिंग कॉलेज में था। जिसका नाम मिस्टर अखलू जो अभी अपहरण कर लिया गया था। पति-पत्नी को आपने सुना होगा। वे दोनों हमारे शिष्य-शिष्या हैं। मैं उन्हीं के घर में बैठा था। ये श्रीनगर की बात है ये। मैं पढा लिखा तो नहीं हूँ। लेकिन जब हमारे गीता में लिखा है, इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात। यही आदमी दुसरो को उपदेश या समझाने का कुछ काम करने के लिए, उसको अधिकार है। जिसको ज्ञान विज्ञान सहित मालूम है। माने एक्सपीरिमेंट में लाकरके एक्स्पीरियंस हो, और उसके नालेज में रहे। और भी नए नए तरीके उसको मालूम होना चाहिए। यही कार्य करने में,

माने अधिकारी होना, वही कार्य करने में सक्षम है। काहे को किसी का नाम बदनाम करना, मैं तो किसी का नाम बदनाम नहीं करता। हम तो विद्यार्थी हैं और लास्ट सांस तक, हम विद्यार्थी हैं। इसलिए आप अभी जो कह रहे हैं, मैं कुछ जानता तो नहीं हूँ।अगर ये ऐसा हो जाय तो और अच्छा होगा, हमारे लिये। क्योंकि हमको ये मालूम है, अभी जो बोल रहे थे। करके आपके सामने प्रकट कर दिया। ये बहुत अच्छा हो जायेगा। ये सत्य है। प्रत्येक व्यक्ति को औरा है। प्रत्येक व्यक्ति में औरा है वो खड़ा होता है, उसके चेहरे के चारों तरफ औरा है। एक लाइट है, कलर्स हैं। उसमें, उस लाइट में एक प्रकार का प्रकाश है।और वो क्लियर प्रकाश में उसमें वो कलर्स है, और वो आदमी जैसा हो, उस कलर से उसकी करेक्टर रीडिंग होती है। उस कलर से आ जाती है उसमें। अगर ऐसा होगा, इलेक्ट्रो मैग्नेटिक वेव्स वाला कैमरा अगर उसमें वो पावर हो। तो- मुझमें क्या है? कितना गप है, कितना सच है । उसमें आ जायेगा। और मैं बड़ा ऋणी, मैं झूठ कभी बोलता नहीं। मैं झूठ कभी बोलता नहीं। माने असत्य जो नहीं मालूम है। मैं कभी नहीं बोलूंगा, न। ये बात उतनी सत्य है। इसलिए हम भी बहुत प्रसन्न हैं। हम भी उसी के बिल्कुल सेवक हैं, दास हैं, कि जो कुछ हो सत्य हो, जो हरेक आदमी को वो बड़ा सच हो। अगर सत्य है तो सबका अधिकार है।

।। अट्रैक्टिव लाइटनिंग्स,शिवजी का तांडव ।।

- न्यास माने नाश, कुछ भी नहीं रह जाता माने फ्रीडम। लेकिन वो अभ्यास से है । सुनने में ऐसे मालूम होता है, कि बस। चलते रहो बस। एक शब्द बहुत अच्छा मिला है । मुक्त और मुक्ति। मुक्त माने खुला और मुक्ति

माने खुली हुई। एक तो ओपन्ड है एक ओपन बीइंग। माने सबके लिए ओपनली । बोले सबके लिए, अगर वो चाहे तो। सुषुम्ना का खुलना ही मुक्ति है। बस वही तो द्वार है, मोक्ष का। बंद है वो। वहां से शैतान का रास्ता है, ये जा रहा है हमसे अब। हां बहुत तंग करता है, अरे ऐसा तंग करता है पटक ही देता है, उठा के। लेकिन ये हमको अच्छा लगा इनका ये सूत्र-डू दि थिंग्स यू फेयर, डेथ ऑफ फियर इस सर्टेन । बस इसे फेयर कहा, छोड़ना ही नहीं हैं। लगे रहना, सेंट्स लोग हैं न हमारे साथ, में इगजैम्पलस के लिए (वो भेजे है इसी काम के लिए) हां इसलिए हम क्यूं छोड़े। वो हारेगा । वो तो कहता है न हम तो साथ में हैं अपने भक्त लोगों के, हम अपने भक्त के। साथ में हमेशा युक्त हूँ। अनन्याश्चिन्तयोनाश ये जना पर्युपाषते तेषां नित्याभियुक्तानां-मैं नित्य युक्त रहता हूँ। योगक्षेमं उसको बचाने के लिए और जो चाहिए सब पूरा करने, करवा देने के लिए, कर देने के लिए, ये। मैं तो गीता । कुछ नहीं, दो चार हैं। जो मेरे जीवन में है। नित्य है वो सदा। गॉड इस विद यू, एवरीडे, बचपना से लेकर । यू आर नाट एलोन। यू केन नाट, कान्ट सी एलोन, यू सी वांडर हियर एंड देयर, थाट आर, बिकम ऐ ग्रेट वांडरर्.दिस वर्डली अफेयर्स । मी माई, मी माई, मी माई, आई एम, मी। कहने का तात्पर्य है, अगर किसी ने डेवलप किया जाय और वो सही है। तो जो एरिया है वो चार्ज हो जाता है, डिवाइन पावर से। तो डिवाइन पावर से जब चार्ज हो जाती है तो वहां शत्रुता एक भी नहीं है माने फिर जो बैर वाले होते हैं जैसे बिल्ली और चूहा ये खेल सकते हैं। ये जिसका नाम अहिँसा है। आपने सुना होगा, बहुत से शब्द दुनिया में लोग अहिँसा अहिँसा कहते हैं लेकिन ये है। अहिँसा, तब ये ट्रू है या ट्रुथ है। नेवला और सांप एक साथ खेले । बाघ और बकरी, एक जगह खेले, बैर

छोड़कर माने वो उस एरिया में। अगर वो जो साधक है अगर वो सेंटर में पहुंचता है। पहुंचने के बाद में वो एरिया चार्ज हो जाती है। वही चीज आप लोग भी पाते हैं। अगर मुझमें होगा कुछ, मैं तो कुछ कहने का दावा तो कर सकता नहीं । मैं तो योगी नहीं, साधु नहीं, आपके जैसा मैं एक संसारी व्यक्ति हूँ।और जो कुछ मालूम है, ओपन सीक्रेट करता हूँ। अगर कुछ होगा उसमें, आ जायेगा, तो बहुत अच्छी बात है । मुझे बल मिल जायेगा, क्योंकि मैं भी अभ्यास करता हूँ। डॉ व्ही. ऐ. शिन्दे अभी यहां है, एनाटॉमी के प्रोफेसर और डीन भी रहे। अभी रिटायर हुए हैं। इनके सामने की बात है, वो झूठ नहीं बोल सकते। मुझे अपने शरीर के अंतर्गत बहुत कुछ मिल गया और उससे काम भी हो रहा है। और सब बातें है। इसलिए आपने कहा इसलिए मैंने ओपन, सीक्रेट कर दिया। क्योंकि मेरे विषय हैं ये सब। इसलिए ये बहुत अच्छी बात है। अगर वो हो जाय, मुझे तो और बल मिल जायेगा हां। मुझे उसका संकोच नहीं है, कि हमारे जो विज्ञान है वो सिद्ध है। क्योंकि मेरे पास लेटेस्ट विज्ञान के है, माने जो प्रोफेसर ऑफ फिजिक्स हैं। मेरे पास पुस्तक है उसकी।ये इलेक्ट्रान्स, फोटॉन्स, हिडान्स डिसान्स। मैडान्स या प्राटमान्स। या कि जितने मान्स हैं ये कहाँ तक कितने तैयार हुए ,आज तक आगे आये हैं, लेटेस्ट हैं। डेवलपमेंट तालिका वगैरह सब दे दिये। और फिर,ऐसा कर, वो बिच में वो जाता था, रात को काम करने के बाद रात में, समुद्र। मेंऔर जा करके अकेले बैठता था और सड़क में आते थे आवाज सुनता था । ऐसे करते करते जिसको हम लोग समाधि कहते हैं। देखो वो अच्छा था, सुनता बैठता था। तो वो क्या देखता है कि सारे प्रकाश हैं आकाश जो स्काई हैं। माने वो बस लाइट, लाइटनिंग लाइटनिंग हैं। और इतने अच्छे ब्यूटीफुल अट्रैक्टिव

लाइटनिंग्स हैं जिसका नाम वो वर्णन नहीं कर सकता। और वो ऊपर नीचे, ऊपर नीचे, माने डांस जिसको। फिर उसी ने बताये शायद भारतीय तांडव नृत्य जिसको कहा, शिवजी का तांडव नृत्य होता यही है। माने उस किताब में सब दिया है। वैसे कई बार, बार-बार उसमें वो जानने लग गया। वैसे वो घर आने के बाद वो लिखता है। ये मैंने लिखा नहीं ये मुझसे लिखवाया गया। ये किताब मेरे पास है-टाउ ऑफ फिजिक्स, उस पुस्तक का नाम है, इंग्लिश में। आप लोग पढ़िए देखिए आप। तो ये है उसने लिख दिया और फिर हमारे यहां के है जो, उपनिषद, उसके उद्धरण भी दे दिया गया। हम तो अभी बच्चे हैं उधर हि हम लोग आ रहे हैं माने भारतीय लोग बहुत ही आगे निकल चुके हैं। हम लोग तो अभी बहुत दूर हैं और वही जाएंगे। यहां तक उसने अपना ओपीनियन दे दिया, मत दे दिया। बेस्ट प्रोफेसर ऑफ फिजिक्स है, ये हमारे पास किताब है इसलिए मैंने बोला हूँ। और मैं मंगवा दूंगा वो किताब, और वो लड़का तो अभी है नहीं। कल रात तक आ जायेगा, या परसों तक आ जायेगा। तो हम फोन करके मंगवा लेंगे, टाउ ऑफ फिजिक्स माने इंग्लिश में है वो। और वो किताब मिलती है इंदौर में हमने खरीदा है उसको, इंदौर में एक ही दुकान है जहाँ मिल जाती है, अपने को। और खरीद भी लिये। लोग डॉक्टर व्ही. ऐ. शिंदे बाई पास करने। हमारे पास आते है, जब चर्चा किया, हमारे पास किताब है मेरी बायोग्राफी जो है इनके पास दिये । किसने, डॉ व्ही. ऐ. शिंदे जो है, ये जा रहे थे, बातचीत हुई, चर्चा करते करते हमारी किताब उनको दे दिये पढ़ने के लिए। उसने पढ़ा फिर कहा, ये बिल्कुल ठीक है, इस ब्रथ। नथिंग पार्शियेट, उसने क्या कहा फिर मैं भी आपको एक किताब भेजूंगा, बड़े प्रसन्न हुए, अच्छी बातचीत किये। ये मद्रास गये, बाई

पास कराके घर आ गये। तो वो देखे, मद्रास से लौटा वो, दिल्ली गया और दिल्ली जाते, ये किताब खरीदा उसने, और ये किताब खरीद करके और फिर हमको दिये, फिर जाके। देखो हमारे यहां भी है और ये सच है। लेकिन हम लोग जो हैं, कहाँ है? कहाँ नहीं?

हम तो बिल्कुल पत्थर हैं। हम तो अभी बता दिये आपको। इसलिए पत्थर कहा कि आदमी की पूजा हम नहीं करेंगे। पूजा माने आदर, सम्मान, प्रतिष्ठा। आदर माने अपने व्यवहार से विनय, अनुयय।विनय है आप नम्रता के आप भाषा से आप व्यवहार से आदर प्रतिष्ठा सम्मान करें। आदर माने भिगाना माने सिक्त करना, माने भाव से, पानी से नहीं। हमारी जो भाव है उससे। आपमें क्या क्या है? क्या नहीं? क्या नहीं? आजकल क्या हो गया, कि आदर तो करवाना दूर रह गया। हम क्या कहते हैं उसको, तिरस्कार किंवा घृणा, किंवा द्वेष, कहिये आप। कैसा भी आपको आपके, हानि पहुंचे, ये बातें हैं। ऐसी बात हो गई, हम तो कुछ बोल नहीं सकते। आगे बोल नहीं सकते। क्योंकि मैं अनपढ़ हूँ। हमारे पास शब्द नहीं है, संग्रह नहीं है, शब्दों के। समझ है, आप बोलेंगे कुछ बोलेंगे आप, हमारे समझ में आ जायेगा । माने हिंदी आप बोलेंगे अच्छी तरह से समझ आएगी।

।। आत्मा रूपी चिराग ।।

- सत्पुरुष। सत-ये डिविनिटी है। सत-ये डिवाइन ऐनर्जी है। सत-ये निराकार ब्रम्ह है। सत-ये औमनीप्रजेंट है, सत- औमनिसिएन्ट है, और औमनिपोटेंट है। ये सर्वत्र है, सर्वज्ञ है, और सर्वशक्तिमान है। वही आत्मा है। वही सबके अंदर, बाहर भरा पड़ा है। लेकिन हमको, देखने का

फुर्सत नहीं है। हम केवल सत्पुरुषों को। सतगुरुओं को। तीर्थंकरों को। पहुंचे हुए लोगों को। गुरुनानक जैसे। एकनाथ महाराज जैसे। ज्ञानेश्वर जैसे। तुकाराम जैसे। और रामदास जैसे। तुलसीदासजी के जैसे। कबीरदास जैसे। ऐसे लोगों की निंदा करते है, हम।

- चिरायता, त्रिकटु, कुटकी, कालमेघ, कुलिन, ये कटुता। कटुता से बुखार माने क्या ये भाग जाता है। ये सब जानते हैं। ये सत्य है कि मलेरिया के ज्वर है, ठीक हो जाते हैं। तो कितना परिणाम हो गया। मलेरिया माने हो हो हो हो हो हो। ये चाहें कितने मच्छर हों । आपके ऊपर देख रहा था। ऐसा जो मलेरिया है। हमारे पीछे, जन्म-मरण का जो कारण है। जिसका बीज है- वासना। अब सोचिये इसको धीरे-धीरे-धीरे इस मार्ग में अपने आपको जानने के लिए जो पद्धति है। उस पद्धति के द्वारा कम से कम ये, कुनैन रूपी पद्धति है। कम से कम थोड़ा-थोड़ा सेवन तो करो। कल्याण ही तो होगा। नुकसान तो होता नहीं। हानि तो होगी नहीं। तब इस प्रकार से आगे हम जहाँ से शुरू किये। भारत। भा नाम ज्ञान का है। भा नाम प्रकाश का है। और भा नाम ज्योति। अब विचार ये है। सब में प्रकाश समाये हैं। ये आकार, ये ज्योति तुम्हारे जीवन में, ज्योति। प्रकाश के ये सब ज्योति-ज्योति। और ये दिखाई देती है ज्योति। ये तो जलती नहीं है। दिखाई देती है। कौन सा प्रकाश है बताओ? ये खाली मानकर चलता है। ये खाली सांत्वना है ये। आंनद है, ये सामाजिक व्यवहार है। ये सामाजिक व्यवहार है ये। इसको हम व्यवहार शब्द के अंतर्गत लाये। हम। ये व्यवहार क्षेत्र जो है, इसके अंतर्गत है। लेकिन ये आत्म ज्योति, एक बार आप जला देंगे। तो क्या होगा मालूम। जन्म-जन्म के लिए आप वो ज्योति,

आपको मार्गदर्शन करेगी। और आप मनमाने उल्टे तरह, आपका पैर कभी न जायेगा। न भागेगा न जायेगा। इसलिये उपनिषद में दिया है, आत्मा स्वयं ज्योर्तिभवती। और यही वेद का मंत्र है-हिरण्यगर्भ संमवर्ततात्रे। यानी सम्यक रूप से। पूर्णतया से। अंदर बाहर ऊँचे नीचे चारों तरफ से, वो है। लेकिन हमें दर्शन नहीं होता। इंग्लिश में भी कहा गया कि डिविनिटी मेनिफेस्ट, इट्सेल्फ इन दि शेप ऑफ लाइट, (देखिये उपनिषद में भी वही है) सेल्फ इस विदिन, बिफोर दि इवुलुशन, सेल्फ इस अलोन टू, साइन। ये उपनिषद है। ये आत्मा ज्योति रूप है। ये तो पहले भी था, अभी भी है, आगे भी रहेगा। लेकिन ये ज्योति के ही रूप में दर्शन होता है। और वो ज्योति में, ये तीन प्रकार है: एक तो ये प्रकाश मिलता है। सूझबूझ मिलती है, जिसको लोग इंट्यूशन कहते है। सूझबूझ मिलती है, वो ज्योति से क्या मिलता है? और क्या मिले? आपको ज्ञान प्राप्त होता है। कैसा करना कैसा नहीं, ये समझ में आता है। और आप जैसा सोचेंगे वैसा वो कार्य भी, होने लग जाता है। ये क्षेत्र, वेद, का ही है। आपका ज्ञान कभी निष्फल नहीं होगा। जो आपको बोध होगा। आप कहीं भी जाये, बोध किया आपने। जो मिला है सब। ये सबको वो ही होगा- ये सत्य है।आपके विचार जो किये हैं, जो प्लान है आपका। जो आपने संकल्प किया है। आपका जैसा होता है, वैसा सबका होगा। संकल्प। आज हमारे एक भी संकल्प नहीं होते। और शक्ति, आपको जो शक्ति मिली है। जिससे आपको,अनुभव तुम्हारे शक्ति द्वारा होते हैं। कि जाओ भाई, नारायण नाम लेना, तू तर जायेगा। इसमें ये है, तपस्या है। वैश्या के पास है। दुखी है, लेकिन एक लड़का हो जायेगा। ये ठीक है, लेकिन उसका नाम ले लेना। नाम करना, तुम्हारा तारन, तुम तर जाओगे। साधु ने

आशीष दीया है। ये साधु के आशीष से वो तरा है। वो नारायण से नहीं हुआ है। नारायण हम ये खाली बोलते हैं कौन नहीं बोलता, राम। एक बार रात को, एक बार पांच बजे, बजता, है। भागा धिन, धिन, भागे धिना धिन, माने भाग्या धीन है। ये कहा, क्या? वो ठीक है। अच्छा है। लेकिन बात तरण तारण की है। यहाँ पर, अपने आप जानने की बात है ये। ये कब तक आप किताब में पढ़ेंगे? स्थिर होना तो है, स्थायी होना है आगे। अरे भई, कब तक सर्विस करेंगे? घर तो बना नहीं, कहते की नहीं कहते। स्थायी तो होना हैं, न कहीं। लेकिन ये अस्थायी है। ये सब स्थायी होने के लिए एक पद्धति है जिसका नाम है- राजयोग। हमने इसको खाली-ध्यान योग कहा। हमारी किताब में है ध्यान करके।।तो तात्पर्य ये है। लास्ट में ये कह के हम समाप्त करते हैं। कि जब तुम जन्मे जगत में। कवि वचन है, मैं नहीं कहता। इसलिए मैं तुम कह रहा हूँ। जगत हंसा तुम रोये, ऐसी करनी कर चलो, कि तुम हँसमुख जग रोये। बस इतना कह के,अपना, क्या कहते हैं। इसको, अपनी जगह पे आ जाता हूँ। धन्यवाद बोलूँ। अच्छा, नहीं। आनन्द मंगल हो, कल्याण हो। सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित भाग भवेत्। हम किसी को दुःखी नहीं देखना चाहते, ना कभी हम देखे। हम जब आये सबको, सुखी पाये। सब आंनद में रहें । लेकिन कम से कम अपने आपको बचा के रखें । कम से कम, ये तो व्रत करो,। सब व्रत करते हो। ये तो व्रत करो। व्रत माने वर्त्।वर्तते माने आचरण में लाओ। सोते समय पूछो, मैं क्या हूँ? सोते समय ये वाक्य कहो, कुछ मत करो। नाक दबाना न पूँछ दबाना, कुछ नहीं। बेर खाओ, घी खाओ, दूध खाओ, मत खाओ। जो लगे तुम खाओ मस्त। मैं क्या हूँ? कौन हूँ नहीं। मैं क्या हूँ? इतना बोलकर सो

जाना। इतना तो आपसे हो सकता है। खत्म।बस इतना हम चाहते हैं। आप लोगों से और कुछ नहीं। हमें न प्रश्न का उत्तर चाहिए, न कुछ चाहिए। प्रश्न करता हूँ, कुछ बोलने के लिए है। बोलने को है। कुछ आता है तो नहीं। तंग करता हूँ। फिर बोलता हूँ। ऐसा है, इत्यलम्। बहुत लेट किये उठने के लिये। वास्तव में ये दोनों बदल जाते हैं ये मिट जाते हैं। और इसी आत्मशक्ति से यही आत्मज्योति, यही, प्रकाश से। यही ज्ञान से। यही ज्ञान है। यही प्रकाश है। यही ज्योति है। वो तुम्हारी दिवाली को दीया जलाते है। वो ज्योति नहीं है। वो ज्योति तुम्हारे घर में कुछ नहीं पहुंचाती। वो ज्योति से कुछ नहीं मिलता तुमको। वो बाहर जलती है। वो क्षणिक है, सर्वं क्षणिकं। वो क्षणिक है। वो ज्योति से आपको कोई ज्ञान नहीं होता। ये ज्योति ज्ञान है। ये ज्योति प्रकाश है। ये ज्ञान के दीप जलाओ। जो कभी न बुझे, जन्म जन्म न बुझे। हमारे कहने का मतलब ये है। स्वल्पमपस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। महान भय माने जन्म और मृत्यु, का जो भय है। एक दिन, एक जन्म में ऐसा आयेगा दूसरे दिन निर्वाण हो जाओगे। ये सत्य है। वाण नाम शरीर का है। बार-बार जो माँ के पेट में गर्भ में जो आते हो। गर्भ में आ करके जो शरीर देते हैं। उससे बचने के तो प्रयत्न करना चाहिए। अपने आपको देखो। मैं नहीं कहता तुम संन्यासी बन जाओ, वैरागी बन जाओ। या तुम समाधि में जाओ। कम से कम थोड़ा तो करो। जिस दिन ये दीया जलाये। दिवाली को आप जलाते है। फिर ये क्षणिक है। एक दिन जलाये बस दूसरे दिन जलाते नहीं। एक दफे एक दिन भी तो जला लो। फिर बन्द कर दो। कुछ नहीं करना। मत होओ पागल हमारे जैसे। या और लोग जो है समाधि में जा रहे हैं। यहाँ है। आपका कल्याण होगा। और दूसरा पौराणिक लोग आये। कथा कहे। पता न पता हम क्या

कहे, बहुत लोग फिरते हैं ज्ञानदाता, किताबी। किताबी ज्ञान से कुछ नहीं होता है। मैं यही कार्य करता हूँ।और मेरा जीवन इसी में है। मैं भटकता फिरता नहीं हूँ। मैं ये कार्य करता हूँ, कार्य कर रहा हूँ। इस कार्य में सौदा है ये, अपना कल्याण कर लो, बस। और कहना नहीं है। मैं ये कहूंगा नहीं, सब कोई समाधि में जाओ। बैठ जाओ, पांच सात मिनट, जितना हो सके। कम से कम, ये है तो दिया जला लो। जिस दिन से लगाये है, उस दिन।ये इससे बढ़कर क्या धन है? आत्म धन से बढ़कर क्या धन है? धनतेरस के दिन, तेरा दाने, ऐसा आप। ये अपने आत्मरूपी चिराग है, उसको आप जला दीजिये। वो जला करके, घर में दीया जलाओ। एक बार जलाओ। आपके सेकडों जन्म के लिए हितकारी हो गया, वो। ऐसे लोगों को पुरोहित (आगे बढ़कर हित करने वाले) कहा गया है। ये पुरोहित नहीं। दोना झाड़ने वाले लाओ दक्षिणा लाओ, सुपाड़ी लाओ। ये पुरोहित नहीं हैं। ये बनाये नाम, पुरोहित हैं। पुराः माने आगे हित हो। आगे आपका हित हो, आपका कल्याण हो, ऐसी उपाय बताये। ऐसी आपसे, ऐसा कर्म कराये। मेरे को जो मिला है, टेढ़े-मेढ़े मंत्र (मार्ग) हैं नहीं। टेढ़े-मेढे, सब कुछ है। सीधा है, मैं ये काम कर रहा हूँ। फिर आपकी इच्छा है, आप सौदा बढ़ाये आगे जाये, न जाये। लेकिन एक बार कम से कम ये दिवाली जैसे एक दिन तुम जलाये। अपने आप में, ये दीया तुम तो जलाओ। फिर कब तक हम बोलेंगे? और वो भी स्वेच्छा से आइये बस। डर, भयवश, लालच कुछ नहीं। जिनको आना हैं सीखना हैं, स्वेच्छा से आइये, बस। क्योंकि मैं न्यौता कभी नहीं देता, किसी को। हाँ विषय हमारा, हमारा जो सब्जेक्ट है हमारा। विषय जो है हमारा ये आपके सामने, रख दिया। ये कार्य मैं कर रहा हूँ, और इसके लिए प्रमाण हैं सब जगह। हमारे पास

किताब भी है। लोग भी हैं, सब मौजूद है। और आज अच्छे लोग भी हैं। ये अगर जो है आपको-अपने आपमें जाना है,अपने आपमें रहना हैं। और ये माँ के गोद से बचना है। तो कम से कम अभी से आप (दीया जलाने के प्रक्रिया में लगकर,जला लीजिये)। नहीं तो ये कई बार तो आपको आना (जन्म-मरण) पड़ेगा। फिर से यहाँ बड़े बड़े तीर्थंकर आये। न मालूम कितने साल, कितने जन्म बीतते, कितने साल बीतते हैं उनके। एक दिन की बात है। लेकिन ये मंदिर में हाथी में फिरने से नहीं होता, कुछ। चेतो। मैं वही से शुरू किया हूँ। मैं भी सिहांसन लेकर फिरा, चांदी के सिंहासन चांदी के सारे बर्तन। लेकिन जब आसन लगा के बैठ जाता था, चांदी के सिंहासन फ़ासन सब चले जाते थे। सोना मिलता था। ये दे दिये एक डाक्टर, सुनार। भारती के बड़े चेले थे, पट्ट शिष्य उनके घर में रहते थे, डाक्टर के यहाँ। इसका(सोना का सम्भवतः) काम अब नहीं है। हाँ, मैं अपनी कहता हूँ। और यही कारण है, कि अयोध्या में जो बताये न आपको। स्वामी रामप्रपन्नाचार्य वो हमको रोक रहे थे। आप हमारे पास रहिये। आप विरक्त हो जाइये। पत्नी है, एक लड़का हो गया है। आप मुक्त हो गये, गृहस्थ आश्रम से,। एक लड़का हो गया, माने तुम मुक्त हो गये। तुमको अब क्या चिंता करने को है, ये सर्टिफिकेट ये आपकी स्थिति है। ये बताये हमको। विरक्त हो जाइये, गृहस्थ छोड़कर, बैठ जाइये। बड़े उत्तर हिंदुस्तान के प्रकांड विद्वान, उत्तम।हम लोग बाहर जाते नहीं, खाली अपने में हम रहते हैं, ये है। प्रकांड विद्वान वेदांत और व्याकरण में, पंडित शिव कुमार शास्त्री के पट्ट शिष्य। और शिव कुमार शास्त्री वहीं मरे। उनसे हारकर, वही मरे। वेद पर हुई शास्त्रार्थ, आस्तिक और नास्तिक के विषय पर। पहले इसको नास्तिक दिये राम प्रपन्नाचार्य को

और स्वयं लिये आस्तिक। उसमें हार गये। और फिर तीन दिन के बाद फिर से शास्त्रार्थ किये। तो उसको दिये आस्तिक और अपना लिये नास्तिक और उसमें हार गये। और वही गश खाके गिरे कि मर गये। गुरुजी (उस शिष्य के वे गुरुजी थे)। ऐसे विद्वान हैं भारत में। अब है कि नहीं, नहीं मालूम। लेकिन अभी की बात है, ये जो बताता हूँ। ३५-३६ -३७ की बात है ये। और लाखों रुपया जमा है, और वो व्यंकटेश मंदिर है, दो मूर्ति खड़ी है। एक बीच में है, बाजू में उसकी शक्ति है। ये बड़े बड़े गोले हैं। बहुत बडाई नहीं करना है। ये आत्म प्रशंसा है, न कहना चाहिये। कहने का तात्पर्य ये है कि अपना कल्याण तो करो।थोड़ा बहुत तो करो, मैं ये नहीं कहता, घर छोड़ों, बार छोड़ो, बाल बच्चे छोड़ो। कुछ छोड़ने के लिए नहीं कहता हूँ। नाही। किताब आप पढ़ेंगे।उसमें लोगों के नाम हैं, गृहस्थ में हैं। धन्धा करते हैं, व्यापार करते हैं, सब कुछ करते हैं, ऐसा है। आगे मत बढ़ो, भई उतना काफी है। कम से कम एक दफे दीया तो जला लो। वो दिवाली है। बस इतना कहना पर्याप्त है। कुछ नहीं, घर में बैठो, उस दिन बताया था न, सोते समय ये आवाज देकर सो जाइये, मैं क्या हूँ? मैं कौन हूँ, नहीं, कौन हूँ, नहीं पूछना। मैं क्या हूँ? ये अनुभव की बोल बता रहा हूँ, आपको। मैं क्या हूँ, कौन हूँ नहीं। एक बार ये बोलकर सो जाइये, रोज ये बोलकर सो जाइये। देखिये आपके जीवन में १२ महीने में कितना परिवर्तन होता है।आपकी बुद्धि में, आपके सूझ में आपके बूझ में सब बातों में, होती है। न नाक ही दबाना है, पूँछ ही दबाना है, ऐसी कोई बात नहीं। तो अपने आपको पूछने में कोई हरकत नहीं। आप दुनिया को पूछते हैं। तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारे बाप का नाम क्या है? कहाँ रहता है? अरे, यही तो होता है न, नया आदमी आता है, यही पूछा जाता है,

परिचय, इंट्रोडक्सन। अपना तो ले लो परिचय, नहीं। काफी है। हमसे दीक्षा ही लेओ। हमारे पास आ के अभ्यास ही करो, कोई आवश्यकता नहीं। जिसको आगे निकलना है, जिसको पहुंचना है, आगे, वो आये दीक्षा लेय। और नहीं तो कोई आवश्यकता नहीं है। मैं ये बता रहा हूँ, आप करिये इसे। इसमें कोई हानि नहीं, कोई भय नहीं, कोई डर नहीं।, न कोई पराये हैं। न कोई मग्न नहीं रहते थे, आप। जो कार्य करते हैं उसको आप करिये । आराम से चलने दीजिये। सोते समय आवाज लगा के सो जाइये।

।। कर्तव्य पालन ।।

- चाहे कैसी भी परिस्थितियां आये अपना कर्तव्य पालन (आत्मसाधना) करना चाहिए, परिस्थितियां आपको उबार देती हैं। जब तक अन्तर्यामी गुरु का प्रकाश नहीं होता बाह्य उपदेश व्यर्थ है। गुरुकृपा पर दृढ़ विश्वास श्रद्धा अचल रखना ही शिष्य का कार्य है। श्रद्धा से सब प्रकार के संशयों का नाश होकर लक्ष्य की प्राप्ति होती है। साक्षी भाव से रहना है, जितना अधिक मोह से दूर हो जाओगे, उतना ही गाली प्रशंसा से कोई आवेश नहीं होता। व्यवहार की भूमिका जो इस तन में मिली है जितने नाते रिश्ते हैं इनके साथ, निर्वाह तो करना ही है, बिना निर्वाह के निवृति कैसे होगी ? लाभ-हानि पर ध्यान न देकर, बराबर समझकर निरपेक्ष भाव से कर्तव्य करिये। सिद्धि-असिद्धि, हानि-लाभ, को समान समझो। जगत में रहना है, घर में रहना है, नहीं रहकर भी रहना है। विभक्त नहीं होना है, जो विभक्त है वो भक्त कैसा? ऋण कैसे चुकेगा समाज का? जब तक यह शरीर आपके हाथ में वर्तमान है, तब तक कर लो, जो करना है। आपको इन्द्रियों की सीमा को लांघना है। तब वहाँ आत्मा का प्रवेश है। सभी काम

को बाजु कर कुछ मिनट बैठकर आत्मा का अनुसन्धान करना चाहिए। जब मन शुद्ध हुआ (तो कठौती में गंगा) फिर वह मस्त रहता है। जो सत्य मुझे मिला, वही दीक्षा के रूप में दिया। गृहस्थ रहकर भी लोग मुक्त हैं। उस परमतत्व की ओर जहां से आये हो उन्मुख रहो। आप अपनी धारणा को जिस अवस्था या जिस रूप में रखोगे वैसा ही काम होगा। निराशावादिता से दूर रहो। दोषों से बचते रहें । इन्द्रियों पर काबू रखे। अधिक से अधिक काल पर्यन्त डूबे रहें। यही साधना अब आपको करनी है। सब गुरुजी पर अर्पित करके आनन्द में डूबे रहो। कामना वासना का संकल्प न करें, विचार ही समय पाकर मूर्त रूप धारण करता है। किसी प्रकार की चिंता करे ही नहीं। कोई समस्या आ जाये तो, शुद्ध संकल्प से पूज्य गुरुजी के ऊपर डालकर, कि वे ही हल निकालें और समाधान करें ,आप पुनः निश्चिन्त होकर अपने रंग में डूबे। किसी से द्वेष हो न ममत्व, ये सब दिखाने के लिए हैं। आप अकेले आये है और अकेले जायेंगे और जाना पड़ेगा ही। आपके चारों ओर आनन्द ही आनन्द है। उसे रियलाइज करे।

- कोई कर्तव्य करते हुए यह न सोचे की वह दूसरे के लिए कर रहा है। वस्तुतः वह अपना ऋण ही तो चुका रहा है। सेवा क्या कोई किसी का कर सकेगा? भारतीय संस्कृति की ये मान्यतायें सत्य है, ऐसा सोचना की पिछले जन्मों का कर्ज है, जो चुकाया जा रहा है। दान-पुण्य भी भोग है, अतः भूल में न रहे हम दान पुण्य करते हैं, अतः हमारे भोग चले जायेंगे। हर व्यक्ति अपने जन्मजन्मान्तरों में बोये हुए को ही काटता है। भविष्य का बनना पूर्व जन्मों के देने पाने पर निर्भर (करता) है। मनुष्य स्वयं अपने

भाग्य का विधाता है, अतएव उसे सदमार्ग में, सत्कार्य में, जैसा बने, जितना शीघ्र बने, लग जाना चाहिए। केवल ऋण चुकाने ही नहीं, अपने आत्मदेव को प्रसन्न करने हमने जन्म पाया है। इस आत्मदेव से बढ़कर कोई देव नही है। अनन्त सूर्यों का सूर्य है।

माँ-बाप के साथ साथ (मन, बुद्धि, द्रव्य, जैसा जिस समय जिस रूप में बने) समाज का ऋण चुकाते चलिए। समाज का हम पर बहुत बड़ा ऋण, बहुत बड़ा उपकार है। निष्पक्ष भाव से समाज की सेवा करिये। यही धर्म का व्यवहारिक रूप है। समाज से जो विभक्त नही, वही भक्त है। वो सबमें है तो हमारे में भी है, तो अपने आप को बढ़िया समझो न। धर्मात्मा समझो, पुण्यात्मा समझो। सबका भला करते हुए, सबके सहायक बने रहो। जैसे कामिनी कांचन में बलि चढ़ा देते है, (उसी के लिए हम प्राण भी देते है और लोगों के प्राण भी लेते है) वैसे ही अपने आपको जानने के लिए बलि चढ़ा देना चाहिए।

अच्छे मार्ग (आत्ममार्ग) में आइये, आपकी जीविका आदि सभी कार्य होने लगते हैं। चरित्र का निर्माण होकर आदर्श कहलाते हैं। इससे समाज का कल्याण होता है। ऐसे एक से अनेक हो गए, तो राष्ट्र का, विश्व का हित नही होगा क्या?

।। जीवन में जीवनमुक्त होना ही हेतु है ।।

- संसार में जो जाग्रत रहता है वही भगवान को पा सकता है। जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है। जो भगवान के लिए जागता है उसे ही भगवान मिलते है। कबीरजी ने कहा है-सुखिया सब संसार है खावै अरु सोवे, दुखिया दास कबीर है जागे अरु रोवे। कबीर, मीराबाई,

तुकारामजी उनके लिए जागे और रोये तो उनको भगवान मिले। जब तक बोध नही, तब तक जीव है, जब बोध हो गया तब वह शिव है। आंनद मंगल मस्तु-आंनद = आत्मानन्द (आ = आत्मा, आत्मा के आनंद को प्राप्त हो)। मंगल=आपके द्वारा परोपकार(मंगलकार्य, औरों के कार्य) होता रहे। आपके पास इतनी धन संपदा आ जाये कि आप खुद भी खायें और औरों को भी खिलाये। कल्यानमस्तु-कल्याण=(मलरहित, निर्मल, विमल, शुद्ध) आपकी बुद्धि निर्मल (दोष न रहे) होती जावे।किसी के प्रपंच में, लेने देने में न रहें । तुम्हारी मसजिद में है खास वायज रहमत की, हमारे मयकदे में दिन रात रहमत बरसती है। साधना का केंद्र आत्मा ही है। साधना के माध्यम से जीवन मरण को संवारना सुधारना और ज्योतिर्मय बना देना। यही लक्ष्य होना चाहिए। इसके लिए सद्गुरु की कृपा की आवश्यकता है। किसी भी आश्रम में रहकर आप जीवन्मुक्त हो सकते हैं और जीवन्मुक्त होना ही हेतु हैं। अन्तःकरण पूर्वक ध्यान लगाने का प्रयास करना पड़ता है। अन्तर्मुख होकर पुरुषार्थ करें, अपने आप में रत हो जाएं। मौन के द्वारा आत्मा, अशुभ वृत्ति, प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त कर लेता है। शरीर से अध्यात्मभाव की ओर अग्रसर होना, असत्य अप्रिय अभिमानयुक्त लोभमय क्रोधमय न बोलना, आत्मा से भिन्न पोषक पदार्थों का चिन्तन न करना। ये मौन के प्रकार है। मौनावस्था में क्रिया सम्यग्ज्ञान पर आधारित होने पर मौन सहायक होता है। आशीर्वाद एक वाद है, तत्व है, इस वाद में आशीष मिलती है, आशीष के प्रभाव से कार्य होता है। भक्त का समर्पणभाव परिणतिमय बनकर शुभ परिणाम प्राप्त कर लेता है। मनुष्य का जन्म स्वर्णसन्धि है, इसे नहीं गंवाना चाहिए। जीवन मुक्त होने के लिए जन्म मिला है। नाना योनियों में अंत्यज, अंडज आदि में

भटकते हुए हजारों साल बाद, कभी मानव शरीर मिलता है। मनुष्य को चाहिए कि शरीर से अपना हित करते हुए सबका हित करना, करवाना। दूसरे (दूसरों) का अहित न करना, नही करवाना। मन से उपरोक्तानुसार न सोचना। उससे कोई लाभ की आशा न करना, न उसको कोई हानि पहुंचाना न पहुँचवाना। वाणी से उपरोक्तानुसार किसी का अनादर न हो, हानि न हो, अपमान न हो, निरादर न हो। अपना भी हित हो, दूसरों का भी हित हो। शरीर तो मर जाता है, किन्तु ये संस्कार उसके मस्तिष्क के संस्कार कोशिकाओं में जमा हो जाता है। और पुनः जन्म होने पर संचित रहकर परिणाम देता है। कभी अचानक कोई हानि मानव को हो जाती है तो सोचता है कि ये कैसे हुआ ? तो ये समझना चाहिए कि संचित कर्म परिणाम के कारण हुआ। मेरा जन्म, जीवन इसी तरह (से) अशुभ कर्मों से बचते हुए बीता।

- हम बहुत सुखी हैं ये भी अहंकार है। हम बहुत दुखी हैं, ये भी अहंकार है। सुख और दुःख दोनों एक है। हमारी लड़ाई किसी भी से आज तक नही हुई। हमे मारने के लिए दौड़े रहे, हम चुप रहे। भक्त की परीक्षा लेते है, भगवान। एक ही मार्ग है ये। तुम्हारे जीवन में साक्षी चाहिए, जहां तहां साक्षी चाहिए। चरित्र में भी साक्षी चाहिए।आत्मा जो समाधिस्थ हो जाती है, ये सम्यक् जीवन है। मज्जन फल देखे तत्काला। तुलसीदास। आप लोग आते हैं और कहते हैं मेरा होता नहीं। अरे, आपने सब दे दिया तो मेरा तेरा कहाँ रह गया?, दुनियां में जितने सम्प्रदाय हैं वो सब हमारे शिष्य हैं। मैं मानवता को मानता हूँ। मानवता को छोड़कर वो देव बना बैठा है, वो देव नहीं दानव है। यदि मानव मानवता की हद तक रहे, तो वो मानव

नही देव है। इसके विपरीत, मैं देव हूँ मेरी पूजा करो, तब वो ठग है दानव है। नयन अमिय दृग दोष विभंजन। उसके सिवाय कुछ नहीं। आपको मृत्यु का आलिंगन करना होगा। तब विधाती कर्मों का विनाश हो जाता है। तृतीय नेत्र खुल जाती है। तब ऊपर जाता है, तब आत्म ज्ञान होता है आत्मा ही ज्ञान है, ज्ञान ही आत्मा है। इसको जो अलग समझे वो मुर्ख है। मनुष्य में विशेष बात ज्ञान है, वरना वो पशु के समान है। मरना कबूल लेकिन भीख नही माँगा। ये लड्डू नही है, रसगुल्ला नही है। हमी मिले तुमको। शीश उतारे, भुई धरे ये क्या है? हमको भारत में एक भी आदमी नहीं मिले, वेशधारी बहुत मिले। चार बार मृत्यु देखा, पाँचवे बार.। बच्चा जैसे सोते है, वैसा पड़ा रहा। कुत्ते नही पूछते। भाग इतना की चार सू न रहे, भागना चाहते हो तो दशों दिशा से भागो, अभ्यास इतना करो की दशों दिशाओं का बोध न रहे। अभ्यास करना माने मैं और तू को खो बैठना है। तुमको सुध-बुध न रहे। मैंने किया है, एक दिन दो दिन तीन दिन, सात दिन पड़ा रहा। मैं और तू। कई बार मृत्यु केंद्र को पार करके, तब तुम आस्तिक हो, तब वो श्रेष्ठ है। सारा वसुधा मेरा कुटुंब है ऐसी वृति जब हो जाय, तब तुम आस्तिक हो, वरना तुम ठग हो। या तो मैं और तू ये बराबर है। या मैं और तू को खो बैठो। जीवन्मुक्त की आशा है तो मैं और तू को खो बैठना है। गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन, नयन अमिय दृग दोष विभंजन। तब ये दोष जाता है। तब तक, तुम्हारे तीसरी आँख नही खुलती, तब तक मोक्ष नहीं होता। जब तक ये करोड़ों जन्मों के, ये संस्कारों का नाश नही होता। तब तक वो मुक्त नही होता। इसी प्रकार गुरूजी के सदवाक्य तुममें घुस जाय और लग जाय तब ये। विधाती कर्मों का विनाश तब वो वे केंद्र में जाता है। यू हैव टू वर्क हार्ड, फॉर योर

साल्वेसन। सहज सहज विषया तजे, सहज कहावै सोय। देह ये प्रपंच का दास है।

।। नवरात्रि के बाद प्रभात होना ।।

- काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मान, मत्सर, मृत्यु, भय ये नव रात्रि है, उसके बाद प्रभात होता है, तब प्रकाश ही प्रकाश हो जाता है। लेकिन उल्लू पक्षी को दिन में वो प्रकाश न दिखाई दे तो वो सूर्य क्या कर सकता है? ये नवरात्रि के बाद दशहरा है। अंजन के बिना, सतगुरु की अनुभूति जो वाणी है, शलाका है। उससे अज्ञान है, उसे। दूर करने के लिये। कृष्ण ने जिसे न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः। यदगत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम कहा है। वो आचरण है। एक पद है। किससे कार्य होगा ? वो। ये जो मकार है, अनुच्चार्य है।
  उसके द्वारा हम कार्य कर सकते हैं, बोल सकते हैं। वो दिव्य शक्ति है। सत है, चरित्र है। वही आत्मा है। हमे अभी से मतलब है। भूत और भविष्य से क्या? सतगुरु जिस प्रकार, सत ये जो विशेषण है। आप दर्शन कर सकते हैं, आत्म साक्षात्कार कर सकते हैं। होता है, हमारे परिवार में है। ये सनातन है। जब तक आत्म अनुभव नही होता। तब भव-भेद मूल नाशा। व्यक्ति स्वतन्त्र हैं। व्यक्ति जो आचरण करता है, उसका परिणाम जो फल प्राप्य होता है वो भिन्न भिन्न होता है। उसी प्रकार इस मार्ग में आ जाए उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्त वरान्निबोधत। जब तक वो परम् पद का बोध नही होता, तब तक लगे रहो। वो जो अंजन है, उसको आप धारण करेंगे, तब वो होता है। काम, क्रोध, मद, लोभ जो ये नव रात्रि है। लगे रहो। जो आपको आँखों में सद्गुरु ने जो अंजन दिया है, उसका ध्यान करेंगे। वही

दर्शन पूर्ण है। जिस गुण या शक्ति के विकास से सत्य अथवा तत्व की प्रतीति हो वो सम्यक दर्शन है। तत्व को प्रयोग करने के बाद उसी परिणाम पर, पहुँचे। प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है अपने आप को जानना। इसलिये बार बार पृथ्वी पर हमारा जन्म होता है। हम मनीष कहते हैं। नवरात्रि के बाद आता है दशहरा। जहां प्रकाश ही प्रकाश है। जहां न रात है, न हवा है । तो अपने आप में समाहित होना है। जिसमे आप समाहित हो वो समाधि है। वो लक्षण को पैदा करे, हम प्रतिज्ञा करे की हम अपने आप को जानें। ये नवरात्रि से बचना चाहते हो। तोअर्धमात्रा जिसे शक्ति कहते हैं, कुण्डलिनी कहते हैं। अर्धमात्रा स्थिता। ये सब हमारे बनाये हुए हैं जिसे हम बन्ध कहते हैं। भय तो जाता नहीं, सब जगह भय, भय ही भय। भय माने चिंता। यू आर बाउंड टू। ये जो अभ्यास जो है इनरवर्ल्ड है, ये इनरसेल्फ़ के लिए है, ये कर्मप्रधान जो शरीर है, इसका नाम है संवर। जो किया जाता है सत्पुरुष के द्वारा जो आदेश है। बाहरी दुनिया जो है उसमे जाय और इगो। ये अभ्यास है जो बन्ध जो है कटता जाता है। चाह गई चिंता गई मनवा बेपरवाह। तपस्वी माने जैसा बोले वैसा होता है, जैसा चाहे वैसा होता है। तपस्वी माने सारे बन्धनों को तोड़ दिया। नाना जन्मों का कर्म जो है जो भोगना पड़ता है। सारे बन्धनों को तोड़ दिया। मुक्ति माने मोक्ष। ये अभ्यास अपने आप को जानने के लिए है। मैं करता हूँ मैं नही करता। ईगो के अर्थ होता है खूब फंसे हुए हैं। एक का करो न। नौ का क्यों करते हो, नौ माने नोकरी, एक माने आत्मा। यहां पर न मैं रह जाता है न अहंकार रह जाता है। बस सद्गुरु के द्वारा दिया गया पद्धति, आदेश का पालन हो। ईगो का अर्थ है और बड़े बदर, बन्धनों में फंसे हुए हैं। सतगुरु के द्वारा आदेश का पालन हो। गुरूजी वो

आत्मदेव है। नौकर है तुम्हारे सर्विस करते हैं। हेपनिंग्स जो होता है, जो प्राप्त होता है, वो महान शक्ति प्राप्त होता है। लेकिन ये मैं जो है, गुरूजी को मारो गोली ये मैं करता हूं। ये मैं मैं क्या है? ये गुरूजी का मैसेज, गुरुजी का काम है की तुम्हारा काम है? तुम्हारा कोई एफर्ट नही तब ये अहंकार चला जाता है। ये रहस्य है।ये सब देवलोक वासी हैं, ये आत्मकार है। नाना प्रकार के शक्ति सम्पन्न हैं, गुप्त प्रगट, कही भी आ जा सकते हैं। ऐसे लोगों को हम भगवान कहते हैं। किसी प्रकार से बन्धन नहीं। ब्रम्ह लोक, प्रजापति लोक, इंद्रलोक, पितृलोक।ये चार लोक हो गए। मानव प्राणी देवताओ को बुलाकर पुत्र उत्पन्न करते थे। मन्त्र के द्वारा जो आजकल असम्भव है। गन्धर्व लोक, यक्ष लोक, राक्षस लोक, और पिसाच लोक। ये आठ लोक हैं। इनका जन्म मरण नही। तो तात्पर्य ये है, ये दिव्य शक्ति सम्पन्न होते हैं। अब रहा तिर्यक लोक, पशु, पक्षी, हिरण इनका नाम है स्थावर। ये पाँच तिर्यक योनि अपने आप को बचा नही सकते। तिर्यक लोक ओर आठ लोक जो है। इनके बीच में मानव पड़ गया।

।। कृष्ण नाम आत्मा का है,आत्मा का धाम ।।

- भारतीय संस्कृति में आज उनकी पताका है। जिन्हें योगी और संन्यासी कहते हैं। वे हमारे धर्माचारी हैं। प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना धर्म है। धारणा जो हमारी है, हम जो कार्य करना चाहते हैं। उस विचार का एक संकल्प बनाते हैं। प्लान बनाते हैं और सक्रिय होते हैं। हमारे पास इच्छाएं हैं, वासनाएं हैं। हम इच्छा करते हैं। कि हम कुछ और रचना करें। लेकिन भय हमारा दूर नहीं होता। और जो बंधन है,

जिसको आधीनता कहा गया, ये भी दूर नहीं होते। आज जो हमारा धर्म है-उपजीविका के लिए है। जीविका (आत्मा, समाधि) के लिए नहीं है, हमें आत्मा की ओर जाना है, लेकिन हम अपने आप से दूर चले गये हैं। प्रत्येक व्यक्ति का अलग-अलग धर्म है। उसकी आदतें, उसके व्यसन भिन्न-भिन्न हैं। उसी के अनुसार वह अपना कार्य करता है। प्रत्येक का मत अलग अलग है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का मिलन नहीं हो पाता। कभी विचार मिलते है तो कुछ काल के लिए। इसलिए कृष्ण ने अर्जुन से कहा-ये जो धर्म है इन्हें छोड़ दो। हर प्रकार से, चहुं दिशा से सब तरफ से छोड़ दीजिए। इसमें कल्याण नहीं है। युद्ध के लिए तुम्हें चुनौती मिली है, युद्ध करना ही होगा, तुम स्वभाव में रहकर कार्य करो।

(स्वभाव-आत्मभाव, आत्मशक्ति से कृष्ण से अर्जुन की तरह सतगुरु से हमें मिलते होते पाते, रहकर कार्य करो। इस हेतु श्री गुरुजी ने हमें दीक्षा में जो बातें बताई हैं। उसे प्रतिदिन दोनों समय बैठकर दृढ़तापूर्वक करना हैं। तभी हम स्व (आत्मा) भाव में आकर रह सकेंगे, यह गुरुजी बोले हैं। जैसे अतिशय प्रिय को हरदम याद रखते तरह से तरह से हर तरह, हर सोच विचार में प्रेम प्यार करते हैं। उनके लिए मर मिटने की आंतरिक इच्छा से, वैसे ही हमें निरन्तर मन से करते रहना है। क्योंकि मन से चलते फिरते जो विभिन्न आसन में एक सतगुरु ब्रम्ह आत्म रूपी सुनहरा आसन है। और यह असाधारण ध्यान है। मन बुद्धि का प्रत्येक कार्य कलाप में सबमें सब जगह, क्रिया कार्य में पाते सौंपते देखते छूते रहना बाल बच्चे शत्रु मित्र सबमें सब निम्न में भी शुभता उच्चता की दृष्टि में, क्योंकि विवेक है और कार्य है, और एक वही है। सम्भवतः गुरुजी के व्यक्त में अव्यक्त में यह स्पष्ट भाव हो।)

जो आत्मा है उसकी शरण में जाओ। माने तुम अपने आपमें (आप = आत्मा = दिव्य शक्ति) समर्पित हो

(उसको वैसे विकसित करने के लिए हमें अभ्यास करना है)। मैं तुम्हारा मित्र हूँ, सेनापति हूँ।

(वैसे ही हर जगह युद्ध में, छोटे बड़े में, हम सबके लिए हम सब जैसे अर्जुन के लिए हमारे अपने कृष्ण के रूप में गुरुजी)।

उसके लिए तैयारी चाहिए।

(मृत्यु के भय से उसे छोड़ नहीं देना है। इसी जन्म में मृत्यु से मिलते उसके सिर, पैर रख कृपा से, आगे के लिए मन का एक दृढ़ संकल्प, सम्भवतः)

इसे छोड़ना नहीं है, करते जाना है। तथा उस शक्ति (महाशक्ति, गुरुजी, डिवाइन पावर) को प्राप्त करना है । उसकी शरण में जाना है।

(जैसे कोई राजा के अतिमित्र का ताकत राजा का ताकत हो, किन्तु उसके पास कुछ न हो),

आत्मा ही परम है। आत्मा ही गोल है। और वो तुम्हीं हो। अर्थात अपनी शरण में जाना है। अपने में समाहित (विराट में घुसकर जैसे वह क्षुद्र, वह देह, विराट हो) होना है। जो आत्मा है, उसमें प्रवेश करना है। दृढ़ता पूर्वक अभ्यास से जितना बने, होशो हवास में बुद्धि को पीछे लगा देना (चाहिए) है। बलपूर्वक याद करना चाहिए। ये संकल्प चाहिए कि ये मैं हूँ, और मुझे ये प्राप्त करना है।

(संकल्प की दृढ़ता की वृद्धि अग्रसर मात्र ही मानो सफल कर देने में सक्षम हो, जो ध्यान, धारणा, समाधि हो, सम्भवतः)

वह आपका ही है। खाली प्रक्रिया (स्मरण, प्रेम, समर्पण, विवेकपूर्ण, अभ्यास, बैठना, सदैव चलते फिरते बैठना, बैठे रहना) से उसे विकसित करना है। अपनी बुद्धि को जिस समय (ऐसे) आत्मस्थ कर देंगे याने सुषुम्ना में घुसकर

(सुषुम्ना में सबका हमारा प्रवेश अवश्य हो यह विनती प्रार्थना है उनसे, बस हम अपनी उच्चता निम्नता को छोड़, सब छोड़ कुछ देर, बस चरण शरण में, पूर्ण में हो, क्षमा मिले)

मृत्यु केंद्र को पारकर। आज्ञा चक्र में तुर्यावस्था में आयेंगे। तब सब अभाव दूर होंगे। आप निर्भय हो जाएंगे। जीवन तब सम्यक जीवन होगा। तब वह शांत्यावस्था होगी। इस अवस्था में हम समाज के काम आ सकते हैं। और समाज में आदर्श स्थापित कर सकते है। ऐसा जो स्वयं अनुशासित है। जिससे सारा जग अनुशासित है। जो महाशक्ति है, आत्मा। ये लक्ष्य में लाना है। ये अभ्यास करके प्राप्त कर लेना है। अब इतना बड़ा देव (आत्मदेव) जो हमारे अंदर है। उसको छोड़कर किस देवता का हवन करें किसकी आहुति देवे? जीवन काल में अंतिम सांस तक आप इसे छोड़ेंगे नहीं। आपको साधना करनी होगी। अनुष्ठान करना होगा। स्व स्वरूप का संधान, अनुसंधान ये कभी नहीं छोड़ना है। ये सहज

(साथ साथ, बाहर भीतर के कार्य साथ साथ, प्रपंच वेदांत साथ साथ, सम्भवतः)

होना चाहिए। ये भव है अपने आप होता है। खाली बैठना है।

(मात्र, गुरुचरण में नमन, मन वहां अपना नहीं है, स्थिर आसन में कुछ मिनट, चलते फिरते आसन में हरदम समर्पण लेकर, स्वतः स्फूर्त होने लगे, कुछ भी न करना पड़े वैसा, तब भी विवेक के दृष्टि स्मरण में, हरपल जैसा, सम्भवतः)

हम भ्रूमध्य (दोनों भौहों के मध्य ललाट में) में देखते है। तो धारणा के साथ नित्यअभ्यास करते रहने से दीर्घकाल में आपकी भूमि दृढ़ होती जायेगी। रास्ता बनता जायेगा। रुकावटें दूर होती चली जायेंगी। पौराणिक लोग जिसे गंगा, यमुना, सरस्वती कहते है। तथा तांत्रिक जिसे इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना कहते हैं।

ये त्रिवेणी (आज्ञा चक्र में इन तीनों का मिलन) संगम है। (प्रकाश, से, में, का स्नान, प्रकाशमय स्नान) सब जगह प्रकाश ही प्रकाश हो जायेगा। ये सगुण साकार है। निर्गुण निराकार वह शक्ति है, वो निर्गुण निराकार है, तो करेगा क्यों? लेकिन नहीं, वो कुछ न करते हुए सब कुछ करता है। और सब कुछ करते हुए कुछ नहीं करता। वही गुण हमारी शक्ति बन जाती है। होनी को अनहोनी और अनहोनी को होनी-करने में वो समर्थ हो जाता है। खाली पठन नहीं, गुण ग्रहण करना पड़ता है, तब वही गुण बदलकर आपकी शक्ति हो जाती है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति माने सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण इन तीनों पर जब संयम हो जाता है। तब मृत्यु आती है। मृत्यु को लांघने के बाद उसे ज्योति दिखती है। सब दिखता है। अनेक जन्मों का जिसे वो साक्षी भाव में होकर देखता है। आज्ञा चक्र में, पूर्ण रूप से सम्यक रूप से ये जो प्राण है, वहां उसे ले जाकर स्थापित कर देने से-वो जो पुरुष है। दिव्यत्व को प्राप्त हो जाता है। याने तब वह स्थिर हो जाता है, कैवल्य (केवल एक में, एक कि क्षमता में सम्भवतः) को प्राप्त होता है।तब उसको एस्ट्रल बॉडी (ज्योतिर्मय शरीर) प्राप्त होती है। बुद्धि इतनी प्रखर (ज्योति की विराट शक्ति में शक्तिमान दग्ध जैसा, सम्भवतः) हो जाती है कि उसे भूत भविष्य आदि का ज्ञान हो जाता है। और वो कालजित हो जाता है। जब तक आप बाहर सांस ले रहे है और छोड़ रहे

है। तब तक आप काल के अधीन है। जब तक आप सुषुम्ना में है, काल मंडराता रहेगा। (किन्तु वह)पर कभी आपको छू नहीं सकता। शरीर प्रकाशमय हो जाता है। तो ये वो शरीर है -जो शस्त्र से काटा नहीं जा सकता। न आग से जलाया जा सकता है। न ही पानी से भीगता है। न हवा से उड़ सकता है। ये अभ्यास से होता है। नवीन प्राणी का जीर्ण वस्त्र त्यागकर नया पहन लेना-यह संकेत मात्र है। स्थूल अन्नमय शरीर को हम यहां रख देते हैं। और सूर्य रूपी आत्मा की एक किरण है जिसके द्वारा सरक्यूलेशन (रक्त संचार, परिचालन) तथा रैस्पिरेशन (श्वास क्रिया, श्वसन) -दोनों का संचालन होता है। एक प्राण जो कि डिवाइन क्वांटम ऑफ एनर्जी। जो अभी अदृश्य है, जिसे आप देख नहीं सकते। लेकिन गुरुदिश मार्ग से जब वो प्राण तप जाता है। पश्चिम मार्ग (रीढ़ की हड्डी से) से सुषुम्ना में प्रवेश करता है। तब बाहर का श्वास प्रश्वास शक्ति के रूप में, कभी चंद्रमा कभी सूर्य बन जाता है। ज्योति दर्शन होने लगता है। ऐसा होते आप ऊपर चढ़ने लगते हैं। दोष प्रक्षालन हो जाता है। बाहरी श्वास प्रश्वास के अभाव में गिरता भी नहीं, सड़ता भी नहीं, फिर भी आप जीवित रहते हैं। जैसा रखो आप, फिर चाहे कितने बरस रखिये आप, दिव्य दर्शन होते हैं। दिव्य लोक में पहुंचे हुए जो संत, महात्मा, अवतार है। वो सब मिलते हैं। उनसे बातचीत होती है, समाधान होता है। शरीर छोड़ना न छोड़ना उसकी इच्छा पर निर्भर है। आनन्दमय कोष और विज्ञानमय कोष में रहकर उसका बोध होता है। वहां एक मात्र ज्ञान रह जाता है। ज्ञान माने आत्मज्ञान। डॉक्टर कहेगा वो मर गया लेकिन वो मरता नहीं। ये हो गई, देहावस्था। वो ज्योति इतनी प्रचंड हो जाती है कि अखण्ड मंडलाकार। लाइट इतनी अधिक बढ़ जाती है- कि सारा लाइट ही लाइट

हो जाती है,व्यक्ति लाइट से भर् जाता है।यह है रूप स्थिति। रूप माने ज्योति।

(रूप शब्द जब ज्योति है, इसलिए सभी रूप भी ज्योति है, मूलतः है, सम्भवतः, क्योंकि गुरुजी के शब्द वाक्य हैं कि एक ज्योति के सिवाय कुछ भी नहीं है)

ब्रम्हरंध्र में-आज्ञाचक्र का लंघन करके जब प्राण सहस्त्रार में जाते हैं, उस परम को हम जब स्थापित करते हैं। तब वो ज्योति सारे विश्व में फैल जाती है। याने निर्गुण निराकार सगुण साकार हो गया। आपको इससे भी परे जाना है। फिर जब ब्रम्हरंध्र में आसन जम जाता है। सभी संस्कारों का निरोध हो जाता है। इसके बाद है स्वरूप शून्य स्थिति। देश काल के परे । वो सबका गुरु है, वही परम धाम है। कृष्ण ने भी कहा है-वो मेरा धाम है। कृष्ण नाम आत्मा का है। वहां पहुंचने के बाद आज कृष्ण, कृष्ण हैं।

- जो नियम के विपरीत चलता है। वो दण्ड का पात्र होता है, हम हों या और कोई हो। अगर हम आचरण नही करते तो दूसरों को कहने का अधिकार नहीं है। कोई भी सामजिक व्यक्ति को, एक व्यक्ति की तुलना में दो रोटी, दो लँगोटी, छोटी सी जगह दवा और कुछ व्यापार बस, उतना ही चाहिए। जो कुछ भी आपके पास है उसमें अपना निर्वाह करना चाहिए। यथा लाभ संतोषः। सत्य को नहीं छोड़ना चाहिए। ध्येय -ये हमारा बल है।आत्मबल अभ्यास से प्राप्त होता है। आत्मबुद्धि के बाद विकार रूपी जितने कार्य होते हैं, समाप्त हो जाते हैं। कोई भी प्रसंग हो उसको सहन करने की शक्ति होनी चहिये। श्रद्धा इसके बिना काम नहीं होता। हम कुछ भी नहीं हैं। अभ्यास से आप सामर्थ्यवान बनते चले जायेंगे।

आत्मा निर्मल है। आत्मा परम्, अचल, अविनाशी, सर्वत्र, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अजर, अमर, सदा पूर्ण, परमतत्व है। आत्मा का स्वभाव, साधना काल में ऊपर की ओर (ऊर्ध्वगति) जाने का है। मन के साथ भाव का पूर्ण समर्पण होना चाहिए, इसे ही सही समर्पण कहते हैं। सद्गुरु के प्रभाव से साधक को जो अनुभव होता है। वह भावातीत स्थिति कहलाती है। सद्गुरु के प्रभाव सानिध्य में साधना द्वारा जब तक सुषुम्ना नहीं खुलता। तब तक वह अंतर्जगत में नहीं जाता। साधकों की बुद्धि जब मणिवत हो जाती है। तब आकाशवाणी के द्वारा उन्हें (ऊँ) श्रवण में आता है। इसी को नाद ज्ञान कहा जाता है। आत्मा का नाम भी ऊँ है। जब बुद्धि अपने आप में, समाहित हो जाती है। तब साधक की अवस्था - निरोध कहलाती है। अंतर्मुखी गति रहित, होने की स्थिति को भी निरोध कहते हैं। योग-मिलन। ई-दिव्य शक्ति। योगी-दिव्य शक्ति मिलन। योगी व सिद्ध जीव को वेदनीय कर्म नहीं बांधते। यहाँ पर कर्मों की निर्जरा मात्र होती है। योगी अपना हित व अन्यजनों का हित चाहते हैं। वे हित करवाने में सक्षम होते हैं। लोगों से भी हित करवाने में पूर्णरूपेण वे सक्षम हो जाते हैं। ये अपार शक्तिशाली नवनिधियों व अष्टसिद्धियों के धारक के प्रति समर्पण भाव रखने वाले भी अपना आत्मकल्याण करने में सक्षम हो जाते हैं। गुरु की सेवा ही विनय है। आत्मा को जानने के लिए स्वयं अभ्यास करना होगा। इसे आत्म साक्षात्कार से ही जाना जा सकता है। इसके लिए सद्गुरु की कृपा की आवश्यकता है। केवल शास्त्रों के अध्ययन से यह कभी भी संभव नहीं। अंतःकरण पूर्वक ध्यान लगाने का प्रयास करना पड़ता है। आत्मानुभव सद्गुरु के प्रभाव से ही संभव है। तन से अध्यात्म भाव की ओर अग्रसर होना- तन का मौन है। असत्य, अप्रिय, लोभमय,

क्रोधमय, अभिमान युक्त, न बोलना - वचन मौन है। आत्मा से भिन्न चिंतन न करना, यह - मन का मौन है। मौन-के द्वारा आत्मा, अशुभ वृत्ति, प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त कर लेती है। मौन अवस्था में क्रिया सम्यक ज्ञान पर होनी चाहिए। मय प्रमाण से जीवादि तत्वों का यदि बोध हो तो सम्यक् ज्ञान समझना चाहिए। जिस गुण या शक्ति के विकास से सत्य अथवा तत्व की प्रतीति हो - सम्यक दर्शन कहलाता है। काशायदिक भाव और राग द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, भय, मान, घृणा, लज्जा आदि की निवृति से प्राप्त होने वाला स्वरूप - यह सम्यक चरित्र है। साधना के माध्यम से साधक इन रत्न त्रयों को प्राप्त कर मुक्तावस्था को प्राप्त कर लेता है। बुद्धि की - प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति, यह पांच वृत्तियाँ हैं। जब बुद्धि इन वृत्तियों से रहित होती है, तब वह शुद्ध बुद्धि कहलाती है। आध्यात्मिक संसार के परिवार में: धैर्य - पिता है। क्षमा - माता है। शांति - पत्नी है। सत्य, अनुभव के बोल - पुत्र है। दया - बहिन है। संयम (ब्रम्हचर्य) - भ्राता। भूमि - शय्या। दशो दिशा - वस्त्र। अमृत (मुक्ति प्राप्ति की साधना) - भोजन है। मानव साधना के माध्यम से इस परिवार को प्राप्त कर सकता है। ब्रम्हरंध्र केंद्र पर साधक अपने को स्थापित कर लेता है। तब इस स्थिति में उसकी कुँडलिनी स्थायी हो जाती है। यहाँ पर लोभ, भय, षड् विकारों से दिन रात देश काल सबसे परे हो जाता है। भव के संस्कार पूर्णतः नष्ट (जितेंद्रिय) हो जाते हैं। विदेही की स्थिति हो जाता है। जगत में इससे महान कोई आत्मा नहीं है।

- आत्मा एक संकेत मात्र है। वो है आनन्दविहार,आचरण। उसका परिणाम ये है बुद्धि स्वच्छ और शुद्ध रहती है। ये बुद्धि स्वच्छ हो जाती है।

सत्व नाम बुद्धि का है। अभ्यास से ये सम्यक् शुद्ध हो जाती है। तब ये आनन्द जो है ये एक संकेत मात्र है और मकार वो दिव्य शक्ति है। वो आत्मा है। वही परम् है। तो एक प्राण को-जब गुरुदिश मार्ग से अभ्यास करके, जिसको प्रत्याहार कहते हैं। बाहर से खींचकर भीतर ले जाएं। बिना किसी प्रश्न के बिना किसी शंका के। तब आपकी बुद्धि शुद्ध होती जाएगी। इसी बुद्धि के दुर्गुण, जो क्लेश पहुँचाते हैं। और नाना जन्म भोगने में लगाते हैं। और आत्मा को भी बाँध रखा है, के दुर्गुण जब सद्गुण में बदल जाते हैं। सब दोष दूर हो जाते हैं। तब वो सब टाल सकता है। सब बदल (प्रारब्ध) सकता है। ये जो विषय है। ये विषय नही, विषयातीत है। ध्यान से जो हमारे विषय है, वो बाहर चले जाते हैं। और हम निर्विषय हो जाते हैं। बुद्धि शुद्ध हो जाती है। भीतर का क्रम ये अभिक्रम है। ये कर्म करना है। ये है निष्काम कर्म। इसका नाश कभी नहीँ होता। न ही उसका उल्टा फल या दोष भी नही है। वही सुषुम्ना जहाँ हमारे सारे संस्कार भरे हुए हैं, न्यूरोन्स में। जिसको सहस्त्रदल कमल कहते हैं, फिळम टर्मिनल से अंदर जाने पर सब होता है। ये देह अत्यंत मलिन है, देही (आत्मा) अत्यंत निर्मल है। असंग होने का बोध होने, बुद्धि के विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय आदि) दूर होकर आप शुद्ध हो जाते है। शुद्ध होने के प्रमाण है। आपकी प्रतिभा जाग्रत हो जाती है। आप सुनने लग जाते हैं, ऐसा ऐसा है। आप अपने आश्रित, सम्बंधित लोगों के सुख दुःख में अनजाने ही पहुँच जाते हैं। कहीं के भी दृश्य का दर्शन हो जाता है। जब तक हम अपने आप को नहीं जानते। हम कुछ भी नहीँ जानते। तब तक हममें कोई क्षमता है, और न ही हमारा कोई विश्वास करता है। हम ही अपने पर विश्वास नहीं करते, तो हम पर कौन विश्वास करेगा। इसलिए

पहले हम अपने आप को जाने। अभी जो हम क्लेश ही क्लेश भोग रहे हैं। वे सब दूर होंगे। इसी गुण या शक्ति के विकास से हमारे दोष, विकार सब दूर हो जाते हैं।आत्मा स्वयं ज्योतिर्भवती और यही साक्षात्कार है। तब होता है सत्व पुरुषयोः शुद्धि साम्ये कैवल्यं। तब ये बुद्धि शुद्ध हो जाती है। ये तुर्यावस्था का कैवल्य है।आगे और है। देशकाल से परे। जब तक तुम्हारी बाहर सांस चलती है। तब तक विचारों के उदय अस्त का कभी निरोध नहीँ होता। इसमें कोई दूसरा भाव नहीं है। अभ्यास करने से धीरे धीरे प्रत्याहार होता है। विषयों से शरीर बदर होता जाता है। रक्ताभिसरण बन्द होने लगता है श्वसन संस्थान भी शिथिलता को प्राप्त होती है। ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ भी अपने अपने केंद्र में चली जाती हैं। होते होते आपका जी घुटने लगता है। आप सोचते है की कहीं मरण तो नहीं आ रहा? मरण तो एक दिन होने ही वाला है। तो जीते जी अपना मरण देखो न। तुकाराम जी ने बताया की मैंने अपनी मौत अपनी आँखों से देखा। तो ऐसी तैय्यारी होनी चाहिए। जिस प्रकार हम बाहर के अभ्यास, अध्ययन की तैय्यारी करते है। उसी प्रकार तन्मयता, तल्लीनता और दृढ़ निश्चय से इसे प्राप्त कर लेना चाहिए। बुद्धि जड़ है, भोग्या है, चंचल है, परिणामी है(सुख, दुःख, लोभ, मोह, भय, ये सब परिणाम है, मैं मेरा, तू तेरा, मान अपमान ये सब विकार है) आत्मा चैतन्य है । अपरिणामी है, भोक्ता है। भोक्ता इसलिए की अध्यारोप है, छूट गया तो मुक्त हो गया। इस अध्यारोपित आत्मा को जीवात्मा बताया गया।, संस्कृति है- उन आचार्यों के कारण जिन्होंने शास्त्रार्थ (शास्त्र का गुढ़ अर्थ) को अपने में संचय किया। और उसे अपने लिए, समाज के लिए, राष्ट्र के लिए,धर्म के लिए, सभी लोगोँ के हित के लिए काम में लाया। मान

प्रतिष्ठा है संस्कृति की। अपने आप को जानने का अधिकार मानव प्राणी मात्र को है। यहाँ सारे भेद समाप्त है। जिनके स्मरण मात्र से किसी का भी काम बन जाए फिर चाहे वह उनका शिष्य हो या न हो। ऐसा सद्गुरु, सत्पुरुष होना चाहिए। किसी को दोष नही देना चाहिए। सब उत्तम है सब अच्छे हैं। प्रसंशा ही करते रहना चाहिए। कभी किसी की निंदा, किसी पे शंका, किसी से घृणा नही करना चाहिए। ये आत्मा है। ये बुद्धि है ये सारा खेल बौद्धिक है। इसलिए बुद्धि को अच्छे से समझ लेना चाहिए। आत्मा को समझ लेना चाहिए।

।। आचरण और ऊर्ध्ववत सेंटर ।।

- भारत ज्ञानियों का देश है। पहले सभी ज्ञानी थेयहां ज्ञान की गंगा बहती थी। पक्षी भी संस्कृत बोलते थे। संस्कृत माने आत्मा की भाषा। अब वो पाताल हो गया है, और पाताल , स्वर्ग। काहे का स्वर्ग, पाताल (अमेरिका, सम्भवतः) पाताल ही है। फिर से इस संस्कृति को, भारतीय संस्कृति को अगर पनपाना है, चमकाना है। तो आत्मा की ओर आना ही होगा। सत्यम वद, धर्मम चर। धर्म माने आत्म धर्म।और वो है आचरण।चरित्र, (चारित्र्य) बनाना ही आचरण है। अब समझ लें आप। आज इसी की (चरित्र मय आचरण की) आवश्यकता है।

- बिना सब तरफ से मन को समेटे ईश दर्शन नहीं होता। वासना दूर होते ही परमात्मा दिखाई पड़ता है। जब साधक की सभी विचार तरंगें मन में समा जायें, तब वह शक्तियुक्त हो जाता है।
  बाहर के संस्कार अशान्ति उत्पन्न करते हैं। इन संस्कारों को एक एक

करके हवन कर देना है। वृत्तियों के क्षीण होने पर विकार नष्ट हो जाते हैं। बुद्धि त्रिगुणमय है, इसे गुणरहित करें तब पुनर्जन्म नहीं होगा। इसके फल को भोग विराग कहते हैं। विराग ही समापत्ति है। ब्रम्ह अवस्था रहित और प्रकृति अवस्था सहित है। तीन अवस्थाएँ, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति, तीन गुण की हुई। जहां पर प्रकृति अवस्थारहित हुई, हलचल बन्द हुई, ब्रम्ह के स्वरूप में परिणत हो गई। उसका लय करना है, माने प्रकृति (अवस्थासहित) ब्रम्ह (अवस्थारहित) के सम्बंध को जान लिया, उसी का अभ्यास करना है। ब्रम्ह के समान सत्तावान बनना है।

संकल्प है तो विकल्प भी है, इसलिए दृष्टा भी नहीं दृश्य भी नहीं, ऐसा (ब्रम्ह) है। जब चित्त शुद्ध हो जाता है, तब वह मणिवत हो जाता है, और तब अतीत अनागत दिखने लगता है।

प्रारब्ध माने पूर्व का जो संस्कार लेकर आये हैं। अभ्यास किया और जन्मना जायते शुद्रः से प्राप्त को मिटा दिया। काम-क्रोध लेकर जो पैदा हुआ, अभ्यास के द्वारा ये विकार मिटते जाते हैं। नये संस्कार अपने में डालकर, शिक्षा दीक्षा के द्वारा विद्वान और सामर्थ्यवान हो जायेंगे।

आंखों के सामने का दृश्य या कानों के सामने की ध्वनि होते हुए भी, मन यदि बुद्धि के साथ और बुद्धि आत्मा के साथ संलग्न है। तो मन पर दृश्य या ध्वनि का परिणाम नहीं हुआ या संस्कार नहीं बने। प्रकृति, साम्यावस्था को प्राप्त कर, या शुद्ध सतोगुणी होकर, प्रति प्रसव के रूप में पुनः ब्रम्ह स्वरूपा, रूप में प्रतिष्ठित हो गयी। प्रेक्टिस इस टू अटैन द वैक्यूम आर थाटलेस स्टेट।

- षष्टम भूमिका के ऊपर, षष्टम भूमिका और सहस्त्रार में।और चक्र है, वहां वह पहुंच जाता है। जो कि 12 वां जो है।ऊपर एक चक्र है जो गोलाकार है।ये आठ दल वाला,परम अवस्था है।षष्टम भूमिका के थोड़ा सा ऊपर,किंचित ऊपर।ये आठ जो हैं, उर्ध्ववत सेंटर के लिए मन हैं।और ये अपर सेंटर के लिए मन है।और दोनों क्षुब्ध होके और शक्ति आ जाती है।वो सोलह है।सोलह जो मात्रिका है।विशुद्ध चक्र में भी सोलह है,लेकिन ये लोवर।अपर सेंटर ये सोलह हैं।सहस्त्रार के लिए।षष्टम भूमिका बस वही प्रवेश है।प्रवेश वही है,षष्टम भूमिका के,नीचे से ऊपर।नीचे से ऊपर सुषुम्ना वहां तक है,वो सोलह दल कहा है।दल को कहते है कोण।ये आठ दल है,याने आठ वर्टेक्स हैं।ये अपर सेंटर में हैं।ये है ऊर्ध्वगति।ये सुपर कांसस में आ जाती है।सोलह हां।मनस चक्र(आज्ञा व सहस्त्र के बीच में)बताया उसमें ऊर्ध्व त्रिकोण है।मनस चक्र,सोम चक्र,ये आठ दल है। ये अपर सेंटर है।ये सुपर कांसस है। सोलह चक्र। ऊर्ध्व त्रिकोण में क्या है? मालूम है। माने जब सुपर कांसस (मूलाधार-सब कांसस, अनाहत-कांसस) जब हो जाता है।तब उसका कार्य कैसा होता है?ब्राम्ही विचार,ब्राम्ही शक्ति और ब्राम्ही कला।ब्राम्ही माने महान।वहां ज्ञान है।यहां कला है।विचार माने जो कुछ स्फुरण होता है,वो कुछ नहीं जानता है। कहाँ से स्फुरण होता है।स्वयं होता है वो।विचार आता है,अपने आप होता है।वो शक्ति है,समय पर जो आती है।तुम खाली ऐसा बैठो हो जाता है।तुम खाली पड़े रहो,हो जाता है।युक्ति है तुम ऐसा कर दो,हो जाता है।किताब में कहीं नहीं हैं।क्या?युक्ति है कुछ मालूम नहीं।तुम ऐसा कर दो।तुम खाली ऐसा बैठो।वो हो जाता है।खाली पड़े रहो,वो हो जाता है।कला प्रैक्टिकल साइड होता है।माने स्योरली,डट के।

स्योरली और शक्ति से है।और प्रैक्टिकल साइड में भी शक्ति से है। दोनों से प्राप्त है।तो ये दोनों मिलकर ये शक्तियां आपको मिल जाती हैं। ये नवनिधि जो है।आपमें मूलमंत्र की तरह हो जाता है। और ये शक्तियां आठ दल (मनस चक्र में भी है सम्भवतः यह भी हो) हैं।अष्ट सिद्धि, नव निधि, ये अभ्यास करके है। इस तरह से सारा कुछ इसमें है। सारा रहस्य, सारा खेल जो कुछ है। उसके अंदर है।इसलिए जैसे आप अभ्यास करते हैं, बराबर हो जाता है। ऊर्ध्व त्रिकोण क्या होता है?विचार है, शक्ति और कला।सारी शक्तियां जो हैं, सोलह भाग में विभाजित होता है।सब काम होता है।ये नव त्रिकोण है।सोलह प्रकार की शक्तियां हैं। और सोलह मात्रिका हैं, ये शक्तियां हैं। ये शक्ति ही मात्रिका है।शक्ति के भेद हैं।सोलह जो भेद हैं।जो पूजा-वूजा जो करते हैं,सोहल मात्रिका। ये मनस चक्र जो है,सोम चक्र जो है,सोलह कला।ये आपमें सब मूल मंत्र की तरह हो जाते हैं।ये सोलह आपके हो जाते हैं।अष्ट सिद्धि और नव निधि।जब ऊपर आ गया तो परम।परम शांति।माने अन-आहत।माने संसार का कोई भी उस पर आघात-प्रतिघात करने पर वो आहत नहीं होता है।सिक्स्थ सेंटर में जो हैं वो डिग जाते हैं।लोवर सेंटर में कभी आता नहीं उसी का नाम है-परमहंस।स्वामी रामकृष्ण हुए परमहंस।ये पिनियल है न।ज्ञान नेत्र समादाय उद्धेरेती वन्निवत। परं, निश्चलं, निष्कलं, शान्तं।ब्रम्ह अहं,च, इति स्मृतं। वो, उसको ब्राम्ही स्थिति। इसी को कहते हैं, आत्मशक्ति। आत्मशक्ति माने बिना देखे वो काम करके आ जाती है। उसकी कोई अवयव नहीं।पिनियल में है, इसी का नाम है, परा शक्ति।तीन आकाश में हम लोग रहते हैं।एक भूताकाश, एक चित्ताकाश,और एक चिदाकाश। अभी सब भूताकाश है, भूतानंद है, सब

भूत है। भूत में सब फंसे हैं।मर रहे हैं। एक भूताकाश ये मन है। उस के बाद है चित्ताकाश जहां सब संस्कार जाके जमा होते हैं। तो वही अपर जो फोर्थ वेंट्रिकल (माने फेस) जो हमारा है। यही आब्लाकार्डेनँगुवुलर साइड है। वो भी वैसे इतने बने कोण है। वो ज्योति जो कोण है। मन जो है, बुद्धि में हैं।त्रिकोण है। एक है मन,एक है बुद्धि,एक है चित्त।पिनियल अभी तक खोज में है।अरे बाप रे, वही तो परकाय है।परकाय शक्ति। जीवनी शक्ति। वही ज्ञान नेत्र है, वही शिव नेत्र है। जैसे लकड़ी है,अग्नि फूंक फांक के, लकड़ी जल गये हैं। ऐसे जब वो। वैसे जीवन उद्धार करना है। जीवन उद्धार है।वैसे आवरण पड़ा है जब तक भोग है। वो जहां आवरण हट गया, झट ज्योति दर्शन। उद्धेरेती परम। ये है शांत्यावस्था।

।। अपने आप में रत होना,अयं आत्मा ।।

- दृष्टा, दृष्यरहित स्थिति में ऐसी संधि पड़ती है, उस संधि में {सम्भवतः दृष्टा दृश्य दोनों एक है के अवलोकन (जो संधि हो) में भाव हो} आपको ठहरना है। सर्वदा इसी स्थिति में रहने से समाधि आनन्द प्राप्त हो जायेगा। उस स्थिति में साधक जो बोलेगा वही होगा।

  ब्रम्ह इन्द्रियगोचर नहीं है, इसलिए आपको सत रज तम इन तीनों से परे होना है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति से परे स्थिति में (केवल गुरुकृपा से हो) अधिक से अधिक काल तक रहने / ठहरने, का अभ्यास करना है।

  जब तीनों गुण, बुद्धि शुद्ध होकर प्रकृति में लीन हो जाती है, प्रकृति भी शुद्ध होकर जब पुरुष में लीन हो जाती है। तब उसकी शक्ति अलौकिक हो जाती है। तब वह राम और श्याम से कम नहीं।

  जिस काल में पुरुष मन में स्थित समस्त सम्पूर्ण कामनाओं को भली भांति

त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट रहता है, उस काल में स्थित प्रज्ञ कहा जाता हैं। गुरुजी ने इसे नवनिधि कहा है। इसे प्राप्त करने के बाद कुछ भी प्राप्त करना बाकी नहीं रहता है।

यह सब अभिनय है जो आप संसार के लिए कर रहे हो। अपने आप को स्व में लाना है, यह नाम किसी का दिया / रखा, हुआ है। उस स्व में ठहर / स्थिर हो गए तो पूर्णता की ओर चले।अकर्ता होना है, श्वास चल रही है आप कुछ नहीं कर रहे है, मात्र दृष्टा है।

आनन्दमय कोष इस अवस्था में शोक, चिंता,दुःख साधक को कुछ नहीं व्यापता। सब कार्य अपने आप होते रहते हैं। साक्षी भाव से भोगते हुए आगे निकलता चला जाता है। यह भारतीय संस्कृति और विज्ञान है।

आत्मज्योति यह इतना सुंदर है कि उसमें लीन होने से सब कुछ आनन्दमय हो जाता है। पुण्य पाप से परे हो जाता है।

आत्मा जो दिखती नहीं, वही निरंजन है-वह निरंजन तुम ही हो। आत्मा सदा प्रकाशित है, सदा ज्योति में है। यही हमारा सिद्धांत है, अपने आपको जानो। बाह्य संवेदना शुन्यत्व के बाद काम, क्रोध, लोभ, मोह सब अपने आप छूट जाते हैं। तुर्यगा-अहंकार का त्याग, चित्त का विलीन होना है।

उत्तम साधना से देह की तीनों अवस्थाओं, तीनों गुणों पर साधक को संयत लाभ हो जाता है। तब वह तीनों गुणों को पार करके-महाकारण देह, तुर्यावस्था या शुद्ध सतोगुण में लीन हो जाता है। तब उसे भूत भविष्य का ज्ञान ही नहीं, उनका संकल्पित कार्य, सभी कार्य सिद्ध हो जाते है।

दृश्य का उसके मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। द्वैत से मुक्त होकर सदा भगवान की अप्रत्यक्ष अनुभूति करते रहता है। इस अवस्था में शोक, मोह, भय, हर्ष, दिन,रात, देशकाल नहीं रह जाते केवल सतचिदानन्द

प्रभु ही रह जाते है। यह दशा आती नहीं तब तक संशय नहीं जाता। जब वह अपने आप में लीन हो जाता है, तब योगक्षेमं वहाम्यहं स्वयं होने लगता है।

सुषुम्ना खुलने के बाद फिर कर्मफल नहीं बनता, जब एक भी संस्कार बाकी नहीं रह जाते। तब बुद्धि प्रकृति में, प्रकृति पुरुष में लीन हो जाती है। यही मोक्ष है।

एबव टाइम एंड स्पेस की अवस्था होती है-यह बिना सतगुरु प्राप्त नहीं होता।

जिस दिन विचार बन्द हो जायेंगे, समाधि लग जायेगी। तब वह भूत भविष्य जानने में समर्थ हो जाते हैं। गुरुशक्ति से सब कार्य होने लगते है। स्वरूपशून्यम-ये ज्योति जो दिखती है वो भी नहीं रहेगी, कुछ भी नहीं रहेगा। यही समाधि है।

आत्मानुभव-ये सतगुरु के प्रभाव से ही सम्भव है। अंतर्मुख होकर यदि हम पुरुषार्थ करें तो अपने आप को जानेंगे। अपने आप में रत हो जाए तल्लीन हो जाए तो, प्रत्येक आत्मा परमात्मा बनने में सक्षम है।

- बाहर की सब प्रगति कोई काम का नहीं है। अभ्यास तो करना ही पड़ेगा। अगर आप अभ्यास करेंगे तो हमारा आशीष और बल, आपको है।

इच्छा स्त्री है। अज्ञान है संकट है-इच्छा कम करो-काम, क्रोध, लोभ, मोह, सब भाग जायेंगे।

मौन होने पर ही विकार नष्ट होंगे, भविष्य में क्या होने वाला है-गुरु वाणी, गुरु आदेश, आपको सुनाई पड़ने लगेंगे।

इष्ट के चरणों में पड़े रहना है। इष्ट के गुणों को मन में लाकर भावना देते जाना। इष्ट हमारे शक्ति देने में समर्थ है, इस प्रकार इन भावनाओं से

अपने मन को ओत प्रोत कर देना।
इष्ट माने जिस पर आप पूर्णांश अपना जीवन सौप दिये, वह जो करेगा, वह बराबर है, बाकी हम नहीं जानते।
ऐसी जो शक्ति है। उसे आप याद करें । उस नाम का जप करें।
साक्षी भाव में रहना है-आप देखते जाइये, कभी भी हानि होने का नहीं, कभी भी नुकसान होने का नहीं।
जगत में सबको दोस्त समझो, सदैव सीखो-यह मंत्र चेतन मंत्र है।
असत रूपी जगत जिससे भासता है, उसी का नाम मन है। अविद्या, मलिनता, और मन-ये सब मन के नाम है।
अभ्यास के द्वारा चित्त वृत्तियां संयमित हो जाती है, अधिक से अधिक देर तक आत्मस्थित रहो। उसमें भ्रम, संशय नहीं रह जाता, क्लेश दुःख, अभाव नहीं रह जाता, कर्म करते करते सुख प्राप्त करता है-ब्रम्ह, बेमन हो जाता है।
जब हमारा चित्त उस सत से आकर्षित हो जाता है, तब परम आनन्द की प्राप्ति होती है।
आध्यात्मिक विचारों से ही ज्ञानोदय संभव है। मन में उठने वाले संदेहों के निवारण के लिए सद्गुरु से प्रार्थना करना चाहिए। अज्ञान का नाश होने पर प्रत्येक शरीर को आत्मा का आभास (सबमें, सब जगह) होने लगेगा।
आत्मा अपने ही प्रकाश से शोभित है-वह नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, चिदानंद है।
समस्त विघ्न बाधाओं, दुःख, असंतोष से असम्बन्ध होना, आनन्द का अनुभव होना, मन का शांत होना-मोक्ष है।
परम तत्व में स्थिर,मिथ्या हुई दृष्टिकोण से मुक्त, सांसारिक सुख-दुःख, संपत्ति-ऐश्वर्य, मान-अपमान में सम / निर्विकार, रहना-जीवन मुक्त है।

उस सत्ता को जानने में बुद्धि सामर्थ्य हो जाने के बाद आनन्द होता है, वह है-सच्चिदानंद।

जिन पुरुषों ने आत्मा को जाना है उन्हें जगत आकाश से भी शून्य भासता है। (न जानने वालों को कोलाहल पूर्ण)

देह भाव समाप्त होते जायेगा, आनन्द में वृद्धि होती जायेगी।

विवेक:आत्मा सत्य है। वैराग्य:लौकिक, परालौकिक भोगों से अनिच्छा। भाव, प्रकृति-चेतनता को प्राप्त करना है। शम-वासना का त्याग। क्षम-बाह्य इंद्रियों को विषयों से रोकना है। तितिक्षा-शीतोष्णादि द्वंद धर्मों की सहनशीलता। निदिध्यासन-सांसारिक विषयों का त्याग और ब्रम्ह तत्व का चिन्तन / अयं आत्मा। श्रद्धा-गुरुदेव एवं वेदांत में अटल विश्वास।

अयं आत्मा का दृढ़ निश्चयी बोध हो जाता है, तब उसे-आत्म साक्षात्कार कहते हैं।

उस तत्व को जानने से सम्पूर्ण संशय, सम्पूर्ण अविद्या नष्ट हो जाती है।

मन को बुद्धि में, बुद्धि को आत्मा में साधते जाओ, अभय हो जाओ, परिणामतः- ब्राम्ही स्थिति, समाधिस्थ, शांत स्थिति को प्राप्त करोगे।

।। स्वानुभूत्या विराजयते ।।

- सोचिये, अरे सोचने से तो सब बनता है। ये ध्यान, धारणा आप करते हैं। क्या करते हैं? सोचने से करते है आप। अब ये सोचिये, अब ये करना है हमको ऐसा होना है। तो अच्छा क्यों नहीं सोचते, अच्छे मार्ग में क्यूं नहीं आते? अच्छे मार्ग में आकर अभ्यास, चिन्तन करिये। अपने आपको भीतर ले जाइये-, जैसे जैसे आप भीतर जायेंगे। आप नाना प्रकार की शक्ति से सम्पन्न होंगे और आपकी सुरक्षा, जीविका और उद्धार इसकी चिंता नहीं रहेगी। क्यों नहीं रहेगी? आप मुक्त हो जाएंगे। पहावे आपणा

सी आपण-अपने आपको देखो न-हम कितने अच्छे हैं, या भले हैं बुरे हैं। जितना होये रोज सोचिये, सोते समय आप सोचिये, और सो जाइये। रात दिन लगे हैं आप, इसी में लगे हैं आप। अपने आप में है आप, कुछ दिन छुपाये। मुक्त माने- वासनाओं से बंधनों से मुक्त होते जा रहे हैं। एक जन्म से मुक्त नहीं होते। हां, आपका दरवाजा खुल गया। सुषुम्ना खुलने के बाद ये ज्योतिदर्शन होती है आपको, तो दरवाजा खुला है। इसलिए वो अच्चिदानंद मार्ग में है। गीता में भी है धूम्र मार्ग और अच्चिदानंद मार्ग । ये कृष्ण-पक्ष शुक्ल-पक्ष, ये गीता में दिया है, उत्तरायण दक्षिणायन है। ये दिया है। इसी संधि को। गीता जो है ये सारे भारतीय धर्मों के बिल्कुल मुख्य सार है। अभ्यास चाहिए समझने को, गीता समझ में नहीं आता। आप अभ्यास कीजिये अंदर जाइये तब वो समझ में आता है। क्योंकि सब चीज वो स्वानुभूति है, स्वानुभव है। तो स्वानुभूत्या विराजयते। स्वानुभूत बस, वही विराजमान, माने सबमें वो विराजमान है। सारी शक्तियां अणिमा गरिमा जो हैं, नवनिधि हैं। अष्टसिद्धि नवनिधि आदि, ये सब तुम्हारे में हैं। वो आत्मशक्ति है, वो सब मिलता है आपको। और क्या मिलता है? योग से-आप बलवान होते चले जाते हैं। अभी क्या है, ना, दुर्गुण। देवो दुर्बल घातका-कोई भी हो, देवी देवता, तुम्हारे से काम लेता है। (कहाँ करता है तुम्हारा काम) उसका काम है वो। बीच में वो रहता है, विकनिंग हैव नो प्लेस इन वर्ल्ड, ऐसा कहा गया है। इसी तरह जो है, मनुष्य जो है स्वयं नाश का कारण है। इसको, नाश का कारण है, जो समझ लिया । ये है धर्म। धर्म में कोई लड़ाई झगड़ा नहीं है, धर्म है। क्या चीज है? जिसने आत्मा का धारण कर लिया। जिसने आत्मसाक्षात्कार कर लिया है। ये चाहे सम्प्रदाय कोई भी हो। ये सब अंदर एक है।

- पीपल के पत्ते में एक देवी बालक को दाहिने पैर के अंगूठे को चूसते,किलोल करते हुए (9 वे वर्ष में, रात्रि में गुदा द्वार से शक्तिशाली बुलबुले ऊपर कंठ तक पहुंच गये। विशाल अटलांटिक सागर की विशाल लहरों में विश्व एवं जिस पर गुरुजी शयन कर रहे थे, उस पलंग को भी डूबते हुए वे देखे । चादर के साथ गुरुजी ऊपर नीचे होते हुए लहर पर तैर रहे थे, अगले तीन रात्रि में यही दृश्य दिखते रहे। तीसरी रात्रि को प्रशांत महासागर में) शांत जल में तैरते हुए अपनी ओर आते हुए गुरुजी देखे। उस समय दो ही साकार रूप थे। एक पीपल पत्र पर दीप्ति वलय से घिरा हुआ दैवी बालक तथा चादर पर लेटे हुए गुरुजी। और सम्पूर्ण विश्व सागर में डूबा हुआ था। जब प्रलय हुआ, तब कुछ भी नहीं था। तब एक सत्य था, कृष्ण। और तब मैंने अपने आप को पाया, नौवें वर्ष में। वो महासमाधि की अवस्था है। मैं दूसरा साल जैसे लगा चार घण्टा उसी में था। सब इंद्रियों का कार्य बन्द हो गया। नाड़ी सब बन्द, चार बजे मेरी हलचल शुरू हुई। बाकी हमको होश है, बहुत याद है। ये वराह कल्प है। ये काल गणना है। सम्पूर्ण वायु निकालकर तीन मिनिट तक खड़े रहे। पैर के अंगूठे से चीटियाँ रेंगने जैसे अनुभूति, शुरू हुई। मेरुदण्ड में बुलबुलों के रूप में बदलकर, गले तक यह अनुभव हुआ। आसन्न मृत्यु का अनुभव होने के बाद दिव्य ज्योर्तिमय चकाचौंध करने वाला प्रकाश का दर्शन हुआ। गुरुजी संवेदन शून्य, शक्तिहीन, होकर भूमि पर गिर पड़े। किन्तु उनकी चेतना शक्ति चरम सजगता पर थी। मानो हजारों सूर्य उनके चारों ओर दैदीप्यमान हो। वैसे प्रकाश से पाये। और दिव्य प्रकाश में स्नान करते पाये। इस परमानन्द में गुरुजी चार घण्टे तक रहे। दीपक नगर में एक दिन कंठ संगीत के आयोजन में उन्हें एक घण्टे तक संगीत का आनन्द लेते-लेते अनुभव हुआ कि-एक तीव्र संवेदना

मेरुदण्ड के मध्य और दोनों बाजुओं में मेढ़क के कूदने के समान था। सबसे बड़े पुत्र के गर्दन से नीचे की ओर मालिश करने से कम्पन नीचे चला जाता था। किंतु हाथ के नीचे पहुंचते पुनः ऊपर आ जाता था। गुरुजी मालिश को रुकवाकर परिजनों को समझाये कि उन्हें कुछ भी होवे चिंता न करें। कुछ अन्तर से चम्मच से उन्हें पानी पिलाते रहें। कुछ क्षणों में गुरुजी परा चेतना में डूब गए। चारों ओर की गतिविधियों का बोध था। किन्तु हाथ-पैर, जड़ और संज्ञा शून्य थे। मानो समय थम गया हो। श्रीगुरुजी परम सत्य में लीन, सर्वोच्च परा चेतना की अवस्था में तीन दिन तक रहें।

कृष्ण को योगेश्वर कहा। शिव शंकर को योगीश्वर कहा और कृष्ण को योगेश्वर कहा। प्रत्येक शब्द उसका योग है। कृष्ण के जैसे एक भी सारे संसार में नहीं हुआ है। लेकिन आदर्श को भूल गए। एक शब्द भी अनुभव में नहीं आया, खाली गप्पा मारते हैं। कृष्ण ने कहा है, अखण्ड रूप से मेरे चिंतन में रात - दिन लगा हुआ है। डूब गया है। पगला गया है, उसका रखवाला मैं हूँ। इससे बढ़कर और क्या आश्वासन चाहिए। इस शरीर से जायेंगे तो अर्चिरादि मार्ग से जायेंगे। एकाध बार भले ही आ जाओ, ये मैं नहीं कर सकता। लेकिन फिर से माँ के पेट में नहीं आयेंगे। महिला हो तो सिद्धा होगी। पुरुष हो तो सिद्ध होगा।

वो सब देखता है, वो सब समझता है। सब जानता है। वो दिखे, ना दिखे, मिले, ना मिले, काम बने या ना बनें । हम वो नहीं जानते। साक्षी है, बस। वो जिसका कार्य है (दीक्षा के साथ, मन समर्पण के साथ ही, हमारे जीवन में एक- एक कार्य अब उनका कार्य है, और एक दिन उनका कार्य वास्तविक हो जाना है, सम्भवतः) सफलता-विफलता उसकी है।अपने को क्या? हम तो निमित्त मात्र है।वो ही कर्ता-धर्ता है। इसलिए तुम अपने

ऊपर मत लो। यही लिबरेशन है। यही सबसे उत्तम अवस्था है। यही तो कृष्ण ने कहा था (अर्थात गुरुजी हमको वैसे ही हार-जीत के मध्य आश्वासित रहने कह रहे है, सम्भवतः) की तू खाली निमित्त बन। ये देख मैंने सब करके रख दिया है (इनके भी कुछ और उनके सबका अंत कर दिया गया है, विराट रूप में दिखा देते हैं)अरे, काहे को कांपता है, काहे को डरता है। अर्जुन कांप गया था। महाभारत में एक तरफ कृष्ण-नीति है, दूसरे तरफ शकुनि की नीति है। वो भाई-भाई में युद्ध हो जाता (या करा देता)। इसलिए बलराम पर दोष लगा, उसे तीर्थ भ्रमण हेतु भेज दिया, कृष्ण ने। नहीं तो बलराम बहुत चाहता था दुर्योधन को, वो दुर्योधन की ओर से युद्ध में उतर जाता। क्योंकि दुर्योधन, बलराम का बहुत ही प्रिय शिष्य था। ये सब कृष्ण की कारस्तानी है, नहीं तो भाई-भाई में युद्ध हो जाता। तो गीता जो है-कृष्ण नीति है। गीता का एक-एक शब्द योग है। इससे बढ़कर और कोई। कोई, नहीं है।

कृष्ण नाम आत्मा है। मोह का उल्टा है, होम। होम-माने सर्वस्व समर्पण कर देना, अपनी पूरी ताकत से। करके वो भूल जाये। आत्मा के साथ एकात्मता बनाये रखना, सबसे बड़ा और प्रभावशाली भजन है। गुरु को समर्पण ही आत्मा को समर्पण है। इष्ट (सतगुरु) आत्मा-परमात्मा के पास मन, वचन, कर्म से चौबीस घण्टे रहना, उपवास है।

तो टिल डेथ (दृढ़ता, तल्लीनता, तन्मयता) होना। अन्यथा (महामंत्र मणि विषय व्यालके मेटत कुअंक भालके) सम्भव नहीं। कृष्ण, राम आदि सब हमारे जैसे हैं। लेकिन अनेक जन्म संसिद्धि। अनेकों जन्मों के बाद कृष्ण, कृष्ण हुए। तभी कृष्ण, अर्जुन से कहते है कि हमारे-तुम्हारे अनेकों जन्म हुए। कई बार हम साथ-साथ आये। तुम भूल गए, मुझे सब बोध है। तात्पर्य ये है, हम अपने आप (आत्मा) को जानें।

इस शरीर को द्वारिका कहा गया। नौ द्वार है (आंख, कान, नाक, मुंह, अधः दो में)। (इस द्वारिका के धीश, द्वारिका धीश जी श्री कृष्ण हैं, कृष्ण नाम आत्मा है) पुरुष माने, नौ द्वार के अंदर जिसका निवास है। वही जानने योग्य है। वही आत्मा है। महाशक्ति है, कुन्डलिनी है। ब्रम्ह है, गॉड है। ऑलमाइटी है।

कृष्ण ने कितना बढ़िया समझाया है कि निरोध कब होता है? ये निरोध बिना सतगुरु, बिना सत्पुरुष के भी होता है। लेकिन कब? उत्कट इच्छा हो और चल पड़ा। चला, फिर आगे क्या है? आगे क्या है? अवश्य उस पद को प्राप्त कर लेगा। जिसका नाम परम-पद है। परम-पद क्या है? आत्मा। अपने आपको मुक्त (विकारों से, दोष का गुण हो जाना, शक्ति हो जाना) कर लेता है।

कृष्ण नाम आत्मा (सर्वव्याप्त / सर्वत्र, सर्वशक्तिमान / महाशक्ति, सब जानने वाला / सर्वज्ञ)का है। जिसने सबको आकर्षित किया है। धारण किया है। ऐसा जो महान है-वही ब्रम्ह है। तो एक बार भी ज्योति (अखण्ड ज्योति) स्वरूप आत्मा का दर्शन हो जाय। उसकी तुलना में दस-दस, अश्वमेघ यज्ञ करने वाले भी नहीं आते। और परिणाम क्या है? दस,अश्वमेघ करने वाले का पुर्नजन्म (जन्म-मरण के फेरे में बने रहना, कभी कुछ कभी कुछ योनियों में, सम्भवतः) है। लेकिन कृष्ण प्रणामी न पुनर्भवाय। याने जन्म-मरण के फेरा है (मनुष्य का-पशु,जीव-जंतु आदि होने की सम्भवना से, सम्भवतः) उससे वो निकल जाता है। मोक्ष के मार्ग में वो बढ़ता है। (अर्थात अभी भी जन्म होगा, सिर्फ मानव जन्म होगा और सिर्फ योग मार्ग में आगे बढ़ने होगा, और आगे बढ़ते-बढ़ते, निर्वाण तक ऐसे होगा। लेकिन पशु, पक्षी जीव- जंतु में कभी भी अब जन्म अर्थात पुर्नजन्म नहीं होगा। जैसे भरत जी को हिरण का पुनर्जन्म मिला

था, वैसा अब कभी भी नहीं होगा, सम्भवतः यही अर्थ हो) वो मुक्त है। मैं जो कहता हूँ, वो सच कहता हूँ। लेकिन कहने वाला मैं नहीं हूँ, मेरे साथ कोई और है। ब्रम्ह स्टेटस है। ऐसा वो रखवाला मेरे पास है। वो ही कर्ता-धर्ता है।

गीता एक ग्रंथ है। जो शास्त्र के बराबर है। कृष्ण ने उसका निचोड़ ही रख दिया है। नेहाभिक्रमनाशोअस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।स्वल्पम्पयस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात। ये जो अभिक्रम है अभि माने भीतर, अंदर अंदर में दीप। न नाशम, इसका नाश नहीं होता। बाकी जो कर्म करते हैं, उसका नाश। वे सब नाशं प्राय, नाश हम कर सकते हैं। वृद्धि भी हो सकती है, दूर भी कर सकते हैं। प्रत्यवाय न विद्यते, उल्टा फल दोष भी नहीं है। तो जो कर्म करने पर दोष न हो, नाश न हो। न अभाव हो। तो क्या समझेंगे, उसको? ये कर्म जब धर्म (सतत, अटल, निश्चल, अखण्ड) का रूप धारण कर लेता है। जो चलायमान है हममें, मनोवृत्ति हमारी (विकारयुक्त, काम, क्रोध, लोभ, मान, आदि से) बुद्धि होने लगती है। तो एक बार भी ये बुद्धि शुद्ध हो जाये।आत्मा स्वयं ज्योतिर्भवती।एक बार भी फ्लैश हो जाये। तो सब भयो से मुक्ति हो जाती है।

अपने आपको जानो। वो है, खुदी माने मैं। तू जान तेरा कारोबार जान और अपने आपको सबको सौंप दें, सब हो गया। कृष्णार्पन मस्तु, ईश्वरार्पन मस्तु। और अपना काम करें। सारा जगत वासुदेवमय है। अर्थात वासुदेव ही प्रकृति है। इसलिए जो कार्य होते हैं, वह प्रकृति ही करती है। प्रकृति विराट रूप है ईश्वर का। प्रकृति अपना कार्य स्वयं करती है, आप कुछ नहीं करते। उसको सहायक मिल जाती है। वो दिव्य शक्ति, सबको उत्पन्न करके पालन, पोषण कर और सबको धारण किया है। ऐसा जो देव है, चासव देवः वासुदेवाः। वो वासुदेव का

डिफनिशन है, जो व्याकरण दृष्ट्या ऐसा है। इसलिए ये व्यक्ति की पूजा नहीं है। ये तो आलमाईटी की पूजा है। जिसे सत् कहा है। इस प्रकार से ऐसा जो वासुदेव है। ऐसा माने जो आत्मा का देह है। आत्मा का नाम, वासुदेव है। वही परमात्मा है, वही परम धाम है। वही परम् पद है। वही परमा शक्ति है। इस शक्ति का जो अध्ययन और अभ्यास करता है, वो दिव्यशक्ति संपन्न होता है। दिव्यलोक को प्राप्त होता है।

गीता में सब पूर्व नियोजित है, कहा गया है। अतः सिद्धि- असिद्धि, हानि-लाभ, बराबर करके, कार्य करो। यही व्यवहार है। श्रीमदभागवत सम्पूर्ण योग है। श्री मदभागवत में ऐसा कौन सा विषय है? जो न हो। लेकिन मदभागवत आजकल न कोई देखता है, न समझता है। न ही अनुसंधान करता है, और न ही विचार करता है। फुर्सत ही नहीं है, किसी को।

योगक्षेमं वहाम्यहम। वो कृष्ण है। वो मैं ही हूँ, वो वासुदेव स्वरूप है, वो। वासुदेव है वो वो सब उसमें हैं। सब उसका है, सारा विश्व जो है। ऐसा जो सर्वव्यापक जो है। (ये तो कृष्ण जैसा चाकर ठहरा। कभी भी संकट में हो, मुसीबत में हो, कहीं भी हो, याद कर लेना, कोई न कोई, पहुँच जायेगा। रक्षा हो जायेगी। लेकिन परीक्षा मत लेना - श्री गुरुजी) तो मांगना कहाँ जानता है? कहाँ मांगना है, और कहाँ छुपाना है? कहाँ अभाव है? इसलिए जो आवश्यकता है, तत्काल उसको मुहैय्या सब है। सब उपस्थित है।

कृष्ण गीता में है, कहा कि ज्ञानी और तत्वदर्शी में, और ज्ञानी में भक्त प्रिय है। ज्ञानी भक्त मुझे सबसे अधिक प्रिय है। क्योंकि वो तत्वदर्शी होता है। तत्व एक आधार है, विश्लेषण करके सामने रख देगा। वो आचार्य होता है।

ये देह को तोड़ना नहीं, देह को सुखाना नहीं। देह को तपाना नहीं। पलायन तो करना ही नहीं। जहाँ हो वही, माने सतत् थोड़ा, थोड़ा, थोड़ा। शनैः शनैः उपरेमत। ये गीता है। ये जीरो रोड है न, ये बंद होता नहीं है। माने संसार में रहकर आप जितेंद्रिय हो जायेंगे।

- शांत्यावस्था में अभय होकर कार्य करते हैं। उसकी कोई इच्छा नहीं रहती। करने की, पाने की, जमा करने की।

  शक्ति का विश्लेषण करके जो पाया जाता है, उसको रखने के लिए न्यूक्लियस के रूप में सशक्त होना चाहिए। वरना वह बिखर जायेगा, चला जायेगा।

  एक क्षण भी अहं ब्रम्हास्मि के बिना न बीते।

  शब्द ब्रम्ह है। क्योंकि हमारे अंदर ध्वनि आत्मा से निकलती है। वर्तमान में यह विज्ञान भी मानता है कि आवाज या ध्वनि समाप्त नहीं होती। इसकी तरंग दैर्ध्य कम अवश्य हो जाती है, जिसे हम सुन नहीं पाते हैं। उचित व्यवस्था की जाय तो पहले की ध्वनि को हम सुन सकते हैं। इसलिए अंततः शब्द ब्रम्ह है।

  जल्दी में उत्तर न दो । सुनो शब्दों को तौलो, सोच समझकर उत्तर दो। उसका रंग अपने ऊपर न चढ़े, इसका ध्यान रहे।

  जिससे आपको असहनीय परेशानी हो उसे त्याग दें । परन्तु यह बात है त्यागना या कष्ट भोगना आपको ही है। जैसे आपको काँटा चुभ गया हो तो काँटा निकाल दीजिये।

  व्यवहारमय भाषा का उपयोग अपने आचरण में अनुकरणीय बनाना चाहिए।

जो गुरुजी के सेवक हैं। उसकी तरफ कोई आंख उठाकर भी नहीं देख सकता।

हमेशा वर्तमान में रहो।संतोषी बनो। भौतिकता,बौद्धिकता मानसिकता, नैतिकता से पूर्ण हो जाओगे। तुम्हीं महान हो।

परावलम्बी का अर्थ है देहरुचि। मनुष्य को स्वालम्बी बनकर रहना चाहिए।

समस्या बोले तो कुत्ते की दुम। और उसका इलाज है फुलस्टाप। फुलस्टाप लगाने का तरीका है, धीरे धीरे व्यवहार कम करते जाना।

इच्छा क्या है?व्यवहार में ऐसा रहना, ऐसा होना है, इसे निश्चित करे। ऐसा करने से मनुष्य और फिर समूचा समाज सुखी रहेगा।

किसी भी परिस्थिति का सामना करने के लिए डटकर बलपूर्वक तैय्यार रहना चाहिए। भोग भोगने से कटता है। परिस्थितियां जैसे भी सामने आती हैं, वो कटने के लिए आती हैं। वो बने रहने या काटने के लिए नहीं आती।

कोई भी प्रसंग हो, उसको सहन करने की शक्ति होनी चाहिए। क्रोध भी नहीं करना चाहिए, बदला भी नहीं लेना चाहिए। वह आता है करके चला जाता है हम ज्यों के त्यों है, ऐसा समझ के रहें , तो आनन्द आ जायेगा। और जो आता है वह कटने के लिए आता है, और हम काटने के लिए तैय्यार है। अंडर दैट पॉवर तो जो आएगा, सब कटता चला जायेगा।

एक ध्येय होना चाहिए, ऐसा ध्येय होना कि कभी भी हमारा कल्याण हो और हमको देख करके औरो का भी कल्याण हो।

सिद्धान्त ऐसा होना चाहिए कि सबका कल्याण हो। हम कुटुम्ब में समाज में आदर्श रहें , हमको देखकर लोग उसको पढ़ें, कुछ सीखें और करें।

।।आत्मा,दिव्यशक्ति की ओर झुकना ।।

- सत माने आत्मा । दिव्य शक्ति। उस ओर आदमी झुकता है, तब उसका भाव उस ओर झुकता है। बस आप लगे रहिये, बाहर का कम होता चला जाएगा।

  कहीं आने जाने की आवश्यकता नहीं हैं। जो चीज आप बाहर ढूंढने जा रहे हैं, वो सब आपके अंदर है। वहीं है, और कोई दूसरा नहीं है। उसको हम भूल गये हैं।

  हमें जिस प्रकार से भी मिले। उसी प्रकार से हमें, जैसे बाहर के लिए अध्ययन, अभ्यास करते हैं। वैसे अपने आपको भी करना चाहिए। आप भी अभ्यास करके आत्मशक्ति प्राप्त कर सकते हैं।आप समर्थ हो सकते हैं। आप ही अपने भाग्य के निर्माता हैं और आप ही उसमें परिवर्तन लाने में सक्षम हैं।

  अभ्यास के परिणाम से बुद्धि स्वच्छ और शुद्ध रहती है। आपने जो बाहर की प्लानिंग बनाई है, वो किसी काम की नहीं है। ये जो विषय है, विषयातीत है। ये विषय नहीं है।ध्यान से, ध्यान के प्रभाव से, मन को निर्विषय किया जाता है और वो हो जाता है। नाम माने जप करना, ध्यान जो है वो मानस, गुप्त रूप से केवल मनन करना होता है। इस गुण या शक्ति के विकास से हमारे दोष, विकार सब बदल जाते हैं। अभी जो क्लेश ही क्लेश भोग रहे हैं, वो सब दूर होकर के आप। समाज, राष्ट्र, सब प्रसन्न होंगे। बुद्धि शुद्ध होकर आत्मा ही परम है। उसको प्राप्त होंगे।

  हम केवल वस्तुनिष्ठ हो गये हैं, जिसको ऑब्जेक्टिव कहते हैं। वस्तुनिष्ठ इसके सिवाय, हमारे पास कुछ भी नहीं। इसी को सत्य मानकर चलते रहते है, जो सदा परिवर्तनशील है। सदा बदलता ही रहता है। इसको हम सत्य मानकर चलते हैं, तो ये हमारी मूढ़ावस्था हैं। मनुष्य की

दुर्बलता का एक ही माध्यम है, ये बाह्य जगत के प्रलोभन, बाह्य विषय नाना प्रकार की आकर्षक वस्तुएं हैं।

सूक्ष्मातिसूक्ष्म रुप से अपनी बुद्धि को, आत्मा एक। माने जैसा है वैसा, उसी तरह से उसको जानना। जानना माने अनुभव में लाना। अनुभव का नाम स्वानुभूतियाँ है, स्व जो आत्मा है।आत्मा, स्थित होने पर एक शक्ति है, वो शक्ति सत है, दिव्य शक्ति है। वो दिव्य शक्ति है और वो प्राप्त की जाती है। सत माने लाभ, अपने लिए भी, समाज के लिए भी, राष्ट्र के लिए भी, जग के लिए भी लाभकर हो वो कर्म।

हम मूढ़ हैं (परिवर्तनशील को सत्य मानना और चाहना)। क्षिप्त-जिस काम को कहें नहीं करना हैं, वही हम कर रहे है। विक्षिप्त-क्षणे रुष्टा, क्षणे तुष्टा, रुष्टा तुष्टा क्षणे क्षणे। हंसते खेलते बोलते हैं। और उसी चीज को तोड़कर फेंक देते हैं। तो ये तीन अवस्था (मूढावस्था, क्षिप्तावस्था, विक्षिप्तावस्था) हमारी जन्म से लेकर मरण पर्यंत वस्तुनिष्ठ होने के कारण है।

अब जैसा -आपके पास रहकर, आपकी सूझबूझ देकर, आश्वासन देकर, आदेश दिया गया। उस प्रकार से उसको बुद्धि में रखकर अभ्यास में लग जाना चाहिए। और किसी प्रकार की चिंता नहीं करना चाहिए। कृष्ण ने भी कहा है-बिल्कुल चिंता नहीं करनी चाहिए। लेकिन हम चिंता करते हैं, कि हमारा होता नहीं। तो जब ये हमारा तुम्हारा आ गया तो सब गया। फिर आप शरण में कहां आए? आपने सरेंडर कहाँ किया?

शरण याने जितना आपको, अधिक से अधिक दे दिया गया। वैसा कम से कम, बीस मिनट, पांच मिनट, दो मिनट तो करो। इससे अधिक तो चाहिए भी नहीं। ये अपनी आदत बना लो यही धर्म है।

मनुष्य अपने आपको सदा दुर्बल पाता है, सदा अभावग्रस्त है। कि नहीं, कि नहीं, कि नहीं। ये चलता रहता है, उसके अंतःकरण में। अंतःकरण चार बातों को कहते हैं। मन, बुद्धि,चित्त माने नेचर/प्रकृति, कहते हैं जिसको, मैं हूँ, मैं हूँ (अहं) जो करता हूँ, इसको कारण कहते हैं। ये इंस्ट्रूमंट हैं, ये अंदर के इंस्ट्रूमंट हैं, बाहर नहीं दिखते। इसके द्वारा आपको अपना करना हैं।

विद्या और कला से निपुण होना हैं, अध्ययन और अभ्यास करके। आपको परीक्षा देनी होगी। सब जगह परीक्षा है। ये जगत जो है, परीक्षा केंद्र है। यहाँ आनन्द, सुख-देखने हम नहीं आये हैं। परीक्षा देने के लिए आये हैं। पढ़ेंगे, अभ्यास करेंगे तो उतीर्ण होंगे। ये जितने लोग आपके आस-पास में हैं, ये सब सहायक हैं। संरक्षक हैं,और परीक्षक भी हैं।

वस्तुओं के पीछे मरने वाले-जिन्स होते हैं, जिन्स माने मैटर या जड़ वस्तुएं, वस्तुएं के लिए किसी का खून कर डालेंगे। इंसानियत में इन्स माने गुण। विद्या और कला के द्वारा अपने आपको विभूषित करें उसको इन्सां कहते हैं। गुण से आप वर्धमान हों, गुण की वृत्ति हो, आप निर्वाण हों। गुणज्ञ हों और औरों को भी अपना गुण देने में समर्थ हों। ये इन्सा है-जो गुण ग्रहण करता है, कला और गुण ग्रहण करता है, इसके सिवाय उसको कुछ मालूम नहीं। दोष के साथ दुर्गुण नहीं देखता। दोष अगर हम देखेंगे तो हम दोषी स्वयं हो जायेंगे। अगर गुण की तरफ हम जायेंगे तो हम स्वयं सद्गुणी होंगे। ये सिद्धांत है।

ये जो शक्ति है, गुण, ये साधारण बात नहीं है। हमको गुणज्ञ होना है। इसलिए ये जो शक्ति है, सत कहा। (तत-सत) तत्सत। उसी को एनर्जी कहा है। ये कॉस्मिक एनर्जी कहा है। उससे परे एक और है, जिसको डिवाइन एनर्जी कहते हैं। ये डिवाइन गुण हमारे में हैं।

ये सब पुराने हैं जो हम आपके सामने रख रहे हैं, हम भी वही पुराने रख रहे हैं। तो ये जो अभिक्रम है, इसका नाश नहीं। आत्मानुसंधान के लिए किये गये कर्म का नाश कभी नहीं होता। दोष भी नहीं है, तो फिर क्या है? वही शक्ति है, ये। ये जो अपनी धारणा को जो सक्रिय करके, जब उसके आदी बन जाते हैं, जब हेबिचुऐटेड हो जाते है। तब उसका नाम-धर्म रख दिया।

लेकिन प्रकृति की क्रिया का नाम धर्म है। प्रकृति माने, सत, रज, तम-जब तक ये बाह्य वस्तु के लिए है; तब तक अशांति है। तब तक ये लाइफ कोई लाइफ नहीं है, वो कुछ और है। इसलिए ये निष्काम कर्म, स्वस्वरूप अनुसंधान ही है। आत्मानुसंधान के लिए जो कर्म किया जाता है, यही निष्काम कर्म है। इस निष्काम कर्म के धर्म रूप प्रभाव से हमारी बुद्धि, मनन करते करते, ध्यान करते करते, विषय छूट जाते हैं।

निष्काम कर्म रूप धर्म के प्रभाव से ऐसी बुद्धि हो जाती है। तब ये बुद्धि ऐसी हो जाती है, शुद्धि साम्ये कैवल्यम। जब ऐसी बुद्धि साम्य अवस्था प्राप्त को प्राप्त होती है। जब निर्विकार हो जाती है, कुछ भी नहीं रह जाती, स्फटिक मणिवत जब हो जाती है। तब ये-आत्मा स्वयं ज्योतिर्भवती।

साहस, धैर्य के साथ, अपने आपको बचाते हुए। गोल, गोल, गोल। लक्ष्य, के सिवाय और कुछ न रहे। इस प्रकार से आत्मा जो है, तद्धाम परं मम। संसार में रहते हुए, इस कीचड़ में रहते हुए, प्रपंच में रहते हुए-आप मुक्त हैं। वो मुक्ति क्या है? स्वल्पमपस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात। जन्म, मरण का जो भय है, आपके जीवन में, मरूंगा क्या, मर तो रहा हूँ, ऐसा जो बोलते हैं। ये भय, ये छूट जाता है।

भय क्या है? मोक्ष ये चाहिए सबको। मुक्ति चाहिए। अमृत चाहिए।

निर्वाण चाहिए। लेकिन आज दुर्लभ कुछ भी नहीं, सब सुलभ है। खोजने वाले को सब मिल जाता है। आत्मज्योति है, उसका थोड़ा भी प्रकाश बुद्धि में आ जाय तो क्या, कौन सा भय है? जीवन-मरण का, जीविका की चिंता है। हमको कोई बंधन नहीं होना, मुक्त रहना चाहिए। इस प्रकार से जन्म मरण कुछ नहीं होना चाहिए / उद्धार, बस मगन रहे। जीविका की कोई चिंता भी न रहे। रक्षा सुरक्षा की कोई चिंता नहीं। तीन ही तो चिंता है, मनुष्य के पीछे। इन तीनों चिंताओं से जो मुक्त है, वो है-मुक्त।

प्रत्येक व्यक्ति की बुद्धि स्थिर है। चित्त स्थिर है और मन स्थिर है। अगर न होता तो आज हम सब पागलखाने में होते। लेकिन अपने आपको-इस तत्व को जानने के लिए हमारे पास समय नहीं है। न हमारे माता पिता और न पूर्वज उस ओर हमारा ध्यान आकर्षित करके बाल्य काल से इसकी शिक्षा दीक्षा देते हैं। हमारी शिक्षा केवल उप-जीविका के लिए है। जीविका को हमने छोड़ दिया और उप-जीविका के पीछे फिर रहे हैं, यही भोग हैं। हम जन्म से बहिर्मुखी हैं, भीतर का हमें कोई ज्ञान नहीं हैं, और न बाहर का भी। एक सेकंड आगे क्या होगा, ये नहीं जानते, तो भीतर तो बहुत दूर है, यही अविद्या है, अस्मिता है।

वो सर्वज्ञ है। उसका अंश, वो ज्ञान का अंश हमारे में हैं। ये चीज हम भूल गये हैं। मानव प्राणी में ये विशेष बात होने के कारण। वो अपने संकल्प से, अपने शब्द से। दृढ़ होकर, उस अजन्मे और स्वयंभू को। फार्म में ले आते हैं। याने जिसकी कोई आकृति नहीं, रूपरेखा नहीं, उसको रूपरेखा में ले आते हैं। ये मानव प्राणी विकसित प्राणी है। हमें तो सिर्फ अपना कचरा, जो है। बांध, मेड़। वो रुकावटों को दूर करना हैं, अभ्यास से।

आत्मा तो असंग है। लेकिन नहीं, अपने संकल्प, अपने निश्चय अपनी

धारणा से जो अजन्मा है, उसको शरीर में, अपने आपको। ज्योति के रूप में प्रकट कर देना पड़ता है।

।। भौहों के बीच लक्ष्य लगाकर तीर मारना ।।

- उत्तम रूप से दिया गया है - कविं पुराणमनुशासितार मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः सर्वस्य धातारमचिन्तयरूप मादित्यवर्णं तमसः परस्तात। प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव। भ्रुवोंर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम। एक एक सेकंड में तो जा रहे हैं और कौन सा प्रयाणकाल बाकी है। प्रयाण काल माने मृत्यु समय है। मृत्यु समय कुछ कर ही नहीं सकता, वो तो। इससे समय रहते हुए सतर्क हो करके-इस प्रकार से भक्त्या युक्तो। बताये हुए मार्ग से सतगुरुदिष्ट मार्ग से अभ्यास कर। सुषुम्ना में प्रवेश कर और ब्रम्ह रंध्र में जा करके और प्राण को उसमें स्थापित कर।और दोनों भौहों के बीच में लक्ष्य रखकर के ध्यान में उस-आदित्य वर्णं का ध्यान, अनन्त सूर्यों का सूर्य, जो आत्मा है। इस प्रकार से, ध्यान में रखकर और दोनों भौहों के बीच लक्ष्य लगाके जो, तीर मारना। जो धारणा के द्वारा, ध्यान के द्वारा, एकतानता प्राप्त कर और बुद्धि को आत्मस्थ करके। चिंतारहित हो करके इस प्रकार से भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक-पूर्ण रूप से,पूर्णतया, हर प्रकार से, उसको ले जा करके स्थापना करें। स्थापित करके- सं तं परम पुरुषमुपैती दिव्यम-जो देह छोड़ देता है। जो इस शरीर को त्याग देता है। वो पुरुष-दिव्यत्व को प्राप्त हो जाता है। दिव्य लोक को प्राप्त होता है। दिव्यत्व को प्राप्त करना-दिव्य गुण (गुणों) से सम्पन्न होना है। जन्म-मरण के फेरा से वो दिव्य पुरुष-छुटकारा पा जाता है। ऐसा भगवान श्रीकृष्ण ने अपने को आश्वासन दिया है। और

स्वयं कहा कि मैंने ही, स्वयं इस मार्ग से चल करके। और अनेक जन्म। तू और मैं, कितने बार जन्म लिये थे। तू भूल गया मुझे तो याद है। आज, वो कृष्ण है। जिसे भगवान कहते हैं। षड गुण ऐश्वर्य (भक्ति, शक्ति, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, मोक्ष) सम्पन्न हैं। आज लोग देखते हैं। ये प्राप्त, ये दिव्य गुण है। ये दिव्य शक्ति है।अनेक जन्म संसिद्धि है। एक जन्म में नहीं होता है। सैकड़ों हजारों बार जन्म लेना पड़ता है। हजारों बर्थ बीत जाते हैं। तब ये तमाम बातें, तब शक्तियां प्राप्त होती हैं। इसलिए इस प्रकार से-प्रयाण काले मनसाचलेन, भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव। भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम। तब जा करके दिव्यत्व को प्राप्त होता है। दिव्य शक्ति सम्पन्न होता है।और तब वो योगी होता है। योगी उसे कहते हैं, जो कि गोचर और इन्द्रियातीत में देखने वाले होते हैं, अतीन्द्रिय, इन इंद्रियों से न दिखने वाली चीजें, दृष्टिगोचर और अगोचर, उसे दिखाई देते हैं। प्रत्यक्ष देखता है। ऐसे सुधि को, काया(वर्य) को सर्वज्ञता का बीज कहा गया है। इसी को योगी कहते हैं। योगी, त्रयं संयमात। अतीत अनागत ज्ञानं। धारणा, ध्यान, समाधि इन तीनों पर संयम प्राप्त करता है। और मृत्यु केंद्र पर वो लंघन करके और जब षष्टम भूमिका में वो पहुंचता है। तब भूत और भविष्य का उसको ज्ञान होता है।और भूत और भविष्य का ज्ञान नहीं होता है, जब तक वो मृत्यु केंद्र को पार नहीं होता है। तब तक वो, क्या कहते हैं, उसे-सातिशय सर्वज्ञता का बीज, वो योगी, वो योगी भी नहीं। सातिशय सर्वज्ञता का बीज भी नहीं हो सकता है। इसलिए वो संन्यासी और वो योगी कदापि नहीं है। जिनको, ये करना है। वो करना है, ये करना है, ये सब दुनिया भर के। जब तक उसके मन में, दुनिया भर के विकार है। याने वासनाएं और कामनाएं हैं। और बदला लेने की, काम और क्रोध,

मोह। वो काहे का योगी और काहे का संन्यासी। अरे इससे तो गृहस्थ आश्रम और ग्रहस्थ धर्म श्रेयस्कर है। याने कर्म।उन्हें तो समाज में लोगों का, अपना उद्धार करना चाहिए। ये तो संग्रही बनते चले जाते हैं। सारे ब्रम्ह वाक्य की बातें दिन भर करते हैं। और अंदर उनके देखें, उनसे पूछे तो अपने (गृहस्थ धर्म आश्रम से- वे सब नकली लोग, तथा कथित संन्यासी, वेशधारी संन्यासी), से गये गुजरे हैं। दुनिया भर के राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह, भय, सब बना हुआ है। काहे का योगी और काहे का संन्यासी? उनसे तो गृहस्थ आश्रम ही अच्छा है। समाज और राष्ट्र का भार, वहन तो करता है। इसलिए मैं समझता हूँ, गृहस्थ आश्रम ही उत्तम है, आज आधुनिक योगियों से, संन्यासीयों से। देखने में आ रहा है, जो। भैय्या मैं क्षमा याचना करता हूँ। बड़ी बोल है। क्या किया जाय? रखा नहीं जाता है। इसलिए मैं जो, क्षमा चाहता हूँ। और ये विश्वास करता हूँ। आप लोग हमें क्षमा करेंगे। इत्यलम। कभी-कभी सुनने में भी ये होता है, कि भई ये, व्यक्तिगत पूजा है। कार्य जो, अभी जो कुछ, सब परिवार में, समाज में, विद्वत समाज में जो आते हैं, जाते हैं। वो आत्मविद्या है। और जब वो जो मुझे अनुभव है, अनुभूति है। उसी प्रकार से, पद्धति से, और बिना कष्ट हुए, बिना श्रम के, चिंता रहित। और आपका कल्याण हो सकता है। उस पद्धति को आप लोगों को वही एक है। जो मार्गदर्शन करता हूँ। आप लोगों को सिखाता हूँ। बहुत से लोगों को लाभ है और आनन्द भी है। समाधि में भी जाते हैं। समाधि लग जाती है। और उनको भूत-भविष्य का भी बोध होता है। वायरस, प्रजाति है, जिसे कहते है। उनसे जो दूर हैं, उनसे प्रश्न उत्तर करके, प्रश्न का उत्तर मिलता है, उनको, आनन्द से। तात्पर्य ये है, कहने के, बहुत से लोगों को, ये होता है। कि, ये व्यक्ति पूजा है, व्यक्ति पूजा है। ये व्यक्ति पूजा नहीं है। आचार्य

उसे कहते है। आचार्य शब्द का पहले आप मुझको परिभाषा दे चुके हैं। फिर भी उसे बोल रहे हैं। क्या कहे, कि आचार्य उसे कहते है-आत्मवेति शास्त्रार्थे आचारे स्थाप्येत स्वयं आर्चायते, यस्माद आचरणात आचार्यस्तेन चोच्यते। आचार्य उसे कहा गया है। शास्त्रों में, मनीषीयों ने। और कुछ लोगों ने विवरण किया। इस प्रकार से किया है कि शास्त्रों में जो, उद्देश्य और प्रयोजनों को। अध्ययन, अभ्यास कर, आचरण में लाकर, आत्मसात कर। और अपने चरित्र को उसी प्रकार से, साँचा में ढालकर। और स्वयं, अन्य गांव में जाकर, समाज में जाकर, उसकी स्थापना करे। वही सिखाये, वो जिस मार्ग में है।अग्रसर कराये, उन्नति, प्रगति कि ओर। उसका कल्याण के लिये। उस कल्याण को उस प्रकार से उन्हें सिखाये, अपने जैसे उनको। उसी प्रकार से, अपना जीवन। सिखाते हुए, सब जगह भ्रमण करते हुए। जब तक आयु है यही कार्य करता रहे। स्वयं आचरण करता रहे। और स्वयं आखिरी स्वास पर्यंत, आचरण करता रहे। ऐसे जो कार्य करते हैं। ऐसे जो आचरण युक्त रहते हैं।अंतिम स्वास पर्यंत। और जिसका, उसका और कोई व्यवसाय नहीं। और कोई कार्य नहीं। केवल एक कार्य है-आत्मविद्या, का प्रचार, प्रसार, घर-घर, वो, व्यक्ति-व्यक्ति में। ऐसे व्यक्ति को-आचार्य, कहा गया। आत्मवेति शास्त्रार्थे आचारे स्थाप्येत स्वयं आर्चायते,यस्माद आचरणात आचार्यस्तेन चोच्यते। ऐसो को आचार्य कहा गया है। जैसे एक सिक्के के दो बाजू है, बराबर हो। तब तक चरित्र है, और आदर, सम्मान, प्रतिष्ठा होती है। इसी प्रकार से, ये दोनों अंग है।अध्ययन और अभ्यास-ये दोनों परिपक्व होना चाहिए। तब वो आचार्य है। तब दीक्षा। औरों को दीक्षा देने में, या शिक्षा-दीक्षा देने के लिये, वो सक्षम होता है। अन्यथा नहीं। तब वो आचार्य, कहा जाता है।

।। हमारी संस्कृति है, इस देश में है, साइंस,प्रचार हो प्रसार हो, स्थापना करें ।।

- जमुना प्रसाद मिला। अरे पंडित जी, बोले मैं वहां पर पहुंचूंगा। नहीं ठिकाने पर, बुलाओ, गायत्री मंदिर में। वो जो बाई बताया न, बाल मुकुंद, वहां जाती थी। और वो भी मुंडन करने। इतनी खुश हो गई क्या बताऊँ। भागी जहां गांव का था, जहां खेल रही थी जहां छतरी में जाकर, वहां भी देखा। चुप हो गई। पहाड़ी गये थे। वो जो, दरवाजा खुला था, हाथ डालकर जो खोला था। वो अद्यत जगह बना हुआ है। वो किवाड़ भी वैसी है वो आरा (वारा) भी वैसा ही है। सब बना है। लेकिन पीछे मकान बना है। उसको नहीं तोड़े, वो भी देखा। पूछा वो लड़का द्वारिका था उसने पहचाना नहीं। उसकी मां , गांव में थे, मिला ऐसे सब बातें हैं। अंदर ले गया घर में, ओरों के पीछे गांव, तीन जगह तो देखा। चौथा औरंगाबाद भी देख लिया। मुकुंद दा, जो गर्भ में चक्र के अंदर, जिसका पालन पोषण हुआ। वो भी लड़का मुकुंद दा, वो पी.एच.डी. कर रहा था, पूना में। हमको बोला हम तो हॉस्टल में हैं, और वो। खुद गया हॉस्टल में नाम बताया। भिड़े, वो पहचाना। बोले, हां वैसे हैं पंडितजी आप, ये हैं। तो तात्पर्य ये है हमारे जीवन में कुछ मिला नहीं हैं। ये खास बात है हमारे जीवन में। ये बहुत मुश्किल बात है, ये। और मैं बिल्कुल परिवारों के बीच में रहा। और इतने अच्छे परिवार कि मैं क्या बताऊं, बता नहीं सकता। मेरे पास कुछ नहीं है, मामूली बात ये नहीं है। इस मार्ग में आने के पहले अनेक जन्मों के पुण्य जब उदय हो जाते हैं। तब ये मार्ग कहते हैं, इसको, सन्मार्ग। और सत्पथ सन्मार्ग में। मनुष्य की बुद्धि इस ओर झुकती है। कि सच में दुनिया बनाने वाला कोई है दुनिया का विचार करने वाला कोई है। जिससे ये दुनिया आई है, जा रही है।जन्म लेते है, अस्तित्व में कुछ दिन रहते हैं, फिर उसमें विलय हो जाते हैं। ये सब क्या

हो रहा है? किसके द्वारा ये सब हो रहा है। तब उसकी। अनेक जन्मों के उसके पुण्य जब उदय हो जाते हैं। पुण्य केवल, पाप नाहीं।

- अपनी इन्द्रियाँ अपने वश में, जितेंद्रिय होना चाहिए। जो मन में आये ऐसा किये, मन में आये वैसा खाये। ये नहीं होना चाहिए। सहन वृत्ति भी होनी चाहिए। जहां तक हो सके, सबका लाभ हो, कल्याण हो, सबका शुभ हो। जो कुछ है, तन, मन, धन के द्वारा, जीवन भर हितैषी रहे। (समाज, राष्ट्र, विश्व का) जहां तक हो सके सत्य बोलना चाहिए। झूठ बोलने से अगर कल्याण (अन्य को) होता है, तो वह झूठ, झूठ नहीं है। तो इंडिविसुअलविस्म आज है। आप सोचिए, आप अपना कल्याण किधर है, कैसा है? निरपेक्ष कुछ न मांगना, कुछ न लेना, वो समाज की सेवा कर सकता है। जो समाज से विभक्त नहीं, वो है भक्त। आज कोई किसी को सुख दुःख में साथ देता नहीं मरता है आदमी, मरने दो। सारा प्रॉपर्टी हमको (हम लोगों को) मिल जाय तो अच्छा है। वैदिक धर्म में गायत्री मंत्र का अर्थ आज आप लोगों के सामने रख दिया। इसलिए हमेशा ये प्रार्थना होना चाहिए, अपने आत्मा से कहना चाहिए। मेरी बुद्धि तुम्हारी तरफ बनी रहे तो बहुत अच्छा है। हमारा जो संस्कृति जो है योगाभ्यास। इसी को विकसित करना है। ये शरीर भी ये पूर्ण है, महा अनन्त शक्ति भरी है आपमें। अनन्त शक्ति अदृश्य है, ओह अकूत अथाह शक्ति है। हमारे ऋषिगण जो बड़े लोग हुए हैं, बड़े होशियार थे। कि अंजाने में भी आपका, माने उस महान तत्व, परमतत्व, महान शक्ति को आप अंजाने अंजाने में रिलाय करते हैं। आप भरोसा करते हैं । और आपका काम होता जाता है, यही है भावना। तो भक्ति का बेस क्या है, भावना। ये भावना है, इससे आपका काम होते चला जाता है। ये है भारत

में, ये भारतीय संस्कृति है हमारी। हम मूर्ति पूजा नहीं करते, मूर्ति पूजा में ये रहस्य है। रामायण में क्या है-वो? उसमें अपने आपको पढ़ने से से धीरे, धीरे होता है। अगर आदमी जैसा सोचता है वैसा हो जाता है तो रामायण पढ़ेगा तो कुछ न कुछ बनेगा कि नहीं, क्या? कुछ न कुछ आचरण में आयेगा कि नहीं, तो जब आयेगा तो फिर संरक्षण, अपने आप होते जायेगा ही, बस इतना ही। सुरक्षा चाहिए उसको, वो मिलता जाता है, काम बनते जाता है। माने संस्कृति कितनी, माने कितनी ईजी गोइंग है। लेकिन समझने और समझाने वाला कोई होना, तब होता है। जो हमारी संस्कृति है, इस देश में है-साइंस। कृष्ण ने दिखा दिया, देखो ये सब पहले से मरा / मारा हुआ है, तू तो खाली निमित्त है। इसमें वेदांत जिसे कहते है वो है-सत्य, सत, सत। सत माने डिवाइन ऐनर्जी है, कॉस्मिक नहीं। वो आंख खोला, और आंख खोलकरके अर्जुन को सब दिखा दिया- कि ऑलमाइटी है। वर्ल्ड सोल, जिसे जगदात्मा, कोई क्रियेटर है। कर्तुम अकर्तुम अन्यथा कर्तुम, सक्तः। वो सब कुछ करने में समर्थ है।अन्यथा माने, अन माने नाही, यथा माने जैसा है वैसा मैंटेन भी करता है।अनन्तकाल से सृष्टि पड़ी हुई है, कोई नहीं जानता, कब से है, और कब तक रहेगी? ये गणित लगा रहे हैं, सब ठीक है, सब आनन्द है। सब कार्य में समर्थ है ऑलमाइटी है। नहीं करते हुए सब कुछ करता है, सब कुछ करते हुए, कुछ भी वो नहीं करता। परस्पर विरोधी है, कांट्रेडेक्टरी फॉर्म में है। जो योग्य है, परिवार में रहना, समाज में लेकर रहना है। राष्ट्र में रहना है, राष्ट्र के साथ भी चलते रहें। अपनी संस्कृति में सब कैरियर है। कोई जो है चिंता करते रहे, अपने हाथ में तो कुछ नहीं है। इतने अगर सोचकर, इसमें (आत्ममार्ग), अपने हाथ में नहीं, वो करता है। किसी को घुमाना नहीं, छल कपट वो ना करें। स्वयं व्यक्ति जो

है, सुख-दुःख का कारण है और कोई नहीं। अच्छा, सुनना, देखना, करना, करवाना । सदा सही विचार करते रहना, इस प्रकार से जीवन व्यतीत करना। सब आनन्द है, आनन्द मंगल रहें, कल्याण रहें। फिर मिलेंगे। आशा ही तो जीवन है, उठिये आप। यशश्वी होकर, आइये। आनन्द हो । आनन्द हो, कल्याण हो, जीवन मंगल हो।

- जिसका मन ब्रम्हतत्व में लीन हैं, वो है ब्रम्हचारी। समझे। बीज लाभः ब्रम्हचर्य प्रतिष्ठायां बीज लाभः, माने शापादपि शरादपि उसमें। वो समर्थ हो जाता है या सामर्थ्य उसमें आ जाती है। मैंने क्रोध में बोला हूँ आप जाकर पता लगा लेना आपको पता देता हूँ ।अभी लोग जीवित है, पूछ लो जा करके बस, बता दो और पूछ लो। एक ही दिन में एक परिवार एक ही श्मशान में, और एक ही चिता में सब गये, हमारे सगे संगोत्री । एक ही दिन में, दो तीन घण्टे में सब साफ, पूरा घर साफ। दो बच्चे बचे है एक लड़की और एक लड़का। क्योंकि उनको हटा दिए गए थे, वो थे नहीं, ये कालूपुरा की बात है। (सात चिता दो तीन घण्टे में जली, बाद में वो बचे हुए दोनों भी शीघ्र ही समाप्त हो गये । यह दो व्यक्तियों के बारे में जानकारी मुझे अशोक भैय्या से प्राप्त हुई थी) चक्षुर्विसत्यं बस क्या हुआ ये नहीं बताने का। अहंकार होता है इसलिए ये सब अहंकार की बातें हैं। अहंकार आता है तो बिल्कुल आदमी उतर जाता है, किसी काम के नहीं है। इसलिए बाबा हम तो बेवकूफ है, समझे न, स्टुपिड आदमी है। हम, जो कुछ हम बोलते हैं करते हैं सब स्टुपिडीटी से भरी हुई हैं। समझे नालायक हैं, स्टुपिड जिसे कहते हैं।अरे कोई कमती नहीं, दसों दिशा से आता है। सारी दुनिया अपनी है। वसुधैव कुटुम्बकम।

- एक, जन्म से व्यक्ति पावरफुल होता है। जिसको सिद्ध कहते हैं। जन्म से सब यहां-वहां, यहां-वहां, चमत्कार जो हैं। एक औषधि से भी चमत्कार है। तीसरा मंत्र से जो होता है। तप, तपस्या करके जगल में जा करके तप करते हैं। तप करके, तप क्या-क्या करना है, प्राप्त करने वाले। इनको- हठ योगी कहते हैं। और (पांचवा) समाधि जो हमारा मार्ग है। बुद्धि को केंद्रित (आत्मा में) इसी को वश में करके, सब कांसस में । डायरेक्ट करते हैं, इसी केंद्र में ले जाकर पहुंचा देना। इसमें प्राप्त हो जाते हैं, बुद्धि का मार्ग जो है तो, समाधि। तो ये जो लोग हैं मानव को वश में करके, इनसे काम लेते हैं। और कोई काम नहीं। अगर आप तुलसीदास जी को मानते हैं, राम (आत्माराम) जो है। तो जो कुछ कह रहा हूँ, बिल्कुल बराबर है।

- वो झुके, इतना ही नहीं, हमारा काम हैं। प्रचार भी हो प्रसार भी हो। अभी जो बोला हूँ, ये प्रसार के लिए है। होता है, हुआ है और हो रहा है। और जो करेगा उसको बराबर होता चला जायेगा। किताबे हम सब पढ़ते हैं, मंदिर हम सब गये, हाथ जोड़ते हैं। लेकिन होता नहीं कुछ उससे। वो प्रचार है, संस्मारक है केवल। कारक नहीं, कारक तो जब आचरण में लायेंगे, तब होगा। ऐसे दोनों चाहिए। प्रचार भी करो और प्रसार भी करो। यही कार्य आप लोग मुझसे करा रहे हैं। कुछ भी नहीं है, ये जो अनुभूति है-यही आनन्द प्रदायिनी हैं, तो आनन्द ये है। इसी को ब्लिस कहते हैं, उतरती नहीं, ब्लिस (परफेक्ट ज्वाय) कहते हैं। अरे ये, और ये आत्मानन्द है, जो कि मस्त मगन हैं। मस्त रहते हैं, जहां बस्ती है मस्तानों की। तो दीवाने ही सदा मस्त, अपने आप में रहते हैं इनके जैसा रहना चाहिए है। अपने आपको भी जानना चाहिए। कहते है न, अपने आप में

तो रहो, खुद के चेहरा देखो, हम अपना चेहरा को कभी नहीं देखते। दूसरों का चेहरा देखते हैं, इसलिए। अपना चेहरा और दूसरों के चेहरा में क्या अंतर है, अपना चेहरा सबका चेहरा बन जाय। तो हम प्रचार भी करें और प्रसार भी करें, तो ये है, भारतीय संस्कृति। आज जो इसमें मार्मिक जो कमियां हैं। ये दूर हो, और ये प्रखर हो। प्रखर हो करके, फिर हम उसी-सत के युग में पहुंच जाय। तो उद्देश्यों, को प्रयोजनों, को सामने लाओं और रात-दिन अभ्यास करो। फिर चाहे जहां जहां जाओ, और ये आप स्थापना करो। याने जो आपके पास आते हैं, अवश्य बता देना चाहिए। सिखा देना चाहिए, तब वो होता है। आप ही स्वयं, जो वो पुरुष आपमें है। ऐसा जो पौरुष है आपमें, वो जो शक्ति है, इस प्रकार विकसित हो गई। और होती रहेगी, और आपका कल्याण होगा, इसी का नाम है-मुक्ति। जीविका की चिंता नहीं, सुरक्षा की चिंता नहीं, उद्धार की चिंता नहीं । ये तीनों चिंता से मुक्ति। मुक्ति मैं, इसी को मुक्ति मानता हूँ। ऐसी ही आप संसार में आकर, अपना कार्य करिये। आप बोलिये, हम जैसे हैं, जैसे हम अपने आपको परफेक्ट कर लिया, या परफेक्शन मिल गया या साल्वेशन मिल गया। उसी प्रकार से हम आप लोग, जीवन्मुक्त हो। जीवन को बदलो, अपने आपको देखकर। और सामीप्य में आपको रहना है। ये पुरुष वही है, वही सत है। जिसका नाम है, आत्मा। जो परम है। आत्मा। आत्मा क्या है? ये शक्ति है। इस शक्ति को विकसित करना है, तो ये जो भारतीय संस्कृति जो है, ये जो पुरुषार्थ है। इसी का नाम है, शास्त्र। जन्म-मरण के फेर से हम छूट जाते हैं। तो ये आत्मवृत्ति, खोलना है, आपको। तो दैहिक, दैविक, भौतिक तापा, रामराज्य काहू में न व्यापा। जो कृष्ण ने कहा कि मैं ये आत्मा में निवास करने के बाद, सम्यक सिद्धि याने पावरफुल बनाते हैं, और इसलिए। मेरा सब, जन्म-कर्म दिव्य है।

- माने आपको भेंट देते हैं। भेंट देते पुरुस्कार देते हैं, ठीक है। ये हो गया भौतिकी, भेंट और पुरुस्कार। और जब अंदर जायेंगे तो क्या होगा? आपका कार्य जन्म लेने का उद्देश्य सफल हो गया। और आपका प्रयोजन सफल हो करके पा करके प्रयोजन क्या है? कि जगह-जगह जाकर उसकी स्थापना करें। माने आपका जन्म कार्य संपन्न हो गया। पहले उद्देश्य बाद में कार्य सम्पूर्ण। आपका काम क्या है? अपने जैसे सबको तैयार करना हो गया। ये अपवर्ग है। ये भौतिकी है। ये आध्यात्मिक है। तो ये विश्लेषण है, अहं ब्रम्हास्मि के। इस तरह से ज्ञान देव ने इसको भागवत धर्म बना दिया। शुरू करा दिया। तुभ्यं मस्तु गोविंदं। तुभ्यं ऐव तु समर्पितं। समुद्र है, तुम्हीं हो तो समुद्र। आये न ख्याल में। वो है, प्रसीद, प्रसीद परमेश्वरः। परम ऐसा जो ईश्वर है। परमात्मा। है क्या? अपने अंदर है क्या? बस आनन्द हो। आनन्द मंगल हो। इसलिए आप मुक्त हैं। आप मुक्त हैं, सब जगह में। नाट् टू बी, दिस आर दैट। अभ्यास मेरा ये है। माने तुलसीदासजी का कहना है कि दीजिये न जबान, खींचिये न कमान, पर स्त्री मात समान। इतने पर हरि न मिले, तो तुलसीदास जमान। जमान, जमानत, मैं हूँ। मैं, जमानत लेता हूँ, बोले। दीजिये न जबान, माने प्रामिस मत करो, किसी को। मैं बोला, आप लोगों को बुलाता हूँ? हमेशा सुनते कि नहीं। कल जब हमको कसने लग गये, तो। मैं तुमको बुलाया था, क्या? नहीं, नहीं बोले हम आये। फिर? कैसे कहते है,आपने ऐसा कहा था? हमने आपको बुलाया तो नहीं? मैंने कहा आपको? आप स्वयं आते हैं और कुछ पूछते हैं। मैं उत्तर देता हूँ। इसलिए मैंने कुछ कहा नहीं, प्रश्न कर्ता ही पकड़ा जाता है न कि उत्तर देने वाला। इस पर मुझको दोषारोपण करेंगे क्या? मैंने आपको बुलाया था क्या? चुप ही हो गया। तो दीजिये न जबान, और

खिंचये न कमान। पड़िये न जबान ऐसा है न। दीजिये न जबान माने वो ही, किसी की जमानत नहीं लेना। खिंचये न कमान माने बदला नहीं लेना। पर स्त्री मात समान। पर स्त्री कोई है ही नहीं। न कोई सेक्स, न कोई जेंडर है क्या? है क्या जेंडर? आत्मा में कोई जेंडर है क्या? नहीं। अपने से तुम, टिक हो। ठीक हो। जैसे चाहो, वैसे ही हो। तब इतने पर न हरि मिले, ये जब स्थिति आपकी हो जाय। इतने पर हरि न मिले, इतना होने के बाद। ये स्थिति, अवस्था प्राप्त करने पर, उस स्टेट में पहुँचने के बाद। अगर हरि न मिले, तो मैं (तुलसीदास जमान) हूँ, जमानत लेता हूँ हैं। बोले, ये है, गुरु पद के योग्य है। ये है, बंदउँ गुरु पद पद्म परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा। अमिय मुरिमय चूरन चारु समन सकल भव रूज परिवारु। श्री गुरु पद नख मणि गन जोती, सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती। उघरेह विमल विलोचन हिय के मिटै दुःख भव रजनी के। जथा सुअंजन अंजि दृग साधक,सिद्ध, सुजान। कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान।

।। आदर्श धर्मात्मा होते हैं न कि महात्मा ।।

- तब अहं ब्रम्हास्मि, जो वेद में चार शब्द कहे-अयं आत्मा ब्रम्ह। तत्वमसि, शुरुआत यहां से है। तत त्वं असि-वह तू है। ये तीनों जो है हमारा है, मेरा क्या है, प्रैक्टिकल है। ठीक है, सिद्धांत ठीक है न। आगे अभ्यास किये, तत त्वं, असि, जिसको देखने गया अरे, ये तो मैं ही हूँ। सोअहं अस्मि एक वृत्ति अखण्डा दीप शिखा सोई परम प्रचंडा, डिवाइन ओशन ऑफ लाइट में आ गये। लेकिन फिर भी इस लाइट में जाना है। लेकिन फिर भी इतना बहुत अच्छा है, ये क्या छिप गया। क्या देखा है, आतम अनुभव सुख सुप्रकासा-ये जो प्रकाश है, ये आत्मानुभूति है,

आत्मानन्द है, आत्म अनुभव सुख सुप्रकासा, जिसमें सुख कि आनन्द ही आनन्द है, ये आत्मानंद है। तब भव मूल, तब जन्म का जो है मूल वासनाएं, भेद, निराकार, तब भव मूल भेद भव नाशा, ये तुम्हारा सब गया, पहुँचों, हम अनपढ़ आदमी है भला, लेकिन जो समझता है उसका अनुभव है, जो समझता है, जो किया है, इसमें कोई भी, कहीं भी हो।

वो आत्मा निराकार है, क्यों निराकार है? ज्ञान का कोई स्वरूप है, उसका कोई आकार है, बताइये हमको।आप डिफाइन कर सकते है, क्या? वो निर है निर माने बोध। नाहं मनुष्यो न च देवयक्षौ,न ब्राम्हण -क्षत्रिय-वैश्य-शुद्रः। न ब्रम्हचारी न गृही वनस्थो।भिक्षुर्न चाहं निजबोध रूपः। कितना बढ़िया सूत्र है-अपने आपको बाइंडिंग में क्यों लाते हो, मैं मनुष्य हूँ आरोप है, इसलिए उसको भोक्ता कहा गया, भोगो। नाहं मनुष्यो न च देवयक्षौ,न ब्राम्हण -क्षत्रिय-वैश्य-शुद्रः।न ब्रम्हचारी न गृही वनस्थो। भिक्षुर्न चाहं निजबोध रूपः।ये तो खाली स्टैंड अंडर दि डिवाइन पावर, डिवाइन टीचिंग, डिवाइन स्टेट, या डिवाइन, वास काल हिम इन्फ्लुएंस आर इम्प्रेशन। वी डू नाट सिक ऑफ दि कांफ्लिक्ट, एंड दैट इस थाट । डाइजेस्ट थाट, अवर थाट। इस अवर बाइंडिंग्स। दैट इस काल, वासना, काम, इच्छा, काम और कामना। काम और संकल्प इसके पीछे मारे-मारे फिर रहे हैं। तो तात्पर्य ये है कहने के, तब ये होता है-तत त्वं असि। फिर सोअहं अस्मि, तब ये लास्ट, जब वो निर्बीज हो गया। गर्दन टूट गया, सिर गर्दन उलट गया। नो ब्रीदिंग, नो सरकुलेशन, नो सेंस एट आल। नो मोटर वर्क्स आर देयर, नो सेंस, सेंसरी वर्क्स आर देयर, देयर इस नथिंग। थिंग्स आर डिसअपेयर, यू आर ऑन। आन माने कुश्ती, आन आप बीच में हैं। सोअहं अस्मि एक वृत्ति अखण्डा, दीप शिखा सोई परम प्रचंडा। अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तँ येन चराचरं,

तत्पदं दर्शितं येन, इससे। सत्पुरुष के बिना ये बहुत कठिन बात है। अनेक जन्मों का पुण्य जब उदय होता है, तब इस ओर मनुष्य की बुद्धि झुकती है। केवल झुकती है। जावे मन की मलिनता तब भावे सत्संग। तब आत्मा की ओर वो झुकता है, तब आत्मा की खोज में वो लगता है। नहीं तो अनात्म वस्तुओं के पीछे वो लगा रहता है। जब देखो वो दुनिया में है, तब वो ऑब्जेक्टिव। एकनिष्ठ कहाँ है? वस्तुनिष्ठ है। उसका सारा ब्रम्हांड। महात्मा, ईश्वर (विश्वर), सब वस्तु है। तो, ये निराकार, ज्ञान है। निराकार कोई स्वरूप नहीं, कोई आकार नहीं। कोई आदि नहीं और कोई अंत नहीं। इसलिए वो सर्वव्यापक है, सर्वत्र है। और वही साकार, सगुण है और सगुण होने से। बताये न अभी, ज्ञानेन आत्मनों धर्मों ज्ञान नैव, ज्ञान प्राप्त होता है, माने वो कोई और चीज है।आप, समझ में न, आ गये, ज्ञानेन आत्मनों धर्मों ज्ञान नैव उसका कोई धर्म नहीं, कोई लेना नहीं। क्योंकि वो स्वयं ज्ञाता है। हम ज्ञानी है और वो ज्ञेय है। जाना गया ज्ञानी, क्या देखा-त्यत तत्यतिष्ठद्दशांगुलम् क्या दिया, स्थावर जंगम व्याप्तनि परमात्मा, दशांगुली। उरला नहीं वसला। उरला माने उधार है, उरला माने टुकड़े होते, का है। वो तो अखण्ड है। दशांगुली माने क्या है? सेरिब्रम नापी क्या? दवाखाना में जाओ, शव आप छेदन करो। दस अंगुल मिलेगा, एकाध सेंटीमीटर इधर उधर। तो ये, ये जो है, दशांगुली वसला। ये वेद हमारा हजारों साल पहले, ॐ,सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात।स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्। यहां से वहां तक, त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् लेकिन सर्व व्यापक होते हुए। लेकिन कहाँ बैठा है, ये दस अंगुल वाला प्रदेश में। वहीं मिलता है और मनुष्य की बुद्धि में प्रकट होती है। होता है। त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्, तिष्ठिति माने बैठा, वसला, माने उरला नहीं, ठीक है। भू भवान तिष्ठित, भू भवान

उत्तिष्ठितः, ठीक है।, इस प्रकार से जब, आपका विचार हो जाता है, आपकी बुद्धि जब, जो विकार हैं, जो विकार भरे पड़े हुए हैं। वे विकार याने। विष को अमृत, करके आप लोगों के जीव बचाते हैं कि नहीं? इसी प्रकार का उदाहरण समझ लीजिए आप,स्नेक पाइजन को, आप काम में लाते हैं, कि नहीं, निर्विष करके, ठीक हैं न, इसी तरह से आपमें जो बुद्धि में, नाना जो विकार भरे पड़े हुए हैं, ये नाना विकार, ये शुद्ध हो करके, ये गुणमय हो जाते हैं। क्या हो जाते हैं? आपके जो विकार हैं ये दोष शुद्ध हो करके गुणमय हो जाते हैं। जब वो गुणमय हो जाते हैं, तब वो जो शक्ति आपमें। जो अंदर से प्रेरणा देती हैं, माने जो शक्ति आपमें है। आत्मशक्ति जो है, वो शक्ति आंदोलित है, सदा अस्थिर। सदा अस्थिर, स्थिर नहीं है, शक्ति कभी स्थिर नहीं होती। एनर्जी कभी स्थिर नहीं है, अगर स्थिर हो जाय तो आदमी कोई हिल नहीं सकता। तब वो गुणमय हो करके तब साकार। सा, शक्ति, वो सा स्त्रीलिंग हो करके वो शक्ति है। और कार, कुरु, कुर धातु से कार बना है, क से कार बना है, क से कार्य बना है, तब वो कार्य करने में सक्षम होता है। कौन सा कार्य? कर्तुम अकर्तुम अन्यथा कर्तुम स सक्तः। तब वो स, सकला बोलते हैं। जैसे आपके यहाँ आपरेशन होता है, वो कभी भी हो, कोई भी आता है। शक्ति में चलकर, ये साकार और निराकार। मेरे पास उत्तर है। मैं किसी से सुना नहीं, न किसी ने आज तक बताया। अच्छा विद्वान आदमी, जो बनारस में पढ़ा रहा है, सबसे पूछता रहा। अभी अशोक आया पूछ लो, उसके सामने की बात है ।अशोक झूठ नहीं बोल सकता है। मुझे आज उत्तर हमको, मिल गया है। वो ही बाला प्रसाद अभी परसो आया था, हमारे यहां आश्रम में। लेकिन वो, कभी नहीं आता था, बुलाये, एक, दो दफे। लेकिन यहां कृष्ण है। गोपी, कृष्ण हम पकड़ने जाते हैं, कृष्ण भाग

जाते हैं। तो कृष्ण ने हमको पकड़ लेना। इतना बोलकर अपना निकल गया। ये बोलना ठीक है। विद्वान आदमी है वो। कैसे बोल सकेंगे? आप जिसमें एक्सपर्ट है, एक दूसरा आदमी, क्या बोल सकेगा, आपके सामने। बोल सकता है? अगर बोलेगा। आप कहेंगे, चुप रहो। चुप नहीं कहेंगे तो नहीं तो ऐसा है, इसलिए ज्ञान, ज्ञानेन आत्मनों धर्मों ज्ञान नैव। बिल्कुल नहीं। वो तो, ज्ञान सदा निर्गुण निराकार है। वो शक्ति है, महाशक्ति है। वो शक्ति है हम आप सब में भरी है। बुद्धि में जो विकार हैं, जो दोष हैं, वो दोष निर्गुण न हो करके, वो मल जो हैं, अमल हो जाता है। जब अमल है आप, गुण बन गये, जब गुणमय हो गये, आप। साकार, सगुण ,सा शक्ति कार्य करती हैं, अब। इससे सब कार्य होते हैं, नाच, गाये, वही। ये आपको कहीं नहीं मिलेगा, जो मैं कह, रहा हूँ, सही कह रहा हूँ। तात्पर्य ये कहने का सदा, नित्य,सर्वगतः शिव। नित्य है, सर्वगतः सत्य है, और शिव माने कल्याण, कल्याण माने, निर्मल, अमल। भीतर-बाहर एक है, वहां भेद नहीं है। तुलसीदास लिखा है न, कि आतम अनुभव, ये प्रचंड प्रकाश जब सारा यूनिवर्स भर गया, तो आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल, तब भव नाम जन्म का है, ये संसार का आना जाना, भेद,तब ऊंच नीच का भेद, अब नहीं। किं इंट्यूशन, इंट्यूशन नहीं, असत्य कुछ भी नहीं। असत्य माने बहाने बाजी। असत्य माने क्या, बहाने बाजी, क्या करे भई, इधर हम गये थे, इसलिए नहीं आ सका, ये, इसको बहाने कहते हैं। सर्वं खल्विदं ब्रम्ह, यहां सत्य है। सत्य कहाँ है? सर्वें खलु: इदं ब्रह्म। यही तो विराट पुरुष, यही तो विराट आत्मदेव है। तो तात्पर्य ये कहने का, मैं बहुत बड़ी-बड़ी बोल रहा हूँ। बड़े-बड़े विद्वान, लोग समझे या न समझे, मुझे मालूम नहीं है। ये विद्वान लोग हैं, समझेंगे कभी। मुझे क्षमा करेंगे।और मुझे अंग्रेजी ज्ञान नहीं है,

एक्सक्यूस करेंगे। सो यू नो योर सेल्फ, इस दि ओनली माय ट्रस्ट, नो योर सेल्फ। अपने आपको जानो। नो योरसेल्फ, नो दाइसेल्फ, नो योरसेल्फ। यही सेल्फ। इसलिए आत्मा तुम्हें ज्ञान देती है, अन्तः तुम्हें गुण देता है, आत्मा नही देता। आत्मा निर्गुणी और निराकार ही है, ये तो भोक्ता है। हम आरोप करते हैं, हम सुखी हैं हम दुखी हैं। हम पैसे वाले हैं, गोरे हैं हम काले हैं, हम बुद्धिमान हैं, ये आरोप, ये आरोप से आप सुख दुःख। यू आर दि मेन कास ऑफ पेन आर प्लेसर, एंड दिस इस काल सफरिंग्स। सो प्लीज़, एक्सक्यूज़ मी, थैंक्स, थैंक्यू, मधुर कर दो दुनिया सब।सब मधुर कर दो, सब मीठा कर दो। जो आज हमारे जितेंद्र, हमारे, अपने सब हमारे जैसे है, कोई अंतर नहीं, ठीक आत्मा है। आत्मा तो एक ही है, यही अद्वैत सिद्धांत है। लेकिन हमारा तो ये सिद्धांत है, हमें तो ये चाहिए, तत त्वं असि, ये तीनों चाहिए। और इसमें रह करके, जस मर्यादा जगत की बांध दियो करतार, राजा रंक यति सती करत, सोई व्यवहार। इसलिए मैं इस व्यवहार को नहीं तोड़ा हूँ, न तोडूंगा। हम तो संतों के दासों के दास है। उनकी बोली है, उनकी भाषा है, हालाकि कुछ समझता नहीं। लेकिन जो कुछ पाया और जो कुछ अनुभव में है। हमने आप लोगों के सामने में रखा। आप लोग, क्षमा करेंगे, ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः। ये है, एकोअहं बहुस्याम, याने मेरे तो प्रतीक है सब। एकोअहं बहुस्याम, याने सब हम ही हम हैं। मेरे अंश हैं। ऐसा नहीं है। माने जैसे हमारे, आप लोगों के कार्य है। जो शिष्य हैं, जो आप दीक्षा लेते हैं तो आप प्रतीक हैं। याने फालोवर नहीं, ऐसे मेरे अनुयायी नहीं हैं आप। हमारे सामने आप कार्य कर सकेंगे, इसलिए आप लोग माने तैयार हो रहे हैं, शक्तिमान आप हो रहे हैं। जब समर्थ हो जाएंगे, इसलिए अनुयायी नहीं हैं और न नया सम्प्रदाय है, प्रत्येक व्यक्ति, अपने में स्वतंत्र है। क्योंकि

मेरे सब प्रतीक हैं, इसका ये अर्थ है, एकोअहं बहुस्याम। मैं अकेला होते हुए, बहुत हो जाऊं।

- एक भी संस्कार रह गया, आगे फिर से जन्म लेना पड़ता है। इसलिए अपनी-अपनी भोगों और रहो, इतना तो है। जब से आपको लाइट मिल गया तब से किये गये कर्मों का प्रारब्द्ध नहीं बनता है।अंदर घुसो,अंदर घुसे बिना वो नहीं मिलता है। जिसे तुम ढूंढने जा रहे हो, वही तो तुम हो। आत्मा ही तुम हो, यही तो परमोत्कर्ष है। चिराग लेके ढूंढों, ऐसे लोग नहीं मिलते हैं।

  विशुद्ध चक्र (पंचम) में जब आता है, तब उसकी बुद्धि का (अनेक जन्मों और इस जन्म के संस्कारों का) शोधन होता है। पूर्ण विनाश एक दिन में नहीं है, एक जन्म में नहीं है। जब सम्पूर्ण संचित कर्मों का विनाश हो जाता है, तब उसकी ऊर्ध्वगति होती है। तब तक हम पतित हैं, अधोगति, अधोरेतस। हम पावन हुए नहीं हैं, ऊर्ध्व रेतस (सामर्थ्य वान) नहीं हैं।

  आप बंद कर दो, अभ्यास, वो शक्ति जाग्रत है, हो जाता है। सतोगुण उदय होता है, वही माने सिद्ध। सिद्धि, पावरफुल, हाईवे में आ करके सब अटैच्ड है, बिना किये अभ्यास होता है।अनाभ्यास को अभ्यास कहते हैं। ये कभी सुना आपने, जितना अनाभ्यास करेंगे माने टालेंगे उतना अभ्यास होता है।

- अगर ये लक्षण हैं, उसमें, वो भक्तिन है। जो समाज से विभक्त नहीं वो भक्त है। कहने का तात्पर्य ये है महात्मा पहचाना नहीं जाता क्योंकि वो आत्मरति होता है।आनन्द उसको भी है। दिव्य शक्ति प्राप्त हुआ, किसी

को दे नहीं सकता, केवल अपने आप में मस्त है,वो।और ये आत्म क्रीड़ है, अपने जैसे सबको तैयार करता है। क्योंकि जाना जाता है, देखो ये लक्षण है। ये लक्षण ये है, यहां आप लोग जमा हुए कुछ न कुछ लक्षण औरों ने पाया होगा, देखा होगा, इसलिए नए-नए लोग आ रहे हैं।इसलिए धर्मात्मा ये समाज का एक, समाज में एक, आदर्श जीवन व्यतीत करता है। और महात्मा खाली अपने, आत्मरति है, बस। अपना हो गया, हो गया, बस, अपना पड़े हैं, मस्त। आदर्श धर्मात्मा होते हैं,न कि महात्मा। दिव्य शक्ति सम्पन्न वो भी हैं,और ये भी हैं। लेकिन वो सम्पन्न हो के, खाली अपने तक ही रखा है, वो दे नहीं सकते। वो ही कहेगा, ये ही कि ईश्वर आपको दे दे, तो ठीक हो जायेगा। ईश्वर कि कृपा प्राप्त करो। ईश्वर कि सेवा करो।तो आपको दे दें । कहीं भी जाओ, ये है,भगवान तुम पर कृपा करें , तब होगा। अन्यथा नहीं होगा। वो साधु हो न हो,हमको ये नहीं मालूम।लेकिन सबके मुंह से यही निकलता है।ईश्वर कि कृपा करते हैं,तब होता है।और यहां तो ईश्वर कि कृपा हमारे मुंह से कभी नहीं सुनते, ये पहचान है। इस तरह से महात्मा पहचाने नहीं जाते।क्योंकि उनके कोई लक्षण बाहर नहीं दिखते।धर्मात्मा के लक्षण होते हैं।इन लक्षणों से धर्मात्मा जाना जाता है।ऐसे,धर्म एको हि निश्चला।ऐसे सारे ब्रह्मांड उत्पन्न होने के पूर्व एक ही धर्म था।एक महाशक्ति थी।और वही है,आत्मा।आत्मा नाम नहीं है, गुण है।वो क्रिया,तीन क्रियाएँ,जिसमें तीन गति हैं,जिसमें। और ये प्राप्त होने पर,ये पद है ये।परमपद प्राप्त होने पर आनन्द है।विशुद्ध हो जाता है, स्वयं में आनन्द हो जाता है।आत्मानंद में लीन हो जाता है। तब कुलं पवित्रं जननी कृतार्था विश्वंभरा पुण्य वतीच तेन अपार संवित्सुख सागरेऽस्मिन लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः। जिसका मन परमब्रम्ह तत्व में लीन है, और अपना टीम लेकर चलता है, अपना

जैसे सबको तैयार करता है, ये धर्मात्मा हैं।हमारे मत के अनुकुल।तब वो समाज को लाभ होता है क्योंकि वो आदर्श हो जाता है।वो अध्ययन करता है, अभ्यास करता है और अंतिम स्वास पर्यंत,अंतिम स्वांस तक, अभ्यास करता है।आचरण में रख पाता है। अध्ययन कर आचरण में लाता है और समाज को भी अध्ययन करवाता है, आचरण करवाता है। और अंतिम स्वास पर्यंत वो स्वयं आचरण करता है, ये लक्षण हैं जिनमें, उन्हीं को आचार्य कहा है। और आचार्य ही आदर्श होता है, समाज के ऊपर। और इन लक्षणों से युक्त हैं, हम उसको भक्त कहेंगे।क्योंकि विभक्त नहीं समाज से वो भक्त है, वो । मनुष्य को वैदिक धर्मानुसार, जिस काल में वेद हमारे सामने आया, वो जो आचरण बताया गया है। इसलिए इसको वैदिक धर्म कहा गया है।वेदों ने हमें जो शिक्षा दी हैं, उस शिक्षा के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करना। उस साँचा में ढाल लेना, और उसी तरह से जीवन व्यतीत करना।तो जो धारणा,धारण किया और उस पद को प्राप्त किया।तो वैदिक धर्मा अनुसार उसमें साधना के लिए,अपने आपको आत्मसाक्षात्कार करने के लिए।परम तत्व को अनुभव करने के लिए।परमतत्व में मिल जाने के लिए, परमतत्व क्या है? परम् तत्व कोई और चीज है, उसको समझने के लिए। एक सन्ध्या पुस्तक,पढ़ने लायक है।पुस्तक छोटा सा है, नाम सन्ध्या लिखते हैं। तो सन्ध्या कहने का तात्पर्य ये है, ये सम्यक ध्यायते इति संध्या। इस पद पर पहुंचने के बाद,वो जो परमपद है।वही परमपद है वहां पहुंचने के बाद।आप जिस चीज का आप, ध्यान। माने, जो चीज ध्यान में लाना। जिन वस्तुओं की,जिन कार्यों की आवश्यकता है, अनिवार्यता है। वो लक्ष्य में आते के साथ में वो कार्य अपने आप थोड़े ही काल में, औरों के द्वारा,समाज के द्वारा वो सम्पन्न हो जाते हैं। क्योंकि समाज से विभक्त

नहीं है। अभी हम सब विभक्त हैं समाज से, प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना देखता है। कोई किसी का नहीं देखता है, ये बिल्कुल सत्य बात है।आज कोई किसी को पूछने के लिये तैयार नहीं, कोई किसी का कुछ सहायता करने को तैयार नहीं।ये बात उतनी ही सत्य है।अपने को ही पूरा नहीं पड़ता है,यही जवाब मिलता है।लेकिन नहीं? वैदिक धर्मानुसार,संध्या पुस्तिका दिया हुआ है। सम्यक ध्यायते इति संध्या। जो चीज चाहिए,जो चीज घर में लाना है, आपमें लक्षण युक्त, आपके जीवन में जो आ गया है। ये परम् तत्व प्राप्त होने के बाद वो अपने आप हो जाते हैं, समाज के द्वारा । वो समाज का हो जाता है।जब व्यक्ति समाज का है, सारा समाज का भी दायित्य होता है।आज व्यक्ति समाज के लिए नहीं है।आज व्यक्ति-व्यक्ति के लिए हैं केवल, प्रत्येक व्यक्ति, स्वयं अपने लिए है।कानून भी बना है।प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है, इंडिविजुअल शब्द कहा गया है।आज जो वातावरण है, आज जो काल है, इस काल में,आज जो काल है। प्रत्येक व्यक्ति, इंडिपेंडिटली प्रत्येक व्यक्ति इंडिपेंडिट है।माने प्रत्येक व्यक्ति फूट गया।सोचिये आप,धर्म के नाते से प्रत्येक व्यक्ति फूट गया।व्यक्ति केवल अपना देखता है।इसलिए क्या हो गया समाज में,अस्थिरता,अव्यस्थिता,अव्यवस्थित।तब ये तमाम अस्थिरता पैदा हो गई।वैदिक धर्म में कोई जाती नहीं थी, कोई जाती नहीं थी।कोई वर्ग नहीं था। गुणधर्म के आधार से इसको वर्ग कहा है बाकी कुछ नहीं है। जाती नहीं थी।दस वर्ग थे-परम्, हंस, देव, ऋषि, मुनि , द्विज, ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, और क्षुद्र। याने बिल्कुल कला और विद्या से शून्य हैं, इस प्रकार से उसका जीवन यापन होता है, इसलिए क्षुद्र कहा गया। ये क्षुद्र का शुद्र बना है, ये तथ्य यहां तक है। कोई भी जाती नहीं थी, इसका प्रमाण है, विश्वामित्र को राजर्षि कहा।और जब वो हत्या करना छोड़

दिया, और धनुष-बाण, डाल दिया।तब वशिष्ठ जी के पांव में गिरे, उठिये, उठिये ब्रम्हर्षि उठिये, उस दिन से ब्राम्हण हो गया।और ये त्रेता तक है।ये कलयुग में जैसे-जैसे योगाभ्यास से गिरते चले गए, आत्मा से गिरते चले गये। आत्मनुभूति की जो पद्धतियां हैं, भ्रष्ट होते चले गये। यहां से ये जातियां निकली।अब ये ही टोलियां हैं,जंगल में टोलीयां है।उसमें से आज टोली बनती जा रही है।तो तात्पर्य ये है, वो क्या था? जिसमें सब लोग समृद्ध थे।वो सन्ध्या वाली पुस्तिका में जहां ये दिया है, नाम है उसका, नाम नहीं है, वो शक्ति प्राप्त होने पर, सब कुछ मिल जाता है। ये है, आत्मा।आत्मशक्ति है,वही परम् पद है।आत्मसाक्षात्कार के बाद सब कार्य उसके बन जाते है, उसकी कामनाएं सब बन जाते हैं।और सबके कल्याण के लिए वो जीवित है,और उसकी जीविका होती है।आज वो कार्य है,समाज में नहीं है। पहले ये देखा जाता था, गांव में। हमने देखा है। मैं, गुजरात में देखा, काठियावाड़ में देखा,महाराष्ट्र में भी देखा।गांव के बाहर में, एक चौकी बनी रहती थी, कुछ अच्छे लोग बैठते थे, वहां पर। बाहर से यहां, कोई आता-जाता था, तो उससे पूछते, कहाँ? कौन? क्या? हालचाल पूछते थे, ये सब जगह यही था।आज कहीं भी नहीं हैं। कोई भूखा तो नहीं हैं, यहां जो आया है, चारों तरफ ऐसे घूमते हैं, उनका पता लगाने के लिए, रात-रात जगते थे और पता लेते थे।आज वो नहीं है।यही चीज है, जहां से आज व्यक्ति, व्यक्ति है।क्या चीज है, जहां से ये मिलती है, वो है, गायत्री एक मंत्र है।वशिष्ठ जी ने, जब विश्वामित्र हजारों शिष्य को लेकर विश्वामित्र गए थे । आगे आश्रम है, वशिष्ठ जी का, गांव के बाहर जंगल में डाले थे अपना डेरा।डेरा डालने के बाद।तो काम के इंसान से न कहते हुए, गुरु वशिष्ठ जी ने,एक गाय पाले थे,कपिला गाय।उसके पास गए और कहा ये राजे-महाराजे सब आये हैं, इतना

सैनिक,हजार सैनिक हैं।विश्वामित्र महाराज आये हैं, इनकी सब प्रकार से आदर संबंधी सब दे दो, खाना-पीना, लेन-देन सब।इसलिए उसे कामधेनु कहा है, गाय का क्या नाम है? कामधेनु। इतना कहकर वो वहां से चले आये, और आदमियों को बुला लिए। बैठ के सब खाना शुरू किए नाना प्रकार के, सब प्रकार के भोजन।नाना प्रकार के मिठाइयां, दूध, दही, षडरस नैवेद्य, वो खिलाये।विश्वामित्र को मालूम हुआ, ये गाय है, इसके द्वारा सब काम होते हैं। गाय के पास गए,रस्सी खोल दिये-चल बोले, गैय्या आंख फाड़ी, जबर्दस्ती किये।वशिष्ठ जी भी आ गए,बैठ गए। गैय्या ने फिर, जैसा-जैसा जप किये नीचे, उनमें से हजारों सैनिक तैयार हो गए।और जो युद्ध हुआ, विश्वामित्र के सारे सैनिकों को जो भगाए, और विश्वामित्र भी गाय को छोड़कर भागे।वो गाय, वशिष्ठजी के, ऋद्धि-सिद्धि रूपी गाय थी। रिद्धि-रित धन धी। रित माने सत्य। जो सत्य परब्रम्ह है। जो प्रज्ञावान है, जो वो और सिद्धि-माने पावर। सत्य रूपी गाय में वो पावर जिसमें रख गया।क्योंकि ऐसे लोग थे,जो मारकर,जीला देने में समर्थ थे। नाश करके भी ठीक कर देना, जीला देना।वो समर्थ थे,इनको समर्थ कहते हैं।तो वो समर्थ, वशिष्ठजी चार चीज दोहने के लिए,ऐसे गाय का निर्माण कर दिया।सत्य और तपस्या से वो रख दिया, इसलिए वो गाय नहीं थी।वो गाय, लेकिन सत्य और सारी शक्तियाँ हैं, अष्टसिद्धि और नवनिधि,ये सब उसमें थे।इसमें रखा,और अपना शयन कर, वशिष्ठजी को कुछ करना नहीं पड़ा।वो जो महाशक्ति सोई हुई है, आत्मशक्ति। जो, वासनाओं से दबी हुई है, उसमें से हटाकर के वो शक्ति को प्रखर करना।तब वो समाज से विभक्त नहीं है, वरना आज हम विभक्त है।गायत्री में प्रथम अक्षर है,ॐ।उस आत्मा का नाम है-ॐ।वो निराकार ब्रह्म का नाम है-ॐ।दीक्षा देनी चाहिए।तत, त्वं,असि,

ये वेद के चार महावाक्य हैं।तत माने वह, त्वं माने तू, और असि माने वह तू है।इन तीनों पदों का जो ज्ञाता है, वह ज्ञानी होता है।

पद नाम ॐ का है। ॐ को पद कहा, इसमें तीन पद है, अकार, उकार और मकार। तो वो तीन पद को जानता है, और ये तीन पदों को जान करके, जो सिक्स्थ सेंटर तक आ जाता है । तब होता है,

ॐ भुर् भुवः स्वः तत्स्त वितुर् वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात।

ऊँ एक नाम है। ऊँ एकाक्षर ब्रम्ह है, तीन पद है, अकार, उकार और मकार, उत्पत्ति, स्थिति, लय।

जिस शक्ति के द्वारा होती है वो महाशक्ति है, आलमाईटी। जो कुछ आप कहे, गॉड कहिये अल्लाह कहिये, ब्रम्ह कहिये, आत्मा कहिये, परमात्मा कहिये। शक्ति के सिवाय कुछ नहीं उसी का नाम है। और वो जो शक्ति है आज तक किसी ने देखा नहीं है, उसका कोई अंत नहीं है, आदि नहीं । तो अंत कहाँ है? वो सर्वव्यापक है, अंदर वही है, ऊपर नीचे वही है । इसका नाम है - ऊँ।

तत् माने वह, इसका दर्शन होता है। सवितुर् माने सविता, सविता नाम है सूर्य का, सूर्य की तरह दर्शन होता है। आदित्य सा वर्ण है। गीता में दिया है, कविं पुराणमनुशासितार मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः सर्वस्य धातारमचिन्तयरूप मादित्यवर्णं तमसः परस्तात। याने सारे अज्ञान सारे अविद्या सारे अंधकार उसका। इस सूर्य उदय होने पर अज्ञान, अंधकार वो दूर हो जाते है । कुछ भी नहीं रह जाता। बोध होता है, ज्ञान हो जाता है। ज्ञानी हो जाता है, तो सारे बंधनों से मुक्त हो जाता है। तात्पर्य ये है इस सूर्य के दर्शन होने पर अंधकार मिट जाता है, रह नहीं जाता। तो प्रकाश ही प्रकाश हो जाता है।

उस तरह से अभ्यास के द्वारा, ये सूर्य उदय करना होता है।अभ्यास के द्वारा उसका जो है मनन करने से। अग्नि-एक लकड़ी के अंदर अग्नि है लेकिन दिखाई देती, नहीं आप जब लकड़ी को घर्षण करें, तो लकड़ी में से अग्नि पैदा होती है।अतिशय रगड़ करै जो होई अनल प्रकट चंदन ते होई। इस तरह से इस शरीर रूपी लकड़ी में वो प्रसुप्त रूपी अग्नि जो आत्मा है। अगर इसका आप रगड़ करेंगे, यहाँ वो जो है अग्नि प्रकट हो जाती है। अग्नि जो है वही आत्मा है। शरीर लकड़ी है, आत्मा अग्नि है, लेकिन घर्षण से योगाभ्यास से ध्यान से जो कुछ प्रक्रिया हो, जो पद्धति आपके हो। मेथड ऑफ वरशिप हो, उस पद्धति से आप सेवा करना चाहते है अपनी। हमारा कुछ कहना नहीं है। यह ज्योति के रूप में प्रकट होकर आपको दर्शन होता है। ॐ र्भु भुवः स्वः ये पद्धति है उसको घर्षण। वो प्रकट हो जाती है, आपः नाम आत्मा का है ज्योति नाम आत्मा का ही है, ब्रम्ह ये आत्मा का ही नाम है। और ये ॐ र्भु भुवः स्वः है उससे घर्षण करने से, अनल वह लकड़ी में से अग्नि प्रकट हो जाती है। इसको तो आप छोड़ दिये और माला लेकर बैठ जाते हैं। आगि से लकड़ी जला देते हैं और बढ़िया घी शक्कर और बढ़िया चावल मिला करके, गुड़ वुड़ मिला करके, और ओम स्वाहा, ओम स्वाहा, आकाश वातावरण को वो शुद्ध करते हैं। तुम्हारा वातावरण वो शुद्ध हो रहा है कि नहीं, तुम्हारा शुद्धिकरण होना चाहिए, उस ओर हो कि नहीं। तो वो कहते हैं, तुम नास्तिक हो।

मेरा जो कुछ, कहते नहीं, मैं वही तो बोलता हूँ । अस्ति माने सत्य, है । क्या है? उसी को तुम भूल ही गये। तो तात्पर्य ये है, ये तीन पद से युक्त ऐसा जो, अकार, उकार और मकार है,उसका नाम ऊँ है। घर्षण करने से, मनन करने से, आत्मा दर्शन करने योग्य है। दर्शन होता है किसी

सत्पुरुष के पास पहुँच करके, उसके द्वारा वो, जैसा सीखे, वही, गायत्री मंत्र उसका जो रहस्य है आपके सामने रख देता है, सूर्य की तरह दर्शन होता है। नाना जन्मों के विघ्न है, नाना जन्मों के वासना है, वो सब क्षीण हो जाते हैं। और नये संस्कार बनता नहीं। पुराण पुरुष जो हैं इन लोगों का कहना हैं, ये आत्मा का दर्शन होता है । लेकिन कब? इस प्रकार से अभ्यास करने पर। इसी (आत्मा) से सारे संसार अनुशासित है। सारे यूनिवर्स को सारे ब्रम्हांड को। अनेक ब्रम्हांड को, सारे जो जितने हैं, और अचिंत्य है, समझ में आता नहीं। आज तक किसी ने समझा नहीं, इसलिए आदि अंत रहित कहते हैं। आदित्य वर्ण है। आदित्य वो बाल सूर्य की तरह दर्शन होता है, मन, बुद्धि, चित्, अहं से परे है। इस प्रकार से कोई रगड़ से / लगन से लग जाय। संध्या जो पुस्तक है, घर्षण की एक पद्धति है। हमने इसे हँसी मजाक समझ लिया है। संधि/संध्या, माने क्या? इस दर्शन होने के बाद, तब वो सत्य है। वो प्राप्त हो जायेगा, वहाँ वो स्थिर हो जायेगा।

भर्गाः जैसे सूर्य उदय होने से, अभ्यास के द्वारा ये उदय होने पे। षष्टम भूमिका में स्थिर होने पर, भूँज देने वाला। क्या भूँज देता है? नाना जन्मों की तुम्हारी जो वासना हैं ये प्रसुप्त हैं। अभी जो कर रहे हैं, जिसका कल्याण नहीं हुआ है, भोगने वाले हो, अनंत जन्म लेकर के। ये सब जला देने में वो समर्थ है, ये सूर्य उदय होगा तब, आज कल के उसी प्रकार के तुम्हारा जीवन भी उज्जवल होते चले जाता है। माने इस जन्म में मल रहित होते चला जाता है, निर्मल होते चला जाता है। देवस्य। इस देव से बढ़कर कोई देव नहीं। ये सारे देव जो हमारे बनाये हुए हैं, ये सब भय के कारण है। यही वो देव है (आत्मा, आत्मदेव) जिसमें हम अभय होते हैं। इसके उदय होने पर सतोगुण शुद्ध हो करके सम्यक शुद्धि आ जाती है,

बुद्धि में आपकी, जब तक आपकी बुद्धि सम्यक् शुद्ध नहीं होती, बुद्धि प्रकृति में प्रवेश नहीं हो पाती। और प्रकृति भी शुद्ध हो करके पुरुष में प्रवेश कर जाती है, उसी का नाम है, कैवल्य। कैवल्य होने पर फिर क्या है? कुछ भी नहीं रह जाता।

ये मस्ती कुछ और है। तो तात्पर्य ये है अभी जो नशा है हमारे सब नकली नशा है।

।। ईश्वर की देन क्या है?और न देन क्या है? ।।

- ये है। उसका मतलब(पुनर्जन्म का) स्पष्टीकरण क्या है?प्रत्येक व्यक्ति उत्कर्ष की ओर सब कोई जाना चाहता है।लेकिन उसके कर्मों के पीछे जो डोरी है।वासना रूपी डोरी,उस वासना में कितने बिच्छू घुसे और साँप लटके हुए हैं।वो जाने दे तब ना, समझ आया न, तात्पर्य ये हैंहो सकता है।मैं बिल्कुल ये सोचकर के समाज में उतरा हूँ। जो मिलता है, उसे पचाओ। ये(शरीर धारी सम्भवतः) ज्यादा खायेगा तो अजीर्ण हो जायेगा, ये देव तो है,नहीं।और वो देव(मन्दिर वाला सम्भवतः) ऐसा है, वो खाता नहीं, इसलिए अजीर्ण होने का डर ही नहीं।ऐसा है, दिन भर लोग उस पर चढ़ाए दिन भर लोग उसको दे,वो खाता नहीं।ये सब दिन भर लोग उसको देते हैं, दिन भर खायेगा तो अजीर्ण हो जायेगा।बीमार हो जायेगा।तो डॉक्टरों को पैसा कौन देगा?बीमार हो गया कौन देगा।कोई नहीं करता।अब सोचने की बात है।ईश्वर की देन क्या है? और ईश्वर की न देन क्या है? नही,सोचो भई। आप तो(सब)समझदार हैं, सब जानकार हैं।ईश्वर मायोपाधि है।मायोपाधि है,इसलिए वो सब देता है,जो मांगों सब देता है।जिसने रिद्धि- सिद्धि मांगा वही साँप बिच्छू हो जाता है, क्योंकि वो शक्ति जहां मिली, फिर तुम सारी दुनियां को तंग करना शुरू कर

दोगो।चांगदेव ने यही किया।स्वामी रामदास जी के शिष्य जो था।जा रे तू भीख मांगता है, जा, दिन निकलने के पहले ही तेरी कल मौत हो जायेगी। (कितने लोग मर गये उसके शाप से)।लेकिन स्वामी जी को जाकर,उस शिष्य ने,कि उसने ऐसे ऐसे कहा।बैठ हमारे पास।कम्बल बिछा दिया, खाये-पिये रात में।मेरे पूछे बगैर रात में कम्बल के बाहर पैर न रखना।कोई कितना ही बुलाये, तुम्हारा माँ हो, बाप हो, दाई हो, शिष्य हो कोई, भी हो।किसी की परवाह नहीं।चार बज गये,पांच बज गये।वो डर गया अब मरेंगे, छह बज गये,सात बज गये,आठ बज गये,नौ बज गये।अरे भई जा उसके दरवाजे पर जा।जय जय रघुवीर समर्थ।अरे वाह भई तू मरा नहीं, मरा नहीं तेरा कौन गुरु? गुरु हैं। हा हैं।मैं देखना चाहता हूँ। ये है ,गया जो गया।यही सिद्धि है, सिद्धि जो पावर के लिए जो आदमी अभ्यास करता है।इस प्रकार से उसका नाश होता है, भला नहीं हो सकता उससे समाज का।इसलिए जैसे-जैसे आप मुँह मोड़ेंगे,वासनाओं से जैसे-जैसे मुँह मोड़ेंगे, वैसे-वैसे आप शक्तिमान होते जायेंगे।और बिना किये आपसे लोगों का कल्याण होता रहता है। क्योंकि वहां मैं नहीं हैं। जहां मैं हैं, वहां अभिशाप है। जहां मैं नहीं हैं,उशाप हैं।याने बन्धनों से मुक्त है।और जहां मैं है, अभिशाप है।कितने लोग डूबते हैं इसलिए मैं जाना चाहिये। ये तत्व जिसने समझ लिया कि उसी से सब उत्पन्न हुआ, जब उससे उत्पन्न हुआ, ये सारा विराट वही है। जब विराट वही है,तो हम क्या विराट में नहीं है?(हम)सभी तो विराट हैं।जो सबमें हैं, हमारे में वही जो हैं, लेकिन ये अभ्यास के बाद होता है। कहने से नहीं होता है, चल लड्डू मेरे मुंह में। चल लड्डू मेरे मुंह में।चल लड्डू, उसको अभ्यास करना पड़ता है।माने क्रिया करना पड़ता है, ये है क्रिया-आ, अब गया।क्रियायोग बिना कुछ नहीं होता,न बाहर न

भीतर।बाहर दुखदाई है और भीतर सबका सुखदाई है।सारे दुःखों को दूर कर दिया, तात्पर्य ये है, ये आनन्द है। यही आत्मानन्द है,यही नित्यानन्द है।यही ब्रम्हानन्द है,यही स्वानन्द है।और यही आनन्द है।यही इंग्लिश में कहते है ब्लिश।सदा मस्त रहते हैं, तब वो समाधि में गया। परिवार के लिए वो आदर्श होता है, किया कुछ नहीं,देखिये वो आदर्श होता है।जिसके पास सब कुछ है।ईश्वर ने बहुत दिया, लेकिन ईश्वर नहीं देता है, ये सब ऋण चुकाने के लिए,आप जितना ऋण लेकर आये हैं।आपको उतना ऋण देना है, इसलिए आपको उतना धन का संग्रह हो जाता है।आप रहते हुए देते हैं, और चलते-चलते सबको लिख के देते हैं, वसीयत। किसको- किसको देना, किसको कम- ज्यादा देना। कितना देना है,वो सब सामने आता है।वो अपने आपको बचाने के लिये कहता है ईश्वर ने दिया है।ईश्वर ने दिया वो कभी कम नहीं होता, क्योंकि वो चंगा रहता है।मन चंगा तो कठौती में गंगा। काशी में एक ऐसा हो गया।एक अच्छा संपन्न परिवार गये।बाल बच्चों के साथ, करोड़पति,गंगा नहाने।हाथ पैर धोते हुए सोने का एक कंगन उसमें से खिसक गया, रोने लगी माँ बाप क्या सोचेंगे? क्या नहीं सोचेंगे? माने ईश्वर का दिया है समझे न।बाहर निकले फिर अंदर गए, बहुत ढूंढे,ढूंढने वालों को लगा दिये वो नहीं मिला।गंगा की रेती जो है वो बहती रहती है, आप खड़े हो, पैर के नीचे रेती खिसक जाती है,इतना प्रबल धार है। अब ऊपर जब आये, एक चमार(आत्माराम) बैठा था।अपना पानी कुछ खिला विला और चमड़े के कुछ टुकड़े लेकर के।वो रो रही थी, रोती हुए जा रही थी।अरे बोले, नीचे आ। काहे रोवत है?अरे बाबा हमारी अब कुटाई होई।का भा का भा,का भईल बा।ये बोली है।अरे,बोली, बाबा हमारे हाथ की कंगन जो है,ये गंगा मैय्या ले गई,लेइल बा।अरे गंगा मैय्या

कभी नहीं लेती, वो सब को देती है। बोले गंगा में अभी नहाये नही हो, गंगा कभी लेती नही गंगा तो देती हैं। ये जो है देना जानती है, लड़की बोली हमारी हंसी उड़ावत है। नही,बोले, कंगन ढूंढे है? नहीं पाए। बोले, हमारे कठौती में हाथ डालो, काठ का बर्तन पहले घर घर में था अभी भी है, पानी भरा है, ये चमड़ा, हाथ डाल और ढूंढ-ढूंढ अब।तेरे को कंगन चाहिए न। वो लड़की(लोग है)१२-१४ साल के,वो काहे को सुनती है, वो हाथ डाला, ऐ हे हे कंगन।अरे ये है।कंगन मिल गया,उसको।कहाँ गुमा और मिला कहाँ।ये है, मन चंगा तो कठौती में गंगा।ये कहावत किताबी नहीं,सत्य कथा है।,है तुम्हारा मन इतना शुद्ध है?निर्मल है?चंगा माने मलरहित।फिर ईश्वर इस तरह दे रहा वहां चंग है।ये मालूम हो जाय कि मेरा सब कारोबार ही ईश्वर ही करता है, तो फिर मैं करता हूँ, मैं कुछ है, ये करना सब खत्म हो गया।अब तो हमसे काम लिया जाता है, भाई मेरा काम है, जब आप निरपेक्ष वृति होकर है। मैं मेरा बाप जितने बैठे है, कोई भी हो। हैं बोलते हैं,न ।ये कहानी है, कहानी नहीं।ये सत्य कथा है। मन चंगा तो कठौती में गंगा। मैं यहां नहीं है, अपने से मैं यहां नहीं है। ये सन्यास आश्रम नही ये पलायनवाद है।और आगे बोलना अच्छा नहीं, हम जानते हैं कि ये अच्छा नहीं है।अभी लड़की बैठी है, इसलिए कुछ नहीं बोल रहा हूँ,मर्यादा समझता है,सब। तात्पर्य ये है यह है।बना है दाल। भात बना है।कोई बाम्हन बैठा है आया।ये किसी हाथ के खाते नहीं।ऐसा बोलते-बोलते लग गया उसमें तो क्या हो गया? उसमें दाल जो है वो गिर गया, सारा दाल उल्ट गया। खाली भात भर रह गया,बोले महाराज सूखा ही भात मीठ लागत है।क्या?दाल ही नहीं तो क्या कहे? कौन बनाये घन्टा भर, सूखा ही भात बोले अच्छा लगता है, बहुत मीठा। ऐसा है,जो बच गया वो ही सही।तो पहले हमने अपने जीवन में ऐसा

किया है, दाल-भात सब एक साथ बनाते थे, लेकिन जो पहले पक गया सो हम पहले खाते थे। जो चीज पहले पक जाय,वो हम खाते थे।ऐसा क्यों?अरे भाई तब तक कौन बैठेगा?सब्जी पहले पकती थी।दाल फिर रोटी।पहले बहुत अपने आप को सताये।तो मन चंगा तो कठौती में गंगा। तात्पर्य ये है,ये ईश्वर की देन जो समझे वो समझा, नहीं तो बगैर समझे, लोग ईश्वर का नाम लेते हैं।ईश्वर की देन नहीं। ये जन्म ऋणानुबन्ध है, ये ऋण है, जो सब जमा है,इसलिए।व्यवहार में वो धनिक हैं, और वेदान्त में वो ऋणी हैं। या अधिक ऋणी हैं,या अधिक धन हैं।दोनों बराबर हैं। हमें उऋण होने के लिए ये सब जमा होता है, ये सत्य है। और ये दे देने के बाद उऋण हो गए, ये भी सत्य है।ठीक है, इसलिए ये नहीं कहना चाहिए ईश्वर ने हमको दिया।हमको क्या करना?क्या वेदान्त का।वो दोनों बाजू को तैय्यार करता है, तुम्हें दोनों बाजू को याद रखना है, ठीक है।जन्म रूपी ये सिक्का है। इसके दोनों बाजू व्यवहार और वेदान्त दोनों से हमें मजबूत रहना चाहिए।इसलिए इतना ना खाओ की अजीर्ण हो जाय।और बिल्कुल न खाओ की आप मरने को तैय्यार हो जाओ।युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।योग-भोग-उद्योग, ये सब योग हैं।प्रकार भिन्न हैं। योग क्या आहार करे?जो ये शरीर का पुष्टिकरण हो। व्यवहार जो हो नियमित हो, सीमित हो, समझ कर हो।जो आप कर्म करते हैं, योग्य करिये।इतना काम न करो कि आप थक जाओ, इतना न करो कि आप बीमार हो जाओ।कर्म जो करते हैं, कोई भी कर्म जो करते हैं।सामाजिक हो, राजनैतिक हो, पारिवारिक हो, ये सब सीमित हो।जहां तक शक्ति है वहां तक करना, फिर हाथ जोड़ लेना, युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।

।।गूढ़ भाव युक्त
आदेश,
श्री गुरुजी
के
शब्दों में
आदेश
माने पालन हो।।

1. भव माने अपने आप होता है (हैपनिंग)। कुरु माने करना (डूईंग) । ये भव है, कुरु नहीं। यहां करना केवल इतना है, कि जो रास्ता बताया गया है ऐसा-ऐसा बैठना, ऐसा-ऐसा ध्यान में लाना है। और बस चुप हो जाओ। अपनी भूमिका दृढ़ करना है।

2. गुरु को समर्पण ही, आत्मा को समर्पण है।

3. सेवा करने की पद्धति को भक्ति कहा जाता है। इसके द्वारा स्वयं को पहचानना ही ज्ञान है।

4. जिस क्षण से आपने दीक्षा ली, उसी क्षण से तर गये। वो जैसा बताते हैं वैसा करिये। कुछ नहीं होता है तो उनका काम है, सब उन्हीं का है यह समझकर चलना चाहिए। यह कर्म योग के अंतर्गत भक्ति योग, भक्तियोग के अंतर्गत ज्ञानयोग है।

5. सत जो है, सत्ता है, सत्ता को ही पुरुष कहा गया है। सद्गुरु माने सत से सम्पन्न है, ऐसा वो। सत माने आत्मा।औमनिपोटेन्ट, औमनीप्रसेन्ट, औमनिसियेंट, दैट इस ॐ। सत इस डिवाइन ऐनर्जी।

6. आपकी सब कामनाएं पूर्ण है। कोई वासना नहीं, निर्वासनिक जीवन हो जायेगा, आनन्दमय जीवन व्यतीत होगा।तब आप समाज के लिए है, जो कुछ आपका है समाज का है। दिन ब दिन आप और आगे बढ़ते है।

7. इसी जन्म में हम सभी आत्मशक्ति को, अपने पद को प्राप्त हो। एक ही जन्म में होना। माने अभ्यास, उत्साहित होकर करना चाहिए।

8. गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन, नयन अमिय दृग दोष विभंजन। तब तक तुम्हारे वो तीसरी आंख है, उस का पर्दा ढल नहीं सकता, डोल नहीं

सकता और टूट नहीं सकता।अमिय (नयन अमिय) नाम मोक्ष का है, तब तक वो उसको मोक्ष नहीं होता है। जब तक वो जो पलक है, वो जो अनेक जन्मों के करोड़ों जन्मों के संचित जो संस्कार तुम्हारे है जब तक वो विनाश नहीं होता है। जन्म-मरण से छुटकारा कभी भी नहीं मिल सकता। कभी नहीं, सोचना नहीं।

9. सुषुम्ना खुलने पर अभ्यास से आप जैसा सोचते हैं, वैसा करते हैं। और परिणाम होता है। जिनका सुषुम्ना खुला है बातचीत होती है।

10. सत्य के जरिये त्रिगुणमय संसार वश में आ जाता है। विकार रूपी कार्य समाप्त हो जाते हैं। किसी प्रकार का भय जो शाश्वत मार्ग से उसे अलग करता है वो दूर हो जाता है। सत्य जो है, आत्मा है।

11. जिसको पाकर मनुष्य परमपद प्राप्त कर लेता है । ये जो, धर्म है,परम है हैं। निश्चल है निष्काम है । शांत है।

12. यदि आपको दिव्यत्व प्राप्त करना है, दिव्य जीवन प्राप्त करना है।तो आप अपनी प्रसुप्त शक्ति को जगा लीजिये। और सतगुरु के उपदेश आदेश के द्वारा। शनैः शनैः कई जन्मों के बाद उसी स्थान पर आप पहुंच जाएंगे। ये आश्वासन है हमारा। श्री कृष्ण ने कहा है कि मेरा जन्म भी दिव्य है और कर्म भी दिव्य है। कोई भाग्य बनता नहीं, और कोई संचित वंचित नहीं । ये सब दिव्यत्व को प्राप्त होता है।

13. ये है कर्तव्य, अपने आप को जानना, अपने आप को समझना। इसमें जो आत्मा है वही जीव है वही परम है। तो हमारा प्रथम कर्तव्य है, अपने आप को जानना।

14. ध्यान की स्थिति में एक ऐसी अवस्था है । जिसमें साधक या योगी को जब जैसी इच्छा होती है, संकल्प मात्र से पूर्ण हो जाती है।

15. जैसे दर्पण के बिना अपना मुख नहीं देख सकते, उसी प्रकार अभ्यास बिना वह नहीं दिखेगा। साहस,धैर्य के साथ,अपने आपको बचाते हुए,गोल,गोल,गोल।लक्ष्य के सिवाय कुछ न रहे,इस प्रकार से,आत्मा जो है।तद्धाम परं मम।संसार में रहते हुए,इस कीचड़ में रहते हुए,प्रपंच में रहते हुए।आप मुक्त(उद्धार,जीविका,सुरक्षा की चिंता से)हैं। वो मुक्ति क्या है?जन्म-मरण का जो भय है आपके जीवन में।ये भय ये छूट जाता है।

16. तुम्हारा कोई एफर्ट नहीं तब ये अहंकार चला जाता है । ये रहस्य है।

17. जैसा बताया गया है, वैसा अभ्यास करना चाहिए, तब आप निर्भय हो जाएंगे । ये जीवन पूर्ण हो जायेगा।

18. अभ्यास के द्वारा बुद्धि इतनी प्रखर हो जाती है, कि सत्य के सिवाय कुछ भी नहीं रहता । वह जैसा सोचता है वैसा होता है। वह कहता है और हो जाता है। पहले प्रतिभा जाग्रत होता है, वह एक शक्ति है।

19. हम परमपद परमशक्ति को प्राप्त होते हैं। जिससे आप अपना, समाज का, राष्ट्र का भी कल्याण कर सकते हैं। सारा हित उसमें निहित है।

20. हमारी पाशविक वृत्ति है सबकांसस माइंड। उसको हम ब्लास्ट करते हैं, शुद्ध करते हैं। फिर कांसस में आते हैं यह भला है बुरा है । हमने कांसस को ब्लास्ट किया, वह लाइट में आ गया। उसको क्रास किया तो लाइट के अलावा कुछ नहीं मिला । यही एनर्जी है। फिर सुपर ह्यूमन बीइंग हो जाता है।

21. हमारा काम है सदा सत का संग। ये है सत्य, सत्य परमपद है। इसके प्राप्त होने से, आप महान व शक्तिमान हो जाते है।

22. अपने आप को साक्षात्कार करने और जगत में शिक्षा दीक्षा के लिए हमारा जन्म हुआ है।आपमें वो शक्ति भरपूर है।

23. सतत अभ्यास से मन शांत होगा, एवं हर क्षेत्र में सफलता मिलेगी।

24. ये चिंता किसी को नहीं, मृत्यु की चिंता किसी को नहीं है। सिवाय बस सन्तति, और सम्पत्ति बस।

25. गुरु शक्ति से सब कार्य होने लगता है। उन कार्यो को अपनी क्षमता नही समझनी चाहिये। हमारा जन्म अकेले के लिए नहीं है, हमारा सम्बंध सबसे है।

26. स्वयं पर भरोसा नहीं विश्वास नहीं । अविश्वास ही असफलता का कारण है।

27. मैं कौन हूँ? कब तक हूँ? कैसा हूँ? कितना करना है? कितना नहीं करना है? अपने अधिकार से आप बाहर न जायें और न करे, ये ज्ञान बना रहे तो आनन्द है, इसमें।

28. ये ऐसी चीज है, यहां न बोलना है, न चालना है। और बराबर सब कुछ होता है। बगैर कोई किये, ये संस्कार हो जाता है। सत्पुरुष के द्वारा सब कुछ होता है।

29. आत्मा तो तुम हो ही, इसे आत्मसात करो । तब देखना तुमको कितना बल, कितना सामर्थ्य मिलता है। तुमको (साक्षीभाव खाली) आत्मभाव से रहना है।

30. वो करे या ना करे हमारा काम है, सौप देना। भार डाल देना। स्वयं पर भरोसा या सद्गुरु पर दोनों एक ही है।

31. ये साधना जो मिली है, उसे नहीं छोड़ना है। ये विशेष होनी चाहिए, अन्तररहित होनी चाहिए। आचरण में होना चाहिए।

32. अनुभव ही तो अमृत है, ज्ञान ही अमृत है। अभ्यास से उसे अनुभव में लाना चाहिए।

33. यहां आने के बाद सब तेरा, मेरा वो होता नहीं । आदेश का पालन हो, नहीं होता तो घर में बैठो।

34. जो दिया गया मार्ग है,उस पर पड़े रहना चाहिए।और जो कुछ है संसार में साक्षी भाव से बने रहें।साक्षी भाव,आनन्दमय स्थिति है।बहुत ही सहायक है।और ये साक्षी-मोक्ष धाम है।ऐसा जी आत्मा- परम है।परम धाम है।मोक्ष है,आत्मा है-वही परम धाम है।वही मोक्ष।वही अपना धाम है।यही अपना घर है।असली घर तो ये है।

35. स्वास है, जब तक विश्वास होना, निरन्तर जब तक स्वास है। अन्तररहित होने पर एक रास्ता और है । वो सुषुम्ना खुल जाता है।

36. ये शक्ति (आत्म, कुन्डलिनी) प्राप्त होने पर सब दोष दूर हो जाते हैं। निरोध होकर अपने अपने स्थान चले जाते हैं। अज्ञान अंधकार चले जाते हैं। गुण हो जाते हैं।

37. मानरहित, मोहरहित, सँगरहित। कैसा भी हो, सेवा करना।

38. सदशक्ति (सतवस्तु, महाशक्ति, आत्मा) को धारण करना, फिर नहीं छोड़ना, उसको । अन्तररहित अभ्यास होना चाहिए।

39. जिनको भरोसा है। उनका काम बन जाता है, कैसी भी परिस्थिति आये अभ्यास नहीं छोड़ना है।

40. इसको धर्म कहते है, आत्म साक्षात्कार हेतु जो कर्म किया जाता है, वो कर्म निष्काम कर्म है। उस निष्काम कर्म को धर्म कहा गया।

41. अन्तर्मुख (सुषुम्ना का मुख खुलना,सम्भवतः) होने से आत्मसाक्षात्कार सुलभ हो जाता है। और सभी चाह मिट जाती है।और मन निर्विकार हो जाता है।

42. बाकी जो देव है-सब स्मारक हैं।कारक ये है-जो भीतर है।इस आत्मदेव(अनन्त सूर्यों का सूर्य,वही आधार,वही बल,है)से बढ़कर कोई देव नहीं है।

43. अभ्यास के द्वारा मन को सर्वदा अनन्त भाव में भावित करते रहने पर । आत्मा का दर्शन कर सकते हैं।

44. हमारी कृति, हमारी वाणी, हमारे विचार सबके लिए शुभ हो। कल्याण माने विमल, वहां कोई दोष नहीं।

45. हम अपनी संस्कृति को बिल्कुल भूल गए, क्योंकि वो पढ़ाया नहीं जाता। हमारी संस्कृति जो है, योगाभ्यास (आत्म साक्षात्कार वाली, सिर्फ शरीर के देखरेख करने हेतु नहीं), इस को विकसित करना है। ये शरीर भी पूर्ण है। महा अनन्त शक्ति भरी है, आपमें।अनन्त शक्ति अदृश्य है।ओह, अकूत अथाह शक्ति है। संस्कृति माने आप जानते है? सम्यक रूप से पूर्ण रूप से, आप जो काम किये-यह कृति, संस्कृति है। जब आपकी कृति बराबर है, प्योर है, स्योर है, तो आपके सामने वह-परिणाम सामने आ जाता है।

46 जिसके द्वारा मिला है, उसको, ये कहते हैं। ये है अहंकार, तो अहंकार वहां तक नहीं छोड़ती जिसको कहते हैं। एबव टाइम एंड स्पेस।

47. जब तक बिना स्वास नहीं होते, तब तक अभ्यास करना है। विशेष स्वास से जीवित रहना है।

48. सदा प्रत्यक्ष करते रहो कि तुम (आत्मा) कुछ नहीं करते। क्रिया देह और मन करते हैं।

49. जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति के इन अवस्थाओं से परे, भूत भविष्य वर्तमान का ज्ञान ही नहीं । उनका संकल्पित कार्य भी स्वयं सिद्ध हो जाते हैं।

50. मनुष्य जन्म अनमोल रतन है इसका जतन करो, अपना उद्धार करो। मानव जन्म कोई साधारण जन्म नहीं है।मानव शरीर और सतगुरु के साथ को स्वर्ण संधि कहते हैं। मात्र आत्मज्ञान हेतु मानव-जन्म प्राप्त होता है।

51. वो ज्योति स्वयंभू है,आत्मा स्वयंभू है।एक बार भी अगर दर्शन हो जाय।तो उसका कल्याण हो गया।तब आप असंग है।ऐसी संधि(मानव जन्म,सद्गुरु का मिलना सम्भवतः)मिलने पर गंवाना नहीं चाहिए।यही उत्तरायण है।ज्योति ही उत्तरायण है।

52. गुरुजी महाशक्तिवान नहीं, गुरुजी स्वयं महाशक्ति है।

53. रुप तो खोल मात्र है । अंदर वही है,और मैं ही वही हूँ। ज्ञानियों का यही भाव है, यही ज्ञान है।

54. गुरुजी का आचरण उतरे, जिससे सम्यक चरित्र का निर्माण हो। ऐसे जो आचरण (कल्याण हेतु, उद्देश्य, प्रयोजनों को, अध्ययन, अभ्यास,

आत्मसात कर, समाज में स्थापना करे, सिखाये, अग्रसर कराये, कल्याण हेतु) युक्त रहते हैं,अंतिम स्वांस पर्यंत।और जिसका,उसका कोई व्यवसाय नहीं।और कोई कार्य नहीं।केवल एक कार्य है- आत्मविद्या का,प्रचार,प्रसार,घर-घर,व्यक्ति-व्यक्ति में।ऐसे व्यक्ति को आचार्य कहा।

55. जिसका मनन करता है, ध्यान करता है, वह ही हो जाता है।

56. जब तक आप ध्यानमग्न हैं आप भी वही हैं। वो(परमात्मा)सर्वज्ञ है,उसका अंश,वो ज्ञान का अंश हमारे में हैं। ये चीज भूल गये हैं।ये विशेष बात होने से।वो अपने संकल्प से,अपने शब्द से,दृढ़ होकर,उस अजन्में और स्वयंभू को।फार्म में ले आते हैं। याने जिसकी कोई आकृति नहीं(निराकार),रूपरेखा नहीं।उसको रूपरेखा(साकार)में ले आते हैं।हमें तो सिर्फ अपना कचरा,जो हैबांध,मेड़,वो रुकावटों को दूर करना हैं। अभ्यास से।

57. कुछ न करना ही ध्यान है,आत्मा तो दृष्टा मात्र है। हमारी शिक्षा केवल उपजीविका के लिए है।जीविका(आत्मज्ञान,आत्मशक्ति सम्पन्न)को हमने छोड़ दिया और उपजीविका(खाना, पीना, रहना, पैसा, कौड़ी, वैभव, मान, सम्मान केवल हेतु में)के पीछे फिर रहे हैं।यही भोग है। भीतर का हमें कोई ज्ञान नहीं है,और न बाहर का भी। एक सेकंड आगे क्या होगा?हम नहीं जानते।तो भीतर तो बहुत दूर है।यही अविद्या है,अस्मिता है।

58. आत्मा की ओर बुद्धि को धीरे धीरे लगा देना। ध्यान से जो हमारे विषय हैं, वो बाहर चले जाते हैं, और हम निर्विषय हो जाते हैं। आपकी बुद्धि शुद्ध हो जाती है।

59. सन्यास का अर्थ है। इच्छारहित होने का, मन पर कोई परिणाम नहीं, यही साम्यावस्था है। यह अवस्था प्राप्त करने का अभ्यास करना है।

60. ये एक मार्ग है, जीरो मार्ग, विष्णु मार्ग, बोलते है जो। माने पूरा जो रास्ता जो ले जाती है, ये ऐसा ले जाएंगे आपको। ये इस तरह से व्यापक होते जायेंगे आप। जाते-जाते भी आप व्यापक, व्यापकता आपमें आती जायँगी।

61. जिसकी सुषुम्ना खुली है। आत्मा के पथ में (रीढ़मार्ग में, विष्णुमार्ग, सम्भवतः) आते जाते हैं, आत्मज्योति का दर्शन होते चला जाता है। एक सेकंड भी होता है, कल्याण होते चले जाता है। एक सेकंड भी इधर से उधर आते जाय, तो भी, आपका कल्याण होते जाता है।

62. जब तक हम बताए गए अनुसार अभ्यास न करें, तब तक हमारी बुद्धि शुद्ध नहीं हो पाती।, चित्त भी शुद्ध नहीं हो पाता। तो जो, इंद्रियों को इनसे हटा लेता है, धीरे-धीरे अपने आपको इनसे छुड़ाता है। बस आसन लगा लिए, ऐसा करते करते मन को तैयार करता है।

63. अर्ध चन्द्रमा और एक बिंदु माने अर्धमात्रा। वो एक महाशक्ति है। अर्धमात्रा नित्या । वो नित्य है, शुद्ध है बुद्ध है मुक्त है, परमानंद है, वही उँकार है। तो सारा जग ऊँ है और कुछ नहीं।

64. शरीर को स्वर्णमय कहा गया क्योंकि इसके अंदर सुषुम्ना है।अन्यथा यह शरीर तो कचरा घर है,जो किसी काम का नहीं है।

65. हमें तो अभी की चिंता है।अभी क्या बोलना है?क्या करना है? यही हमें जानना है । कोई समझा दे तो बड़ा उपकारी रहूंगा।

66. आत्मा को प्रसन्न करो। वो तुम्हारे पास है, और वो तुम्हीं हो। उससे बातचीत कर लेना चाहिए। देख लेना चाहिए, उसमें समाहित हो जाना चाहिए।

67. योगस्थः कुरु कर्माणि..। ये योग है, सारे योग है, बैकुंठ है। इसमें बने रहो। ये मेरा नहीं है। ये छोड़कर (पैसा, जमीन, संपत्ति आदि सम्भवतः) जाता है। ये सामाजिक है। तत्वतः कुछ भी नहीं है। तत्वतः ये है, बस अपना कल्याण।अपने आपको समझना है,तब कल्याण होगा।साधु ये है।चाहे ऋषि हो,मुनि हो,नर हो कोई भी हो।हानि-लाभ औरों के लिए हैं।हमारे लिए नहीं होता।खाली,वाहक बस।लोक वाहक।ये सिद्धांत है।इस सिद्धांत पर आ गया।वो साधु है।वो मुक्त हो गया।सिद्ध होना बाद कि बात है।

68. शुभ और अशुभ हमारे मन पर निर्भर करता है।जब मन स्थिर और शांत होता है,तो शुभ-अशुभ उसे छू भी नहीं सकते।

69. इसी जन्म में हम सभी आत्मशक्ति को, अपने पद को प्राप्त हो। एक ही जन्म में होना। माने अभ्यास, उत्साहित होकर करना चाहिए।

70. सत्य के जरिये त्रिगुणमय संसार वश में आ जाता है। विकार रूपी कार्य समाप्त हो जाते हैं, किसी प्रकार का भय जो शाश्वत मार्ग से उसे अलग करता है वो दूर हो जाता है। सत्य जो है, आत्मा है।

71. ये जीवात्मा है, ये परजीव इतना परवश है, इतना चाहता है नाम और रूप को। कि अपने आपको अपने स्वरूप को ॐ तुम्हारा स्वरूप है।तुम कुकर-सुकर योनी में जाने के लिए तैयार । नाम-रुप को छोड़ने को तैयार नहीं हो।

72. ज्ञानेश्वर जी ने क्या कहा है,तेरा स्वरूप जो है, ॐ नमो जी आद्या।वेद प्रतिपाद्या।जय जय स्व संवेद्या।आत्मरूपा, आत्मा के रुप में । इस स्व के अनुभव, ये खाली कनक-कांता, नाम-रूप के पीछे है,ये प्राप्त नहीं होता है। किताबों से नहीं होता है, ये घड़ा घण्टी घट से नहीं होता है।ये तो जीते जी मरना पड़ता है, मरने के बाद होता है,नहीं भी होता है।हरि ॐ, हरि ॐ।

73. शास्त्रों के उद्देश्यों को, अभ्यास, अध्ययन, आचरण में लाकर । उनका प्रयोजन ये है, कि गांव-गांव जाकर, व्यक्ति-व्यक्ति के पास, दीक्षा और शिक्षा प्रसार करना।सन्मार्ग में लगाना और स्वयं आचरण अंतिम समय तक करता रहे। ऐसे जन को आचार्य कहा गया है।अन्यथा उसे क्या कहना चाहिए आप लोग समझ सकते हैं।

74. गुरुजी का आदेश का पालन करके, उनका जो हैं कल्याण होते जाता है। कल्याण माने निर्मल हो गया। जब तक साधक सद्गुरु के सानिध्य में साधना द्वारा सुषुम्ना का मार्ग नहीं खोलता।तब तक अन्तर्जगत में नहीं जाता।

75. मेरा या तेरा की प्रवृत्ति स्थायी या स्थिर नहीं होने देती। इस मेरा तेरा के भाव से दूर होने के लिए, अयं निज परो वेत्ति के भाव को आत्मसात होने के लिए, आत्मबल की आवश्यकता है। आत्मबल,अभ्यास से प्राप्त होता है।

76. गुरुजी हमारे हैं सब बोलते हैं। लेकिन हम गुरुजी के हैं, कोई नहीं बोलता है, हम गुरुजी के हैं माने, यहां रहो, आकर पास में। सब छोड़ो....है हिम्मत? तो मेरा तो कोई नहीं है यहां। विलंब क्या है? यही विलंब है।

77. जिन पदार्थों का आप सेवन करें , स्वयं उपयोग करने के पूर्व, गुरुजी को अर्पण करना अत्यावश्यक है। स्वभाव बन जाने पर, विषय या वस्तु उपयोग के उपयुक्त है या नहीं, इसका निर्णय आपकी बुद्धि स्वयमेव कर सकेगी। आप कुप्रवृत्तियों या अनावश्यक दुर्व्यसन से बच जाएंगे।

78. मुझसे ही प्रकृति बनी है। ऐसा साधक जाग्रत हो गया, स्वस्वरूप का बोध हो गया। ब्रम्ह इन्द्रियगोचर नहीं है, इसलिए सत रज तम इन तीनों से परे जाना हैं। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति (इन तीनों) से परे स्थिति में अधिक से अधिक काल तक रहने का अभ्यास करना है। ताकि यह अवस्था दृढ़ हो जाय, इस अवस्था को चिन्तन रहित स्थिति कहा जा सकता है।

79. दुनिया की खुशामद करते हैं। दुनिया के आगे पोजबाजी करते हैं, जरा सी बात के लिए। अरे, अपने आपको जानो तो, देखिए आप कितने महान हैं। दुनिया तुम्हारे चरणों में आ जायेगी।

80. ब्रम्हविद्वरिष्ठ।आत्मक्रीड वह होता है, ऐसा व्यक्ति जो अपने लिए कुछ भी नहीं चाहता, वह हो जाता है।

81. हमारे जो विचार उदय अस्त होते रहते हैं इस जड़ता को दूर करने, ध्यान करना है।

82. उसका वो कुछ नहीं करता। मैं अपनी स्टैंडर्ड गिराता हूँ। मैं अपनी स्टैंडर्ड बनाता हूँ। उसका (किसी का भी, सम्भवतः) वो कुछ नहीं करता। चाहे महावीर हो, गौतम बुद्ध हो, तुलसीदास हो, ज्ञानेश्वर हो, समर्थ रामदास हो, सूरदास हो। कोई भी हो। स्वार्थी होते हैं। (स्वार्थी, परमार्थी, निःस्वार्थी तब सम्भवतः)। स्वार्थी-स्व हेतु। (हमारा जन्म अपना कल्याण करने, अपना उद्धार करने हुआ है) यही मार्ग में से ये पद (ब्रम्ह,

ईश्वरआदि) प्राप्त होता है। स्वतः का पहले। तब आप दूसरों के बंधन (दुःख, अज्ञान,अशुभ) काटते हैं।तब औरों का कल्याण होता है।

83. इस भूमि को स्पर्श करके पाताल से आकाश तक दिव्य लोक पर्यन्त एक ही पुरुष है। वही ब्रम्ह है, कुंडलिनी है, सब कुछ है-वही जानने योग्य है। केवल हमें पद्धति मालूम होना चाहिए, जानने पर प्राप्त होने पर जो हमारी दुर्गति है, दूर होकर वो सुगति हो जायेगी।आपको जो चाहेंगे मिलेगा। जो सोचेंगे वो होगा, लोगों का भी कल्याण होगा। आप मंगलमूर्ति होंगे, मंगल कहते है, कल्पतरु को। कल्पतरु के नीचे जाओ, तो जो कहेंगे, सोचेंगे झट परिणाम उसका आ जाता है। ये है सत्य।कल मिलेगा, परसो मिलेगा, ऐसा नहीं, वो क्रिया का फल तत्काल पीछे पीछे है।

84. सब कुछ भूल जाना है, ये बाड़ी को भी भूल जाना है । खोना ही पाना है, ये भारतीय संस्कृति है। बुद्धि की सीमा को उल्लंघन करना ये, अभ्यास है। अपने पर शासक होना है। लेक्चर देना और चीज है और अनुभव करना और चीज है। ज्ञान एन्डलेस है। बिगनिंगलेस है। आत्मा माने ज्ञान। अधिकारी को ही संयम करना है। इन्द्रियों का नियमन करना है।, शंका अपने पर, औरों पर नहीं। मिलेगा की नहीं (मिलेगा)।

85. जीवन को बदलों,अपने आपको देखकर,और सामीप्य में आपको रहना हैं।ये पुरुष वही है।वही सत है,जिसका नाम आत्मा है।आत्मा क्या है?ये शक्ति है।इस शक्ति को विकसित करना है।तो ये जो भारतीय संस्कृति है।ये जो पुरुषार्थ है,इसी का नाम है-शास्त्र।

86. सहिष्णुता एक शब्द है, आदमी अपने कर्मों का फल स्वयं भोगते है, कोई परिणामी नहीं है। वो लक्षण को पैदा करे, हम प्रतिज्ञा करें कि हम

अपने आप को जाने। ब्रह्मलीन (ब्रह्म में लीन रहना)होना ही वर्तमान में रहना है।यही निष्काम कर्म योग है।

87. अर्जुन ने, कृष्ण से सारा कार्य करवाया।युद्ध में अर्जुन माध्यम था।

88. आत्मा की ओर बुद्धि को धीरे-धीरे लगा देना। ध्यान से जो हमारे विषय है, वो बाहर चले जाते हैं। और हम निर्विषय हो जाते हैं।आपकी बुद्धि शुद्ध हो जाती है।

89. वो जो ज्योति का जरा भी दर्शन होते रहता है। दिखता है उसका जो प्रभाव है, अचिन्त्य प्रभाव है। वो ऐसी शक्ति है जो होनी को अनहोनी में, अनहोनी को होनी कर सकता है। उससे क्या नहीं हो सकता ?आत्मज्योति को डेवलप करना। वो तुम्हारी ही शक्ति है, लेकिन वो भीतर है।

90. साधक,गुण ग्रहण करने के पश्चात शक्ति सम्पन्न होता है। क्योंकि शक्ति को गुण के रूप में कहा गया है।

91. हमारे ऋषिगण जो बड़े लोग हुए हैं,बड़े होशियार थे।कि अंजाने में भी,उस महान तत्व,परमतत्व को,आप अंजाने-अंजाने में रिलाय करते हैं।आप भरोसा करते हैं।और आपका काम होते चला जाता है।तो भक्ति का बेस क्या है,भावना।ये हैं भारत में।ये भारतीय संस्कृति है हमारी।हम मूर्ति पूजा नहीं करते,मूर्ति पूजा में ये रहस्य है।

92. ऐसे योगी जिनने अष्टसिद्धि-नवनिधि को प्राप्त कर लिया है।अतीन्द्रिय पदार्थ को प्रत्यक्ष देखता है।इसलिए उसको, सातिशय सर्वज्ञ बीज कहा है।ये योगशास्त्र है।मानव ये सर्वगुण सम्पन्न है।केवल उसको अभ्यास में लाकर प्रयोग में लाना है।अन्यथा वो परवश है।वो फुटबॉल है।न स्वयं

का विश्वास है,न स्वयं पर विश्वास है,न किसी का विश्वास है।वो जैसा दिखता है,वैसा नहीं है वो।

93. उत्कर्ष की ओर सब कोई, प्रत्येक व्यक्ति जाना चाहता है। लेकिन उसके कर्मों के पीछे जो डोरी है, वासना रूपी डोरी। उस वासना में कितने सांप बिच्छू लटके हुए हैं। वो जाने दे, तब ना।

94. तब वो अहंकार से रहित होता है।अभ्यास करते करते वो साधक पहुंच जाता है। फिर गर्दन गिर जाता है, वहां न सांस है न नाड़ी है, कुछ भी नहीं है, डॉक्टर यही कहेगा मर गया लेकिन वो मरा नहीं। कोई पहचानने वाला नहीं ये मेरा स्वानुभव है। सारे सत्य को सामने रखते हैं मानो मत मानो, लेकिन ये सिद्ध है । यही सिद्धावस्था है।और कोई दूसरा अवस्था नहीं है। सारे पावर्स तुमको मिल जाते हैं, अपने आप। मिलाना थोड़ी पड़ता है।

95. तो ये दृश्य के दो परिणाम होते हैं, या तो उलझने का या सुलझने का। यही कारण है मोक्ष के हैं माने सुलझने का अर्थ मोक्ष, अभी बताया।

96. जीव ही तो महान (ब्रम्ह) है, दूसरा कोई नहीं हैं। ये जप तो हमने छोड़ दिया, मैं आत्मा हूँ, मैं महान हूँ। मैं दुखी हूँ, लंगड़ा हूँ, लूला हूँ, मैं अंधा हूँ, पापी हूँ, ये हम सोचते हैं। ये जपने के बाद जैसा हम जपते हैं, वैसे ही हमारे परिणाम होते हैं।

97. ये सत्य है, ये मन में और टिकने का। सत्य मन में नहीं है, एक समस्या हल नहीं हुई दूसरी आ गई । और कोई कारण नहीं है।

98. हम जैसे सोचते हैं, वैसे करते हैं। जो हम करते हैं उसी परिणाम को हम पहुँचते हैं। तो ये जीव क्या है (अर्थात ब्रम्ह है), उसका भी बोध होना चाहिए, आपको।

99. आत्म शक्ति अलौकिक है, अलौकिक शक्ति प्राप्त करना है।
अनंत शक्ति है आपमें, स्वयं ज्ञान। अनंत ज्ञान, अनंत ब्रम्ह, आप महान (ब्रम्ह) है। अनंत है, ज्ञान अनंत है और ये सत्य है। क्योंकि आप जैसा चाहे वैसा रचना हो सकता है। सोचते हैं वैसा हो जाता है, विचार करते हैं वैसा हो जाता है।
श्रद्धा-विश्वास को अपने आपमें जागृत करके।सतगुरु कृपा से ही - आंतरिक प्रवेश हो सकता है। और तभी सच्ची शांति प्राप्त होकर जन्म-मरण के बंधन से मुक्ति हो सकती है।

100. अब तुमको तलवार पकड़ा दिये।चलाते नहीं तो किसका दोष है? वो बनता है,आकर के काहे को बनना है।तुम्हीं समर्थ हो अपने को बदलने के लिए। तो तात्पर्य है कहने का सभी समर्थ है।

101. याने सुषुम्ना मार्ग में सेंट्रल कैनाल बोलते हैं उस कैनाल में घुस गया। आना जाना शुरू हो गया। आनन्द होने लग गया, उसका आर्थिक जो अभाव जो है, अच्छा होने लग गया। परिवार में अभाव जो रहते थे धीरे धीरे अनुकूल होने लग गया। और उसको भी आनन्द होने लग गया, तात्पर्य ये है, ये तो लाभ तत्काल होने लग जाता है। और अंदर जो कुछ बोध होते जाता है, वो सब आत्मा है।

102. हम कुटुंब में समाज में आदर्श रहें । हमको देखकर लोगों का कल्याण हो, हमको देखकर लोग उसको पढ़ें , कुछ सीखे और करें ।

103. यदि दुःख न टाल सको तो गुरुदेव की ओर उन्मुख करके स्वयं निश्चिन्त हो जाओ। यत्न में ढील न आने दो।आप अपनी धारणा को जिस अवस्था/रूप में रखोगे वैसा ही काम होगा। निराशावादिता से दूर रहो। कोई समस्या आ जाये तो शुद्ध संकल्प से पूज्य गुरुजी के ऊपर

डालकर की वे ही हल निकाले और समाधान करें।आप पुनः निश्चिन्त होकर अपने रंग में डूबे।

104. ध्यान में नहीं, सपने में नहीं। समाधि में भी नहीं, मैंने रासक्रीड़ा इन खुली आँखों से प्रत्यक्षतः देखी है।

105. गीता में भी यही कहा है कि सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत। सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः। वही सारे बंधनों को काटते हुए समर्थ होता है, अन्यथा नहीं।हरि ॐ तत्सत।

106. श्रीमद्भागवत में ऐसा कौन सा विषय है जो न हो? श्रीमद्भागवत सम्पूर्ण योग है। लेकिन श्रीमद्भागवत आजकल न कोई देखता है, न समझता है। न ही अनुसंधान करता है। और न ही विचार करता है फुर्सत नहीं है किसी को।

107. कोई संगी मिला नहीं, संगी मिला होता, तो आज ये देश बदल गया होता।

108. गीता पढ़िए, जब तक अभ्यास करके, अंदर नहीं घुसेंगे वो समझ में नहीं आता।

109. अपनी बुद्धि को अपनी आत्मा में समाहित कर देना, ये समाधि है। हमारा जो कार्य है, अब वो भारतीय लोगों को नही है।

110. नामी जो है।नाम का जो भाव है,वो कार्य करता है।प्रभाव में होता है जब नामी चले तब।शरीर है तब तक प्रभाव है।यहां तो शरीर है नहीं,केवल नाम है।केवल नाम से काम होता है,वो भाव है।इसलिए नामी से नाम अधिक है।नाम में भाव है।ये वो श्रृंखला है,ये वो वृक्ष है।गुरु, गुरु है, शिष्य, शिष्य है। ये है।क्या नहीं हो सकता?ये नाम है,आज।(अजर-अमर,अनादि काल,सदा वर्तमान,सम्भवतः)

111. जहाँ निरोध हुआ वहां बुद्धि आत्मयोग से सूक्ष्मता को प्राप्त होती है।वो सूक्ष्मता की सीमा साक्षात्कार है। बुद्धि आत्मस्थ हो गई। साक्षात्कार। आत्मा स्वयं ज्योर्तिभवती, जीवन्मुक्त हो गया। फिर से जन्म-मरण का फेरा सदा के लिए मिट गया(जब तक सृष्टि है तब तक रहूंगा लेकिन पवित्र होकर-श्री गुरुजी)वो प्रकाशमय लोक में चला जाय।जहाँ पे दत्तात्रेय, कबीर आदि, गुरुनानक, नवदास वगैरह सब है।वो भी चला जाता है।

112. मैं उस ईश्वर का शरण लिया हूँ,जिससे ब्रम्हा, विष्णु,महेश आदि इस जगत ब्रम्हांड आदि का निर्माण किया है।जो पहले से था,है,और रहेगा।जैसा है वो वैसा है।वो अजर-अमर-अविनाशी है।कर्तुम अकर्तुम सशक्तः।मैं उस ईश्वर का शरण लिया हूँ।

113. ज्ञेय वस्तुएं है। संसार प्रपंच है, ये नाशवान है, परिवर्तनीय। वो ज्ञाता है, जिसको कास्मिक एनर्जी, डिवाइन एनर्जी, दिव्य, दिव्य शक्ति कहते है। वो ही महाशक्ति है। वहाँ पहुँचने पर इसी शरीर में होता है, वो पद। वही परम् पद है। तब जाकर वो स्थिर होता है, इसको चरित्र कहते है। ब्रम्हतत्व में जिसका मन, बुद्धि लीन हो गया है वो ब्रम्हचारी है। हम इस व्रत को ब्रम्हचर्य व्रत कहते हैं।

114. हमारी प्रकृति जो है केवल विकृति के सिवाय कुछ नही है। जब तक हम बहिर्मुखी है,अंतर्मुखी नही हो पाये है, तब तक हम विकारग्रस्त है। और अभाव के सिवाय कुछ भी नही है। वह समर्थ है, कुछ भी कर देने में, वह जैसा चाहे वैसा हो जाता है । वही आत्मा है।

115. छठी की दूध याद आती है अभ्यास में।और ये विज्ञान सिद्ध है। हमारे विचारों में जो संकल्प है,उनके अनुसार जो परिणाम कार्य होते हैं।युक्ति

से मुक्ति है।आत्मदर्शन यही सार है,सम्यक सार है।हमारा मार्ग ध्यान योग है,निष्काम कर्म योग है।योग मार्ग में कृष्ण के जैसा और कौन हो सकता है,दुनिया में?ये हैं आप।ये मंत्र जो है अध्ययन के लिए है बाद में अभ्यास है,तब पता चलता है।

116. अभ्यास कैसे करें? ताकि समय-समय पर जो विघ्न बाधायें उत्पन्न होती हैं वो दूर हों। तीनों बाधायें दैविक, दैहिक, भौतिक ये भी आपसे दूर होंगी। ये सब सतगुरु के द्वारा प्राप्त होता हैं। उनके आदेश का पालन हो, पर संदेह, संशय शंका, नहीं होनी चाहिए।

117. संसार में कोई किसी का नहीं है। इस मूल तत्व को समझ करके अपना व्यवहार कीजिये। यह शरीर, बहुत थोड़े दिनों के लिए है। यह ऋण चुकाने मिला है, आपको। ये सब साहूकार हैं। साथ ही आत्मा को प्रसन्न करने हमें आना चाहिए। यह आप क्यों भूल गये हो कि आपकी मृत्यु निश्चित है। आप मनुष्य है। मन से मोह ममता छोड़ना ही कम्बल छोड़ना है।

118. योगी कुंडलिनी शक्ति को वश में रखता है। अन्य लोग, शक्ति या इष्ट के वश में आश्रित होकर रहते हैं। यही दो मार्ग है, या तो स्वयं कुछ कर सकते हो, तो करके रहो। नहीं तो गुरुदेव के शरणागत होकर रहो (अर्थात)-आचरण (आत्मा में चर-ण, झुकना) में अपने आपको ढालों। मन से विकारों का ध्यान न हो, यह प्रयत्न करो। विकारों से मुक्त हो गया, कि आत्म साक्षात्कार सुलभ हो गया।

119. मन में जब तक कामना का निवास रहेगा, तब तक आप दरिद्र रहेंगे, यह अकाट्य सिद्धान्त है। चलते फिरते, काम करते हुए कवच मंत्र, बीच बीच में-सोअहं या अहं बोध रूपा कहो। कंचन काँचहि समगिने, कामिनी काष्ठ पाषाण, तुलसी ऐसे संत जन, पृथ्वी ब्रम्ह समान।

120. वशिष्ठ जी के रिद्धि सिद्धि रूपी गाय थी।रिद्धि माने रित +धी, रित माने सत्य। उनके जो सत्य पर ब्रम्ह है। जो प्रज्ञावान है। सिद्धि माने पावर-सत्य रूपी में वो पावर रख दिया। सत्य रूपी गाय में वो पावर जिसमें, रख गया। अष्ट सिद्धि और नवनिधि उसमें सब थे। क्योंकि ऐसे लोग थे जो मारकर जिला देनें में समर्थ थे। नाश करके भी ठीक कर देना, जीला देना, वो समर्थ थे। इनको समर्थ कहते हैं।

121. ब्रम्हर्षि होते हैं, ब्राम्हण। बदला लेना उसका काम नहीं, ब्राम्हण को कोई क्रोध करना, उसका कोई काम नहीं है। न कोई कामना है। ब्राम्हण को-कोई क्रोध है, न मद है, न लोभ है, न मोह है, न मान है, न मत्सर है। वो तो एक मौन मूर्ति है। वो ब्रम्ह मूर्ति है। वो सबके लिए समान है, समर्थ होता है । वो सबके कल्याण के लिए एक जैसा होता है। अपना कल्याण कर, समाज का कल्याण, जिससे होता है। वो आदर्श होता है।

122. ब्राम्हण कोई जाति नहीं। ब्राम्हण गुण है, नौ गुण सम्पन्न होते है-वो ब्राम्हण होता है। माने कुंडलिनी जगी हुई हो, तपस्वी हो, दाता हो, ज्ञानी हो, जितेंद्रिय हो, समर्थ हो । और सबको तुष्ट कर देने में, सबका दुःख सुख, दुःख हरण करने में। मानो वो जीविका में लगा देना, कर देना करवा देना, ये सब, तब नौ गुण सम्पन्न-वो ब्राम्हण होता है।

123. वो जो महाशक्ति सोई हुई है। तुम्हारी वासनाओं से दबी हुई है। उसमें से हटाकर के, वो शक्ति को प्रखर करना है। तब वो समाज से विभक्त नहीं है। वरना आज हम विभक्त हैं, समाज से। आज ये इंडिविजुअलिज्म चला है। सोचिये, सोचने को कह रहा हूँ, मैं, सब कोई सोचिये इस बात को। कोई किसी को नहीं पूछता है, सिवा अपने हेतु के कि मेरा हो। प्रत्येक व्यक्ति मेरा हो, मेरा हो , फिर तेरा, तेरा रह गया, कि नहीं।

124. त्रीन पदानि युक्तानि सोई गायत्री, तब, माने वो गायत्री है। वो गाय कैसी थी, चार पैर की नहीं थी। वो तीन पद है, अकार, उकार और मकार। वो क्या था, वो ॐ था। गायत्री में प्रथम अक्षर है, ॐ। वो निराकार ब्रम्ह का नाम-ॐ है।

125. तो बदला लेने की जो वृत्ति है, तब तक वो, अहंकार है। जब तक अहं है, तब तक बदला लेना है।

126. दीक्षा देनी चाहिए। तत त्वं असि। तत माने वह, त्वम माने तू, और असि माने है। वह, तू है, ऐसा अर्थ होता है, नहीं । वह एक पद है, त्वम ये दूसरा पद है, असि माने जो है। ये सारा जो है, ये तीन पद है। इन तीन पदों का ज्ञाता है, जिनको वो, ज्ञानी होता है।

127. जड़ तत्व क्या है? चैतन्य तत्व क्या है? ये समझ लेना चाहिए। ये अभ्यास से जाना जाता है। गुरु के आदेश का पालन जो करेगा, तब तत्वों का बोध उसको हो जायेगा।

128. ॐ, भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यं-ये सात पद हैं। ये सप्त लोक हैं, ये सेवन सेंटर्स हैं। भूः-माने पृथ्वी लोक (मूलाधार), भुवः माने जड़ लोक (स्वाधिष्ठान), स्वः माने अग्नि लोक (मणिपुर) , महः माने वायु लोक (अनाहत) जनः माने आकाश लोक (विशुद्ध) और तपः माने विज्ञानलोक (आज्ञाचक्र) सत्य माने आनंदलोक/ सत्यलोक(सहस्त्रार) होता है।

129. भूः भुवः, स्वः- (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर) ये माया हैं। ऊपर आप हवन देते हैं, तो क्या होगा? तुम्हारा जो कुछ बंधन है वो कभी ढीला होने का नहीं। कीचड़ जो लगी है, वो बढ़ती चली जायेगी।p

130. ये भूः भुवः स्वः, कहने से नहीं होता। हवन है, सारा वासना, इन्द्रियाँ, इच्छा है जो, तुम्हारी। उनकी आहुति दो।

131. दीक्षा में जो आदेश मिला है। उसका पालन करते जाना है। ये पांच तत्व हैं (मूलाधार स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध तक, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सम्भवतः)। दूसरा विज्ञान है (आज्ञाचक्र सम्भवतः) और आनन्द (सहस्त्रार सम्भवतः) है।

132. हमें गुरु द्वारा, मंत्र सद्गुरु के द्वारा, एक एक चक्र को भेदन करना पड़ता है, भेदन करते वक्त, सुषुम्ना जो बंद द्वार है। वो खोलना पड़ता है, गुरु के बताए युक्ति के द्वारा, सुषुम्ना खुल जाती है। वो मुक्त हो जाता है।

133. उसी दिन से मनुष्य मुक्त हो गया जिस दिन से दीक्षा ग्रहण किया। और तत्वतः उद्यत हो गया लग गया, खोलने के लिए। और वो खुल गया, ज्योति दर्शन होने लग गया, उसी दिन से मुक्त हो गया।

134. और (सुषुम्ना खुलने के बाद) वहां केवल आयु और शरीर। जब तक आयु है तब तक शरीर है। माने जहाँ तहाँ-अन्न-जल, ऋण- धन, भोगना है। वो भोगना पड़ेगा। और इसके बाद (दीक्षा से होते सुषुम्ना खुलना) कर्म बंधन नहीं रह जाता-वो मिट जाता है। किये गये (सुषुम्ना खुलने के बाद से) कर्मों का फल बनता नहीं। बाकी जो लेकर (सुषुम्ना खुलने के पहले, दीक्षा के पहले से,अनेकोनेक जन्मों का) आया है। उसको भोगते हुए, वो भी कर्म कटता चला जाता है। इस तरह से, फिर आपको क्या चाहिए?

135. कैसा ध्यान करना चाहिए? उस ॐ जिसका, नाम है।ॐ नाम है, नामी वो सविता है। सविता नाम सूर्य का, ये सूर्य नहीं।आत्मारुपी सूर्य की तरह-

वो ज्योति है, सूर्य की तरह गोल, वो बिंदुवत है। बिंदु गोल होता है। जिसका आदि अंत नहीं होता, सविता माने प्रकाशमय। अनन्त हजारों सूर्यों का सूर्य जैसा प्रकाश है।दीप्तिमान हैं चारों तरफ से, वलय हैं, किरणें फेंक रही हैं, उसी का नाम हैं, ॐ।

136. सविता, प्रसविता, उसका नाम है। उसी से सब मिलता है, सारे अणिमा गरिमा और तुष्टियाँ बताये जो आपको, नवनिधियाँ, ये सब। उसी सत पर, ये, गुण हैं।

137. आत्मा एक है। वह अद्वैत है, आत्मा दो नहीं होते हैं। आत्मा का संकेत होता है। जैसे कि बोलते है, मैं सोचा देखो आ गया। मैं बोला देखो हो गया। कभी कभी होता है कि नहीं, इसलिए आत्मा एक है।

138. जैसे घने बादल आने पर किरणें नहीं चली आती है, ऐसे तुम्हारे घने बादल, वासना के प्रबल होने पर। आत्मा के जो गुण हैं, वो विकसित नहीं हो पाते।नहीं तो, सब तुम्हारे में है, तुम्हीं हो। और कोई, दूसरा नहीं।

139. तो गुरुजी के द्वारा सब हुआ ये तत्व तुम्हें मालूम होना चाहिए। पढ़ना चाहिए, सीखना चाहिए, लिख लेना चाहिए। नहीं याद आता है, तो।

140. र्भगाः-जिस ज्योति रूप से, ये अनन्त सूर्यों का सूर्य, ये उदय हो जाता है। ये सूर्य उदय होने पर, नाना प्रकार के जीव मर जाय, आदमी मर जाता है, गर्मी सहन नहीं होती। इस प्रकार से सूर्य का ये सूर्य उदय होने पर, तुम्हारी वासना रूपी पीड़ा वासना, रूपी आवरण। इच्छा, कामना, क्रोध, मद, मोह और ये सब जला देने में वो समर्थ होता है। वो जला देता है, उदय होने के साथ में, जल गया सब, तब वो उदय होता है। ये जल गया पश्चात वो सूर्य उदय होता है। आपके वासना फासना जितने जो प्रारब्ध, वो प्रारब्ध जो है, किये गये कर्मों का मतलब वो जल गया।

141. तो हर परिस्थिति में एक मस्ती होना चाहिए। वो है कर्तव्य (पहला कर्तव्य है। अपने आपको जानना व प्रपञ्च साथ साथ होते रहना, सम्भवतः) पालन करना। फिर चाहे जैसी परिस्थिति आ जाय, परिस्थितियां (परिस्थिति में जब उनकी स्थिति दिखने मिलने लगता है। अतः सम्भवतः) आपको उबार देती है।

142. तो दीवाने ही सदा मस्त अपने आपमें रहते हैं।इनके जैसा रहना चाहिए,अपने आपको भी जानना चाहिए।कहते है न,अपने आपमें तो रहो,खुद के चेहरा देखो।हम अपने चेहरा को कभी नहीं देखते,दूसरों का चेहरा देखते हैं।इसलिए।अपना चेहरा और दूसरों के चेहरा में क्या अंतर है?अपना चेहरा,सबका चेहरा बन जाये।तो हम प्रचार भी करें,प्रसार भी करें।तो ये है,भारतीय संस्कृति।इसमें जो मार्मिक कमियां है,ये दूर हो और ये(आत्ममार्ग,आत्मज्ञान)प्रखर हों।प्रखर हो करके,फिर हम उसी सत के युग में पहुंच जाय।तो उद्देश्यों को प्रयोजनों को सामने लाओ,रात-दिन अभ्यास करो।

143. योग शास्त्र में दिया है, एक ही समय में अनेक जगह प्रकट होना।और अपने भक्तों को जो विश्वास करते है,संकट के समय में,ऐसे लोग जो भगवान समझते है, ऐसे लोगों को डूबने से,गिरने से बचा लेने का काम हमारा है। और बचाते रहना जब कभी भी संकट आ जाये।याद करते है,उनकी मदद कर देना।और बचते हैं,आज सैकड़ों उदाहरण है।ये मेरा काम है।

144.उसका जाने, वो ये अर्थ होता है कि मुझे, मुझे मैं-मैं वहां कहां रहता है? जब मैं मैं करता हूँ, तो मेरा मैं करता हूँ, तो दीवार लग गया।

145. कितना सरल रास्ता है, वो। ये है, ये नहीं सोचने (मैं, मैं, मुझे, मेरा, मैं करता हूँ) का है। है तो, बेड़ी है।

146. ये हमको बहुत अच्छा लगा, एकांत शुद्ध करि चित्त, शुद्ध माने। तू एक है। ये है रत्न रखो।

147. सदोषम अपि, सदोष भी हो गये ये,ये नहीं छोड़ना चाहिए। फिर भी उसको नहीं छोड़ना चाहिए, ये तो आपकी उपजीविका है वो। आप थकते तो नहीं, ये सब भोगजीविका है। वो करना ही पड़ता है। चाहे मान हो, अपमान हो। ये उपजीविका है। जीविका तो ये है, जो अभी आपको (दीक्षा मय कृपा मार्ग) मिला है।

148. तो माइंड जो आदत है, वो तो जाएगा उधर। लेकिन उसकी चिंता नहीं करना, वापस आएगा वो। तो गुरुजी ने कहा है, ये रखो। रखो माने ऐसा रहो, मतलब खाली मात्र रहना है।

149. बताये न, चिंता से चतुराई घटे, ये तो सब बौद्धिक है। अपने को बुद्धि से परे जाना है। तो ये युक्ति है, जो गुरुजी ने बताया, ये वो बने रहो, तो बुद्धि से परे निकल जाओगे। और कब निकल जाओगे, इसका पता भी नहीं चलेगा, आपको।

150. अच्छा है न, इसलिए ऐसे बैठे हैं। कब क्या होगा, अपने आप को कब क्या मिलेगा, क्या होगा, कब परिवर्तन होगा? अपना काम नहीं है। अपना काम तो खाली गुरुजी ने कहा था, खाली उसको रखके बैठ जाना है। बैठ जाना, न आगे सोचना, न ही पीछे सोचना है।

151. बाह्य संवेदना शुन्यत्व, उसी का नाम, प्रत्याहार है। ये है तुम्हारी बंद द्वार खुल जायेगा, वही बन्ध है। वो बन्ध माने बंद है, वो खुला तो ऊपर पहुंच गये, उसी समय, सिक्स्थप्लेन में पहुंचे। फिर ये संशय कहाँ है? वहां संशय नहीं है, आप विशुद्ध हो गये।

152. बताये हुए मार्ग पर, अभ्यास करना है। बीस मिनट, कितना समय है? लेकिन रेगुलर और दृढ़ संकल्प तब, काम होता है। ये सब छोड़ो । भागना वाघना नहीं है, कहीं ये। उसका ये ,उधर हो जाता है, अपना।

153. विशुद्धाख्य कहा, इसको क्रास करना ही पड़ता है। ऊपर पिनियल में आना ही पड़ता है। तो इस तरह से, कोई करना नहीं है देखो, अब समझ में आया, न। तो क्या कुछ करना है? आप जितना मिनट दे सकते हैं, ये आना चाहिए। दस देवो, बीस देवो, लेकिन ये बोल के बैठना चाहिए, बीस मिनट।

154. धर्म माने आत्मधर्म। और वो है-आचरण। चारित्र्य बनाना ही-आचरण है" आज इसी की आवश्यकता है "इसको समझ ले आप।

155. चिंता करना नहीं, होता है कि नहीं, ये सब। गुरुजी ने कहा है, ऐसा बैठना है, बस हो गया। भाव तो निराला, नाहीं दूजा।

156. दो आंखों से बहिर्जगत का कार्य होता है। अंतर्जगत का तीसरी आंख खोलने से, जिसे ज्ञान चक्षु कहते हैं। ये तीसरी आंख खोलने, ये संस्कार जिसे उपनयन संस्कार कहा जाता है, कराया जाता है। उसके अंतर्गत तीसरी आंख को खोलने की, दीक्षा दी जाती है।

157. गायत्री तीन पद युक्त है, उत्पत्ति, स्थिति और लय । ये जो शक्ति है, उसके तीन प्रकार से परिणाम होते हैं। ऐसी जो महाशक्ति है, उसका बोध होना चाहिए।

158. गायत्री में जो तीन है, ऐसा माना जाता है, संध्या, जो सुबह, दोपहर, शाम करना चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं है। तीन, माने तीन ग्रंथि (ब्रम्ह ग्रंथि,

विष्णु ग्रंथि और रुद्र ग्रंथि) जो हैं, उसको भेदन करना पड़ता है। तब तक, उसको, अतीत-अनागत का बोध नहीं हो सकता।

159. क्रिया, बिना आघात पहुँचाते हुए, जैसे पंचम सुर, संवाद में प्रतिध्वनित होता है, ता, थी करने पर। माने, गुरुजी के संकल्प मात्र से, माने निष्काम करने मात्र से। बाद में जैसे ये योग, शुद्धि में आंतरिक शुद्धि में, युक्त में करते हैं। उसी प्रकार जैसे राम प्रमेय पद में, पंचम सुर उसका उदय होता है। उस प्रकार उसका आशीष चाहिए, ज्ञान पूर्ण लक्षण, वो वही ज्ञान। पंचम (विशुद्ध) चतुर्थ (अनाहत)से उत्पत्ति होती है, वही चतुर्थ, शुद्धि है। वही चतुर्थ केंद्र में हो जाता है।

160. क्रियाविहीन सँवादिते, बिना आघात वो होता है। जब तक शुद्धिकरण नहीं होता, तब तक, क्रियाविहीन नहीं होता।

161. ये सब सानिध्य में रहकर, ये सब ठीक ऐसा आचरण में लाने के बाद । फिर उसको संवाद ज्ञान होता है।

162. ये ज्योति रूप में दर्शन होता है। और ज्योति से सूझ-बूझ मिलती है, जिसको इंट्यूशन कहते हैं। वो ज्योति में क्या मिलती है? आपको ज्ञान प्राप्त होता है, कैसा करना, कैसे न करना, ये समझ में आता है। व्यवहार में जैसे वो बोलता, वैसे वो कार्य करने लग जाता है। आपने संकल्प किया है, वो कार्य होने लगते है। ज्योति, वो है सुषुम्ना। सुषुम्ना को प्रज्वलित कर और अन्तरमार्ग में प्रवेश कर और आत्मज्योति का दर्शन करना है। यही चित्त का कृतार्थ होना है। यही आत्मस्थिति है, यही सम्यक सार है, यही सार है। और नहीं तो आप मरते समय ज्योति में जायेंगे, जी हाँ। जिस समय शरीर आप छोड़ेंगे-ज्योतिर्मय मार्ग में आप जायेंगे। स्वयं ज्योति ज्योति के बीज हमने बोया है आत्म ज्योति का बीज

बोया है, ऐसा है। यह जो आत्मज्योति है। वह ही कल्पतरु है। सब ऋद्धियाँ सिद्धियां इससे सम्भव है। मांगों जैसा मिलता है।हमने ज्योति का आत्मज्योति का बीज बोया है। सेल रूपी बिंदु से (जो ज्योतिर्मय है) आकुंचन के द्वारा देह प्राप्त करना है। ज्योतिर्मय देह।

163. लेकिन।ब्रम्हज्ञान के सिवा कोई बात नहीं करता।किन्तु करेगा वही जो नहीं करना है।परमतत्व की ओर सबको ढूंढना चाहिए।लेकिन कोई नहीं ढूंढता।तात्पर्य ये है जो नहीं जानना है,उसको हम जानते हैं।और जो जानना है,उसको हम मानते है।हम मानकर चलते हैं।जानते(आत्मज्ञान)नहीं।

164. लेकिन बात यहां, तरण-तारण, की है। अपने आपको, जानने की है। कब तक आप किताबे पढ़ेंगे? स्थायी होना है, इसका नाम है, राजयोग। हमने इसको खाली, ध्यान योग कहा।

165. अंधेरा हो जाता है। जब प्रकाश अदृश्य हो जाय तो अपने को दिखता है, क्या? इसी प्रकार होते हुए भी वो दिखाई नहीं देता। इसलिए इसको क्या कहा गया, यही पूर्ण है। होते हुए नहीं है, ये जब लोप हो जाता है तब, दो प्रकाशबिम्ब को अपोजिट डायरेक्शन में मिलाया जाता है, तो अंधेरा हो जाता है। लेकिन वो,अंधेरे में वो नाश होता नहीं,बदलता नहीं,अदृश्य हो जाता है। विद्यमान है, हटा दे, वो फिर सामने आ जाता है। कब आया कोई नहीं जानता, कब से आया कोई नहीं जानता।

166. ये दोनों एक हैं। प्रकृति व पुरुष दोनों अनादि हैं। एक होते हुए, दो हैं। दो होते हुए, एक हैं। एक बीज हैं न, अनेक हो जाते हैं। अनेक जो है, एक है, ना। तो क्रम विकास से, आज जो है, ऐवलुशन के बाद-ये सृष्टि रचना आज जो है, कल भी होगा।ये रहस्य है।

167. ऐसा जो वासुदेव है। ऐसा माने, आत्मा का देह है। आत्मा का नाम, वासुदेव है। वही परमात्मा है, वही परमधाम, वही परमपद है। वही परमाशक्ति है। वो दिव्यात्मा है, जिसका नाम वासुदेव है।

168. लेकिन ये व्यक्तिगत नाम नहीं। और ये व्यक्ति की पूजा नहीं है। ये तो ऑलमाइटी की पूजा है, जिसे सत कहा गया है। गोचर अगोचर जितने लोक हैं, सब उसके अंतर्गत हैं, अंदर बाहर है। ऐसी जो महाशक्ति है, ऐसी जो दिव्य शक्ति है, दिव्य शक्ति जिसमें है, रिद्धि सिद्धि अष्टसिद्धि है है। वो सबको उत्पन्न करके, पालन-पोषण कर, और सबको अपने में धारण किया है। ऐसा जो देव है, जगतः अस्मिन वासः चासौ देवः वासुदेवः ।

169. आत्मशक्ति नष्ट होने वाली शक्ति नहीं,अनुभव वाली शक्ति है। ये सत्य है। आप धीरे धीरे उठिये आप।आप डिवाइन होते जा रहे हैं। इस तरह से बैकबोन तैयार होने के बाद ,लोग हैं।वो कार्य करते हैं। भाई।वहाँ जाओ,वहाँ जाओ। लोग है।जो भेज देते हैं। तो संसार में तकलीफ कहाँ है? बगल में रास्ता है। आनन्द ही आनन्द है। तब ये जो हैं। कैटेलिस्ट हैं। कैटेलिस्ट है। अगर नहीं वो भार हो गया।

170. जैसी हमारी भावना है वैसी सम्भावना है।आपमें वो भावना ही नहीं।आवश्यकता ही नहीं है।वहां देर नहीं है,अंधेर नहीं है।नहीं जानना यही देर है।

171. याद शब्द को उलट दो, वो दया हो गया। अन्तर से भी स्व जो रूप है, नहीं रहना चाहिए, वो ज्योति है वो भी निर्भास हो जाता है। दीया जलाने का पद्धति मैं बताता हूँ।वो करे ना करें।क्यों,क्या कैसे?ये नहीं पूछता हूँ।

172. दवाखाना बीस साल चलाया। गांव में विजिट पर, जाता था मैं, रोगी देखने के लिए मैं जाता था। लेकिन मैंने कभी पैसा नहीं लिया। बिल्कुल फ्री, इस शरीर का पैसा लेना। शरीर से, तुम्हारे घर में आया मैं, तुमको देखने के लिए बुलाया है, उसका पैसा लेना मरीज से। मैं कभी नहीं लिया। ना, आप तेल्हारा चलिए मेरे साथ में, आपके साथ में चलेंगे, तेल्हारा जायेंगे पता लगा लो, अगर झूठ निकले। जो सजा चाहो हमको दे दो। वही के वही खूब बजाओ, हमको। मैं झूठ नहीं बोलता, कभी। मैं जिसको प्रेम किया, जिसको चाहा, अपना चाहा। अपना है, जिसको मैंने अपना चाहा बहुत स्नेह किया वो ही आदमी हमारा गला काटा। ये हमारी जिंदगी में, ये कई दफे ऐसे होते चला है।

173. अनाहत चक्र में आकर वो स्थायी होता है।वो ब्रम्हविद होता है।महान हो गया।वहां सतोगुण की प्रतिष्ठा होती है।

174. उसने संकल्प किया। और ज्यों का त्यों सब आ गया और संकल्प के द्वारा लोप हो जाती है। फिर आ जाती है, फिर लोप हो जाती है। फिर आ जाती है। ये कबसे है,और कब तक रहेगा, है और कैसा? ये कोई नहीं जानता। हमारी भारतीय संस्कृति है ये, एकोअहं बहुस्याम। मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊं। उनने इच्छा मात्र किया नहीं कि, सब आ गया। सारे यूनिवर्स ये सब पैदा हुए।

175. अनंतर, माने अंतर रहित साधना हो। माने शरीर के मन, बुद्धि, इंद्रियों को जरा भी अंतर नहीं देना। समझपूर्वक, सावधान, सावधान।

176. माने हम लोगों के या हमारा, मंगल जीवन व्यतीत हो। मंगल जीवन बने, मंगल जीवन हो, मंगल जीवन करे। तो मंगल जीवन माने क्या? सदा उन्मुक्त रहें, सदा आनन्दित रहें। अखण्ड है, अखण्ड अहं बोध है।

177. पंच करावे नेटका (प्रपंच करावे नेटका)। पंच माने स्थूल धातु है मिला दिया और प्र लगने से प्रर्कषेण। जिसमें फंसे हैं, कामनाएं, क्रोध हुआ लोभ मोह भय आदि उत्पन्न होते हैं। उसको समझ करके अपने वश में करें, प्रयोग करें। नेटका, माने नीट एंड क्लीन। बौद्धिक है, उसको पवित्र करिये, आप। जैसे जहां दूर रहना चाहिए, यहां तहाँ किस प्रकार से बोलना चाहिए, या आना जाना चाहिए, या करना चाहिए । ऐसे वो करे।

178. प्रपञ्च माने ये शरीर, जो आपको मिला है, मन बुद्धि चित्त और अहं, पंच तत्व के साथ। इसको बिल्कुल नियमित रखना चाहिए और संयमित रखना चाहिए।

179. र्वतन माने आचरण। तन, मन तनना, तारणा, ये बुद्धि जब विकसित होती है, ऊपर की ओर जाते हैं। ये सत को धारण करना चाहिए। और असत को छोड़ देना चाहिए, इस प्रकार से अपनी भाषा, अपनी करनी, अपना कर्तव्य है। अपने आचरण है, ये पढ़ना चाहिए। दूसरों को पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं।

180. आप जहां जा रहे है। जाते जाते आपको बौद्धिक भी लाभ होता है। आत्मिक शक्ति भी मिलती रहती है, आपको। शांति मिलती है, बल मिलता है, धैर्य होता है। आपके आचरण में भी फर्क है, आपमें अशुद्धिपना जो है वो भी दूर होता है। और असत्य बोलने को भी, माने अप्रिय लगती है। असत्य बोलने लग जाते हैं, तो वो है, आपकी अपनी जीविका पर जोर लगाकर बुलवाए या तो चुप रह जाते हैं। ये लाभ होता है, इससे। और विवेक बुद्धि जाग्रत होती है।

181. हम जो संसार में जो आये है, हम कैसे है, संसार में? ये अपने को समझना चाहिए। जो अपना कार्य है, वही स्व हेतु है। आपको, अपने

कार्य करने में और औरों के कार्य करने में भी, करने की आवश्यकता है। तो परम धन है, परमार्थ। परम माने ये आत्मा, आत्मा ही परम है। आत्मा को साक्षात्कार करें-यही परमार्थ है।

182. ॐ स्वस्तिन इन्द्रों स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो ...। ये सब दिव्य लोग हैं, ये आपकी रक्षा करें। आपको इंट्यूशन माने ऐसा करने से ऐसा है। उपदेश देवे, समय समय पर, समय पर आपकी रक्षा करें। और आपसे बातचीत करें। और आपकी रक्षा करें और आपको सम्हालें ।

183. यही सेल्फ है, यही आत्मा है । उसी को गुरु कहा, व्यवहारिक नाम है।

184. जैसा बताया गया है, वैसा अभ्यास करना चाहिए।तब आप निर्भय हो जाएंगे। ये जीवन पूर्ण हो जायेगा।

185. स्वयं पर भरोसा नहीं विश्वास नहीं। अविश्वास ही असफलता का कारण है।

186. ये चिंता किसी को नहीं। मृत्यु की चिंता किसी को नहीं है। सिवाय बस सन्तति और सम्पत्ति बस।

187. ये ऐसी चीज है। यहां न बोलना है, न चालना है और बराबर सब कुछ होता है। बगैर कोई किये ये संस्कार हो जाता है। सत्पुरुष के द्वारा सब कुछ होता है।

188. ये साधना जो मिली है, उसे नहीं छोड़ना है। ये विशेष होनी चाहिए। अन्तररहित होनी चाहिए। आचरण में होना चाहिए।

189. आत्मा तो, तुम हो ही, इसे आत्मसात करो। तब देखना तुमको कितना बल, कितना सामर्थ्य मिलता है। तुमको (साक्षीभाव खाली) आत्मभाव से रहना है।

190. वो करें या ना करें । हमारा काम है सौंप देना, भार डाल देना। स्वयं पर भरोसा या सद्गुरु पर दोनों एक ही है।

191. अनुभव ही तो अमृत है। ज्ञान ही अमृत है। अभ्यास से उसे अनुभव में लाना चाहिए। यहां आने के बाद सब तेरा, मेरा वो होता नहीं । आदेश का पालन हो। नहीं होता तो घर में बैठो।

192. ये शक्ति (आत्म, कुन्डलिनी) प्राप्त होने पर सब दोष दूर हो जाते हैं। निरोध होकर अपने अपने स्थान चले जाते हैं। अज्ञान अंधकार चले जाते हैं, गुण हो जाते हैं।

193. गुरुजी का आचरण उतरे, जिससे सम्यक चरित्र का निर्माण हो।

194. दृश्य का उसके मन पर कोई प्रभाव नही पड़ता। द्वैत से मुक्त होकर भगवान की अप्रत्यक्ष अनुभूति करते रहता है। एकत्व में आने के बाद स्थिरता को अपनाना पड़ता है। तब वह अपने आप में लीन हो जाता है। तब योगक्षेमं वहाम्यहम् स्वयं होने लगता है। जब आप उस स्थान पर अखण्ड रूप से प्रतिष्ठत हो जायेंगे, तब आप भी सर्व खल्विदं ब्रम्ह के समान हो जायेंगे। और उसका अनुभव होने लगेगा।

195 हम जो दीक्षा देते है, प्रकृति के बीज है, क्लीं जो हैं। वो पूर्ण काम बीज है। आपकी शुभकामनाएं जो रुक गई नही बनते, और जो लोग विघ्न उत्पन्न करते हैं। या करने की इच्छा रखते हैं, वो सब अनुकूल हो जाते हैं। आपका काम हो जाता है, अभाव जो है वो दूर होते जाते हैं। इतनी ताकत है क्लीं बीज में वो पूर्ण काम हैं। यही गृहस्थाश्रम से आत्मसाक्षात्कार तक सहायक है, क्लीं जो है।

196. एक ही गुरु से दीक्षित होने के उपरांत पति पत्नी, भाई बहन, पिता पुत्र, के बीच आत्मिक सम्बन्ध होता है। बायोलॉजिकल रिलेशन्स नही होते। अतः एक गुरु के शिष्यवर्ग चाहे उनका बायोलॉजिकल रिलेशन्स कुछ भी हो। गुरु भाई बहन ही कहलाते हैं। शरीर त्याग के बाद भी तुम्हारे गुरूजी उसी रूप में उसी शक्ति के समान रहकर कार्य करेंगे। अपने अंदर जो भविष्य के विचार है उन्हें कम किया जाय तो शून्य बचता है। शून्य अनन्त है, अक्षय है, अस्तित्व् वान भी और अस्तित्व् शून्य भी। शून्य ही आत्मा का रूप है।

197. जन्म कर्म का भोग है, जिसका नाम सुख और दुःख है। भोग भोगने से कटता है। किसी भी परिस्थिति का सामना करने के लिए डटकर बलपूर्वक तैय्यार रहना चाहिए।

198. मूर्ति में ईश्वरत्व का आरोप करते हो। तो देह में क्यों नही करते हो, इसे डिवाइन करने का प्रयत्न करो। शरीर छोड़ने के बाद भी मैं आपके पास हूँ। ये कोई बोलेगा नही, मैं बोलता हूँ।

199. दुर्गन्ध वासनाओ से उत्पन्न होती है। जब शरीर का शोधन हो जाता है, तो उसका सारा मल निकल जाता है, तब उससे सुगन्ध आने लगती है। पृथ्वी तत्व का का गुण सुगन्ध है, पृथ्वी तत्व शुद्ध होने पर सुगन्ध आती है और पसीना आना भी बन्द हो जाता है। योगी को अतीन्द्रिय पदार्थ का ज्ञान हो जाता है, ये भूत, भविष्य, वर्तमान को साक्षात देखते हैं। सुषुप्तावस्था में वायुमण्डल में दिव्य शक्तियाँ विचरण करती रहती हैं, वही आकर बातें करती हैं।

200. उसका कोई रूप नहीं, कोई रंग नहीं । वह महान है, एक महाशक्ति है। वह महाशक्ति नही होती तो आज हम सबका किसी का भी अस्तित्व न

रहता। हमारा मूल शरीर जो अनादि है। एक महाशक्ति के साथ जुड़ा हुआ है। यह अनादि है, जिसका आदि ही नहीं है, उसका पता कैसे चले? अनन्त जन्म हमारे हो चुके हैं, जो हमारा मूल शरीर है, वह यहां से ट्रांसमिट होता है, नष्ट नहीं होता है। फॉर्म यही होता है। तो कैसे निकलता है यह, अभी तक कोई नहीं जानता है। कैसे प्रवेश करता है, यह भी कोई नही जानते हैं।

201. आपको जो अनुभव हुए हैं।वह मेरा आशीष है, ये आचरण सुधारने से होता है। (कर्मों का प्रारब्ध नहीं बनता)अल्प से अल्प भी दर्शन होता रहे तो जन्म मरण के महान भय से आपको तार देता है।

202.योग ही,आचरण है, अब आप समझ लें । और चरित्र ही घर बनाना है। कहानियों से भय दूर होता नही, आचरण में लाने से भय दूर होता है। ये है -आत्म धर्म, और सत्य में रहना।

203.दोषों से बचते रहें , इन्द्रियों पर काबू रखें , मौन रहने का प्रयत्न करें और अधिक से अधिक काल पर्यन्त डूबे रहें । आप किसी प्रकार की चिंता करें ही नही, तभी समाधि की ओर क्रमशः अग्रसर होंगे। देह की या शरीर की भी चिंता न करें । नाही घर की, धन की नहीं , सदस्यों की नहीं। क्योंकि यद दृष्टम तद नष्टम।

204.दो विचारों के बीच जो अंतराल अदृश्य शक्तिरूपा है वही केवल सत है।ध्यान का उद्देश्य इस सत आधार को प्रकट अनुभव करना है।

205. ज्योतिष का अर्थ क्या होता है?पहले अपने ज्योति को जानो।तब ज्योतिष होती है।ये सूर्य,मंगल चांद, तारे ,नक्षत्र,ये सब ज्योति हैं।तब ज्योतिष होती है।ये तो प्रयास है खाली।

206. हमको तो गोवर्नमेंट सर्विस दे रही थी।आपको कुछ करना नहीं है।खाली एस, पी के पास चुपचाप बता देना है।एक साल तक एस, आई, इंस्पेक्टर भोगले(तेल्हारा में सम्भवतः) ने पीछा किया।हमने मना कर दिया भाई हमको ये सब हमको करना नहीं है।हमसे नहीं होगा।

207.मनुष्य अपना समझकर (देहभाव से) उसे जो काम दिया जाता है, उसे करता है। और मैं मेरा रूपी शराब पीकर वह नाचता है। दुनियाँ के लोग नाम रूप देकर हमें फंसाते हैं। फिर हमारा शोषण करते है। दूसरों का काम अपना समझकर करता है। यह सब कचरा है। इसे निकाल फेंको। दुनियाँ केवल रूप के कारण फंसी हुई है।

208 तो जो चाहिए, एकतानता। ये दिखने होना (वन थाट, स्वर्गीय) जो आपको देखना है। तब व्यक्ति की स्थिति हो जाती है, तुर्या। दीपशिखा सोई परम प्रचंडा।

209.सतगुरु वो आत्मदेव है। नौकर है, तुम्हारे सर्विस करते है। हेपनिंग्स जो होता है, प्राप्त होता है। वो महान शक्ति प्राप्त होता है।

210. मैं मैं बकरी करती है। धुनिया जो है, सुखाकर रस्सी बना देता है, तब वो तुन्न-तुन्न करती है। मैं नही, बाबा तू। लेकिन मरने से पहले मैं मैं, मरते दम तक।

211. क्या बनना है?आत्मदर्शन युक्त जीवन में जो कार्य है। ये परम पद को प्राप्त (करना) ये अपने आप हो जाते हैं।

212. देह चला जायेगा, क्या होगा? कुछ चला जाता नहीं, कुछ आता जाता नहीं। राम और श्याम चले गए। सब ज्यों के त्यों हैं।

213. मैं जैसा हूँ वैसा चाहता हूँ आप सबसे।

214. बस अपने आप को पढ़िये कहां आप चूके, कहां नहीं। दृष्टा हो करके, मन कहां पकड़ता, कहां छोड़ता है, औरों को पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। साधना के माध्यम से, जीवन-मरण को संवारना सुधारना व ज्योर्तिमय बना देना, यही लक्ष्य होना चाहिए। बाहर तो सब-जनक ही जनक (राजा जनक) है। लेकिन हम सब भूल गये, अपने शब्दों को अपनी भाषा (संस्कृति, आत्मविद्या) को। ये ज्योति आकाश की तरह मण्डलाकार, अखण्ड मण्डलाकार है, तो जहां तक आकाश है वहां तक ज्योति है।

215. दिव्यानन्द सरस्वती आर्य समाजी हमें दुर्ग में संगीत पढ़ाइये। लगाये।अभी वो मारीशस में हैं।उन्होंने हमें लगाया।बोले ये असल में ब्राम्हण है।बाकी आप लोग नाम के हैं।

216. धीरे धीरे नित्य अभ्यास करने से दीर्घकाल में याने आपकी भूमि दृढ़ हो जायेगी। फिर जैसी आतुरता होगी, जैसी जैसी आवश्यकता होगी आप आगे बढ़ते जायेंगे। और भरा हुआ पानी जैसे आ गया वैसे सब रास्ता बनता चला जायेगा, आपकी रुकावटें दूर होती चली जायेंगी। सब जगह प्रकाश ही प्रकाश हो जायेगा।

217. जहाँ कहीं विरोध नहीं किसी भी सम्प्रदाय में विरोध नहीं। वो है धर्म। वो सत्य है। सत्य धर्म होना। सत्य माने अनुभूति। किताबों से नहीं, शब्दो से नहीं।शब्द और किताब जहाँ समाप्त हो जाते हैं। वहां से ये अभ्यास आरम्भ होता है। अभ्यास में बहुत जन्म होना। तब ये तमाम बातें होती है। पहले शुरू तो करो, चलना है। चलना है, अरे भाई, उठो तो सही। खाली चलना है, चलना है। खड़े तो हो जाओ। पहला कदम तो रखो,

पहला कदम, जीवन में पहला कदम (युग-युगांतर की हमारी तपस्या है ये। अभी तुम लोगों की, सबकी अभी शुरुआत है-श्री गुरुजी) तो है। इधर से उधर से, पहला कदम ही तो है-पहला ही तो है। करके तो देखो, कितना आनन्द आता है, आनन्द हो, कल्याण हो।

218. सब हमारे हैं। और कुछ नहीं, मैं ही हूँ उसमें। सद्गुरु के मुकाबले कोई पद नहीं, कोई श्रेष्ठ नहीं। खाली, स्मरण करना है। समय पर मंत्र वंत्र कहाँ याद आता है? गुरुजी शब्द, याद आयेगा।

219. ईच सोल इस पौटेंशियली डिवाइन। माने तुम सब अवतार हो। ये सत माने क्या? यही आत्मा, परम है, यही परमात्मा है। डिवाइन पावर प्राप्त करने के बाद, डिवाइन बीइंग हो जाते हैं। और समाज का काम करते है। ये डेवलपमेंट करना है, इसी जन्म में। मिला (दीक्षा) है आपको, सुषुम्ना खुला है। डिवाइन (डिवाइन माने दीक्षित हो गये) रोड है, डिवीनीटी जो है गोल, में ले जाकर पहुंचा देता है।इसी शरीर में, बाल बच्चों के बीच रहकर, ये कार्य होता है। हर काम बनता है। मैं ऐसा हूँ। मुझमें है-हो गया समाप्त।

220.जब हमारा चित्त उस सत से आकर्षित हो जाता है, तब परम आनन्द की प्राप्ति होती है। अभेद आत्मा में भेद उत्पन्न हो जाता है, और जब यह भेद हो गया, तब वह अविद्या हो गई। देह भाव (स्त्री, पुरुष) गये बिना सच्चिदानंद प्राप्त नहीं हो सकता। यह आत्मविद्या है, ब्रम्हविद्या है, शेष अविद्या है। जब प्रकृति स्वयं जो ब्रम्ह से प्रसूत है, वह स्वयं ब्रम्ह के रूप में परिणत हो गयी। मानो प्रकृति की हलचल बंद हो गई। ब्रम्ह अवस्थारहित प्रकृति अवस्थासहित है। स्मृति, अविद्या, मलिनता और मन, यह सब मन के नाम है। ब्रम्ह, बेमन हो जाता है। वहां दो नहीं, केवल एक, कैवल्य है।

221. एक बार भी फ्लेश (आत्मा रूपी ज्योति) हो जाये। तो सब भयों से मुक्ति हो जाती है। ज्योति माने खाली उसी का नाम है। ज्योति माने पूर्ण। ज्योति माने प्रकाश। ज्योति माने जिसको, जिसके द्वारा हम चलते फिरते रहते हैं। ज्ञान है, ज्ञान शक्ति है, वही निराकार है, ये कई अर्थ होते है।

222. अपौरुषेय कौन सा? वही जो पुरुष है। जिसका कोई आकार नहीं गुण नहीं है। कोई मूर्त नहीं है, कोई स्वरूप नहीं। कोई आकृति नहीं है। वो कुछ नहीं लेकिन सब कुछ है, वो। वो जाना नहीं गया। अ माने नाहीं, वो जो पौरुष है, वो जाना नहीं गया। वो क्या कर सकता है, क्या नहीं कर सकता, जाना नहीं गया। वो कैसा है (परस्पर विरोधी है)? बिना पैर चलता है। बिना हाथ सब काम करता है। वो बिना आँख देखता, बिना कान सुनता, बिना मुँह खाता बिना मुँह बोलता है। वो योगी है।

223. तो ये दृश्य के दो परिणाम होते हैं। या तो उलझने का या सुलझने का। यही कारण है मोक्ष के, माने सुलझने का अर्थ मोक्ष, अभी बताया।

224. ये संकल्प होना चाहिए-मर जायेंगे लेकिन छोड़ेंगे नहीं, तब वो चेला, चेला शिष्य है वरना वो ठग है।

225. दो विचारों के बीच जो अंतराल अदृश्य शक्तिरूपा है। वही केवल सत है। ध्यान का उद्देश्य इस सत आधार को प्रकट अनुभव करना है।

226. आचरण में लाना बहुत कठिन है। आचरणहीन होने से क्या होता है। जो कामनाएं हैं। इच्छाएं है, वासनाएँ है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, भय आदि बने रहते है। ये कम नहीं होते। फिर ये भजन पूजन बराबर है, क्या? अभाव तो दूर होता ही नहीं है। फिर ये भजन पूजन सही है क्या? आचरण में लाता नहीं। इसलिए कहा है, सत्यं वद धर्मम चर।

227.साधक को लय अवस्था में रहना चाहिए, जो अनुभूतियां हो चुकी है, उसी में मस्त रहना।

228.मन धारण करने योग्य हो जाता है। तब आप कुछ भी नहीं करते अपने आप होता है। क्या होता है? तब बुद्धि स्फटिक, मणिवत हो जाती है।

229. कार्यों को उदासीन होकर देखते रहो। आपकी बुद्धि पारदर्शकता को प्राप्त होती है। और अपना काम बन गया। परन्तु बिना सतगुरु के होना कष्ट साध्य है।

230.ये समझ नहीं,सत्पुरुष, सद्गुरु जिसको ब्रम्ह कहा ये सब एक है,लेकिन ये हमारा विश्वास,भरोसा और श्रद्धा नहीं है।है, नहीं है,ऐसा नहीं है,ये खाली टाइम बीइंग है।

231. चंगा माने मलरहित। फिर इस तरह दे रहा वहाँ चंग है। मैं यहां नहीं है। अपने से मैं यहां नहीं है। ये मालूम हो जाय कि मेरा सब कारोबार ईश्वर ही करता है। तो फिर मैं करता हूँ, मैं कुछ हूँ, ये करना (कहना) सब खत्म हो गया।

232.तब तक उसके कर्म है। माने पंचम जो केंद्र है, विशुद्ध नहीं होता। विधाती कर्मों का विनाश नहीं होता, तब तक आरोहण नहीं होता। ऊर्ध्व गति नहीं होता, तब तक अधो रेतस है। ऊर्ध्व रेतस नहीं होता।

233.महाशक्ति हमारे में भरी पड़ी हुई है। कैसे काम में लाना है, हम यह नहीं जानते। यह आत्मसाक्षात्कार रूपी ज्ञान सभी के लिए अनिवार्य व स्वाभाविक है।

234.पौरुष माने आत्मशक्ति, आत्मा जो शक्ति रूप से अंदर बाहर है। यानी आत्मशक्ति डेवलप करने पर ये सिद्धियां मिलती है।

235.अहं प्रभाव डालता है। प्रभाव से बचकर अपना कार्य करना है। अपने निश्चय से, अपनी धारणा से, जो अजन्मा है। उसको शरीर में अपने आपको ज्योति रूप में प्रकट कर देना पड़ता है।

236.आपके मन में ये संकल्प चाहिये, कि ये मैं हूँ और ये मुझे प्राप्त करना है। प्रक्रिया के द्वारा विकसित करके आपको दिव्य होना है। अर्थात स्थिर होना है। जहाँ स्थिर हुए की सारी अशांति दूर हो गई, फिर जो आपके भाव में आएगा वह बराबर होगा। हमारे अंदर वो शक्ति है, उसे अनादि अनन्त कहा गया, आपमें वो शक्ति पूर्ण है।

237.सत्य के जरिये त्रिगुणमय संसार वश में आ जाता है। सत्य जो है आत्मा है। जब आप अन्तर्मुख हो जाएंगे तो प्रकाश आ जायेगा, आपको उसमें रहना होगा।

238.बाकी सब कुछ छोड़ो और उस सत को पाओ। सत वस्तु को मत छोड़ो। जननी और सारा राष्ट्र उससे सुगन्धित हो जाता है। जिसका बुद्धि और मन उस ब्रम्हानन्द में समाहित हो गया है।

239.ये जो अभिक्रम है, माने अंदर अंदर में दीप। इसका नाश नहीं होता। बाकी जो कर्म करते हैं उनका, नाश। कामिनी कांचन में होके बार बार नर्क में जाना पड़ता है। उससे वो बच जाता है, ऐसे संत महंत के दर्शन ये स्वर्ण सन्धि है।

240.आपके मन में ये संकल्प चाहिये। कि ये मैं हूँ और ये मुझे प्राप्त करना है। प्रक्रिया के द्वारा विकसित करके आपको दिव्य होना है। अर्थात स्थिर होना है। जहाँ स्थिर हुए की सारी अशांति दूर हो गई, फिर जो आपके भाव में आएगा वह बराबर होगा।

241. शांत्यावस्था में मन शांत हो जाता है। उसकी कोई इच्छा नही रहती, करने की, पाने की, जमा करने की। अभय होकर कार्य करते है। मन को परमात्मा में स्थिर करते हुए, दूसरे विचारों को मन में न आने दो। इससे सारे कर्म, क्लेश, विपाक ये सब साफ़ हो जाते है। वो तुम्ही हो, तुम्हारे अंदर सब कुछ है। यह सम्यक ज्ञान है।

242. निष्काम कर्म का उपार्जन ही लक्ष्य बनाना चाहिए। आत्मानुसंधान रूपी कर्म, यही निष्काम कर्म है। तुम्हारा चित्त जो है तीर्थ है, उसी में स्नान करो। मनुष्य ही पुरुषार्थी होता है।

243. मैं तो कुछ करने नहीं कहता, रहने को कहता हूँ।

244. मनुष्य अपने भीतर के नियम विरुद्ध प्रवृतियों को मनमानी करने दें ऐसे निरीह, अशक्त वो नहीं हैं। बार-बार जो संसार में (हम) आते हैं। अपने आपको पहचानने के लिए आते हैं। आत्मा तो द्दष्टा मात्र है। कुछ न करना ही ध्यान है।

245. उसका शरीर ज्योतिर्मय हो जाता है। आत्मा ज्योतिर्मय है। तो शरीर भी ज्योतिर्मय हो जाता है। यही सम्यक सार है, सम्यक जीवन है। मन से विकारों का ध्यान न हो ऐसा प्रयत्न करो। जब ज्योति सामने आती है, तब वो ध्यान है। हमारे जो विचार उदय अस्त होते रहते हैं, इस जड़ता को दूर करने ध्यान करना है। बगैर स्मरण किये वो ध्यान बन जाना चाहिए। ध्यान ही तो मौन है। भार बढ़ने (मौन का) पर आत्मदर्शन हो जाता है।

246. ये शरीर और आत्मा का अनन्त जन्मों से साथ है। इतना मोह है इतना मोह है कि, वह छोड़ना नहीं चाहता।अन्नमय कोष, अन्नमय शरीर। अन्नमय शरीर से मनोमय कोष, मनोमय से प्राणमय, प्राणमय कोष से

विज्ञानमय कोष। यहां मृत्यु केंद्र है, विशुद्ध। मनुष्य मरना नहीं चाहता। भड़वे, माने जिनके पैसा पति है। आत्मा रूपी मणि को छोड़कर, कांच के पीछे पड़े हुए हैं।

247.जड़ भी पूर्ण है,चेतन भी पूर्ण है।सब पूर्ण ही पूर्ण है।

248.मैं शिष्य नही बनाता परन्तु समय काल परिस्थिति के अनुरूप कालांतर में आप मेरे जैसे हो जाये। यह राह दिखाता हूँ। हमेशा सोच समझकर बोलना चाहिये, शब्द ब्रम्ह होते हैं। मैं अनावश्यक कुछ नही बोलता।

249.लाइट ऑफ दि बॉडी इस दि "आई"।

250.ब्रम्ह ही तो, जीव होकर बुद्धि रूपी देह में रहकर, प्राण रूप में स्थित होकर, वर्ण स्वर से युक्त होकर, वाणी के रूप में प्रकट होकर [कहा गया है शब्द ब्रम्ह है] सब अहं के आवरण रूप, "तू मैं" होकर इस देह के साथ सब काम करवा लेता है। ईश सेवा तभी सम्भव है, जब उसके शब्दों में इतनी शक्ति हो, की वह जो कुछ कहे, आशीर्वाद में फलित हो।

251. सूर्य की रश्मियाँ कहीं-कहीं नहीँ पहुंच पाती। किन्तु गुरूजी की पहुँच दृष्टि उपस्थिति से कोई भी वंचित नहीँ रहता। जैसे शिव और पार्वती में भेद नहीं हैं। जैसे सूर्य और उनके रश्मियों में भेद नहीं हैं। वैसी ही आत्मा और गुरूजी में कोई भेद नहीं हैं।

252.दोषों से बचते रहें , इन्द्रियों पर काबू रखें । मौन रहने का प्रयत्न करें और अधिक से अधिक काल पर्यन्त डूबे रहें ।आप किसी प्रकार की चिंता करें ही नहीं। तभी समाधि की ओर क्रमशः अग्रसर होंगे। देह की या

शरीर की भी चिंता न करें , नाही घर की, धन की नहीं , सदस्यों की नहीं।, क्योंकि यद दृष्टम तद नष्टम।

253 जब तक जिसे चोट नही लगती। मोह माया का भ्रम दूर नही होता। साक्षी भाव से रहने का भाव नही आता। तब तक वह प्रगाढ़ साधना में जुट नही पाता। दूसरे शब्दों में डिसायर्ड गति नही आ पाती। ऐसा व्यक्ति ध्यानस्थ नही हो पाता और शिकायत करता फिरता है।

254.कृष्ण ने कहा मेरी एक शक्ति और है, वो परा शक्ति है(पिनियल में है)।जो परा है, सबसे परे। इसके(प्रपञ्च) पीछे क्यों दौड़ते हो? ये हाथ में नहीं आती, और मनुष्य फंसता चला जाता है। इससे निकलने के लिए योगमाया है। वो मिलने पर ही शक्ति है।

255.जो नित्य अजन्मा और शाश्वत है।, जिसे त्रिगुणों का स्पर्श नही। जो आत्मा प्राणिमात्र में साक्षी रूप से रहता है। जो 24 तत्वों से परे 25 वाँ पुरुष है। उस सनातन पुरुष को वासुदेव कहते है।

256.जिनको कोई देखा न हो, चाहे कोई भी हो, उनके स्मरण मात्र से काम बन जाए, वो सतगुरु है। जिस ईश्वर ने सृष्टि के आदि में ब्रम्हा को उत्पन्न किया । और जिसने ब्रम्हा के हृदय में स्वर पाठ रहस्य और अर्थ सहित वेद ज्ञान का प्रकाश किया उस आत्मदेव की मैं (मुमुक्षु) शरण लिया हूँ।

257.जन्म कर्म का भोग है, जिसका नाम सुख और दुःख है।, भोग भोगने से कटता है। किसी भी परिस्थिति का सामना करने के लिए डटकर बलपूर्वक तैय्यार रहना चाहिए।

258.जब ईश्वर का सानिध्य महसूस होने लगे।हर जगह उसका आभास हो,

वही ज्ञान है। सभी वस्तुएं सजीव मालूम होने लगती है।और मैं ही वही हूँ, बोध होने लगता है।तब सर्वत्र और सबमें वही दीखता भी है।हर क्षण उसका मन इसी स्वरूप चिंतन में लगा रहता है। स्वयं को खोजना ही भक्ति है, यही ज्ञान है।

259. भारत, भा माने ज्योति, आ माने आत्मा,रत माने लगे रहना। अर्थात जहां के लोग आत्मज्योति को प्राप्त करने में रत / लगे, रहते हैं भारत को स्वर्ग कहा गया।स्वर्ग कहाँ रह गया है?स्वर्ग को नर्क बना के रखा है।ये ज्ञानियों का देश है।स्वर्ग का नियम और संयम है,वो सब साफ हो गया।

260.तत्व तो वह है जिसकी प्रतीति हो।और इसकी तो कोई प्रतीति नहीं बोध होता है, यही सत्य है। आत्मा से भिन्न अनात्म पदार्थों का चिंतन न करना मन का मौन है।

261. कोई आपत्ति विपत्ति आ जाय आप पर, तो अपने सतगुरु को आवाज दो। पलक झपकते ही आपको वो बचा लेंगे।

262.ये प्रदर्शन में नहीं आता। जो लोग आते हैं कहते हैं, दिखा दो, क्या दिखा दो। तुम्हारा प्रश्न ही गलत है।अरे वहाँ से हम आये हैं, तो लौटना जरूरी है। वहाँ से हम आये हैं, उससे दूर हो गये हैं। इसलिए ये चिन्ताएँ बन जाती हैं, जिसे संशय दुविधा कहते हैं। यह हमारे में है, इसे जिसने जान लिया, उसने सब कुछ जान लिया। उसे अंदर ही ढूंढना है, अपने आप में देखना है, क्योंकि अपने आप में ही उत्तर मिलता है।

263.बुद्धि आत्मा के साथ सलंग्न है। तो दृश्य या ध्वनि का मन पर कोई परिणाम नहीं हुआ, या संस्कार बने नहीं। इन्द्रियों के जो देवता हैं उसे जीतना है। सुख दुःख दोनों एक है। खुद को ऐसा मिटा की तू न रहे, तेरी

हस्ती की रंगों बू न रहे। जब तक तुम जीते जी मृत्यु को नहीं देखते। तब तक असम्भव है। अपने आप को साक्षात्कार करने और जगत में शिक्षा दीक्षा के लिए हमारा जन्म हुआ है। आपमें वो शक्ति भरपूर है।

264.अभ्यास के द्वारा आपकी बुद्धि अखण्ड हो जाती है। एक वृत्ति हो जाती है। यही निष्काम कर्म है, ये धर्म है। ये ज्योति क्या है? यही दिव्यशक्ति है। जो ज्ञान के रूप में है। तन और मन मिलकर विकार है। ये विकार बाहर है। आत्मा ही शक्ति है। वही सब काम कर रही है।

265.सँस्कार जो हैं। बन्धन जो हैं सब मन है, अन्तःकरण जो हैं। आत्मा क्या है? जीव ही तो परम् है। मैं आत्मा हूँ, इसे हमने छोड़ दिया। जब तक आप उस रंग में रंग न जाय तब तक आत्मस्थ होने का नहीं। आपका जीवन चरित्र उत्तम होगा।

266. आप जैसा चाहे आप वैसा कार्य हो जाता है, सोचते हैं वैसा हो जाता है। याद करते हैं वैसा हो जाता है। इसलिए कर्ता कौन है? वही जो शक्ति है। जीव, आत्मा, सर्वशक्तिमान है, यह हम हैं। हम जीव नहीं हैं।

267.यही जो शक्ति है। वो करते हुए कुछ भी नहीं करता, और नहीं करते हुए सब कुछ करता है। उससे बड़ा और कोई नहीं। यही जान लिए तो आप महान बन सकते हैं।

268.प्रत्यक्षानुभूति होने पर मनुष्य धर्म अधर्म आदि सभी प्रकार के द्वन्दों से परे चला जाता है। शक्ति के द्वारा ही सब कुछ होता है करते हैं। ये हम भूल जाते हैं और कहते हैं।मैं करता हूँ।

269. दूसरों को दुःख पहुंचाने से बड़ा अपकार और पापकर्म नहीं है। आपको स्थायी होना है, सेल्फ पर होना है। बनेगा कि नहीं बनेगा, कभी चिंता नहीं होती, ये सब चला जाता है। रुप तो खोल मात्र है, अंदर वही है, और मैं ही वही हूँ। ज्ञानियों का यही भाव है, यही ज्ञान है।

270. यहाँ देर है। वहां देर नही है। उल्टा बोलते हैं लोग वहाँ तत्काल है। इसलिये अपने आप को पढो। हम क्या करते हैं, क्या नही करते, हम कैसे है? चरित्र घर बनाना है, यह न भूलो। अपने आप को जानना है, पहचानना है। मनुष्य सर्वगुणसम्पन्न है। अभ्यास इतना करो, कि एक आत्मज्योति के सिवाय कुछ न रहे। यही अहं ब्रम्हास्मि है, परमब्रम्ह है।

271. बाहर के संस्कार अशांति उत्पन्न करते हैं। इन संस्कारों को एक एक करके हवन कर देना है। नाम और रूप से अपने को मुक्त करना है। जब मन आत्मसात हो जाता है। तब आप वही हो, जिसे आप तलाश कर रहे हो।वृत्तियों के क्षीण होने पर विकार नष्ट हो जाते हैं। विकार रहित होना या तरंगहीन होने की स्थिति समापत्ति है। विराग ही समापत्ति है। वासना दूर होते ही परमात्मा दिखाई पड़ते हैं। जग ही तो विराट है, सारा ब्रम्हांड वही है। वह विराट पुरुष है। और वही इसे चला रहा है।

272. मैं या अहम के समाप्त होने पर साधक ज्योर्तिमय पिंड हो जाता है। या सेंटर ऑफ़ पीस के ऊपर की स्थिति प्राप्त कर लेता है। जिसे निर्बीज समाधि कहा गया है। यह बिना सतगुरु के प्राप्त नही होता। जब जीव इस स्थिति में जाता है, तब भोग समाप्त हो जाते हैं। तब वह अपने आप में स्थिर हो जाता है, इसी को सम्यक चरित्र कहा गया है। सम्यक चरित्र की प्राप्ति ही मोक्ष है।

273.आत्मा रूपी सूर्य के प्रकट होने पर क्या नही हो सकता? वो जैसा बोलेगा वैसा होगा, वो चलेगा तो दुनियां चलेगी । वो जैसा करना चाहेगा वैसा होता जायेगा। केवल संकल्प मात्र से सब कार्य होते रहते हैं।

274.मनुष्य को स्वालम्बी होनी चाहिए अपने पर, जो आप हैं आत्मा हैं। अवलम्बन रहना चाहिए। हमको स्वालम्बी होनी चाहिए, याने स्व जो आत्मा है उस पर अवलम्बित होना है। अपने आपको अपने पद पर फिर से नियुक्त करने के लिए अभ्यास है। सुषुम्ना में घुसने के बाद शिवतीर्थ याने मलरहित हो जाता है। ये है कल्याण।

275.मैं वही कहूंगा जो कहने योग्य है। वही करूँगा जो करने योग्य है। सतगुरु को जानने के बाद जीवन से मुक्ति मिल जाती है। बस आप लगे रहिये बाहर का कम होता चला जाएगा। मुझे तो व्यवहार कुशल रहना है। मैं सिखाता हूँ और सीखते जाता है।

276.मनुष्य में मुख्य बात आत्मज्ञान है अगर वो नहीं किया तो पशु के समान है। जहाँ तक हो सके सबका लाभ हो, तन,मन,धन के द्वारा हितैषी होना चाहिए, समाज का। मन से मोह व ममता को छोड़ना ही, आवरण छोड़ना है।

277.बुद्धि संस्कार रहित जब हो जाती है। तब वो प्रकृति में लय हो जाती है। प्रकृति माने सत, रज, तम। ये तीनो शुद्ध होकर के, प्रकृति पुरुष में लय हो जाती है। तब पुरुष केवल रह जाता है, इसे कैवल्य कहा।

278.जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति के इन अवस्थाओं से परे भूत भविष्य वर्तमान का ज्ञान ही नहीं। उनका संकल्पित कार्य भी स्वयं सिद्ध हो जाते हैं।

279.उत्तम साधना से देह की तीनों अवस्थाओं, तीनों गुणों पर संयत लाभ हो जाता है। वह तीनों गुणों को पार करके, महाकारण देह, तुर्यावस्था या शुद्ध सतोगुण में लीन हो जाता है। तब अतीत अनागत में बोध के साथ सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

280.पुरुष, माने नवद्वार के अंदर जिसका निवास है। यही जानने योग्य है। वही आत्मा है। महाशक्ति है, कुन्डलिनी है, ब्रम्ह है, गॉड है। ऑलमाइटी है।

281. मुझसे ही प्रकृति बनी है। ऐसा साधक जाग्रत हो गया। स्वस्वरूप का बोध हो गया। ब्रम्ह इन्द्रियगोचर नहीं है। इसलिए सत रज तम इन तीनों से परे जाना है। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति (इन तीनों) से परे स्थिति में अधिक से अधिक काल तक रहने का अभ्यास करना है। ताकि यह अवस्था दृढ़ हो जाय। इस अवस्था को चिन्तन रहित स्थिति कहा जा सकता है।

282.अभ्यास करने के बाद दोष गुण में बदल जाते हैं। तो वह ईश्वर हो जाता है। क्लेश मिट गया कर्म अब बाधा नहीं बनती। अनेकों जन्मों के परिणाम उदय नहीं होते। सहस्त्रदल में सब भूसे की तरह जल जाते हैं।

283.जिसके द्वारा मिला हैं उसको, ये कहते है, ये है अहंकार। तो अहंकार वहां तक नहीं छोड़ती जिसको कहते हैं एबव टाइम एंड स्पेस। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति के इन अवस्थाओं से परे, भूत-भविष्य-वर्तमान का ज्ञान ही नहीं, उनका संकल्पित कार्य भी स्वयं सिद्ध हो जाते हैं।

284.तब उसका सम्यक जीवन शुरुवात होता है। ये कोई जीना है, पतन के सिवा कुछ भी नहीं। समाधि माने बुद्धि जो समाहित हो जाय आत्मा में तब। तब सम्यक जीवन शुरू होता है।

285.आत्मारूपी, धन है, बाकी सब ऋण है। सतोगुण होने के बाद ये व्यक्ति समाज का एक आदर्श व्यक्ति हो जाता है वो समाज का भी है और घर का भी है।

286.वो कॉस्मिक एनर्जी से अलग है, जड़ और चेतन से परे हैं। जो डिवाइन एनर्जी है। बगैर बोले चाले, रात दिन, वो कार्य करता रहता है। सब काम करते वो होते रहता है, वो निष्काम कर्म, उसका वो धर्म बन जाता है। निश्चल, अटल हो जाता है।

287.जिस दिन आपने दीक्षा ली।गुरुचरणों की पूजा की , उसी दिन से आप मुक्त है। इससे बढ़कर ब्रम्हवेत्ता और कोई नही है दुनिया में, ये जो बोल रहा हूँ। जब तक सत्पुरुष मिलता नही, उस परमात्मा को कोई भी प्राप्त न कर सका। यह है गुरूजी की महिमा।

288.यही महाशक्ति है। यही गॉड है, यही अल्लाह है। अनन्त कुंडल है उस शक्ति के, उसको खड़ी करना है। उसको जगाना है, उसी को सत कहा है। हम अपने आप को नहीं जानते, अपने आप को नहीं समझते। अपने आप को जानो अपने आप को जानने से सारी दुनिया जान लोगे।

289.पुष्टि, तब होता है, सन्तुष्टि।सम माने सम्यक पूर्ण रूपेण हर प्रकार से पूर्णत्व,पूर्ण। सम्यक माने,समग्र।तब वो तुष्ट होता है।तुष्टि,तब वो तुष्ट होता है। तब वो सन्तोषी, तब वो सन्तुष्ट है,अपने में।अपने बल(आत्मबल)पर भरोसा है,विद्या पर भरोसा है।अपने राज्य पर भरोसा है।अपने जो कुछ अपने, पास है, भरोसा है, ये है बल।तब वो सन्तुष्ट होता है।

290. ये ज्योति क्या है। यही दिव्यशक्ति है जो ज्ञान के रूप में है। बुद्धि की सीमा को लंन्घन् करना ये अभ्यास है। मैं तो कुछ करने नहीं कहता, रहने को कहता हूँ। इस देह में वो परमपुरुष है। तो परमात्मा माने आपमें जो है, वो परमात्मा है।

291. स्मरण में रहे माने आचरण में आये। वो याद करके अभ्यास करना। सब छोड़कर लगे रहना। हम परमपद परमशक्ति को प्राप्त होते हैं। जिससे आप अपना, समाज का। राष्ट्र का भी कल्याण कर सकते हैं। सारा हित उसमें निहित है।

292.सारा दोष जो है। जो मन रूपी दर्पण में, आत्मा रूपी सूर्य से अंदर जाने के बाद दिखता है। कितनी ही पूजा पाठ करें (इनसे) ये विकार दूर होते ही नहीं हैं। गुरुकृपा से अंदर घुसने के बाद ये मल, विमल हो जाते हैं।

293.आत्मज्ञान यही मेरा सिद्धान्त है। आत्मज्ञान यही मेरा धन है, आत्मज्ञान यही मेरा व्यापार है।आत्मज्ञान यही मेरा सब कुछ है।

294.इस केंद्र सत्वापत्ति में आने के बाद। समाधि, उत्तम बुद्धि ये होती है। इस केंद्र में आने के बाद धीरे धीरे सतोगुण का उदय होता है।

295.अपने आप को साक्षात्कार करने और जगत में शिक्षा दीक्षा के लिए हमारा जन्म हुआ है। आपमें वो शक्ति भरपूर है।

296.अनाहत केंद्र चौथा केंद्र में सबके लिए वो समान हो जाता है। अपना पराया कुछ नहीं रहता, भेदभाव नहीं रहता। न नीच है न ऊंच न भेद है न बन्धन इसे ही समत्व योग कहा गया है।

297.विश्व यही ब्रम्हवन है, इसी में साधना करनी हैं। निरपेक्ष भाव से कर्तव्य करिए। जगत में रहना है नहीं रहकर भी रहना है। व्यवहार में जो धनिक है, वेदान्त में वो अधिक ऋणी है।

298.जो सत्य मुझे मिला वही मैंने दीक्षा के रूप में दिया। समाज से अलग रहकर पलायन कर निषेध कर जीने का कोई अर्थ नहीं है। इस वास्तविक विद्या आत्मविद्या से युक्त होकर समाज के प्रति हम कर्तव्य करें। उसे औरों को बांटे।

299.मैंने क्रोध में बोला हूँ, आप जाकर पता लगा लेना।आपको पता देता हूँ।अभी लोग जीवित हैं,जा करके बस,बता दो,और पूछ लो।एक ही दिन में एक ही शमशान में ,एक ही चिता में,सब गये।हमारे सगे संगोत्री।एक ही दिन में,दो तीन घण्टे में सब साफ,पूरा घर साफ(सात चिता जली)।दो बच्चे बचे,क्योंकि उनको हटा दिए गए थे।(वो भी,बाद में, शीघ्र ही समाप्त हो गए)बस क्या हुआ,नहीं बताने का।अहंकार होता है,इसलिए ये सब अहंकार की बातें हैं।अहंकार आता है तो बिल्कुल आदमी उतर आता है,किसी काम के नहीं है।इसलिए बाबा हम तो बेवकूफ है,स्टुपिड आदमी है।सब स्टुपिडिटी से भरी हुई हैं।

300.जब अखंड रूप से नाम स्मरणअभ्यास करेंगे, तो धीरे धीरे अखण्ड रूप धारण करने के बाद वो होगा हैं। निष्काम कर्म, अब कोई दूसरा कार्य करने की आवश्यकता नहीं। अखंड अभ्यास से आत्मा ज्योति स्वरूप प्राप्त होती है।

301. आत्मा को प्रसन्न करो। वो तुम्हारे पास है और वो तुम्हीं हो। उससे बातचीत कर लेना चाहिए, देख लेना चाहिए। उसमें समाहित हो जाना चाहिए।

302.क्या मिल जाने पर दूसरा कुछ मिलना शेष न रहे? सत्पुरुष मिलने पर।सत माने आत्मा जो पहले था, अभी भी है, आगे भी रहेगा। कुन्डलिनी शक्ति को जानने के जो उपाय हैं वो अगर मालूम हो जाये, तो फिर दूसरी चीज जानने की जरूरत नहीं हैं।

303.काम -इच्छाएं या वासना ही दुःख का कारण है। दुःख इसमें डूब जाने से ही होता है। तल्लीनता (आत्म ज्योति) को प्राप्त करना और उस आनन्द में मगन रहना, यही ध्येय है। वो अगर मिल जाय, वो अगर धारणा हो जाय, तो क्या कहना पड़ता है।

304. कर्तापन से दूर हुए कि, स्वभाव आने लगता है। यह मोक्षानन्द की अवस्था है। हमारा जन्म अकेले के लिए नहीं हैं, हमारा सम्बंध सबसे है।

305.माया का अर्थ होता है, मेरा और तेरा। यह प्रवृत्ति स्थिर नहीं होने देती, इस भाव से दूर होने के लिए, वसुधैव कुटुम्बकम के भाव के आत्मसात के लिए। आत्मबल की आवश्यकता है।

306.योगाभ्यास के दौरान कुंडलिनी जागरण करते करते पावर्स आने लगते हैं।यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य, अपरिग्रह) कि प्राप्ति होने लगती है।

307.दीक्षा के सम्बंध में, ट्रेन में आप टिकट कटाकर बैठ जाते हैं। आप सीट में बैठे या नीचे बैठे, आगे बैठे, पीछे बैठे, जैसे भी, खड़े रहें, या बैठें ।आप गंतव्य तक पहुंच ही जाते हैं।

308.ये ज्योतिरूप में, यही साक्षात्कार होता है, सारा विश्व भर जाता है। दिव्य ज्योति से विश्व भर जाती है। केवल तुम्हारें जुगनु सरीखा चमकता उतना

ही नहीं है। सारा विश्व ज्योति से भर जाता है, विश्व में कुछ भी नहीं रह जाता। आत्मा को देखकर, आत्मज्योति में उसका प्रवेश हो जाता है। माने परमशक्ति आपको प्राप्त हो जाती है।

309. जीवन की जो आवश्यकता है वो आप होती रहती है। प्रकृति अपना कार्य सब करती है। तो क्या चीज है, धैर्य चाहिए। मौन होना चाहिए, सहनशीलता धैर्य, यही तो मौन है। शरीर में जो सन्धि मिली है। जो ज्ञान है, वह ज्ञान ही सब कुछ है।

310. बुद्धि तो जड़ है। आत्मा के योग से चञ्चलता आ जाती हैं, शक्ति आ जाती है। शक्ति, वो ही आत्मा है।

311. मेन इस नाट फॉर लेविस मेन इस फ़ॉर लव। (जीवन विलासिता हेतु नहीं, हम प्रेमतत्व को समझकर व आचरण में लायें)

312. जब बुद्धि, ई नाम शक्ति, इनका मेल ज्ञाननेत्र तीसरी नेत्र में जब होती है। तो निराकार आत्मा ज्योति रूप में प्रकट हो जाती है।

313. पांच मिनट बैठ जाना, दो मिनट बैठ जाना। सब काम को बाजू कर देना, अपने आत्मा का अनुसंधान करना चाहिए। माने मेथड ऑफ वरशिप इससे बढ़कर और कोई मेथड नहीं।

314. ब्रम्ह-जो परम आत्मा हो जाता है। चाहे वो कोई भी वर्ग का हो ब्राम्हण कहा गया है। निजस्वरूप को जानना ही परमसत्ता का साक्षात्कार है। यह दिव्यत्व तुममें है।

315. अभ्यास से जो लाइट मिलता है। उसमें संस्कारों के काजल धुलते चले जाते है। लाइट के अंदर हमेशा रहना चाहिए। वह ज्योति ही मार्ग प्रकाशित करता है।

316. है ही नहीं, कुछ। (आत्मबल,विद्या,भरोसा आदि)तो सन्तुष्टि कहाँ से आयेगा?तो ये जो विषय है,ये आत्म विषय है।ये विज्ञान और ज्ञान है।ज्ञान होना चाहिए, ज्ञान माने आत्मज्ञान।बाकी सब अज्ञान है।अगर ऐसा न होता तो आज हमारी ऐसी स्थिति होती?

317. शरीर तो मर जाता है। किन्तु ये संस्कार उसके मस्तिष्क (के संस्कार कोशिकाओं) में जमा हो जाता है। और पुनः जन्म होने पर संचित रहकर परिणाम देता है।

318. सतोगुण होने के बाद ये व्यक्ति समाज का एक आदर्श व्यक्ति हो जाता है, वो समाज का भी है और घर का भी है।

319. अभ्यास करना माने मैं और तू को खो बैठना है। कई बार मृत्यु केंद्र को पार करके, तब तुम आस्तिक हो। तब वो श्रेष्ठ है। उस स्व में ठहर (स्थिर हो) गए तो पूर्णता की ओर चले।

320.ईश्वर वह ज्योति है। जिसमें हम विभिन्न मान्यताओं तथा विश्वास के अनुरूप राम, कृष्ण, ईसा, मोहम्मद आदि के दर्शन कर सकते हैं। मात्र इतना दर्शन हो जाय तो कल्याण होता है। ये कितना सस्ता धन है। कितना सस्ता खेल है लेकिन। आपको बिलीव ही नहीं।

321. ये समझ नहीं, सत्पुरुष, सद्गुरु जिसको ब्रम्ह कहा ये सब एक है। लेकिन ये हमारा विश्वास, भरोसा और श्रद्धा नहीं है, है। नहीं है, ऐसा नहीं है। ये खाली टाइम बीइंग है।

322.दिव्य ऊर्जा ब्रम्ह रंध्र के द्वारा लेटरल वेंट्रिकल को चार्ज करके, आज्ञा चक्र पर पुनः वापस आ जाती है।और पूर्ण शक्ति के साथ यहाँ पर स्थिर

हो जाती है। इस प्रकार सारी शक्ति, स्थिरता के साथ मिलन ही शिव शक्ति का मिलन। (है)। आत्मयोग से शुद्ध होकर वह योगी हो गया।

323.सतत अभ्यास से दिव्य ऊर्जा पिनियल बॉडी को स्टुमिलेट करती है। नर्व टर्मिनल्स भी स्टुमिलेट होती है। नर्व टर्मिनल की पहली संख्या के साथ अंदर प्रवेश करती है।अंदर जाकर आप्टिक नर्व (दूसरी संख्या) के साथ आक्सीपुट में पहुंचती है। दिव्यऊर्जा, रीढ़ का उच्चतम सिरा यानि विशुद्ध चक्र के लेवल पर पहुंचती है। तब कुंडिलिनी जग जाती है।

324.साधक, गुण ग्रहण करने के पश्चात शक्ति सम्पन्न होता है। क्योंकि शक्ति को गुण के रूप में कहा गया है।

325.जिसकी सुषुम्ना खुली है।आत्मा के पथ में (रीढ़ में, विष्णुमार्ग, सम्भवतः) आते जाते हैं।आत्मज्योति की दर्शन होते चली जाती है। एक सेकंड भी होता है, कल्याण होते चले जाता है। एक सेकंड भी इधर से उधर आते जाय, तो भी आपका कल्याण होते जाता है।

326.निर्गुण सगुण होकर साकार होता है। निर्गुण होते हुए वह गुणयुक्त है। गुण ही शक्ति है। जब गुण नहीं तब निराकार है। वह शक्ति है, क्योंकि शक्ति ही निराकार होती है। उसका कोई रूप नहीं है।

327.(दिव्य ऊर्जा) फिर मेडुला आब्लांगिटा को क्रास करती है। यही मृत्यु केंद्र है। और वह मर जाता है। (शारीरिक क्रिया शून्य, ज्ञान बने रहना, आत्मा के ज्योति के रूप में प्रकट होना, सिद्धि नवनिधि का मिलना) सतत अखण्ड अभ्यास से दिव्य ऊर्जा मृत्यु केंद्र से कर फोर्थ वेंट्रिकल में जाती है। फिर (मिड ब्रेन के स्तर पर) थर्ड वेंट्रिकल में पहुंचती है। फिर दिव्य ऊर्जा ब्रम्ह रंध्र के द्वारा लेटरल वेंट्रिकल को चार्ज करती है। जिससे पूरे मस्तिष्क में दिव्य ऊर्जा का संचरण हो जाता है।

328.दिव्य ऊर्जा रीढ़ का उच्चतम सिरा यानि विशुद्ध चक्र के लेवल पर पहुंचती है, तब कुंडिलिनी जग जाती है। आज्ञाचक्र में जहां महाकारण देह होती है। जहां शुद्ध सतोगुण उदय होता है, इसमें दुख नहीं होता है, सुख दुख कुछ भी हो वो मस्त रहता है।आपकी बुद्धि सम्यक शुद्ध (प्रत्येक में ज्योर्तिमय रूप पाना, हमी हैं आदि) हो जाती है,आप अभय हो जाते हैं।

329.जब तक सुषुम्ना मार्ग नहीं खुलता। सतगुरु के आदेश का पालन कर हम ऊपर आते नहीं तब तक हमारा सतोगुण भी शुद्ध नहीं होता। तब तक हम अभय नहीं हो पाते।

330.जब तक हम बताए गए अनुसार अभ्यास न करें।, तब तक हमारी बुद्धि शुद्ध नहीं हो पाती, चित्त भी शुद्ध नहीं हो पाता। तो जो इंद्रियों को इनसे हटा लेता है, धीरे धीरे अपने आपको इनसे छुड़ाता है। बस आसन लगा लिए, ऐसा करते करते मन को तैयार करता है।

331. मैं करके छोडूंगा, मैं इसे बोलकर रहूंगा, इसको मैं वश में कर सकूंगा। तो ये बुद्धि भी चली जाती है और मन भी, बुद्धि निर्णय देकर हट जाती है, और मन को (अहं सम्भवतः) कहती है पकड़ इस चीज को। तो मन पकड़ लेता है। इंद्रियां तो इसकी भोक्ता है। इस प्रकार हमारा पतन दिन ब दिन होता चला जाता है। इस श्रृंखला को जिसने समझ लिया वो पार हो सकता है, अगर सोचे तो।

332.आज हमारे माता पिता खाली पेट भरने की विद्या सिखाते हैं। मनुष्य परावलंबी प्राणी नहीं है, वह स्वयं अपना चरित्र और भाग्य बना सकता है। जगत में दो प्रकार के व्यवहार और व्यापार होते हैं, या तो हम करके रखें या होकर रहें। ऐसा ध्येय होना कि अभी भी आगे भी क़भी भी

हमारा कल्याण हो और हमको देख औरों का भी कल्याण हो। मान रहित, मोह रहित साधना होनी चाहिए।

333. मैं तो कोई चीज नहीं हूँ, मैं तो कोई चीज ही नहीं है। मैं तो सिर्फ अहंकार है। तो मै तात्पर्य ये है कि मेरा जो कर्तव्य है, सामाजिक ये सामाजिक कर्तव्य है, कि राष्ट्र जो है बनी रहें , राष्ट्र में जो लोग हैं वो भी बने रहें । और जो हमारी संस्कृति है, योग। आत्मसाक्षात्कार वाली जो योग है, वो बनी रहें । तो जब जिस राष्ट्र में संस्कृति नहीं वो राष्ट्र टिक नहीं सकती ।

334. पूजा नाम नम्रता, पूजा नाम बलिदान, पूजा नाम समर्पण। नम्रता, अति विनय, अनुयय, विनय शील। ऐसे जो आप दीक्षित हैं, तब बचे हुए हैं, आप कहीं भी नहीं हैं। मैं किसी को भटकाता नहीं उसमें से उठाता हूँ।

335. हमारा जो पद है, वो आत्मा है। जो हमारे भीतर है, वह सूर्य की तरह प्रकाशित है। अनन्त सूर्यों का सूर्य है। वो तुम्हारा आधार है, उसे स्मरण करके कार्य करना चाहिये। वही सत्ता है और कुछ नहीं। सब में वही आत्मा है, इसलिए जब हम देखें तो सबमें वही आत्मा देखें। वो दिखे या न दिखे पर उसे स्मरण करके कार्य करना चाहिए। सब में एक ज्योति है, यह सत्य है। ऐसा जो देखता है वह सम्यक् देखता है। ऐसा देखा नहीं जाता अनुभूति होती है अंतर्दृष्टि से ज्ञानचक्षु से देखा। यह अनुभव है।इसी को अद्‌भुत रस कहते है।

336. ये जो कारणमय शरीर है। सब कटते चले जाते हैं, बंध जो है कटता चला जाता है,इसी का नाम है-सत। बंध कटते-कटते जब बंध कट जाता है।वो स्थितप्रज्ञ हो जाता है।स्थितप्रज्ञ माने जैसा बोले वैसा होता है।वो जैसा चाहे वैसे होता है।वही चाह गई,चिंता मिटी,मनवा बेपरवाह, जिनको कछु न चाहिए।वो शाहों के शाह ये स्थिति में है।फोकट नहीं

होता।सत तत्व होता है।सत माने बुद्धि सामर्थ्य शापादपि-शरादपि। आशीर्वाद देगा,बराबर हो जायेगा।जो शाप देंगे,बराबर होंगे। सामर्थ्य है आपमें।तो ये है अभ्यास।ये है अभ्यास, अभ्यास (गुरूपदिष्ट) करने से बंध जो लगे हैं। कटते चले जाते हैं।इसका नाम है।संवर।

337.ये बुद्धि और आत्मा की संधि को जो पृथक कर सकें वही संन्यास है।योगी है,संन्यासी है।

338 इस पथ पर चलने के लिए अत्यधिक धैर्य चाहिए, धैर्य और अभ्यास को नहीं छोड़ना है।ऐसे जो योग मार्ग है।जो पद्धति है, उस पद्धति में बने रहेंगे।

339 रामायण क्या है,वो?उसमें अपने आपको पढ़ने से,धीरे-धीरे होता है।अगर आदमी जैसा सोचता है,वैसा हो जाता है।तो रामायण पढ़ेगा तो,कुछ न कुछ, बनेगा कि नहीं?क्या?कुछ न कुछ, आचरण में आयेगा कि नहीं।जब आयेगा तो फिर संरक्षण,अपने आप होते ही जायेगा ही बस।इतना ही सुरक्षा चाहिए,उसको।वो मिलता जाता है,काम बनते जाता है।माने संस्कृति कितना ईजी गोइंग है।लेकिन समझने और समझाने वाला होना तब होता है।जो हमारी संस्कृति है,इस देश में-साइंस।

340 उपकार, तो आपको उऋण ही करना है।देना ही है,वो तो बदला देना है न,किसी रूप से,ब्याज से, इसलिए कभी चूकना नहीं। हम तो एक-एक दिन एक-एक क्षण उद्धार हो रहे हैं। जब हम उद्धार हो रहे हैं। तो हमें चिंता किस बात की है।इसलिए बड़े आनन्द से जीवन व्यतीत करना चाहिए।देखो एक-एक सेकंड उद्धार हो रहे हैं।

341 जो बोये थे अब काट रहे हैं। जो कुछ सामने आ रहा है, जिससे लोग दुःखी रहते हैं ,ये भोग हैं। ये भोग तो भोगना ही होगा, इसलिये भोग-भोगते हुए अभ्यास का मार्ग कभी न छोड़ें।धैर्य से पकड़े रहें , कभी नहीं छोड़ना। छोड़ दोगे तो इधर के रहोगे न उधर के रहोगे।भोग एक बार भोग लिये, वो खत्म हो गया(माने जहर)। जो ऋण बाकी थें ,अनेक जन्मों के, जो समाज के लिए थें ।

342 और जीविका, उपजीविका।ये तो सामाजिक है, बौद्धिक है। आत्मा जो निर्गुण - निराकार है।इस बौद्धिक विकारों से जो मुक्त हैं, और नाना प्रकार से कला से, जो कि नश्वर है। वो अविनाशी को, इस नाशवंत शरीर में। मोह और लोभ और मान और मत्सर, बंधनों से क्रोध और वासना, इच्छा, कामना, भ्रांति। और जैसे रांगा को चांदी समझना। और सच्चाई है जो भोग भोगना है, उसको सब बला समझना। ये सपना नहीं है। भोग भोगना ही होगा।

343 भोग भोगना ही होगा।और मृत्यु का भय ये तो निश्चित है और ये सब जीता जा सकता है। जिसका नाम है, जितेन्द्रिय। आपको इन्द्रियजीत होना है। दशेन्द्रीयाणि मनःतेषा: मिशः कपिशः।भय,मृत्यु क्या है? ये इंद्रियों का समूह हैं।

344 कुलहीन माने किसको कहते हैं, मालूम है? कुलहीन माने भड़वे, जिसका पैसा पति है।

345 और न अपना कोई घर नहीं,कोई द्वार नहीं,कोई अपना न पराया।अयं निजः परो वेत्ति गणनाम लघुचेतसाम, औदार्य चारितानं तू वसुधैव कुटुम्बकम। वह मेरा है, ये अपना है, इससे भेद करो, वो शत्रु है। हम बड़े ऊंचे हैं, वो नीच लोग हैं, नहीं, नहीं। हमें जो कुछ है मिला हैं, वो शुद्ध

होगा, कि समान, अपने समान दूसरों को समझें और उपकारी, सदा अपने वृत्ति, शरीर, नीयत अच्छा रखें। समाज में सबके लिए, वो अपना जीवन अच्छा रखें । वो चाहे, वचन से या कर्म से, या शरीर से या तुम्हारे पास अर्थ द्रव्य आदि जो कुछ हो, थोड़ा, थोड़ा, थोड़ा पहुंचाते हैं। ऐसा जो तुम्हारे मनोवृत्ति हैं।

346 भोग तो भोगना ही होगा।लेकिन उद्धार के लिए जो सतगुरु के द्वारा जो आपको मार्गदर्शन होता है, उसको कभी नहीं छोड़ना। प्राण जाय पर वचन न जाय, ये जो तुलसीदास जी ने कहा है।वर्ल्ड में जितने लोग हैं, सभी लोगों के लिए कहा है। एक उपदेश, एक आदमी के लिए नहीं होता है। इस प्रकार से प्राण चला जाय(पर वचन न जाय, नहीं छोड़ना है) ये व्रत ही भावना है। इसके बाहर बार-बार, नरक यातना भोगना है।

347 अपने आत्म मार्ग पर आप चलिये।आप सामर्थ्यवान बनें। सामर्थ्यवान बनें माने चुकाना ही है (ऋण चुकाना, और भोग भोगना सम्भवतः) और चुका करके, सबके सहाय रहें ।

348 मार्गदर्शन कहे हैं, सबके जीवन में हैं, उनके सहाय करते रहें । और अपनी भी भलाई करते रहें, तुम्हारा भी भला होगा। अगर ये सत्य है तो, सबकी भलाई है। तो आपकी भलाई जाने-अनजाने प्रकृति कार्य करती रहेगी।

349 ये है संत, जो सबका सहन करे। नहीं तो काहे का संत है? अगर क्रोध को नहीं जीता तो क्या जीता? घृणा के भाव को नहीं जीता तो क्या जीता?

350 आपकी क्रिया इंद्रियाधीन हैं, वस्तुओं के आधीन हैं, पराधीन हैं। तो पराधीन सपने हुँ सुख नाहिं कर विचार देखो मन माहिं। वो परवश, अभी हम परवशता में हैं, ये पाश में बंधे हुए हैं। इसलिए जीवात्मा कहलाया।

351 नहीं छोड़ोगे (गुरुदीश अभ्यास मार्ग)।तो अंत समय में,आप जो हैं, प्रकाशमय मार्ग से गमन होगा। तब स्ववश भगवंता।उसका जो भगवान है, आत्मा जो ह ,पति,अधिष्ठान है । प्राप्त होगा।

352 पुस्तक, किताबें बाचता। लोगों को नित समझावता, त्रिकुटी महल खोजे नहीं, बक-बक मरा, तो क्या हुआ? योगी दिगम्बर से बड़ा, अरे बाप रे, इनसे कोई बड़ा है? योगी दिगम्बर से बड़ा, कपड़ा रंगे लाल ते, और वाकिफ नहीं उस रंग से, कपड़ा रंगे तो क्या हुआ?।

353 सम्यक माने पूर्णतया। सब प्रकार से,बहुत विधि से,अनेक प्रकार से।वो गतिहीन(होता)है। उसमें,अपने आपको गतिरहित रखा है।सम्यक बताया सम माने उत्सर्ग सब प्रकार से।जिस प्रकार से आपकी गति उसमें हो।और कोई धक्का भी दे दिया।धक्का भी कर दिया।अगर आप उस गति से चलते रहें।अपने आपको गति में रखेंगे।या जो विधि बताता है आपको,रहने के लिए,इस प्रकार से आप रहें।तो आपकी सतवृत्ति होगी।सत,सत्ता जो है।डिवाइन ऐनर्जी,दिव्य शक्ति है।

354 ये जगत जो है, ये जो दृश्य हैं हमारे सामने ये बंधन का कारण हैं। और मोक्ष का भी कारण है। अगर कोई इसको आलिंगन करोगे, तो बंधन में पड़ोगे।सुख-दुःख का धाम है, वो क्रियात्मक है, कभी नहीं, छुटकारा पाओगे। और इसका केवल आनन्द लेओगे, फेरे में इसके नहीं पड़ोगे, और अपने को बताये, दिया गया मार्ग है। उस पर, सुलझें।

355 इसलिए, ये जो जग है।ये जग का, जहां हमारा चित्त है, विघ्न के कारक और तारक है। ये जो दृश्य है, आलिंगन करोगे तो विष है। इसलिए मरना निश्चित है, इसमें।और ये जो दृश्य है, इस दृश्य को अगर आत्मसात (अपने जैसा देख लेना, अपने में देख लेना, अपने अंदर देख लेना, हो,

सम्भवतः) कर लीजिये, आपमें।अपने विषय (ज्योति,आत्मरूप) में आपने लय कर लिया। तो अपने भूत (पंचभूत) और इन्द्रिय (दस पांच कर्म, पांच ज्ञान) अंतःकरण(चार-मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) आदि को इस दृश्य से समझ करके, आत्मा में विलय करेंगे।कोई आरोप नहीं,कोई आरोप नहीं।ये मिथ्यादोष जो है।इससे किसी तरह से अपने आपको बचाना।इससे बचने के लिए,सिवाय कुछ नहीं है।

356 वो आत्मदेव है अपने में स्थित है, स्थिर है।ॐ को ही कहा गया, स्वयं ज्योति है।सूर्य का वर्ण है, स्वर्ण जैसा। सूर्य माने ज्योति, माने ज्ञान। वही हमारे अंदर-बाहर, ऊपर-नीचे है।और हम उसके अंदर हैं।

357 सुषुम्ना में अगर आपका प्रवेश हो जाय, उसका मुंह खुल जाय।फिर क्या होगा?उर्ध्व गति आपकी होगी।फिर तमोगुण नहीं रह जायेगा।

358 उसके जैसे कोई दूसरा है ही नहीं। इसलिए उसको उपमा रहित कहा। ये दीया जो अन्दर में है, अगर जला लिये तो कोई उपमा नहीं है।ये दीया अगर आपने जला लिया,ये दीया जब तुम्हारे हाथ में आ जायेगा, तो भूत, भविष्य, तुम्हारे सब समझ में आ जायेगा। जो शुभाशुभ कर्म किया है,शुरू से आपमें,जो कुछ है, आपके समझ में आ जायेगा।और बिना दुःख भोगे, दुःख नहीं जायेगा। भोगना तो होगा।इस प्रकार से जीवन में परिवर्तन हो जाता है।कृष्ण ने कहा है,जो डूब गया है पगला गया है।उसका योगक्षेम मैं वहन करता हूँ।ये आश्वासन है, चिंता की कोई बात नहीं है।

359 ये जीवन,जीवन है, सेंट्रल कैनाल में घुसे हैं। बाहर जितने है,वो जीवन नहीं है।वो जीवन तो कष्टमय है।जैसे इन्द्रियाँ देहला भोगिली,माने इंद्रियों को पता भी न चले और आनन्द में है।माने संसार में रह करके

आप जितेन्द्रिय हो जाएंगे।और जो दुख,सुख है, आपको दुख क्या है,ये मालूम होगा।और इन दोनों को भोगते हुए आनन्द मिलता रहेगा।

360 एक भी संस्कार रह गया आगे फिर से जन्म लेना पड़ता है।इसलिए अपनी अपनी भोगों और रहो।इतना तो है,जब से आपको लाइट मिल गया तब से किये गये कर्मों का संस्कार(फल) नहीं बनता है।अंदर घुसो,अंदर घुसे बिना वो नहीं मिलता है।जिसे तुम ढूंढने जा रहे हो,वही तो तुम हो।आत्मा ही तुम हो, यही तो परमोत्कर्ष है।चिराग लेके ढूंढों,ऐसे लोग नहीं मिलते हैं।

361 बाकी में आदान प्रदान होता है।वहां तो सेल्फ ही सेल्फ है,बस।सेल्फ इस विदिन।अखण्ड ज्योति उस समय आपके सामने आ जायेगी,बस।सारा संसार में अखण्ड ज्योति, सारा ब्रम्हांड।कुछ न रह जायेगा,उसके सिवाय।मेरा अनुभव है।किताब(दिव्याम्बु निमज्जन)में दिया हूँ।और उसके परे जायेगा, वो है एब्सोल्यूट।वो निर्गुण निराकार का स्टेट है।इससे ऊपर आज तक कोई गया नहीं है।इसी को परमोत्कर्ष कहते हैं। तो परमोत्कर्ष जो है,पाने के लिये,मानने के लिये, समझने के लिये,जानने के लिये, बार,बार इस पृथ्वी पर आपका जन्म होता हैं।अपना जन्म होते रहता है।

362 डेवलप माने आत्मशक्ति को विकसित करना।उस विकास से तुम्हारा सारा जीवन दिन ब दिन उत्तम। उत्तम रूप से स्वास्थ लाभ होते हुए और केवल स्वस्थ होते हुए नहीं।आपका जो प्रापंचिक कारोबार है,वो भी अपने आप होने लगते है।

363 भरोसा नहीं,आपने ट्रस्ट किये।वो ट्रस्टी है,आपको सौप देना है।वो चाहें करे या न करे। कॉन्फिडेंस ये है,वो करेगा।भरोसा है वो करेगा।भरोसा

है तो होकर रहेगा। ये तर्पण है।तब तृप्ति होती है,तब समाधान होता है। तर्पण नाम तृप्त होना, तृप्त करना है।

364 कोई भी बड़ा काम,कोई बड़ा सामने आ जाय तो ये मन्त्र(एक,दो दफे बस) बोलना मन में-गुरुजी सम्हालों,इसे बनाओं बस।वो काम सीधा हो जायेगा।

365 ये जो सर्वत्र है,सर्वज्ञ है,सर्वशक्ति है।आत्मा ही अपने आपको,पर्दे से हटाकर,ज्योति रूप में प्रकट कर देती है।

366 एक धुन होना, एकतानता होना, ज्ञान भक्ति वैराग्य-शक्ति मिलती है।अनजाने में भी आनंद मिलता है,माने शांति मिलती है,उपरम होता है,उपरति बढ़ती जाती है। यही आसन होना जरूरी नहीं है । लगन होना, लगन होना। ऐसा जो अनन्त आत्मा है, उसको ज्योति रूप में।तमोगुण प्रकृति शिथिल होकर, सतोगुण मात्र रह जाता है।सतोगुण में भी जो संस्कार है, अहंजन्य संस्कार, दूर होते जाते हैंअभाव जो दुर्बलता है,दूर होते जाते हैं। वैसे वैसे आपको शक्ति मिलती जाती है,आप अभय होते चले जाते हैं।आपके कार्य होने लगते हैं, सब कार्य अपने आप होने लगते है।बुद्धि में एक प्रकार की चमक आ जाती है,आत्मा स्वयं ज्योत के रूप में,वो बुद्धि में, प्रखर हो गई।आशय, दुनिया भर के पड़े है, जैसे जैसे अनाशय होते जायेगा, चमक आते,जाते हैं।

367 ज्ञान गंगा बह रही है, ये त्रिवेणी संगम है।राजा राम जब राज्य करते थे,सिंहासन पर आकर बैठते थे।सारे योगी लोग और जितने जो मुकदमा छुड़ाते थे।न्याय प्रक्रिया जो होती रहती थी,लोगों की शिकायतें,लोग आकरके जो उलाहना देते है,पीड़ा सुनाते थे,जिससे वो तंग हो जाते थे।जो ऋषि मुनि हैं उनसे वहां उन योगियों के विचार,विवेक बुद्धि वाले

वे लोग अपना मत सामने रखते थे।और मत रखने के बाद राजा राम सद्बुद्धि के दर्शन करते थे, याने न्याय सुनाते थे,माने योगी लोग जो है।माने राजा जो है योगियों के अनुशासन में, अनुशासित रहते थे,और जो लोक है जो समाज के है इसको क्या कहेंगे, ये राजा के अनुशासन में रहते थे।राजा से लोक अनुशासित और राजा योगियों से अनुशासित तब वो- राज सुखकर, लाभकर,हितकर जिसको रामराज्य कहे हैं, हो सकता है। ऐसा मेरा मत है।

368 एक वृत्ति, एकतानता, एक के सिवाय कुछ भी नहीं है।बस परिवर्तन है,न छोटा है, न बड़ा है।अखण्ड रूप से जब एकतानता हो जाती है।तब वो धर्म है। और वो जहाँ धर्म का रूप लिया तब वो साक्षात्कार हुआ।मेरा अनुभव है ये।तुलसीदास जी ने भी यही कहा है।गीता में भी है- नेहाभिक्रमनाशोअस्ति प्रत्यवायो न विद्यते, स्वल्पम्पयस्य धर्मस्य। एक बार भी जरा भी, इस धर्म का स्पर्श हो जाय।त्रायते महतो भयात।आपका जन्म मरण के बाहर भय से वो तार देता है।गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है-सोअहं अस्मि एक वृत्ति अखण्डा दीप शिखा सोई परम प्रचंडा।तब वो दीप शिखा परम प्रचंड,(आत्मा स्वयं ज्योर्तिभवती)आत्मा स्वयं ज्योति के रूप में हो जाती है।तब वो आता आत्मा है,साक्षात्कार के रूप में,ज्योति के रुप में प्रकट हो जाता है।आतम अनुभव सुख सुप्रकाशा तव भव भेद मूल भ्रम नाशा।अन्यथा नहीं, अन्यथा नहीं।

369 बुद्धि ज्यों-ज्यों सात्विक होती जायेगी।वह आत्मा की ओर उन्मुख(गुरु कृपा से और उनके बताये मार्ग पर चलने से,मन और बुद्धि,आत्मा की ओर उन्मुख होती है)होती जायेगी। इस अवस्था में मन, बुद्धि के पीछे चलने को विवश हो जाता है। आत्मा के सम्पर्क में आने से, मन की

मलिनता दूर होकर,वह भी आत्मा में रमने लगता है।निर्मल मन में दर्पण की भांति शुद्ध स्वरूप का दर्शन होने लगेगा।और बुद्धि आत्मबुद्धि होकर,तीक्ष्ण होती जाती है।और आप सर्वज्ञ होते जाते हैं।

370 आपको, बिना किये अभ्यास होता है,अनाभ्यास को अभ्यास कहते हैं। इसलिए जितना अनाभ्यास करेंगे,बैठने का काम नहीं है, अभ्यास होता जाता है। ये कभी सुने थे,अनाभ्यास को अभ्यास कहते हैं। ये सभी के लिए चाहिए, अनाभ्यास योगी हाथ लिये चलता है।मुँह से नहीं बोलना है, सारा लेकिन जो रखता है। क्या करता है, ये क्या है? परस्पर विरोधी जो है अपने में है, सब का करता है, और सब कुछ करते हुए नहीं करता है। इन्हीं को ही समर्थ कहा गया । ये है जय जय हे रघुवीर समर्थ।

371 हम केवल वस्तुनिष्ठ हो गये हैं।इसी को सदा सत्य मानकर चलते रहते हैं।जो सदा परिवर्तनशील हैं। मनुष्य कि दुर्बलता का कारण बाह्य जगत के प्रलोभन, नाना प्रकार कि आकर्षक वस्तुएं हैं। ये तीन अवस्था मूढावस्था (बदलने वाले को सत्य मानना), क्षिप्तावस्था (जिस काम को न कहें उसे ही करना) और विक्षिप्तवस्था (हंसते खेलते बोलते है, और उसी चीज को तोड़कर फेंक देते हैं) हमारी जन्म से लेकर मरण पर्यंत वस्तुनिष्ठ होने के कारण हैं। हमको गुणज्ञ होना हैं। इसलिए ये शक्ति है, सत कहा। उसी को एनर्जी कहा।ये कास्मिक एनर्जी कहा। उससे परे एक और है, जिसको डिवाइन एनर्जी कहते है। ये डिवाइन गुण हमारे में हैं।

372 जैसे जैसे ध्यान प्रगाढ़ होता जाता है अखण्ड मण्डलाकार जो चराचर में व्याप्त है-वही ज्योति के रूप में प्रकट होता है।

373 संग होना चाहिए।ये कामना वाले है, दुःख ही दुःख होगा।और निरपेक्ष वृत्ति वाले हैं साधु हैं। गुरु अगर सर्वशक्तिमान है, सत्पुरुष है। उनकी बात मानकर,उनके आदेश का पालन कर,वो बुद्धिमान होकर,दिव्य शक्ति सम्पन्न होकर, और समाज को भी गुण दे सकते हैं। ये ब्रम्ह विद्या है।

374 श्री गुरुजी ने अपना परिचय देते हुए,(श्री लक्ष्मी प्रसाद मिश्र जी को,उनकी डायरी के अनुसार)बताये।कि विश्व में आज तक जितने भी, संतों - महंतों - भगवंतों के अवतार हुए हैं। वे मेरे "अंगसंग " रहते हैं। मैं संसार के सभी प्राणियों की वाणी - आवाज समझ सकता हूँ। मुझे अठारह भाषाओं का पूर्ण ज्ञान है। मैं लोगों का कल्याण करने के लिए ही पृथ्वी पर आया हूँ।

375 मैं समय और काल से परे हूँ।लोग शास्त्र की बातों को पढ़कर बोलते हैं। परंतु हमारी वाणी को,शास्त्र प्रमाणित करते हैं।मेरे जैसा विश्व में नहीं हैं। मैंने मृत्यु को लांघ लिया है।ये हजारों वर्ष की तपस्या है।हमने उसको जाना, जिसको जानने के बाद कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता। (अर्थात) उसको पाया जिसको पाने के बाद कुछ भी पाना बाकी नहीं रहता।

376 हमको एक नाम दे दिया गया है।अगर नाम है तो रूप भी होना चाहिए।जब रूप है तो नाम है।हम केवल नाम लेते हैं।रूप की ओर हम जाते नहीं।जब रूप की ओर जाते हैं तो नाम छूट जाता है।मन एक समय में एक ही कार्य करता है। या तो नाम ही लेगा। या स्मरण ही करेगा। नाम माने जप करना, उच्चारण करना। और ध्यान जो है वो मानस, गुप्त रूप से केवल मनन (स्मरण) करना होता है। तो इस ध्यान की प्रक्रिया द्वारा अपना मन जो है, उसे रूप में लगाना है।

377 वहीं का वहीं हैं,बस। लेकिन ह्यूमन बीइंग,ह्यूमन फार्म में थे।लेकिन उनमें ये शक्ति थी।राम एक समय में हजारों से मिले।कृष्ण एक साथ हजारों से मिले थे।जो देखता है,कृष्ण के साथ है। ये हममें हैं,आज।

378 अखण्ड ज्योति कि ये जो धारणा है,सारे जग और सारे ब्रम्हांड को उसने धारण किया है। पूरा धारणा हुई है, आपमें।वही परमा शक्ति है।वही आत्मशक्ति है। वही आत्मा है। सबको धारण किया है। और वो समाहित, अनेक ब्रम्हांड,अनन्त ब्रम्हांड है,सबको। ये सत्य है।ज्ञान ही अनन्त है।और वही पद है।दूसरा और कोई नहीं उसमें।

379 जब तक आत्मबोध नहीं होता तब तक वो क्या है?वो हैं अहंकार।

380 बहता पानी रमता जोगी वोहि शुद्ध होते हैं।नहीं तो काई जम जाती है।

381 सारे यानी आपके बंधन शब्दों से होते हैं।जो कुछ आप बोलते हैं।

382 शब्द ब्रम्ह है,मैँ नहीं कुछ।वो चैतन्यता,ये शास्त्र है।यौगिक शास्त्र है।इसी के लिए जन्म हुआ है।ये प्राप्त करना।और संसार में जगत में,जगत में,गाँव-गाँव में मनुष्य के पास जाकरके शिक्षा-दीक्षा देना।और प्रसार करना।ये मेरा काम है।हरि ऊँ।

383 ये है संत-जो सबका सहन करे। नहीं तो काहे का संत है?अगर क्रोध को नहीं जीता तो क्या जीता?घृणा के भाव को नहीं जीता तो क्या जीता?

384 जिस दिन आप संग्रह करना छोड़ देंगे। जिस दिन संग्रह आपके मन से उतर जायेगी।नहीं रहोगे आप संग्रही,उस दिन से अभ्यास के द्वारा, गृहस्थ आश्रम में रहते अनेक जन्मों का बोध होता है।

385 हमें तो कारक प्रयास करना है।जैसे माचिस और तीली में अग्नि रहती है।परंतु जब तक घर्षण नहीं करेंगे,अग्नि प्रकट नहीं होगी।तीली प्रज्वलित नहीं होंगी।

386 ये अपार शक्तिशालिनी नव-निधियों व अष्टसिद्धियों के धारक(जैसे गुरुजी,आदि समतुल्य) के प्रति समर्पण भाव रखने वाला भी।अपना आत्मकल्याण करने में सक्षम हो जाता है।

387 साधकों कि बुद्धि जब मणिवत हो जाती हैं। तब आकाशवाणी के द्वारा उन्हें-श्रवण में(ॐ,जैसे)आता है। इसी को नाद - ज्ञान कहा गया है।आत्मा का नाम-ॐ है।

388 आत्मक्रीड़ सिद्ध लोग,आत्मसाक्षात्कार हेतु जो कर्म करते हैं, योग की भाषा में उसे निष्काम कर्म कहते हैं। ये आत्मसाक्षात्कार रूपी बीज का रोपण करते हैं।यह बीज अक्षय होता है।कर्म करते हुए ,कर्म बंध नहीं रहता।साथ ही फलरूप इसमें दोष नहीं होता है।

389 श्रेष्ठ साधक(हमारे राय में)वास्तव में एक गृहस्थ ही होता है। वह दोनों दायित्यों(सांसारिक प्रपंच और ईश्वरोपासना, योगाभ्यास)में अद्‌भुत सामंजस्य स्थापित किये रहता है।

390 तुम्हारे गुरुजी(शरीर त्याग के बाद भी)उसी रूप में।उसी शक्ति के समान रहकर कार्य करेंगे।

391 प्रज्ञावान(सम्भवतः आज्ञा चक्र में स्थायी होने पर हो) स्थिति में आकर के नव तुष्टियों के द्वारा अपना कल्याण कर।जगत के कल्याण के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है।(यही सार है)।

392 कृष्ण जैसे दैवीय शक्ति जन्मते नहीं,प्रकट होते हैं। बार-बार मनुष्य जाति को सही मार्ग बताने के लिए।इसी तरह सतगुरु भी मानव को सही व योग्य मार्ग बताते(बताने आते)हैं।

393 आध्यात्मिक शक्तियों(जो प्राप्त होती हैं)का अपने तथा दूसरों के आत्मकल्याण हेतु,साधक उपयोग करता है।

394 आत्मा की मुक्ति ही, अक्षय सुख है।जिसका कभी अंत नहीं होता,दूसरे सारे सुखों का अंत हो जाता है।

395 जब बुद्धि अपने आप में समाहित हो जाती है।तब साधक की अवस्था निरोध कहलाती है।अंतर्मुखी गति रहित होने की स्थिति को भी निरोध कहते हैं।

396 इसलिए, कृष्ण को सदा आनन्द कभी रोते हुए नहीं पाया।और राम को सदा शांत्यानन्द कभी हंसते हुए नहीं पाया,उदार।

397 यहां आनन्द ,सुख देखने हम नहीं आये हैं। परीक्षा देने आए हैं, पढ़ेंगे, अभ्यास करेंगे तो उत्तीर्ण होंगे। ये जितने लोग आपके आस-पास में हैं। ये सब सहायक हैं, संरक्षक हैं और परीक्षक भी हैं।

398 जिसका मन ब्रह्मतत्व में लीन हैं,वो हैं ब्रह्मचारी,समझे।ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायाँ बीज लाभः।माने शापादपि,शरादपि उसमें,वो समर्थ हो जाता है।या सामर्थ्य उसमें आ जाती हैं।

399 जब तीनों पर संयम हो जाता है।जाग्रत,स्वप्न, सुषुप्ति।धारणा, ध्यान,समाधि। तब योगी।ये तुर्यावस्था है।

400 क्या प्रार्थना करता है,उस ओर हमारी बुद्धि बनी रहे, इधर - उधर न जाय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। इधर - उधर हमारी बुद्धि न जाय।उस प्रकाश में बुद्धि बनी रहे। चाहना हो,तो ये चाहना हो।ये गायत्री मंत्र का अर्थ है,उसका नाम है,ऊँ। और उसका रूप है, ज्योति। यही मेरा सिद्धांत है। हमारी मुक्ति है शाष्ठ्र्य।संसार में रहकर,सब कार्य करते हुए,बाल बच्चों के बीच में,वो मुक्त रहता है।सत्य माने कर्म करना,सत्य माने रचना,सत्य ये सत है।सर्च आफ्टर ट्रूथ ये मेरा सिद्धांत है।

।। शिष्यानुभव ।।

- मुझे इससे बड़ा आश्चर्य हुआ, कि फोटो (गुरुजी के) के सामने कही हुई बात वो भी मन में, (गुरुजी को)कैसे मालूम हो जाती है। गुरुजी की महिमा का बखान करने के लिए, न तो हमारी वाणी में ताकत है, और ना ही शब्दों में। सन 14 मार्च 1994 को, मेरा कैंसर का ऑपरेशन हुआ। मुझे गर्भाशय का कैंसर था। आपरेशन टेबल पर ऐसा लगा जैसे गुरुजी खड़े है। उनकी आवाज मुझे स्पष्ट सुनाई दे रही थी-"आपरेशन हो जाने दो, चिंता मत करो सब ठीक हो जायेगा"। इस घटना के बाद मुझे पूरा विश्वास हो गया कि प.पू. गुरुजी हमारे साये के माफिक हमारे साथ ही होते है। हमारे जीवन में बार बार होने वाली घटनाएं, गुरुजी के प्रति पूर्ण आस्था का निर्माण करती है। पहले ध्यान करते समय बहुत विचार एवं व्यवधान उत्पन्न होते थे। लेकिन अब उन पर पूर्ण विश्वास और लगन तथा श्रद्धा उत्पन्न होने से, ध्यान करते समय सुंदर सुंदर अनुभव आने लगे है। जब मैं, ध्यान करूंगी, यह विचार आता था। ध्यान में अधिकतर कोई न कोई व्यवधान उत्पन्न होता था। लेकिन जब से गुरुजी के सामने निवेदन किया कि गुरुजी आप ही मुझसे जो मेरे हित में है, करवा लीजिये। तब से मेरा नियमित ध्यान एक घण्टा हो जाता है। उसमें कई अनुभव आये, जैसे-मैं (सौ.शैलजा नावलेकर) ध्यान में बैठी हूँ। और जैसे होलिका जली थी, वैसे मेरे शरीर से बड़ी बड़ी लपटें निकल रही हैं। मैं जल रही हूँ। ये मैं स्वयं अपने को देख रही हूँ। इस जलने का मेरे ऊपर असर नहीं। ध्यान करते समय कपाल के मध्य एक रुपये की गोलाई के बराबर सफेद हीरा चमकता है। जो कि सिर के पिछले हिस्से से आगे की ओर दिखाई देता है। इतना तेज प्रकाश होता है, कि उसका वर्णन करना कठिन है। दो बार ध्यान करते समय ऐसा हुआ कि मैं पदमासन लगाकर बैठी थी, और उसी स्थिति में न जाने छत में से कैसे निकलकर

अंतरिक्ष का चक्कर लगाकर तेजी से नीचे आ गई। कई बार ध्यान में मैं अपने आसन पर नहीं होती, पता नहीं कहाँ चली जाती हूँ। जहाँ मैं बैठी थी, वहां केवल ज्योति दिखाई देती है।और ये सब मैं अपनी आंखों से देखती हूँ। दो बार ध्यान में मुझे ऐसा दिखा कि मेरा सिर ऊपर से गोलाकार खुला हुआ है।अंदर हल्का रंग गुलाबी जैसे उसमें से तार तार ऊपर की ओर जा रहे हैं और ऊपर से सिर के अंदर आ रहे हैं। कई बार ऐसा होता है कि पानी में मैं बैठी हुई हूँ, और ध्यान चल रहा है। कृपा के अनुभव और भी है, इन्हें यही विराम दे रही हूँ। आगे प.पू. गुरुजी के चरण कमलों में बार बार प्रणाम कर, यही चाहती हूँ कि वे अपने चरणों में मुझे पड़े रहने दें। उनके संपर्क में जब तक रहते थे एकाग्र रहते थे।और भिन्न भिन्न गन्ध-सुगंध जो है, सूंघने को मिलती थी, हमको। और सूर्य प्रकाश आये तो उसके चारों तरफ हमको लाइट इंद्रधनुषाकार दिखाई पड़ता था। एक अवस्था आई कि सन्न से किसी चीज ने छुआ और सीधा आकर मस्तक के ऊपर भ्रूमध्य के पास। बिल्कुल केंद्र बिंदु में, जिस प्रकार से कोई भंवर उठता हो, नदी में, उसी प्रकार से भंवर उठा। और जिस प्रकार अनारदाना जैसे चलता है, आतिशबाजी और उसके चारों ओर तरफ चिंगारियां बीच में उड़ने लगी। आंतरिक स्थिति थी और मुझको होश था मगर उस अवस्था में जब हाथ पैर हिलाने की कोशिश किया की तो मेरे हाथ पैर में मेरा नियंत्रण खत्म हो गया। मैं पूरा चाहती थी हाथ पैर उठा लूँ मगर मेरे नियंत्रण के बाहर था, शरीर पूरा, शरीर का कोई भी अंग और उस अवस्था में कम से कम एक घण्टे तक पड़ी रही।

- सुबह 7 बजे से ये चले गये, बाहर जोरदार बर्फ गिर रही थी(-) 30 का तापमान था। मेरे कमरे में अंधेरा था। सुबह 9 बजे मैंने इन्हें फोन किया

और बहुत रोई कि मुझे वापस (अमेरिका से 2004 में) इन्डिया जाना है यहां अकेले मैं नहीं रह सकती। ये भी परेशान हो गये, पूरे दिन यही रोने धोने का कार्यक्रम चलता रहा और रात 9 बजे ये आये और बोले कि तुम्हारे जाने की व्यवस्था करता हूँ। दूसरे दिन 3 जनवरी को ये फिर 7 बजे चले गए फिर मेरा रोना शुरू हो गया, वही कमरे में अंधेरा, बाहर बर्फबारी चालू थी। मैं पलंग पर दोनों घुटनों में सर घुसाकर लगातार रो रही थी।अचानक मुझे ऐसा लगा कि कमरे में उजाला हो रहा है। कुछ क्षणों में कमरे में इतना ज्यादा प्रकाश छा गया मानों 4-5 हेलोजन लगे हो और मैंने सिर उठाकर सामने देखा तो 8-10 कदमों पर रखी कुर्सी पर साक्षात प.पू. गुरुजी विराजमान थे। एक सेकंड तो कुछ समझ में नहीं आया पर दूसरे पल आंख मलकर आगे हुई तो सच में पूर्ण सफेद पोशाक में गुरुजी प्रसन्न मुद्रा में कुर्सी पर बैठे मुझे देख रहे थे। इससे पहले कि कुछ कह पाती गुरुजी बोले "इतना रोती क्यों हो? इन कीमती अश्रुओं को सम्हाल कर रखो, इन्हें व्यर्थ मत जाने दो, इतनी दूर से गुरुजी तुम्हारे साथ आये है फिर भी रो रही हो। अपने आपको अकेला महसूस कर रही हो, गुरुजी के होते हुए, शांत हो जाओ। ये वाक्य बार-बार दोहरा रहे थे। मैंने (सौ.रश्मि मुकुल अभ्यंकर) उनके चरणों में साष्टांग नमस्कार डाला और उठी और वापस आकर बैठ गई, ये काफी देर होने के बाद मैंने देखा फिर धीरे धीरे कमरे में अंधेरा होने लगा, सामने कुर्सी पर गुरुजी नहीं थे। पर आश्चर्य की बात ये कि वो सामने नहीं थे पर कमरे में होने का अहसास मुझे होते रहा। उस दिन के बाद 2-3 महीने मैं इतनी खुश थी। अकेली होकर भी अकेली नहीं थी। डर न जाने कहाँ खो गया था। मैं निश्चिन्तता में गुरुजी के साथ रह रही थी।हर बात उन्हें बताती थी। और उसका उत्तर भी मुझे उसी दिन मिलता था। आज

भी ये अनुभव लिखते समय वो मेरे साथ मेरे घर में है। ऐसे प.पू. गुरुजी को मेरा शत-शत नमन।

- मैं अचानक कार्यवश रायसाहब से मिलने गई, रायसाहब बताये मुंगेली से गुरुदेव आये हुए हैं। मैं स्वामीजी के दर्शन हेतु गई। स्वामीजी भोजन कर रहे थे, जैसे ही स्वामीजी (श्रीगुरुजी)को देखी मुझे लगा, कृष्ण भगवान भोजन कर रहे हैं। उनके भोजन करने की गतिविधि भगवान कृष्ण की बाललीला दिख रही थी। हम सब उसके बाद फोटो ग्रूपिंग के लिए लान पर गये, वहां पर ऐसी झलकी देखी जैसे माता यशोदा कहती है कि कृष्ण तुम मिट्टी खाये हो तो भगवान कृष्ण मुँह खोलकर दिखा देते हैं और उनके मुँह के अंदर पूरा ब्रम्हांड दिख रहा था। आप सबको उस समय का सीन याद होगा जिस समय स्वामी जी झूले पर बैठे मुँह खोले थे। मुझे स्वामीजी के दर्शन बड़े सौभाग्यवश मिले, जो मेरे लिए सौभाग्य (उदय) की बात है। ।।श्रीमती अर्चना भट्टाचार्य। यद्यपि श्रीगुरुजी से दीक्षित नहीं है, तथापि ये उनके अनुभव है, स्पष्ट है गुरुजी की कृपा सब पर समान रहती है, रायपुर दिनांक १.१.९४.उदबोधन से।

- अमेरिका के जाने माने न्यूरोलॉजिस्ट, भारतवंशी डॉ धारकर, मस्तिष्क की विशेष माइक्रोस्कोपिक रचना उसके निर्माण एवं कार्य के विषय में, गुरुजी से चर्चा करते हुए स्वयं कार चला रहे थे। अचानक उनने कार रोक दी, कार से नीचे उतरकर, गुरुजी के श्रीचरण पकड़ लिए और बोले-कि गुरुजी अभी तक इस रचना के सम्बन्ध में विशेष जानकारी आई नहीं है, किन्तु अभी आपने इस विषय में विस्तृत जानकारी दी है, वो वैज्ञानिकों से अभी परे है। असाधारण ढंग से अत्यंत प्रभावित हुए, डॉ

धारकर के अनुरोध पर, वही सड़क पर वाहन के अंदर बैठे श्रीगुरुजी के करकमलों से उन्हें दीक्षा प्रदान की गई। जयगुरुजी। जयहो।

- गुरु भाई, रजनीकांत त्रिपाठीजी, किसी को रुपये उधार दिए थे। बहुत समय बाद उसने पैसे लौटाए। तथा जब गुरुभाई बस से वापस आने लगे तो उनने कुछ बदमाश लोगों को उनके साथ बस में भेज दिया, ताकि वो पैसा छीन सकें । इस हेतु वे तीन चार लोग जोर जबरदस्ती करते, गुरुभाई रजनीकांत त्रिपाठी जी से मारपीट करने लगें । उनके नाक से खून बहने लगा। तब वे गुरुजी से रक्षा हेतु प्रार्थना करने लगें । जल्द ही वो महसूस किये कि वे चारों प्रहार पे प्रहार उनके सिर में कर रहे थे, किन्तु गुरुजी का दोनों हाथ शेष नाग की तरह रक्षा कवच बनकर सुरक्षित रखे हुए थे।और गुरु भाई को जरा भी मार नहीं लगती थी। न ही कुछ कष्ट होता है। चूंकि वे सब गुरुजी के हाथ के ऊपर और सद्गुरु के शिष्य के ऊपर जैसे भी प्रहार तो किये थे। कुछ माह बाद, गुरुभाई को पता लगा कि वे चारों या पांचों, बस में सफर करते हुए बस के पलटने से एक साथ मृत्यु को प्राप्त हो गये थे।

- एक बार जमीन जैसे कोई चीज में, सगे सम्बंधी से विवाद के चलते। वे लोग लगभग 100 व्यक्ति के साथ, गुरु भाई वीरचंद जैन भैय्या को मारने के उद्देश्य से पहुंच जाते हैं। भाभीजी मुझे 22, 23 जुलाई 2019 को पूछने पर यह सब बताई है। तब उन्हें गुरुजी के फोटो से आवाज आती है, तुम्हारे पति को लोग मार रहे हैं, जाओ उसकी रक्षा करो। भाभी जी दौड़ते हुए बाहर आती हैं। देखती हैं कोई व्यक्ति भैय्या को नीचे गिराकर गला दबाने जैसा, कर रहा है।वे इतने बड़ी भीड़ में ठिठक कर

रह जाती है। उसी क्षण, फिर उन्हें एक आवाज आती है- बाल पकड़ो, बाल पकड़ो, अर्थात बाल पकड़ कर उसे खींचो। भाभी जी तुरंत उस व्यक्ति के बाल को पकड़ कर खीचती हैं। तब वो व्यक्ति, भैय्या के गले को दबाना, छोड़कर उनके तरफ आक्रामक हो जाता है। जिससे भाभी जी की हाथ की चूड़ियां कुछ चोट खरोंच के साथ टूट फुट जाती हैं। किन्तु इसके तत्काल बाद न जाने क्या कमाल हो जाता है कि, वे सब विरोधी, जो मारने की योजना में आये थे। भैय्या को छोड़कर एकदम से भाग जाते हैं। एक अनुमान है, जैसे गुरुजी सब शिष्य को बोले हैं कि मैं तुम्हारे / तुम लोगों के साथ हूँ, और तुम्हारे गुरुजी समर्थ है। तात्पर्य यह है-संस्कार वश अनहोंनी जो है उनकी कृपा से होनी में बदलकर रक्षा बन जाती है। तभी उस अदृश्य आवाज (गुरुजी की आवाज) से उस व्यक्ति के बाल को, बाल खींचने के साथ उन लोगों को क्या कुछ हो जाता है। कि गुरुजी की शक्ति के कारण कुछ उन्हें सम्भवतः ऐसा कुछ दिखा हो।या ऐसा कुछ भी अनुभव हुआ हो,कि वे इतने सारे लोग अधूरे हारे जैसे होकर, एक व्यक्ति व एक अबला के सामने से भाग जाते है। यही गुरुजी की कृपा है, जो अलौकिक जैसे कृपा है। बाद में पूछने पर गुरुजी बोले वो जमीन किसी का प्राण लेगा, तुम उसे छोड़ दो। उससे दूर हो जाओ। भैय्या बताये बाद में शीघ्र ही, उन विरोधी लोगों में एक मुख्य जैसा व्यक्ति, उनका अत्यंत नजदीकी। स्वस्थ होने पर भी, अचानक एक दिन उसकी मृत्यु हो जाती है। जैसा कि श्री गुरुजी इस सम्बंधी पहले इस तरह, बता दिये थे।

- वर्धा में एक गुरुभाई है, सुरेश फड़तरे जी। वे खेती से निकले कपास को गोदाम के अभाव में, एक पहचान के व्यक्ति यहां उनके कहने पर, टिन

शेड वाले छत से बने एक कमरे में वे सारे कपास को रख देते हैं। किसी भी कारण से वहां आग लग जाती है। बहुत मुश्किल से आग को बुझाया जाता है। उन्हें लोग जब बताते हैं, तब वे कह देते हैं (गुरुजी के विश्वास भरोसे में) जो होना है, वो तो होकर रहेगा।और वे शांत चित्त से, अपने घर में गुरुजी के स्मरण में बने रहते हैं। ईधर इनके गांव के सहयोगी लोग आग को बुझा देते हैं। शेड से भी धुआं-धुंआ होकर जो बाहर दिख रहा था, वह भी शांत हो जाता है। काले-काले जले हुए कपास को और उनमें साबूत कपास को छांटकर अलग ढेर बनाकर वे सब लोग रख देते है। साबूत क्या कहे कुछ न कुछ असर, ऐसे में तो, होना स्वाभिवक ही था। फिर वही लोग बैलगाड़ी कर ऐसे सब साबूत कपास को बेचने की व्यवस्था भी बना देते है। गुरुजी के भरोसे से, पूर्ण आस्था से, यह कैसे, कमाल हो जाता है। कि जलने के बाद भी कुल वजन क्विंटल का कपास जो गोदाम में रखा गया था (62 से 69 हो गया था, भैय्या बताये थे)। जलने के उपरांत, जले हुए कपास को अलग करने के बाद भी। उनके साथ तौले हुए कुल वजन से, शेष स्वच्छ कपास का, ज्यादा वजन, मिलता है। और उस हिसाब से पैसा भी मिलता है। यहां पर हम गुरुजी की कृपा का अनुमान, एक भरोसा में रहने का, सब हम कर सकते है। वो लोग (अनजान जैसे गांव के लोग) पूछते है, जले कपास का क्या करे? भैय्या का कहना होता है चाहे फेंक दो या जिसे देना चाहो दे दो। तब वे गाँव के लोग जो बहुत ज्यादा घनिष्ठ जैसों में नहीं है, उन लोग स्कूल आदि में उसे बेचकर कुल कपास के, लगभग दस प्रतिशत (जैसे 69 का दस प्रतिशत) वजन के लायक और राशि लाकर उन्हें दे देते है। अर्थात हम पाते है, जब हम भरोसे के गुरुजी में कैसे भी रहने लगते है, तो हर बिगड़े जैसे काम को इसी प्रकार गुरुजी ऐसे ही सफल कर देते है। यों

कहे, सफल से भी ज्यादा सफल कर देते हैं। यहां जैसे कुल वजन (62 से 69) क्विंटल बढ़ाकर तथा जले हुए कपास से, और कुल वजन का 10 प्रतिशत के आसपास और पैसे दिलाकर, वे वैसा कर देते हैं।

- गुरुभाई हरपाल सिंह चौहान जी वर्तमान में भोपाल निवासी- एक समय कहीं बाइक से जा रहे थे ।अचानक एक साइकल सवार से उनका एक्सीडेंट हो जाता है। जैसे ही एक्सीडेंट होने लगा उनके मुँह से निकला गुरुजी बचाओ। साइकल वाला एकदम् एक साइड पड़ा हुआ था। वो उनको उठाये एक तरफ खींचे हालाँकि इनके भी पैर में बुरी तरह चोट लगी हुई थी। खून निकल रहा था। वो सोच रहे थे, इस आदमी को ज्यादा चोट तो नहीं लग गई। और वो प्रायः ठीक था। वहाँ धीरे धीरे भीड़ इकठ्ठे होने लगी। भैय्या के गाड़ी का सामने पहिये का मडगाड़, वो एकदम दबकर पहिये में बैठ गया था।अब वो बड़े घबड़ाने लगे। उनके पाँव से खून निकलते जा रहा था। परेशान होकर सोच रहे थे, क्या होगा, क्या नहीं होगा। इतने में साफ़ा बांधे हुए, ५८-६० साल का एक आदमी आ पहुंचे। वो एक बन्डी पहने हाफ कुर्ता टाइप का वो हाथ में एक राड लिए हुए थे। वो भैय्या से बोले- इसके साइकल का पहिया टूट फूट गया है। इसकें लिए कुछ पैसे दो, भैय्या बोले कितने पैसे दे दूं, दादा। वो बोले कितने है तुम्हारे पास। भैया के पास उस समय लगभग ३०० रुपये थे। भैय्या बोले ये दे दूँ, २०० रुपये। उनने कहा,हाँ दे दो। इतने में उनकी साइकल ठीक हो जायेगी। फिर वे बोले तुम इस समय तुरन्त निकल लो, नहीं तो ये लोग तुम्हें पकड़कर मारेंगे। भैय्या बोले दादा मैं निकल कैसे लूँ। गाड़ी की हालत खराब है। और मेरे पैर से बहुत खून निकल रहा है। मैं कहाँ से जाऊंगा, कैसे जाऊंगा, जब गाड़ी चालू हो ही नहीं सकती,

और मैं कैसे चला पाऊंगा, इस भाव से भैय्या बोले। उनने फट से, उनके हाथ में राड जो थी, उसे जरा सा पहिया में लगाये। लगाये क्या, पहिया सब ठीक हो गया। मड़गाड भी ठीक हो गया। हेड लाइट फुट गया था, फिर बोले, तुम चाबी लगाओ, स्टार्ट करो। और जाओ। भैय्या की अटैची टूट गई थी। उसे वो एक रस्सी से बांधे और जैसे ही उन्होंने गाड़ी स्टार्ट किये, उन्हें बड़ा ताजुब्ब हुआ। कि इस बिगड़ी हाल कि बाइक, हाफ किक में कैसे स्टार्ट हो गई! वो गियर लगाकर आगे के लिये चल पड़े। यह देख,सब चिल्लाने लगे, पकड़ो पकड़ो साले को, पकड़ो पकड़ो। फिर उनको ध्यान में आया, हो न हो, वो हमारे, वहाँ गुरुजी आ पहुंचे। गुरुजी ऐसे शरीर में आये। बिगड़ी साइकल को ठीक करवाने, मदद के लिए भैय्या से पैसे लिए। और भैय्या के गाड़ी को ठीक कर उसे हाफ किक में स्टार्ट कराकर, आई हुई प्राणघातक संकट से ऐसे उन्हें वहाँ बचाये। चूकी वह स्थान शराब भट्टी के पास होने से, वहाँ पर भीड़ में सब लोग वैसे ही थे। यदि वे मारना शुरू करते तो उन्हें पता भी नहीं होता कि कब रोकना भी है। वो मार मारकर सम्भवतः कचूमर निकाल देते। इस तरह भैय्या के हुलिया बिगड़ने से, बहुत कठिनाई में पड़ने से (ग़ंभीरतम घायल, लाइलाज जैसे एकाध रोग के साथ ताउम्र, या मृत्यु भी हो सकती थी) गुरुजी आकर बचाये। गुरुजी बोल रखे है। परीक्षा नहीं लेना। संकट में जब भी आवाज लगाते हो, कोई न कोई वहाँ पहुँच जायेगा और तुम्हारी रक्षा हो जायेगी। एक बहुत बड़ी बात यह है, कि भैय्या जब घर पहुंचे तो उनका जंघा इतना फूल गया था। कि उनके पहने हुए पायजामा को फाड़ना पड़ा, अर्थात उनका वह पैर फूलकर पैजामा कि मोटाई का हो गया था। सोचने कि बात यह है, उस हालत में कई किलोमीटर बाइक चलाते घर तक वे कुशल कैसे पहुँच पाये। वे पैर में

फटे हुए हड्डी के दर्द से अनिभिज्ञ थे । लगता है गुरुजी पैर के दर्द को रोक दिये थे। बाद में पता चला उनके पैर का हड्डी अंदर से फट चुका था। हास्पिटल में लगभग डेढ़ दो माह रहने के बाद वो ठीक हो पाये थे। सब यह, गुरुजी कि करुणा वश मातृ, कृपा ही है।

- गुरुजी अचानक कैसे? तब श्री गुरुजी बोले, जैसे भक्त के घर भगवान आये। तुम नहीं आप बोलिए...आप। आप नाम आत्मा का है और आप नाम जल का भी है। श्री गुरुजी की परमकृपा से हमें जो निश्चिन्तता प्राप्त हुई है, अभय, आत्मविश्वास जो प्राप्त हुआ है, उससे आगे हमें कुछ और दरकार नहीं। वे हमको बुद्धि निर्मल होने और मन विशाल होने का आशीष देते रहे। जब आपका बल निर्बल हो जाता है, जब आप थक जाते है, तब गुरु स्वयं अपना सामर्थ्य और बल देकर आपका काम आगे बढ़ा देते है। श्रीगुरुजी का श्रीचरण स्पर्श किया तब पहली बार मुझे यह अनुभव हुआ कि किसी मानव का मखमल से भी कोमल चरण हो सकता है? मैं श्री गुरुजी के, वही श्रीचरणकमल देखता रहा, सहसा मुझे श्रीगुरुजी थपथपाने लगे। श्रीगुरुजी बोले जीवन के कर्म को जानने का प्रयत्न करो, सच्चा कर्म ही एक अच्छा जीवन है। एक तरफ का पैर पेट के फोड़े के कारण सिकुड़कर पेट से चिपक गया था। इस रोग को 12 वर्ष के बच्चे के लिए डॉक्टर मृत्यु का पर्याय बताने लगे। 23 जुलाई 86-87 को ऑपरेशन होना था। यह सारी बातें बताई, पूज्यगुरुजी कुछ पल रुककर बोले उस बालक का ऑपरेशन नहीं होगा, उन्हें आश्वस्त कर देना गुरुजी बोले है। ठीक डॉ त्रिपाठी ऑपरेशन थियेटर में बच्चे को लिटाकर सहसा रुक गये, अचानक उनके मुँह से निकल पड़ा अब ऑपरेशन नहीं होगा। एक और विधि है उसे अपनाकर देखता हूँ और

एक विशेष प्रकार के इंजेक्शन (गुरुकृपा) ने उस बालक को जीवनदान दे दिया। परमात्म स्वरूप (गुरुजी) उस दिव्य आत्मा के श्री चरणों में सदा सभी परिवार का सर झुका रहे, यही हम सबकी कामना है। श्रीगुरुजी के सानिध्य में आये किसी भी व्यक्ति का अहित हो नहीं सकता, वे एक ऐसी परमसत्ता है, जिन्हें हमसे ज्यादा हमारी चिंता है। मैं रात रात सोता नहीं था जैसे नींद उड़ गई हो, कभी कभी लगता था जिनके लिए इतना परेशान हूँ, बैचेन हूँ, मन जिन्हें खोजते रहता है। वो मैं ही हूँ। भाव की गम्भीरता पर मन जाता तो आँख से आंसू बहने लगते थे, कब तक बहते थे, वो कौन सी भावना है, जिसमें आंसू बह गये। ये मैं नहीं जानता। कमरा उस प्रकाश से भर गया था, मैं डूब गया।इसके बाद गुरुजी कुछ चर्चा किये,जो मुझे याद नहीं है। परमात्मा सृष्टि को बनाने व मिटाने में समान आनन्द में रहते है। लेकिन सतगुरु शरणागत शिष्य को ही नहीं, प्राणिमात्र को संवारने में लगे रहते है। उन्हें बनाना ही आता है मिटाना नहीं। प्रार्थना करते करते खुली आँखों से देखा दिव्य प्रकाश में ॐ मेरी मरणासन्न बहू के सिर से पैर तक सारे शरीर के ऊपर घूम रहा है और हमारे परमदयालु गुरुजी छड़ी लिये श्वेत वस्त्र में बहू के सिरहाने आशीर्वाद मुद्रा में खड़े है। किसी भी दुरूह कार्य में कर्ता भाव रहने से परमपूज्य गुरुजी खेल देखते रहते है एवं जब थक हारकर मैं अहंकार हाथ खड़े कर देता हूँ, तब वह दुरूह कार्य भी सहज हो जाता है। स्पष्ट है श्री गुरुजी को हमारा अहंकार रास नहीं आता।समस्त सृष्टि का संचालन, (निर्माण, लय) सतगुरु सत्ता के इशारे पर ही हो रहा है। ऐसे सतगुरु के शिष्य दुःखों, आशा, तृष्णा में डूबकर क्यों शोक करें? हम उत्सव के अधिकारी है। प्रत्येक क्षण उत्सव बने। एकादश इन्द्रियों से समर्पित रहें (एकादशी यही है सम्भवतः) समस्त भावों में परम पूज्य गुरुजी विद्यमान

हों, अंर्तचक्षु खुले हों, वे सदा है, सदैव रहेंगे।आवश्यकता है, उनको पाने की तीव्र भावना की, श्रद्धा की, विश्वास की। ।।उदबोधन से संग्रहित।।

- वर्ष 2020 जनवरी फरवरी माह में गुरुप्रसाद भैय्या नेहरू नगर भिलाई में मेरे निवास में कृपा से, उपस्थित थे। सामने एक कमरा है वहां पर रात्रि में मिसेस को दो तीन बार मेरे द्वारा बताया गया, कि मुझे तीन चार बार आवाज जैसे आई है, मानो गुरुजी कह रहे हो कि-मैं इस कमरे में रहता हूँ। अर्थात मेरे हिसाब से, कुछ छोटे मोटे हुए अनुभव से भी, इस कमरे में गुरुजी सदैव रहते हैं। एक दिन भैय्या के द्वारा चार पांच लोगों के दीक्षा देने की विधि, गुरुजी को सामने रखकर की जा रही थी। घर में नातिन तब एक साल के आसपास की थी, मिसेस को मुझसे बोला गया कि बेटी को हाल से बाहर ले जाकर दूर रहो ताकि इन्हें ध्यान कराते समय बच्ची के आवाज आदि से व्याधान न हो पाये। सुबह 11 बजे के आसपास की बात होगी। मिसेस पोर्च में कालम के बीच एक फिट जैसे ऊंची बनी चबूतरे जैसे दीवार में वो बच्ची को लेकर बैठ जाती है। वहां से सामने का वह कमरा लगभग 7-8 मीटर दूरी पर पारदर्शक जैसा है, वही कमरा जहाँ गुरुजी रहता हूँ, मानो कुछ बार कह चुके हैं। मिसेस लगभग आधा घण्टे बाद देखती है कि गुरु प्रसाद भैय्या उस कमरे के दरवाजे को धक्का देकर खोले, फिर उस कमरे के भीतर चले गये।मिसेस यह देखकर कुछ ही सेकंडों में उसी दरवाजे से बिल्कुल लगा हुआ हाल का दरवाजा है, हाल में प्रवेश होने, वहां पर आ गई, वो देखती है कि गुरुप्रसाद भैय्या हाल में बैठे हुए हैं, और दीक्षा देने की प्रक्रिया चल रही है। यह देख वह घबरा कर कांप सी जाती है, क्योंकि ऐसा दृश्य कभी, अब तक नहीं देखी थी। वे देखी थी कि कुछ सेकंडों

पहले गुरुप्रसाद भैय्या हाल से निकलकर सामने वाले कक्ष में अभी अभी प्रवेश कर चुके हैं और फिर वही व्यक्ति सामने बैठकर दीक्षा भी दे रहे हैं। अर्थात एक ही समय में वे जैसे दो शरीर धारण कर लिये हो। वो भी सब खुली आँखों से सशरीर रूप में-भैय्या को सामने, कमरे के दरवाजे को खोलकर अंदर जाते, वे स्वयं खुली आँखों से, यह सब अभी अभी देखी थी। मिसेस कुछ न कहते हुए अचरज अचंभे के साथ पुनः उसी स्थान में आकर बिटियाँ को लेकर वापस बैठ जाती है। दीक्षा समापन के बाद, तब और कोई नहीं रह जाते। मैं भैय्या और मिसेस सामने वरांडा में बैठते हैं तब वह सब यह भैय्या को बताती है। किसी भी कारण से प्रेरणा से, कृपा से यह प्रसंग रिकॉर्ड, मूल रूप से बया करते हुए, उसके मना करने पर भी हो जाता है। भैय्या कहते है-हमारे में और हमारी जानकारी में किसी भी शिष्य में ऐसी क्षमता नहीं है कि वह दूसरा शरीर धारण कर सके । यह सब काम केवल श्रीगुरुजी का है, यह उनकी ही महिमा है। गुरुजी के इस तरह, दो शरीर धारण बाबत, कार्य करते दिखाते, कमरे के अंदर जाने से, इस बात की पुष्टि भी हुई कि गुरुजी इस तरह उस कमरे में रहते भी हैं, आदि।

- एक गुरुभाई ट्रेन के नीचे आने वाले थे, उन्हें धक्का दिया गया, अज्ञात शक्ति के द्वारा, जिससे वे प्लेटफ़ार्म पर गिरकर बच गये, बचा दिये गये। किंतु उनका एक पैर में फैक्चर् आ गया। और उसी स्थान पर गुरुजी को भी(बैठे / सोये स्थिति में) फैक्चर् हो गया। डाक्टर लोग गुरुभाई को बोले छड़ी लकड़ी वाकर आदि के सहारे आपको जीवन भर चलना पड़ेगा। गुरुजी की कृपा से वह भी ऐसे दूर हो गई क्योंकि गुरुजी अपनी आशीष की धारा में उन्हें बोले थे कि आपको ऐसा कुछ नहीं करना

पड़ेगा। बगैर सहारे के चलोगे और दौड़ोगे भी। अनुमान है गुरुजी धक्का देकर उन गुरुभाई को रेल पटरी के अंदर न जाने दिये ऐसे प्राण रक्षा किये। किंतु भोग प्रारब्ध संभवतः इतना प्रबल था कि उनके एक पैर की हड्डी टूटी व उसी स्थान पर गुरुजी को भी अपने पैर की हड्डी को भी वैसे ही करना पड़ा। मानो वज्र से आघात को स्वयं ही ले लिए हो।ऐसे गुरुजी की महिमा करुणा को सतत् प्रणाम है, दंडवत है।

- 2015 में अक्टूबर में पति पत्नी की एक गुरुभाई के द्वारा उनकी दीक्षा हुई। दीक्षा के दूसरे दिन शायद 7 अक्टूबर को ट्रेन शाम रात को होने से एक दूसरे गुरुभाई के घर सम्भवतः 12 बजे के आसपास दोपहर को वो गये। 3 उस नवदीक्षित गुरुभाई की धर्म पत्नी हर दूसरे तीसरे दिन धड़ाम से गिरकर बेहोश पड़ी रहती थी, यह रोग 30 साल से था चिकित्सा चल रही थी बहुत पैसा खर्च हुआ, सामान्य परिवार कम पैसा से युक्त कहा जाना चाहिए के लिए हर तरह से यह कष्टकारी विपत्तिकारी बात थी। जिनके यहां ये ठहरे थे उस गुरुभाई के द्वारा गुरुजी की प्रेरणा से कुछ कहा गया बताया गया। उस पद्धति सद्गुरु के स्मरण से उनके प्रति आस्था निष्ठाभक्ति से वो गुरुबहन हर दूसरे तीसरे दिन की जगह अब धीरे धीरे क्रमशः 3.4. 6 माह में गिरकर बेहोश होती रही। गुरुजी के प्रति बढ़ती प्रेम भक्ति से गुरुजी का गुरुबहन को गुरुजी विभिन्न रूपों में कभी छड़ी लेकर खड़े हुएआदि दर्शन होने लगे, एक बार सम्भवतः रात भर, दिव्य दर्शन भी मिला। गुरुजी एक दिन बोले, तू चिंता क्यों करती है मैं तेरे साथ हूँ, तेरे पूजा स्थान में मन्दिर मैं हर समय हूँ, हर समय रहता हूँ। लगभग 20-25 हजार आय के इस परिवार में 6 बेटियां एवं एक बेटा है, किसी की भी शादी नहीं हुई थी, किसी गुरुभाई को बताने पर

उनके माध्यम से ऐसा लगता है गुरुजी ही बोले, कि आपको कोई चिंता करने की जरूरत नहीं बस शरणागत रहो। उनसे सब कह दिया करो,तब सब कैसे होगा पता भी न चल पायेगा। उसके बाद सचमुच ऐसे ही होने लगा, कम से कम पैसे के खर्च से वो पैसा कैसे भी व्यवस्था होकर अच्छे परिवार में योग्य वर के साथ दो बेटियों की शादी हुई। अभी तीसरी बिटियाँ की भी अच्छे जगह शादी होने वाली है। बेटा इनका पहले नहीं पढ़ता था एक बार एक गुरुभाई की वो बात बेटे से करवाये थे गुरुकृपा से अब वो बेटा भी अच्छे से पढ़ने लगा है। विगत एक साल से वो गुरुबहन अब गिर नहीं रही हैं न बेहोश हो रही हैं। उन्हें लग रहा है वे बिल्कुल ठीक हो गई हैं, मात्र गुरुकृपा से।

- एक गुरुभाई है, तब उनका पुत्र ढाई तीन साल का था । छत के ऊपर जैसे भी चला गया था, वहां से लगभग 12-14 फुट से नीचे वह गिर जाता है। नुकीले नीचे चारों तरफ़ बड़े बड़े पत्थर हैं वही उसे गिरना था या, कह सकते हैं। उस बच्चे के जीवन काल को खत्म हो जाना था। बच्चे के दादा जी का चेहरा गुरुजी से साम्य रखता है,बच्चे ने बताया जब वह ऊपर से नीचे गिरा तब दादाजी आये मुझे गोदी में ले लिए और जमीन में बिठाकर चले गये।अर्थात हमारे गुरुजी ने उस बच्चे को गिरते हुए गति में दोनों हाथों से पकड़ लेते हैं,कैच कर लेते हैं,फिर गोदी में ले लेते हैं, गोदी में लेकर नीचे बच्चे को कुछ अच्छे ऊपर वाले जगह में बिठाकर वे चल देते हैं। ऐसे हमारे गुरुजी बगैर बुलाये हर पल संकट को देखकर सर्वत्र रहने वाले सर्वशक्तिमान वही प्रकट होकर, ऐसे कैसे भी रक्षा करते रहते हैं। जो उनके जैसे भी शरण में हैं।

- 16, 17 अगस्त 2021 की अभी की घटना है। एक गुरु बहन हैं, वो रोड में धीरे-धीरे स्कूटी वगैरह। कोई गाड़ी से जाती रहती हैं। उनके सामने से उनके पहचान का दूध वाला तेजी से गाड़ी (बाइक) चलाते आ रहा है। गुरु बहन हॉर्न बजाती हैं, वो बिल्कुल नहीं सुन पाता, न सुन पाने की स्थिति में रहता है। और दोनों गाड़ी बड़ी जोर से टकराने के पहले, उनके शब्दों में यदि गाड़ी की आपस में टक्कर होती, तो शायद ही कोई चीज बचा होता। गाड़ियों के आपस में टकराने के लगभग दस कदम पहले उन्हें पता चलता है, अनुभव में आता है कि एक अदृश्य शक्ति ने उनकी गाड़ी स्कूटी को उठाया है, और रोड के एक बाजू कर दिए है।और उनकी गाड़ी का ब्रेक भी जो नहीं लग रही थी, लग जाती है। गाड़ी से उतरकर गुरुबहन खड़ी हो जाती हैं। वहां की पब्लिक उस गाड़ी चलाने वाले लड़के को दौड़ते हुए मारने का प्रयास करते हैं, वो खूब फर्राटे से निकल जाता है। उनके अनुसार या तो वो अदृश्य शक्ति बाबूजी (गुरु प्रसाद भैय्या) या गुरुजी थे। इनके अलावा कोई दूसरा हो ही नहीं सकता। गुरु प्रसाद भैय्या एक साल पहले बताये थे, इस तरह का कार्य करना सिर्फ गुरुजी से ही होता है। एक बार ऐसे ही 2019 में स्कूटी से आते आते ब्रेकर से गिर जाती हैं। और उन्हें ऐसे लगता है मानो कोई पुरुष रूपी अदृश्य शक्ति धीरे से, उन्हें बिठा दिये हों । और उन्हें जिससे इतने पर भी जरा भी कोई चोट नहीं लगती है। तीसरी घटना उनके बड़े बच्चे के प्रसव के समय डॉक्टर सब ऑपरेशन की तैयारी कर रहे थे।और उन्हें सबको बच्चे के सम्बन्ध में खतरा बना लग रहा था ऐसे में उनके द्वारा गुरुजी से हाथ जोड़कर प्रार्थना करने पर, थोड़ी देर में ही नार्मल सब बढ़िया हो जाता है। एक गुरुभाई को सुदर्शन चक्र के रूप सबमें दर्शन होते रहता है, वो ऐसा बता रहे हैं। गुरु बहन- श्रीमती सीमा

पांडेजी (गुरु प्रसाद भैय्या की आप बड़ी बहू है) रायपुर की रहने वाली हैं, व्याख्याता है।

- गुरुभाई अशोक पांडेजी जो कि गुरुप्रसाद भैय्या के सबसे बड़े पुत्र है, जो कि रामकृष्ण केयर हॉस्पिटल रायपुर में डॉक्टर के रूप में कार्यरत हैं। उनने इसी साल के शुरुवात में मुझे अपने निवास प्रोफेसर कालोनी रायपुर में गुरुजी की कुछ विशेष अति विशेष जैसे कृपा के अनुभव को बताये कुछ इस प्रकार है, जो उनके शब्दो के ही बोल है । सन 2013 के आसपास वो, कुछ ही दिनों पहले लिए हीरो होंडा में जस्ट निकले ही थे कि मुख्य मार्ग में 90-100 की स्पीड से आ रही चार चक्के ने उनकी गाड़ी को ऐसे मारा कि वो लगभग 30-40 फुट हवा में उड़ने लगें उनका कहना था कि फिर जैसे कोई (श्रीगुरुजी) उन्हें धीरे से उतारकर जमीन में सुरक्षित, बगैर किसी चोट, खरोच के खड़ा कर दिये। उनकी गाड़ी को काफी चोट आई थी, लेकिन चार चक्के के सामने का हिस्सा क्षतिग्रस्त होकर दूर जाकर गिर गया था। भैय्या को देखकर, बिल्कुल सुरक्षित चुपचाप खड़े देखकर घटना स्थल पर स्थित काफी लोग आश्चर्य करने के साथ, भौचक हो गये थे। उनकी गाड़ी भी जल्द ही ठीक कर ली गई। इस तरह एक मौत से गुरुजी एकदम साफ सुरक्षित कर दिये थे।
  यह बात उन दिनों की है जब गुरुजी उनके गांव के घर में रह रहे थे। एक दिन उनके घर के सदस्य / सदस्या, कहने लगे / लगी, कि-गुरुजी हम जिस पलंग खाट में सोते हैं, तो रात भर फ़ों-फ़ों की आवाज आती है, गुरुजी बोले, तुम सोवो, वो आवाज बन्द हो जायेगी। जब दूसरे दिन सोकर उठते हैं, नीचे देखने पर पाते हैं, कि खाट पलंग के आकार में एक काफी बड़ा सांप नीचे मरा पड़ा हुआ है। ऐसे हमारे गुरुजी रक्षा

कैसे-कैसे करते हैं।

कोदोपालि में जब भैय्या पदस्थ थे, तो रात को सोकर, सोने के बाद, मध्य रात में जब वो बाथरूम के लिए उठने वाले थे, तो गुरुजी आकर उन्हें या तो उठने के पहले स्वप्न में या आकर उन्हें बोले पैर नीचे मत रखना, ठीक नीचे सांप है। देखने पर पाये वहां एक सांप बैठा हुआ था। एक बार गुरुजी बोले थे, क्या मिलने के बाद कुछ मिलना बाकी न रहे? और बताये कि सद्गुरु / सतगुरु, मिलने के बाद कुछ मिलना बाकी नहीं रहता। गुरुजी कहते रहें कि इस मार्ग से/सतगुरु के संरक्षण आशीष वाले मार्ग से, चलकर व्यक्ति जीवन की घटनाओं, परिस्थियों, भाग्य को बदल दे सकता है। अर्थात उनकी शक्ति के प्रभाव से होनी अनहोनी, अनहोनी होनी में, बदल सकता है। और कहना है, क्या है ऐसा जो हो नहीं सकता? उपर्युक्त घटनाओं से पुष्टि होती है सतगुरु हमारे गुरुजी जैसे जीवन में कई बारआयी हुई मौत से हमें इस तरह कृपा से बचा देते हैं,बचाते रहते हैं। यह सबको अनुभव है। मुझे भी उन्होंने तीन चार बार ठीक आई हुई मौत से दीक्षा 83 में, मिलने के बाद से, करारे मौत से बचाये है। उनके शब्द है कि उनने जीवन दान दिये हैं (और 500 वर्ष के भीतर में अब तक दे ही रहे हैं) इस तरह श्रीगुरुजी की करुणा कृपा महिमा का, एक साथ सबके रहते सर्वत्र रहने वाले गुरुजी का, जैसे गुरुजी प्रायः सबको बोलते आये हैं, चिंता नहीं करना, ये गुरुजी आपके साथ हैं।

- एक गुरुभाई प्लेन पकड़ने में, एक घण्टे बाद प्लेन है गलत पढ़कर सोचकर, मानकर, काफी विलम्ब से निकले। गुरुजी का भरोसा था, जो प्लेन कभी विलम्ब नहीं होती, वह 15 मिनट विलम्ब से उड़ी, गुरुभाई

परिवार को गंतव्य हेतु लेकर। ऐसे हमारे गुरुजी हम सबके साथ सब काम करते हरदम बने रहते हैं। ऐसे हमारे गुरुजी की सदा सबका उनको, सदा ही श्री चरणों में दण्डवत प्रणाम उनकी कृपा से हम सबका होता रहे।

- मैं- लगभग35-40 वर्षों से, आध्यात्म से जुड़ा हुआ, दुर्ग भिलाई से, एक छोटा साधक मात्र हूँ। पिछले लगभग दस दिनों पूर्व दिनांक 3.5.21 को, करोना में मेरी पत्नि की हालत बिगड़ते देख मेरे बड़े भाई जयगुरूजी (श्री जय प्रकाश वर्मा जी दुर्ग भिलाई) श्री गुरूजी मुंगेली वाले के एक शिष्य से निवेदन करने के लिए मुझे बोले, मैं जय के आदेश पर पूरी श्रद्धाभक्ति से श्री गुरूजी मुंगेली वाले के चित्र को देखते हुए मैं प्रार्थना किया, और मेरी प्रार्थना श्री गुरूजी तक पहुंचाने के लिए, उस शिष्य से निवेदन किया। उन्होंने मेरी पत्नि की हालत सुनकर श्रीगुरूजी मुंगेली वाले के चरणों में विनम्र निवेदन किया, और मुझे तुरंत हास्पिटल में भर्ती करने कहा। मैं श्री गुरुजी के उन शिष्य के कहने पर तुरंत भर्ती कराया। इस बीच पत्नि के स्वास्थ्य में काफी उतार चढ़ाव आते रहा। मेरी पत्नि बोली अब मुझे शुगर लेकर ही जाएगा। मैं डरा पुनः मुंगेली वाले गुरुजी के शिष्य से इस बाबत भी निवेदन किया। वे पूर्ण आत्मविश्वासपूर्वक बोले, गुरूजी ने आपकी प्रार्थना स्वीकार कर लिए हैं। आज, आप हर दो घंटे में अपने गुरुजी व हमारे गुरुजी को ज्योति रूप में मिलाकर एक देखकर, श्री गुरुजी से प्रार्थना करते रहिए, मैंने वैसा ही किया। एक सप्ताह बाद पत्नि के स्वास्थ्य में पूर्ण सुधार आना शुरू हुआ, मैं कृतज्ञ भाव से संध्या ध्यान में बैठा। जब तक मैं सूक्ष्म में अपने गुरु, ईष्ट, परमात्मा और श्रीगुरूजी मुंगेली वाले का ध्यान किया। बहुत आश्चर्य की

बात है कि श्रीगुरूजी मुंगेली वाले का वही चित्र मेरे ध्यान में मूर्तरूप में आ गया जिस चित्र के सामने मैंने प्रार्थना की थी। सूक्ष्म में गुरु, ईष्ट, परमात्मा आते जाते रहे आभास हुआ सब एक ही हैं। श्रीगुरूजी भी, मैं ही हूं बोलें लेकिन श्रीगुरूजी का चित्र भी था जो आश्चर्य की बात रही। (जिस चित्र रूप में गुरुजी दर्शन दीये हैं, उसे मैं भेज दिया हूँ) मैं पहली बार चित्र देखा था। परमात्मा के ज्योति बिन्दु के साथ पूरे एक घंटे तक ध्यान में। उत्तर मिल रहा है, मैं ही तो श्रीगुरूजी मुंगेली वाले हूँ। मुझे लगा श्रीगुरूजी ने मेरी पत्नि को बचा लिये हैं। अपने 4-5 घनिष्ट मित्रों मुंगेली वाले श्री गुरुजी से प्राप्त कृपा के बारे में श्रद्धा पूर्वक बता चुका हूं। मैं अत्यंत कृतज्ञ हूं श्रद्धावनत हूं श्रीगुरूजी मुंगेली वाले के पावन चरणों में विनम्र प्रणाम, निवेदन। इसी स्थिति में अपने नातिन के जीवन के लिए मैं जयगुरूजी के साथ उनके एक शिष्य के घर श्रीगुरूजी मुंगेली वाले के पास, प्रार्थना करने बोलने गये। जब डाक्टरों व ज्योतिषी लोगों ने पांच साल पूर्ण करना कठिन बताया था। मैं उसकी लगातार अस्वस्थता से परेशान हो गया था, निराश भी था। श्रीगुरूजी के उस शिष्य ने मुंगेली वाले अपने गुरुजी से प्रार्थना की, तथा एक उपाय गुरुजी के स्मरण कर करने बोला गया, जिसे मैंने बाद में अपने नातिन के द्वारा वैसा किया भी। तथा मैं तथा जयभैया ने भी बैठकर उस दिन मुंगेली वाले गुरुजी के शिष्य के यहां श्रीगुरूजी से प्रार्थना किये। श्रीगुरूजी मुंगेली वाले की कृपा से नातिन पांच वर्ष तीन महीने तक स्वस्थ हैं। एक छोटा साधक मात्र।

- ओ.पी. शर्मा भैय्या एक बार बताये थे, उनके यहां एक रिश्तेदार महिला आई रहती हैं वे सब तीन चार लोग एक बांध / सरोवर जो तीस चालीस

फीट गहरा है, के चारों तरफ बने बण्ड में रोड / फुटपाथ जैसे में पैदल घूमते रहते हैं। हम जानते हैं सरोवर के चारों ओर पत्थर की बनी हुई आकृति जो स्टिप स्लोप में रहती है जिसे पिचिंग कहते हैं, जिस ओर किसी चीज को भी लुढ़का देने पर वह अत्यंत ढलाव होने के कारण अवश्य ही उस सरोवर के अंदर चली जायेगी, उस पिचिंग में बांध / सरोवर की ओर वे आई हुई रिश्तेदार महिला अचानक दौड़ पड़ती हैं। भैय्या के मन में आता हैं गुरुजी ये आज ही आई है और यह कंलक लगने जा रहा है अर्थात वे अब तब बांध के अंदर जाकर समा जाने वाली थी। इतना सोचते ही बांध / सरोवर में गिरने के एक, दो मीटर पहले गति / वेग के नियमों को उल्लंघन करते हुए स्लोप में ढाल ही ढाल में, बढ़ते हुए स्लोप में दौड़ते हुए भी, वे हवा में एकदम खड़ी हो जाती हैं। वही पर रुक जाती हैं। मानो उन्हें किन्हीं ने आकर, त्वरण के वेग के गति के विरुद्ध होकर थाम लिया हो, एक सेंटीमीटर इधर से उधर नहीं। इस तरह हमारे गुरुजी वही पर प्रकट होकर उन्हें होने वाली आसन्न मृत्यु से, विज्ञान के समस्त नियमों को धता करते हुए बताते हुए, उन्हें अपने अनन्त से अदृश्य करों में लेकर बचा लेते हैं।

- दुर्ग में गजानन वडयालकर भैय्या के निवास स्थान पर 10 मार्च 2020 के आसपास गुरुप्रसाद भैय्या के साथ पहुंचने पर भैय्या बताये कि पिछले दो दिनों से सिर से लेकर पैर तक स्नान कर रहा हूँ। वो पानी ज्योति है।अर्थात ज्योति ही ज्योति में स्नान कर रहा हूँ। एक बार 94-95 में जब हम दोनों रायपुर में आचार्य भैय्या के निवास स्थान पर पहुंचे तब यही अनुभव ऐसे ही सिर से पैर तक लगातार ज्योति में स्नान का, गुरुजी को बताने पर यही त्रिवेणी संगम है, गुरुजी बोले थे। एक दिन भैय्या मुझे

बताये कि बाये नाक से ज्योति निकलती है और पूरे सिर का चक्कर लगाते रहती है। कई बार इसी ज्योति के अंदर मैं बैठे रहता हूँ। भैय्या का अनुभव है कि उन्हें प्रायः सभी व्यक्तियों के सिर के पीछे लाइट के रूप में औरा दिखाई देता है। उन्हें प्रायः सुदर्शन चक्र जैसे घूमते हुए लाइट का दर्शन मिलते रहता है। एक बार बोले कि शरीर में इतनी गर्मी रहती है कि संत ज्ञानेश्वर जैसा पीठ में रोटी सेंक लो। डाक्टरों कि गोलियों से गर्मी में कोई फर्क नहीं पड़ता। 2019 में एक बार रात्रि में बारह बजे के आसपास उन्हें आंख के सामने इतना तेज सूर्य दिखाई दिया कि वे घबरा कर आंख बंद कर लिए, फिर भी उन्हें वह काफी समय तक दिखाई दे रहा था। उनके शब्दों में उनके कुछ अनुभव है जो लिखे हुए मिले हैं। 16.8.21 दिन भर गुरुजी, गुरुजी बोल रहा हूँ, और गुरुजी अंदर बैठे होते है। और दो चक्र चकमक-चकमक करते दिखते हैं, और आंसू आ जाते हैं। 17.2.21 गुरुजी रूप शरीर में दिखा है। बैठा हूँ दिन भर चकमक चक्र दिखते रहते हैं। उसमें डूब जाता हूँ और रो देता हूँ। त्रिवेणी संगम जैसे सिर से लेकर पैर तक बहना, पानी जैसे ज्योति का बहना, इसका दर्शन होते रहता है, कभी।16.8.21 को सबेरे (गुरुजी को) ये मेरे शरीर में बैठे देखा, काली स्वेटर पहने दिखे हैं।अब सब गुरुजी रह गये। अपना कुछ नहीं रहा।मूक रह गए है, अब सिर्फ गुरुजी, दिनांक 22.8.21 को टी.वी देख रहा था। प्रवचन सुन रहा था, जो प्रवचन कर रहा था उसमें गुरुजी को बैठे दिखे और वे ही बोल रहे थे। मैं बोला ऐसे ही गुरुजी प्रवचन देते थे।ऐसे बोलते ही दो सुदर्शन चक्र उपस्थित हुए (सामने दिखने लगे) गुरुजी कि इस कृपा को देखकर आंख से आंसू आने लगे। जो प्रवचन दे रहे थे, उसमें बैठे गुरुजी तानपुरा बजा रहे थे। 7.2.21 को सिर के ऊपर वाला भाग जहां पतला गोल जगह है, उस भाग

आज नहा रहा हूँ, दिन भर देखा।तथा दोनों आंखों के सामने सुदर्शन चक्र रोज गुरुजी कि कृपा से दिखते रहता है। 19.9.21 को गुरुजी का प्रकाश कभी-कभी नहीं दिखते हैं। गुरुजी कि फोटो कि ओर देखकर बोला कि दिख नहीं रहे हैं, तो तुरंत प्रकाश दिखना चालू हो गया। ऐसे गुरुजी कि कृपा है। 29.5.21 कि रात्रि को सुदर्शन चक्र पीला कलर में दिखा। 7.6.21 को गेरुवा कपड़े में हनुमान जी लिखा हुआ गेरुवा कपड़े से ढंका हुआ देखा।आज्ञा चक्र में सुदर्शन चक्र दिखता है, उसमें गुरुजी बैठे दिखते हैं। प्रत्येक शिष्य के शरीर के अंदर गुरुजी बैठे हुए हैं।

- योगानन्दजी के अनुयायी (श्री जयप्रकाश वर्माजी) जो कि शिक्षा विभाग में मिडिल स्कूल के हेड मास्टर से ऐ, डी, आई के पोस्ट पर कार्य करते हुए सेवानिवृत्त हुए सम्भवतः आज वे लगभग 80 वर्ष के आसपास हैं। उनकी धर्मपत्नी काफी समय से गठिया रोग से पीड़ित होकर अंतिम के लगभग तीन चार वर्षों में बिस्तर से,बिल्कुल ही उठ बैठ नहीं सकने कि स्थिति जैसी में थी।वे आत्मानन्द जी के(रायपुर रामकृष्ण मिशन के संस्थापक जैसे) बहिन थी, तथा वही से दीक्षित थी।गुरुभाई हमारे उनको,उनके शिक्षा विभाग में होने से,स्वाभाविक रूप से गुरुजी के सम्बोधन का प्रयोग करते रहे हैं,तथा उनकी धर्म पत्नी को बहिनजी,कहकर बोलते थे।एक दिन,गुरुजी के कार्यक्रम में हमारे गुरुभाई के, आदरणीय वे सज्जन उन्हें कार्यक्रम में आकर 5000/-देते हैं। गुरुभाई गुरुजी को याद कर कहते सोचते हैं कि हे गुरुजी अच्छे स्थिति के हमारे कुछ गुरूपरिवार,आपके कार्य में पैसे का खूब हिसाब रखकर हस्ती से बहुत ही थोड़ा जेब से निकाल पाते हैं। और ये हैं ,जो

आपके शिष्य न होते हुए भी इतनी राशि दे दिये हैं। अब आप ही बताइए इनके लिए क्या किया जाय,आपकी ओर से।तब गुरुभाई को बहिन जी की चिंताजनक स्वास्थ के बारे में याद आ जाती है।उन्हें लाभ हो इस उद्देश्य को लेकर,कुछ तो गुरुजी के याद में करने, एक सोच देतेहुए, कह देते हैं। तथा कुछ दिनों बाद उनके घर जाकर बहिन जी को,एक चीज ये भी, ऐसे ऐसे करना है, बात बता देते हैं। बहिन जी बात मानकर वैसा हर रोज ,हमारे गुरुजी से,सुबह-शाम या रात को,दो बार,उस वाक्य को प्रार्थना जैसे,कहा करती है। इधर गुरुभाई भी हर रोज गुरुजी से उनके बारे में प्रार्थना करते रहते हैं। एक दिन,2016 या 2017 में पूछने पर गुरुभाई का नाम लेकर वो बताती है कि मुझे स्वप्न में तुम्हारे गुरुजी का दर्शन मिला।गुरुजी पूछे- तुम्हें क्या चाहिए तो वो कहती है।मैं ठीक होना नहीं चाहती।मैं अब आपके पास ऊपर जाना चाहती हूँ।ऐसी ही और कुछ बातें जो हुई रहती है बताती है।क्योंकि सम्भवतः गुरुजी ये कहते है कि तुम चाहो तो ठीक हो सकती हो,तब उनके ये सब उदगार निकले रहते है।फिर एक दिन जनवरी2018 में गुरुभाई उनसे कहते है कि बहिन जी हमारे गुरुजी का कुछ और दर्शन हुए हो तो आप बताइये। तब वो कहती है हाँ अभी कुछ दिनों पहले,गुरुजी के दर्शन हुए है। सुबह सुबह एक दिन दर्शन हुआ कि एक बहुत बड़ा पंडाल है। जिसमें बड़े बड़े ,20-30 खंभे जैसे लगे है और उनमें महापुरुषों के बड़े बड़े चित्र लगे हुए है।उन महापुरुषों में,रामकृष्ण परमहंस जी,मां शारदा,विवेकानंद जी,विशुद्धानन्दजी,त्रैलंग स्वामी जी,युक्तेश्वरगिरी जी,योगानन्दजी,महावतार बाबाजी,मसीह जी आदि आदि हैं। लगे हुए फोटो को देखते हुए मैं मंच में ऊपर चढ़ जाती हूँ।मंच में,गद्दे पर बैठे हुए महात्मा जी को प्रणाम करती हूँ प्रणाम कर जैसे ही उठती हूँ तो देखती

हूँ ये तो, मुंगेली वाले गुरुजी है।तो गुरुभाई उनसे कहते है कि देखिए मैं आपको गुरुजी के बारे में जो कहता था,उस तरह से आप स्वयं देखकर,वैसे आप बता रही हैं।हमारे गुरुजी के महिमा को आप देख लिए है।आगे उनके पति महोदय,जो हमारे गुरुभाई के बहुत आदरणीय है, के द्वारा इस बाबत जो बातें बताई गई है वह भी है। उनके कथन कि शुरुआत है-पूज्य गुरुजी की शक्ति,सर्वव्यापकता,और गुरूपरिवार के सदस्यों के कष्टों को दूर करना यह तो स्पष्ट है ही किन्तु उनकी कृपा उन पर भी होती है,जो गुरूपरिवार के सदस्य नहीं है।मेरी धर्मपत्नी...सादर प्रणाम।जयगुरुजी।जयहो।

विविध
आत्मदर्शी पुरुषों
की
अमृत वाणी
(भाग-3)

1 अक्षय परब्रम्ह -सहस्त्रार या ब्रम्हरंध्र में ही है, तीनो लोको की रचना यही से हुई है। ब्रम्ह का ही यह व्यक्त स्वरूप ब्रम्हांड है। ऐसा जो अक्षय परब्रम्ह हमारे साथ रहता है। उसी के कारण, उसी को प्राप्त करने के लिए अनन्त सिद्ध योग मार्ग में प्रवेश कर योगेश्वर हो जाते है।

2 हँसना, खेलना और ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार संयमपूर्वक हँसते, खेलते हुए जो अपने मन को भंग नही करते वो निश्छल होकर ब्रम्ह के साथ रमण करते है।

3 जो रात दिन बहिर्मुख मन को उन्मनावस्था में लीन किये रहते है, गम्य जगत की बातें छोड़कर अगम्य आध्यात्मिक क्षेत्र की बातें करता है, सब आशाओ को छोड़ देता है, कोई आशा नही रखता। वह ब्रम्हा से बढ़कर है, ब्रम्हा उसका दासत्व स्वीकार करता है।

4 ब्रम्ह की सुगन्धि से सारा जगत सुगन्धित है, वह सुगन्धि के समान व्याप्त है, उसके स्वाद से जगत मीठा है। जिसको ब्रम्हानंद का आस्वादन मिल जाता है, उसके लिये संसार की आत्यंतिक दुःख की कटुता मिट जाती है, और जगत आनन्दमय हो जाता है, उसे समस्त जगत में उसी का रूप दिखाई देता है। ।।गोरख वाणी से संग्रहित।।

1 अभ्यास के फलस्वरूप एकाग्रभूमि में पहुँचने पर ज्योतिर्मय राज्य में प्रवेश हो जाता है। इसमें चित्त नित्य ही एकाग्र रहता है।

2 एक ही क्षण के स्पंदन से बहुक्षण बनता है जिसका नाम है काल। उस एक क्षण में समग्र विश्वजगत का परिणाम अनुभूत होता है। क्षण का ज्ञान अखंड है। श्रेष्ठ योगी को छोड़कर क्षण का ज्ञान और किसी को हो नहीं सकता।

3 समग्र विश्व जो काल के अधीन होकर परिणाम अनुभव कर रहा है, काल

राज्य के अंतर्गत है। इस कालराज्य से बाहर ले जाना ही सद्गुरु का लक्ष्य है। कालातीत नित्यधाम।

4 प्रमाता-ज्ञाता, भोक्ता, दृष्टा सब कुछ है। प्रमेय-ज्ञेय, भोग्य, दृश्य सब कुछ है। दोनों का सम्बंधसूत्र प्रमाण है।

5 इन तीनों का सम्बन्ध सूत्र ले करके-जगत है। जहां प्रमाता, प्रमेय, प्रमाण त्रिविध विभाग नहीं है, इनसे अतीत-परप्रमाता है। यह स्वयं प्रकाश है। आत्मा में सब शक्तियाँ है, वही प्रमाता है, वही प्रमेय है, वही प्रमाण है। प्रमाता के रूप में वह सर्वज्ञाता सर्वकर्ता सर्वत्र चेतन सर्वत्र अस्तित्ववान है। संकल्प निश्चय अभिमान स्मरणादि ये सब दिकचरी शक्तियाँ है। दर्शन स्पर्शन कथन चलन ग्रहणादि गोचरी शक्तियों से है। इस प्रकार इंद्रियरहित होकर वह कार्य कर सकता है यह हुई प्रमाण की बात। समग्र विश्व ही उनका देहरूप है ऐसा भूचरी शक्ति के द्वारा अनुभव आता है। यह हुई प्रमेय की बात।

6 साधारण लोग अहंकार को ही क्रिया और ज्ञान का आश्रय समझते है, किन्तु वास्तव में अहं का यह स्वरूप है ही नहीं। इस ज्ञान का नाम है, पुदगल नैरात्य ज्ञान।

7 तमोगुण प्राधान्य से-मूढ़ वृति का। रजोगुण प्राधान्य से-क्षिप्त वृति का। रजोगुण प्राधान्य और सत्वगुण के मिश्रण से-विक्षिप्त वृति का। सत्वगुण प्राधान्य से-एकाग्र वृति का। और सब वृतियों का निरोध होने पर- निरुद्ध वृति का। उदय होता है।

8 एकाग्रावस्था में-संप्रज्ञात योग।निरुद्धावस्था में-असंप्रज्ञात योग। होता है।

9 देह में जो अहं बुद्धि है, यही अनात्मा में आत्मबोध है। परमशिव ही स्वातंत्र्यबल से जीव बनता है, शक्तिपात की पूर्णता पर जीव समझता है

कि वही शिव है। उसकी स्मृति जग जाती है, वह अपने घर में अपने को पुनः प्राप्त अनुभव करने लगता है। लगता है जैसे वही पुनः लौट आया है। समग्र विश्व ही उसको अपना घर मालूम पड़ने लगता है, बोध होता है कि विश्व के सभी निज जन है, यही आनंद की अवस्था है। परमशिव जीव स्वयं ही है। ।।स्वात्मसंवेदन से।।

1 यथार्थ उपासक ईश्वर है, उपास्य है महाशक्ति। यदि लोहा अग्नि के साथ तप्त हो तो लोहा ईश्वर है अग्नि है महाशक्ति।

2 योगी अत्यंत दुर्लभ है और उनके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। जैसे इस गुलाब में ही विश्वब्रम्हाण्ड की सारी वस्तुओं के उपादान अन्तर्निहित है, इससे चाहे जो बना लो।

3 सर्व सर्वात्मकम।क में ही ख है, क इसलिए है क्योंकि उसमें वही तत्व प्रधान है, शेष दबे हुए है। देवता में भी पशुत्व रहता है, प्रच्छन्न रूप से।

4 कर्म ही मंथन है,उसी से ज्ञान होता है। ज्ञान से भक्ति, भक्ति से प्रेम व प्रेम से साक्षात्कार। यही योगियों द्वारा अनुभूत परिपाटी है।

5 सबके मूल में है कर्म, वह योग साधना का प्रथम सोपान है, मूलाधार है। योग कर्मसु कौशलम। प्रेम की प्राप्ति योगमार्ग से ही हो सकती है। साधारण प्रेम मनोविकार मात्र है। योगी ही सच्चा प्रेमी है।

6 वैज्ञानिक पद्धति से परीक्षित वस्तु को उसकी पूर्व स्थिति में नहीं ला सकते, योग के द्वारा यह भी सम्भव है। आज के विज्ञान व प्राचीन योग में यही अंतर है।

7 मन की एकाग्रता के अभाव में भी मन्त्र की ग्रहणशीलता अत्यंत प्रखर होती है, वह अपना प्रभाव अवश्य दिखाती है। अतः चंचल चित्त से भी किया गया भगवन्नाम वा मंत्रजप कल्याणकारी होता है। आग में हाथ

डालने से जलना निश्चित है वैसे ही मन्त्रजाप का प्रभाव अवश्यभावी है। एक छोटे से मन्त्र में जो शक्ति है, वह समस्त विश्व में उपलब्ध विद्युत शक्ति के पुंजीभूत स्वरूप में भी संभव नहीं है।

8 काल से संकर्षण करना चैतन्य का काम है, यही काल संकर्षण शक्ति है।।।स्वामी विशुद्धानन्द जी।।

1 जीवन्मुक्त पुरुष एकमात्र महाशक्ति का ही कर्तव्य देखते है। अभिमान रहने के कारण ही जीव कर्म का उत्तरदायी माना जाता है। पुत्तलिका अच्छी तरह से नाचे तो इसमें उसका महत्व नहीं है, महत्व नचाने वाले का है।

2 मनुष्य जीवन की परिपूर्ण सार्थकता रस के आस्वादन में है। इसका रहस्य एवं कौशल वर्तमान मनुष्य नहीं जानता है, अतः वर्तमान मनुष्य इसके आस्वादन से वंचित है।

3 अखण्ड ब्रम्हचर्य से इसकी प्राप्ति नहीं होती, न धर्मप्राण गृहस्थ जीवन से ही, मनुष्य में जो शुक्र धातु है उसी के ऊपर रस साधना निर्भर है। इड़ा तथा पिंगला नाड़ी का स्वरूप तथा उनकी क्रिया पहले जाननी पड़ती है। इड़ा नाड़ी से जो क्रिया होती है उससे लक्षण क्रिया पिंगला नाड़ी से होती है।

4 बिंदु या शुक्रात्मक वीर्य मूल में तेजोमय है। शुक्रवहा नाड़ी तरल अवस्थापन्न बिंदु को बाहर निकाल देती है, इसी का नाम स्लखन है, मृत्यु का द्वार है। परंतु ऐसा भी क्रिया कौशल है जिससे बिंदु या शुक्र धारण करने के पहले ही वायवीय एवं तेजोमय बनाया जाता है, इसलिए पतन का प्रश्न ही नहीं उठता।

5 इस तेजोमय बिंदु को अपनी शुष्क नाड़ियों के द्वारा ऊर्ध्वमुख में

आकर्षण किया जाता है, इसका शोषण पिंगला नाड़ी से किया जाता है और इड़ा नाड़ी से अमृत क्षरण होता है।

6 वस्तुतः बिंदु सोमबिन्दु ही है, जो स्वभावतः स्वच्छ और निर्मल है। जब अमृतबिन्दु रूप में परिणाम होता है, तब वह ऊर्ध्वमुख होकर सोमचक्र (सहस्त्रार) में स्थित होता है। उस समय अधोगति निरुद्ध हो जाती है और बिंदु शोषित होकर वायवीय आकाशीय रूप से उर्ध्व में संचरण करता है।

7 ऊपर से सोमधारा का स्राव होता है, उससे अमृत प्लावन होता है, कौशल अभ्यस्त होने से अधोगति नहीं होती, शक्ति के योग से बिंदु का उर्ध्वमार्ग में ही संचार होते रहता है।

8 श्रृंगाररस और भक्तिरस का आस्वादन इसी प्रकार से होता है। यह उर्ध्वरेतावस्था दिव्य अवस्था है। भावसाधना और प्रेमसाधना का गम्भीर रहस्य इसी मार्ग से मिल सकता है, यह जीवन गुरु की विशेष कृपा छोड़कर मिल नहीं सकता, इसका अनुष्ठान किसी प्रक्रिया से नहीं होता। यह बहुत ऊपर की वस्तु है, यह योगप्रक्रिया श्री गुरु के अतिविशेष कृपा से ही सम्भव है। ।।मनीषी की लोकयात्रा से।।

1 मनुष्य अमृत का पुत्र है, अमृत से जन्म हुआ है, अमृत ही उसका स्वरूप है। अमृत का आश्रय ही उसकी स्थिति, गति व श्रीवृद्धि है। अमृतस्वरूप में स्थिति प्राप्त करना ही लक्ष्य व मनुष्य जन्म की सार्थकता है।

2 मेरे चारों ओर की सब चीजें मृत्यु के अधीन होने पर भी मैं स्वरूपतः अजर अमर हूँ। जो कुछ भी लेकर में इस जगत में विहार कर रहा हूँ, उन सबको मृत्यु खा जाती है किंतु मुझे स्पर्श करने की क्षमता मृत्यु में नहीं है। हम सभी समान रूप से मृत्युजंय होने के निर्विवाद अधिकारी है।

3 सब प्रकार की पापवृत्ति व दुर्बलता के प्रवर्तक काम व क्रोध को वश में करो, मृत्युमय प्राकृत जगत के ऊपर आत्मा की विजय पताका फहरा दो। मनुष्य की सारी साधनाओं का आधार दौर्बल्य का त्याग व क्लीबता के आक्रमण से अपनी रक्षा करनी ही है।

4 मनुष्य विषयों का गुलाम, परिस्थिति व कर्मों का दास होकर, सुख दुख मोह से अभिभूत होकर प्रकृति को अपने ऊपर राज्य करने देने लगता है।

5 संसार के प्रवाह में देह व इन्द्रियों को लेकर बचे रहना तथा देह इन्द्रियों के व्यापार निवृत्ति से मर जाना, ये दोनों ही भोगराज्य के कार्य है। कर्मयोगी के लिए दोनों समान है, उसका अहं भोगराज्य के ऊपर (अमृतराज्य में) विहार करता है।

6 मनुष्य इस परिवर्तनशील मृत्यु के द्वारा सृष्टिराज्य को अपने पुरुषार्थ से जीतकर इसी देह से निर्दोष सर्वव्यापी ब्रम्ह में नित्यस्थिति प्राप्त कर सकता है। इस अनन्यसाधारण अधिकार को लेकर ब्राम्हीस्थिति व विश्वविजय हेतु अहं बोधस्वरूप मनुष्य इस संसार में आते रहता है।

7 परमात्मा ने अहं के पौरुष के रूप में अपने को अभिव्यक्त किया है, मनुष्य के इस पौरुष में ही उनका विशेष प्रकाश है। यही पौरुष को भगवान ने अपनी विभूति बतलाया है। परमअहं में, अमृतमय ब्रम्हसत्ता में प्रेम व भक्ति से सम्मिलित होकर सम्पूर्ण जगत में अखण्ड राज्य स्थापित करना ही पौरुष की पराकाष्ठा है।।।मृत्यु से अमृत की ओर से।।

1 अहंकार से मन मलिन होता है। अनासक्ति से मन की मलिनता जाती है। मन कि शुद्धि होने पर हृदय में इष्ट का आसन प्रतिष्ठित हो जाता है। चरित्र को छोड़कर भक्ति नहीं रहती।

2 उनका नाम, स्मरण में जब अश्रुपात और पुलक होने लगे। तब समझना कामिनी कांचन से आसक्ति चली गई है। लाभ हो गया है। या अतिनिकट है।

3 भक्ति पक्की होने पर सभी अवस्थाओं एवं वस्तुओं में इष्ट के दर्शन होते हैं।आंख खुली होने पर, बोलते बोलते भी ध्यान होता है। जैसे किसी को दांत का दर्द हो, वह सारे कर्म करते हुए दर्द में ही मन बना रहता है।

4 मन जब कामना वासना रहित होकर शुद्ध होता है। तभी आत्मा का लाभ होता है। अन्यथा जैसे धागे में हल्की सी गाँठ रहने पर सुई के भीतर धागा नहीं जाता। वैसे ही तब लाभ नहीं होता।

5 भक्त को एक इष्ट का ही आश्रय होता है।अतः मन की देह की सारी चेष्टाएं उनको ही आश्रय बनाकर रहती है, होती है।उनका ही इष्ट सभी राजाओं का राजा, सभी देवताओं का देवता। फिर किसकी आशा से किसके पीछे वे जाएंगे। इसी एकनिष्ठ भक्ति के उदय होने पर, समस्त इन्द्रियों के वृत्तियों का निरोध हो जाता है। वह सब कुछ देखता, पाता है।

6 कामगन्ध से रहित हुए बिना महाभावमयी श्रीराधेजी के भाव को महाभाव को समझा नहीं जा सकता। जब तक अखण्ड श्रद्धा सद्गुरु में न जगे, तब तक गुरु कि कृपा उतरेगी ऐसी आशा मत करना।

7 सतचिदानन्दघन श्रीकृष्ण को देखते ही गोपिपों के मन में देहबुद्धि का लोप होकर विदेहभाव से कोटि कोटि रमण से अधिक आनन्द प्राप्त हो जाता था। श्रीकृष्ण के पांव में कांटे चुभ जायेंगे इसलिए गोपियों का सूक्ष्म शरीर उनके चरणों के तले रहता था।

8 गोपियाँ-स्वामी कुल पुत्र शील मान अपमान लोकआश्रय लज्जा समाजभय सब छोड़कर सबके स्वामी श्रीकृष्ण के लिए कितनी दूर उन्मत्त हो उठी थी।, ऐसा कर पाने पर ही उनकी प्राप्ति होती है।

9 मन से सारी आशा सारी कल्पना, निःशेष रूप से हटानी पड़ेगी। तभी तुम अकिंचन हो सकोगे। अकिंचन के प्रति उनकी असीम कृपा होती है।

10 अभ्यास में सतत सचेष्ट रहने पर एक दिन ऐसी अवस्था प्राप्त करोगे। तब इसके लिए विशेष उद्योग नहीं करनी पड़ेगी।

11 मन के विश्वात्मक होने पर ज्ञान का उदय होता है। मनोरथों का अंत होना, पहले के समान मनन धर्म न होना ही। साधना की अंतिम बात है।

12 सर्वदा स्मरण के भाव से, मन स्थिर व प्रसन्न होता है। यही भक्ति का दूसरा नाम है।

13 आत्मा में सदा रहने का उपाय है, अभ्यास (क्रिया) करना यही असल शरणागति है। बुद्धि की समता होने से, सारे कार्य ब्रम्ह को समर्पित होते हैं।

14 सूक्ष्म देह में पृथ्वी तत्व से-भय, जल से-मोह, अग्नि से-क्रोध, वायु से-काम, व आकाश से- लोभ उत्पन्न होता है। सूक्ष्म देह का शोधन ही भूतशुद्धि है। इसके बिना लगे हुए संस्कार कभी नष्ट नहीं हो सकते।

15 अभ्यास से शरीर मन प्राण के शुद्ध होने पर बुद्धि भी शुद्ध हो जाती है। तब आत्मा प्रत्यक्ष होता है।

16 विषयों में रहकर भी जो मन को ब्रम्ह में रखते हैं। वे ही ऋषि है। जब साधक किसी दूसरे आश्रय की अपेक्षा नहीं करता। तब वह राम भरोसे हो जाता है।अर्थात ब्रम्ह के प्रति पूर्ण निर्भरता आ जाती है।

17 ब्रम्ह में चित्त लगाया हुआ जो आत्माराम पुरुष है। उनका कोई अपकार करने में प्रकृति समर्थ नहीं होती।

18 उदान सुषुम्ना स्थित शक्ति है। सुषुम्ना उर्ध्वगामिनी है। उदान के जय होने पर शरीर लघु होता है। व इच्छा मृत्यु कि क्षमता होती है।

19 अभ्यास करते करते जब किसी बाह्य चिन्तन का उदय न हो, इड़ा पिंगला स्थिर होकर सुषुम्ना तत्व तत्व में चलने लगता है। तभी आत्मा के साथ मन का गाढ़ मिलन होता है। यही प्रेम समाधि है।तब आठों पहर नशे के समान भाव में विभोर रहता है।

20 सत्य में दृढ़ता न रहने से धीरे धीरे सब नष्ट हो जाता है। सत्य कहने से सत्य बोलना ही पर्याप्त नहीं हुआ। सत्य चिन्तन भी होनी चाहिए।

21 जो कुछ होता है उनकी इच्छा से होता है, जानना। उनकी इच्छा से हुआ, उनकी इच्छा से जाता है।तुम क्या करोगे।

22 भक्त को एकाकार का ज्ञान होता है। वह देखता है-वे ही सब कुछ हो गये है। उनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। फिर वह देखता है। वे ही मैं है। मैं ही वे हूँ।

23 अपने भीतर अपने को देख पाने ही साधना करनी पड़ती है। शरीर इसी साधना के लिए है।वे केवल भीतर ही नहीं। भीतर-बाहर सर्वव्याप्त है।

24 वासना का नाश पूर्णतः मानसिक व्यापार है। वासना रहित प्रेम, जीवन में पूर्ण शांति देता है। प्रेम परमात्म स्वरूप है। प्रेम का उदय होने पर देह संसार का विस्मरण होकर सभी वासनाओं का निरोध हो जाता है।

25 मन जा रहा है, इसी से सब कुछ की उत्पत्ति होती है। मकड़ी के तार की तरह मन को उल्टकर वापिस ले आओ।

26 भक्त की कोई कामना नहीं होती, वे केवल इष्ट की सेवा करना चाहते हैं। भक्त के दूर रहना चाहने पर भी, वे अपनी गोद में खींच लेते हैं। उनके प्रेम का एक कण पाकर, भक्त कृतकृत्य हो जाता है। अभाव बोध की परिसमाप्ति हो जाती है। फिर मुक्ति की कामना कैसी रहेगी?

27 उसके आनन्द का आस्वाद एक बार पा लेने पर, उसी आनन्द के लिए भक्त दौड़धूप करता है। तब संसार रहे या जाय। संसार स्वादहीन

लगता है।अमृतफल जैसे ज्ञान, प्रेम, वैराग्य, विवेक व अखण्ड शांति प्राप्त होती है।

28 आत्मा के प्रति खूब प्रेम होने पर उसके कारण आसक्ति व विषयबुद्धि पूर्णतः चली जाती हैं। आत्मा पुत्र से प्रिय, धन से प्रिय, समस्त प्रियों से प्रियतर, व सबकी अपेक्षा प्रियतम है। आकुल प्रार्थना से आत्मप्रकाश किये बिना रह नहीं पाते।

29 निष्काम कर्म करने पर उनमें प्रीति होती है।अहंकार के त्याग बिना कृपा नहीं होती। हजार चेष्टा करो उनकी कृपा बिना दर्शन नहीं होता। उनकी कृपा से धीरे धीरे उन्हें पाया जाता है।

30 इष्ट प्रेम में पागल (की भांति) होने पर फिर कोई कर्म नहीं रहता। सभी ऋणों से मुक्त हो जाता है। संसार विस्मृत हो जाता है। भूख प्यास नींद देहसुध कुछ नहीं रहती। भविष्य की चिंता नहीं होती। प्रेम का शरीर, प्रेम कि आंखे, प्रेम के कान होकर आत्मा में रमण होता है।

।।संकलित।।

1 गुरु कृपा बिना रज तम धुलकर निर्मल नहीं होते, ज्ञान अर्थात आत्मज्ञान में पूर्ण और दृढ़तम निष्ठा भी नहीं होती। ज्ञान का साक्षात्कार होना तो दूर की बात है।

2 कमाई तो अपने ही परिश्रम की होती हैं तथापि उस पर जब तक श्रीगुरु कृपा की मुहर नहीं लगती तब तक भगवान के दरबार में उसका कोई मूल्य नहीं होता। समग्र वेद शास्त्र पढ़ डाले, योगादिकों का भी खूब अभ्यास किया, पर इनकी सफलता तभी है जब श्रीगुरु की कृपा हो।

3 अत्यंत सूक्ष्म और विशुद्ध बुद्धि के द्वारा ज्ञान प्राप्त होने पर भी दीपक से पैदा होने वाले काजल के समान ज्ञान से उत्पन्न होने वाला अहंकार सद्गुरु के चरण गहे बिना निःशेष नष्ट नहीं होता।

4 महद भाग्य से सद्‌गुरु के दर्शन होते है, जब दर्शन हो तब अनन्य मन हो उनकी शरण में जाना। और भगवान के समान ही पूजन और भजन करना सनातन रीति है। सद्‌गुरु सदा ही तृप्त रहते है, इससे अधिकारी जीवों पर उन्हें करुणा आती है।

5 मेरा पेट तो भरा, पर अब ऐसी प्यास लगी है कि अन्य जीवों की आस पूरी करूँ। नाव का भार आखिर जल पर ही रहता है, वह भार चाहे हल्का हो या भारी, इससे क्या? दो चार चढ़ लिए या दो चार उतर गये तो इसका उस पर बोझ ही क्या? सद्‌गुरु को सत शिष्य के मिलन का ही आनन्द है, इससे अद्वैतानुभव का आनन्द द्वैतरूप में वे भोग सकते है।

6 सद्‌गुरु दीनों पर तन मन और वाणी से बड़े दयालु होते है, शिष्य के भव बन्धन काट डालते है, अहंकार की छावनी उठा देते है। निजभाव से शिष्य को प्रबोध कराने में समर्थ होते है।

7 गुरुभक्त के लिए गुरु और उपास्य एक होते है। गुरु प्रसाद के बिना कोई साधक कभी कृतार्थ नहीं हुआ। श्रीगुरु बोलते चालते ब्रम्ह है, उनकी चरणधूलि में लोटे बिना कोई भी कृतकृत्य नहीं हुआ। गुरु की कृपा से मनुष्य की छिपी हुई अलौकिक शक्तियाँ विकशित होती है, उन्हें चैतन्य प्राप्त होता है, आध्यात्मिक वृद्धि होती है और अंत में वह नर से नारायण होता है।

8 लोग बहुत मिलते है पर कहनी के साथ रहनी का मेल हो ऐसा पुरुष अत्यंत दुर्लभ है।

9 सद्‌गुरु शिष्यों के नेत्रों में ज्ञानाञ्जन लगाकर उसे दृष्टि देते है। वे ईश्वर के अवतार होते है।वे केवल स्पर्श से, एक कृपा कटाक्ष से, केवल संकल्पमात्र से भी शिष्य को कृतार्थ करते है। पर्वतप्राय पापों का बोझ ढोने वाले भ्रष्ट जीवन को भी अपनी दया से क्षणार्द्ध में पुण्यात्मा बनाते है।

वे गुरुओं के गुरु है। मनुष्यरूप में प्रकट होनेवाले साक्षात नारायण है। तुम जो चाहो कहो, जितना प्रयत्न करो,पर तुम्हें मनुष्यरूपी (सगुण) परमेश्वर का ही भजन करना होगा। मनुष्य इन्हीं के रूप में परमात्मा को देख सकता है।

।।श्री तुकाराम चरित्र से।।

1 ज्ञान और भक्ति में कोई भेद नहीं है। दोनों ही संसार जनित दुःख को हर लेते है।

2 ज्ञान, वैराग्य, योग, विज्ञान ये सब पुरुष है। प्रभु की माया ही स्त्री से प्रकट है। जो पुरुष विरक्त और धीर बुद्धि है, वे स्त्री को छोड़ सकते है। न की वे जो विषयों में फंसे हुए है।

3 स्त्री के रूप पर स्त्री मोहित नहीं होती, यह विलक्षण रीति है। माया और भक्ति दोनों स्त्री जाती है। भक्ति तो श्री राम (आत्माराम) को प्यारी है, इस कारण भक्ति से माया डरती है और माया बेचारी तो निश्चय ही (आत्माराम के सामने) नाचने वाली है।

4 भक्ति को देखकर माया लज्जित हो जाती है। ऐसा विचार कर विज्ञानी, मुनि है, वे सब गुणों की खान भक्ति को ही मांगते है।

5 श्री रामजी के इस गुढ़ मर्म को कोई जान नहीं पाता। उनकी कृपा से जो जान लेता है, उसे स्वप्न में भी मोह नही होता, दुःख नहीं होता।

6 जिनके हृदय में यह राम भक्ति रूपी चिंतामणि बसती है।वह दिन रात प्रकाशित रहता है। उसे दिया, घी, बत्ती कुछ नहीँ चाहिए। मोह रूपी दरिद्र पास नहीं आता और लोभ रूपी वायु उसे बुझा नहीं सकती। अविद्या रूपी तम मिट जाता है, मदादि पतंगों के समूह हार जाते है। काम आदि दुष्ट उसके पास नहीं जाते।विष अमृत के समान और शत्रु मित्र हो जाता है।

7 वैराग्यरूपी ढाल और ज्ञानरूपी तलवार से जो लोभ मोह आदि शत्रुओं को मारकर विजय पाती है। वही भक्ति है।

8 जो लोग भगवान की भक्ति को छोड़कर दूसरे उपाय से सुख पाना चाहते है। वे शठ महासागर को बिना नौका के ही, अपनी जड़ करनी पर तैरकर पार करना चाहते है।

9 ब्रम्ह समुद्र है। ज्ञान मन्दराचल है। और सन्त देवता है, जो समुद्र को मथकर कथा रूपी अमृत निकालते है। जिसमें भक्ति रूपी मधुरता बसती है।

10 जो सप्रेम खोजता है वह सब सुखों की खान भक्तिमणि को पाता है। तथापि रामजी की कृपा के बिना कोई उसे, नहीं पाता।

11 इसे पाने के सहज उपाय है, पर अभागे मनुष्य उसे ठुकरा देते है।

12 सब ग्रन्थों में कहा गया है कि श्री राम (आत्माराम) भक्ति के बिना सुख नहीँ है। राम भक्ति सञ्जीवनी जड़ी है।

13 जब शुद्ध ज्ञानरूपी जल से मनुष्य स्नान करेगा, तब मन में राम भक्ति आ जायेगी।

14 कैवल्य रूपी परमपद बहुत ही दुर्लभ है। वही मुक्ति श्रीराम को भजने से बिना इच्छा किये ही जबरदस्ती आ जाती है।

15 बिना भूमि के जल नहीं रह सकता, चाहे कोई करोड़ो उपाय करे। वैसे ही भक्ति को छोड़कर मोक्ष सुखी नहीं रह सकता। ऐसा समझकर बुद्धिमान मुक्ति का आदर न करके भक्ति पर लुभा जाते है। जिससे मूल अविद्या का नाश ऐसे ही हो जाता है। ।।योगी तुलसीदास।।

1 कठिनाइयों, संकटों एवं असफलताओं के माध्यम से ईश्वर हमें आगे बढ़ने का अवसर प्रदान करते हैं, बशर्ते कि हम अपनी हिम्मत न हारें, लगे रहे।

2 विफलता सफलता की सीढ़ी है, विफलताएं जीवन का हिस्सा है, उसे लेकर निराश नहीं होना चाहिए।

3 जो अपने उत्तरदायित्वों के प्रति गम्भीर होगा, उसकी तरक्की निश्चित है, उसे कोई रोक नहीं सकता।

4 महानता का कारण चरित्रबल, पूर्णनिष्ठा व समर्पण है। सर्वश्रेष्ठ बौद्धिक ताकत हेतु मन्त्र है-ज्ञान, ज्ञान और ज्ञान।

5 नीतिवाक्य है-संघर्ष करना, तलाश करना और लाभ न उठाना।

6 किसी व्यक्ति की सहन (शक्त) क्षमता व निष्ठा, उसके योग्यता व विशिष्टताओं की तुलना में अधिक महत्व रखते है।

7 पराजयवादी मानसिकता को परास्त करो यही गीता में अर्जुन को श्रीकृष्ण का दिया उपदेश है।

8 विश्वास के साथ आप अपनी नियति बदल सकते है, यदि गम्भीरता से चाहे तो कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है।

9 आंतरिक संघर्षों को चुनौती का सामना करने के लिए एक अंतदृष्टि होनी चाहिए।

10 जब शिक्षक ज्ञान व अनुभव से समृद्ध होता है तो मानवीय मूल्यों से युक्त अच्छे युवा आकार लेते है।

11 जब महिलाओं को शक्ति सम्पन्न किया जाता है तो समाज में स्थिरता सुनिश्चित होती है।

12 विचार स्वीकृति की बाट जोहते जोहते मुरझाने नहीं चाहिए।

13 चिन्तन पूंजी है,उद्यम जरिया है, और कड़ी मेहनत समाधान।

।।सत्यम शिवम सुंदर।।

1 मैं तो उस प्रभु का जाप करता हूँ जो सृष्टि का मालिक है रक्षक है। वो परमात्मा, जो राजाओं के राजा है, जिसका इतना बड़ा साम्राज्य है,

शामियाना है, जिसकी ये दिशाएँ कनात है। इस परमात्मा महाराज की यह बैकुंठ, सृष्टि ही चित्रशाला है जिसमें सातों लोक समा जाएं।

2 ये चाँद सूरज उसके महल के छोटे से दिए है। उसके काल का हाथ प्रत्येक जीव के सर पर है। यह काल परमात्मा के घर का एक खिलौना सा है। ऐसा वह राजा परमात्मा है।

3 उस मालिक के घर में ब्रम्हा की हस्ती भी गाँव के कुम्हार जैसी है, जिसने संसार को रचा है। जो शिव जगतगुरु है, जो सभी जीवों को मौत का सन्देश पहुँचाता है, जो संसार का यश करने वाला माना जाता है। वही शिव परमात्मा के घर में एक खिलौना भर है।

4 चित्रगुप्त उस परमात्मा के घर का मुनीम है और प्रलय लाने वाला यमराज उस परमात्मा के महल का एक दरबारी है। उसके घर में विष्णु का कच्छ अवतार एक पलंग जैसा है और हजार फनों वाला शेषनाग उसके सेज के तानेबाने का काम देता है, संसार की सारी वनस्पति उसकी मालिन है।

5 गंगा उसके दर पर उसके नाखूनों का पसीना है और सातों समुद्र उसके घड़ा रखने का घडोंची है। सारे संसार के जीव जन्तु उसके बर्तन है। उसके दर पर देवताओं यहां गुणों का बखान करने वाले, गाने वाले रागी है। सभी ऋषि उनके साजिंदे है, सभी शास्त्र बहुरूपिये है। यह संसार उसका छोटा सा अखाड़ा है। माया उसकी दासी है। यह धरती उसके रसोई का चूल्हा भर है।

6 वह सबमें व्याप्त है सारे जीव जन्तुओं में वही निवास करता है।

7 हे प्रभु मुझे आपके ओट का सहारा है।

।।भक्त नामदेव जी।

1 ज्ञान की प्राप्ति केवल विचार से ही हो सकती है। मन शुद्ध होकर दर्पण की भांति जब निर्मल हो जाता है, तब ज्ञान प्रकट होता है। बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं मिल सकती। वासना त्याग से ज्ञान उत्पन्न होता है और इन्द्रिय सुखों का उपशम हो जाता है।

2 आत्मा का स्वतः या दूसरे के द्वारा न तो ग्रहण न ही त्याग किया जा सकता है। न आत्मा स्वयं किसी वस्तु का ग्रहण या त्याग करती है। यही सम्यक् ज्ञान है।

3 आत्मैक्य का ज्ञान हो जाने पर, आत्मा के प्रति अज्ञान से स्थापित देह की ऐक्य भावना खण्डित हो जाती है। मैं और मेरे का आरोपित अज्ञान नष्ट हो जाता है।

4 सतत और निरन्तर अभ्यास, लगातार ध्यान द्वारा ज्ञानाग्नि उद्दीप्त होकर अविद्या से मलिन हुए जीव को शुद्ध करके स्वयं विलीन हो जाता है।

5 ज्ञान अहंकार को समूल नष्ट करके समस्त कर्मों को भस्म कर देता है। ततपश्चात न कर्ता रह जाता है, न कर्मफलों का भोक्ता।

6 ज्ञान प्राप्त योगी अपने ज्ञानचक्षुओं से स्वात्मा में सम्पूर्ण जगत को देखता है। उसे सर्वत्र स्वात्मा ही दिखाई देता है और कुछ नहीं।

7 आत्मज्ञान से तत्क्षण तत्काल और यहीं आत्मानुभूति होती है। पूर्ण मुक्ति ज्ञान से ही होती है।

।।आदि शंकराचार्य।।

१ जब यह किया यह नहीं किया, इन द्वन्दों से मन मुक्त हो जाता है, तब वह धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों से निरपेक्ष हो जाता है। यह कर्म शरीर (मन) ने किया है मैंने नहीं, मैं तो शुद्ध स्वरूप हूँ - जिसने यह निश्चय कर लिया है, वह कर्म करता हुआ भी नहीं करता।

२ प्रवृत्ति में राग होता है और निवृत्ति में द्वेष हो जाता है, परंतु विवेकी पुरुष तो बालक के समान निर्द्वन्द् होता है, अतः वह यों ही रहता (दोनो में समान) है।

३ विरक्त पुरुष विषय से द्वेष करता है, रागी विषयों के लिए मचलता रहता है, जो दोनों भाव से रहित है, वह विरक्त है न रागी है।

४ जो भोगों का भोग समाप्त होने पर उनकी वासना से युक्त नहीं हो जाता और भोगों के न मिलने पर उनकी आकांक्षा नहीं करता, ऐसा संसार में दुर्लभ है।

५ यह संसार केवल भावना है, भाव का अभाव व अभाव का अभाव - भाव होना है।

६ जहाँ स्पन्दन है वहाँ शब्द है, जो निसन्देह है वही मौन है, मौन (सब आत्मा है ऐसा जो निश्चय से विकल्पनाएं शान्त हुई है चुप है, वही मौन है) केवल-आत्मा है।

७ जो समस्त संकल्पों की सीमा पर विश्राम कर रहा है, उसके लिए अज्ञान कहाँ, विश्व कहाँ, ध्यान कहाँ और मुक्ति भी कहाँ? (साक्षी मात्र है)

८ जिसने इस विश्व को देखा हो वह कहा करे कि यह नहीं है, नहीं है। जिसे विषय वासना ही नहीं है वह क्या करें? वह तो देखता हुआ भी नहीं देखता।

९ कोई यह चिंतन किया करे सोअह्म सोअह्म- मै ही ब्रम्ह हूँ। जिसे कुछ दूसरा दीखता ही नहीं, वह निश्चित क्या चिंतन करे?

१० सुखी व श्रीमान जीवन्मुक्त पुरुष, जो करे भी कभी मुकर भी जाय ऐसे विषयी के समान काम करे तो भी विषयी नहीं होता। वह तो संसार का कार्य करता भी अतिशय शोभा को प्राप्त होता है।

११ मुक्त पुरुष को न कभी हर्ष होता है न विषाद। उसका मन सदा शीतल रहता है, वह संदेह होने पर भी विदेह के समान शोभायमान होता है।

१२ तत्वज्ञ निष्कपट सरल कृतकृत्य होता है, उसके लिए स्वच्छन्दता कहाँ, संकोच कहाँ व तत्व निश्चय भी कहाँ?

१३ जो अपने स्वरूप में विश्राम करके तृप्त है, दृश्य को आशा नहीं रखता, वह अपने अंतःकरण में जिस आश्चर्य का अनुभव करता है, वह कैसे किसको बतलाया जाय? ।। अष्टावक्र गीता से।।

1 भगवत्प्रेम उसी को मिलता है, जिसको कृपा करके भगवान देते है, और देते उसको है जो सर्वस्व उनके चरणों पर न्योछावर करके भी अपने को भगवत्प्रेम का अपात्र मानता है। और पल पल में प्रभु पर मुग्ध होते रहता है।

2 यहाँ बिना शर्त का समर्पण है,सब कुछ दे डाले, अर्पण कर दे और बदले में कुछ न चाहे।

3 प्रेम प्रत्येक जीव के अन्तर में विषयानुराग के दृढ़ और मोटे आच्छादन से आवृत है, विषयासक्ति, ममता, अहंकार के काले पर्दे से ढ़का है। इस आवरण, आच्छादन के हटते ही वह निर्मल और पवित्र रूप में प्रकट होता है, यह प्राकट्य ही प्रेम का उदय है। साधन एक मात्र निर्भरता ही हो।

4 जब प्रेमी अपने इष्ट के बिना रह नहीं सकता, जीना कठिन हो जाता है, उसे खाना पीना, सोना जागना, उठना बैठना सब कुछ भार हो जाता है, तब निष्काम चाह से इष्ट को दर्शन देने ही पड़ते है।

5 चाह को बढ़ाने का एक सफल उपाय है कि भोगों को अनित्य और दुःखोत्पादक समझकर उनकी इच्छाएं छोड़ दी जायँ।

6 जब तक दूसरी कामना कोई भी रहेगी, तब तक उनके प्राप्ति की उत्कंठा तीव्र हो नहीं सकती।

7 विरह वेदना जब तीव्र होकर असह्य हो जाती है, तब इष्ट के लिए दूर रहना कठिन हो जाता है।

8 महाप्रभु कहते है, वह चाहे गले लगा ले, चाहे अपने पैरों से रौंद डाले, चाहे विरह की आगों से प्राणों को जलाते रहे, चाहे जो करे, परन्तु मेरा तो प्राणवल्लभ वही है, दूसरा कोई नहीं।

9 मिलन में तो इष्ट केवल बाहर ही दीखते है, परन्तु वियोग में वे सर्वत्र सदा अंदर बाहर सबमें भरे तथा सबमें मिलते बोलते दीखते है। वे भक्त के चित्त को ऐसी चातुरी से चुराकर अपनी सम्पत्ति बना लेते है कि उस पर कभी दूसरे की दृष्टि पड़ ही नहीं सकती।

10 परमात्मा को प्रियतम जान लेने पर वास्तव में एक भी क्षण ऐसा न बीतेगा, जिसमें उनका स्मरण न हो। और समस्त विश्व ही प्रियतम बन जाता है। विश्व नहीं रहता, प्रियतम ही रह जाता है।

11 राज पाट धन दौलत स्त्री पुत्र मान इज्जत जीवन मरण लोक परलोक स्वर्ग मोक्ष सभी कुछ उस प्रियतम के प्रेम प्रवाह में बह जायेँगे। प्रियतमानुराग जगत के समस्त विषयानुराग को खा पीकर पचा लेता है। बीज भी रहने नहीं पाता, उनके हृदय में।

12 आपत्ति विपत्तियों को वे प्रियतम की छेड़खानी समझकर किसी प्रकार उन पर खीझते नहीं। वे तिरस्कार को पुरुस्कार, महान विपत्ति को सुख सम्पत्ति, अयश को यश समझता है। प्रेमी भक्त शीश उतारकर मरते नहीं, शीश उतारे फिरते है किन्तु प्रियतम इष्ट के लिए जीवन रखते है। मरने से उनको दुःख होगा अतः जीते जी मर जाते है और मरकर जीते है। यह एक विलक्षण मत्तता है।

13 सम्पूर्ण त्याग या सम्पूर्ण समर्पण ही प्रेम का स्वभाव है, यहाँ अपनी कुछ भी चाह नहीं है। इसमें त्याग ही त्याग, देना ही देना है, इसके विकाश से सर्वत्र भगवान दीखते है। प्रेम ही भगवान है।

14 प्रेम में तितिक्षा आ जाती है। जहां स्व भगवान में जाकर मिला की प्रेमी बन गये।

15 भगवान प्रेम के वश में होकर क्या नहीं करते, सब कुछ करते है।
।।श्री राधा माधव चिंतन से।।

1 ब्रम्ह तत्व की वास्तविक संकल्पना में व्यक्ति स्वयं ब्रम्ह हो जाता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व को दिव्यता में परिवर्तित करने के लिए ईश्वर की पूजा उपासना साधना आवश्यक है। ईश्वरत्व की अनुभूति तब तक प्राप्त नहीं होती जब तक व्यक्ति जीव की सीमाओं को लांघकर अपने आपको ईश्वरत्व की ऊंचाई तक नहीं उठा लेता। मानव मात्र जब सर्वव्यापी ब्रम्ह के स्वरूप तक पहुँचता है, तब वह परिपूर्णता व इसकी सच्चाई को प्राप्त करता है।

2 इसलिए केंद्र परिवर्तन हेतु आवश्यक ज्ञान व अभ्यास आवश्यक है। हमारे मन के हर स्थिति को सुषुम्ना से गुजरना है, यह मूलाधार से सहस्त्रार तक उठती है, व पीयूष में अनुभूत होती है, सुषुम्ना की गति व स्थिति के अनुसार मन की दशा व गति में भी परिवर्तन होता है। यह पीयूष कूटस्थ ब्रम्हयोनि के अतिरिक्त कुछ नहीं, यहां ध्यान केंद्रित करने पर वह सांसारिक चेतना व कठिनाइयों के मध्य रहते हुए आत्मानुभूति प्राप्त कर सकता है। मन को मूलाधार से सहस्त्र तक सुषुम्ना के भीतर से ले जाना अंतर्मुखी स्थिति प्राप्त करना है। जीव की स्वाभाविक रूप में शुद्धि होती है। जैसे ही सुषुम्ना खुलती है बुद्धि व अहंकार मानसिक संतुलन की स्थिति प्राप्त करते है, जीवन सीधे ईश्वरीय दिव्यता से अमृतोपम व स्वर्गीय आनन्द से भरपूर बनता है।

3 जिस तरह विद्युत धारा के स्पर्श मात्र से ही एक चौकाने वाला झटका अनुभव होता है, उसी प्रकार दिव्य ज्योति दिव्य ध्वनि एवं दिव्य स्पंदन का जिज्ञासु के शरीर में अनुभव होता है। इस अनुभव से ईश्वरीय अनुभूति पर विश्वास दृढ़ और गहरी हो जाती है, व वह अपने अंदर ईश्वर की उपस्थिति अनुभव करता है।

4 जिस तरह लोहा अग्नि से गर्म होकर अग्नि बनता है, उसी तरह जिज्ञासु ब्रम्ह के साथ मिलकर ब्रम्ह हो जाता है। इस बहुमूल्य प्राप्ति से न केवल व्यक्तिगत अपितु सामाजिक जीवन, सम्पूर्ण राष्ट्र, किवां विश्व के जीवन पर सभी रोगों को दूर करने हेतु दिव्य दवा का कार्य करती है।

।।परमहंस हरिहरानन्द जी।।

1 मनुष्यों की आयु सौ वर्ष के लगभग है, उसका आधा हिस्सा रातों की नींद में निकल जाती है, उसके बाकी आधा का शेष भाग बचपन और बुढ़ापे में बीत जाता है। बचे-खुचे शेष वर्ष रोग,वियोग, मुसीबतों के अलावा नौकरी चाकरी में निकल जाते है। पानी की लहरों के समान क्षण भंगुर जीवन में प्राणियों के लिए सुख कहाँ?

2 जिसमें चित्त को टिकाकर मनुष्य ब्रम्हा और इंद्र आदि देवगणों को तिनकों की भांति नगण्य मानते है। जिसका रस चखने के बाद त्रिलोकी के धन-वैभव और साम्राज्य आदि फीके और बेस्वाद हो जाते है। वह जो कोई भी भोग है, बस वही एक परम ब्रम्ह-रस है जो नित्य उपजता है और बढ़ता ही जाता है। सुनो रे साधो (साधक गण)! उसके अतिरिक्त, दूसरे क्षण भंगुर भोगों में आसक्ति मत करो।

3 संसार के सारे सुख-साधन और भोग बादलों की उमड़-घुमड़ में चमकती बिजली की तरह क्षणिक है। मनुष्य का जीवन हवा के थपेड़ों

से कांपते कमल के पत्ते पर टिकी बूंद की तरह झर जाने को है। प्राणियों की जवानी भोगने की तृष्णाएं टिकाऊ नहीं हैं, इन सबका हिसाब लगाकर इनके परिणामों का आकलन करके बुद्धिमान लोगों!शीघ्रता से अपनी बुद्धि को- धैर्य और चित्त स्थिरता की सिद्धि से सहज-सुलभ योग में, परब्रम्ह के चिन्तन में टिकाओ।

4 ऊंची अटारी, भले लोगों की प्यारी सज्जन-स्वभाव की संतान, बेशुमार धन-दौलत, कल्याणकारी पत्नी और चढ़ती जवानी-इन सब सांसारिक सुविधाओं को स्थायी और अविनाशी मानकर अज्ञानी जीव सृष्टि रूपी कारागार में बंदी होकर जीवन काट देता है। धन्य तो वे लोग है जो इन सब पदार्थों की क्षण भंगुरता देखकर विरक्त हो जाते है।

5 ये जो सांसारिक भोग है इन्हें कितनी आयु तक भी भोग लें, हर हाल में छूट ही जायेंगे। यदि व्यक्ति इन्हें नहीं छोड़ता तो इसमें और अपने आप छूट जाने में जानते है क्या अन्तर है? अपने आप छूट जाते है तो व्यक्ति के मन को (शक्तिहीनता की आत्मग्लानि के) संताप की ज्वाला में फूंक डालने का कारण बनते है, और अपनी दृढ़ संकल्प शक्ति से छोड़ देने पर-यही अनन्त आनन्द और सुख से भर देते है।

6 हाथों में प्रशंसा के योग्य एक ही गुण है और वह है त्याग, अर्थात दान देने की प्रवृत्ति। सिर की शोभा इसी में है कि गुरु-चरण कमलों में झुका रहे। मुख की शोभा सच बोलने में है।बाहों की शोभा है विजयकारी अतुल बल में, ह्रदय का आभूषण है, पवित्र विचार और कानों का अलंकार है, शास्त्रों के ज्ञान पर अधिकार। स्वभाव से महान लोगों की यही साज-सज्जा है, भले ही वे सांसारिक ऐश्वर्य से रहित हो।

7 अच्छे लोगों की संगति बुद्धि की जड़ता मिटाती है, बोलचाल में सच्चाई की मिठास घोलती है। मान-सम्मान बढ़ाने के गुर सिखाती है। पाप कर्मों

से दूर रखती है, मन-मस्तिष्क को प्रसन्न करती है, यश-कीर्ति को सुदूर दिशाओं में फैला देती है। आप ही कहें कि सत्संगति कौन सा उपकार नहीं करती!

8 अपनों के साथ सदा सदव्यवहार करना, सेवकों के साथ दया-भाव रखना, बुरों के साथ कठोरता, सज्जनों से अनुराग, राज्य अधिकारियों के साथ न्याय-नीति का व्यवहार, विद्वान लोगों के साथ निश्छलता, शत्रुओं के साथ बहादुरी, आदरणीयों के साथ विनम्रता, और महिलाओं के साथ शिष्टता। ऐसी कलाओं से जो पुरुष निपुण है, उन्हीं पर संसार टिका हुआ है।

9 टूट चुकी है जिसकी आशा, पिटारी में पीड़ित शरीर वाले, भूख से निढाल इंद्रियों वाले साँप के मुंह में-रात को पिटारी को छेदकर चूहा स्वयं आ पड़ा। उसके मांस से भूख मिटाकर सांप तुरंत उसी छेद-मार्ग से निकल गया। अरे जहां पड़े हो वही पड़े रहो, मनुष्यों की बढ़ती-घटती में, उन्नति या अवनति में कर्मफल रूपी भाग्य ही मुख्य कारण है।

10 विधाता ने सांपों के लिए पवन ही आहार बना दिया है, जिसमें न तो मारकाट करनी पड़ती है और न दौड़ भाग करनी पड़ती है, बैठे बिठाए पवन फाँकने को मिल जाती है। पशुओं को घास-पात-भोजी बना दिया है और धरती पर कहीं भी सो लेने योग्य बना दिया है। परंतु संसार-सागर से पार उतरने में सक्षम जो मनुष्य नामक बुद्धिमान प्राणी है, उनकी जीविका के ऐसे साधन बना दिये है कि- उन साधनों को खोज निकालने में ही बेचारे मनुष्य की सारी खूबियां और सभी गुण मिट्टी में मिल जाते है।

11 जो मनस्वी लोग है जिन्हें सांसारिक प्रलोभनों में कोई रुचि नहीं, उन्हें समूचे ब्रम्हांड की निधियां क्या लुभाएंगी-नन्ही सी मछली की छलांगों से सागर में तो कोई क्षोभ पैदा नहीं होता।

12 विधाता ने जो थोड़ा सा घना धन, हमारे ललाट की तख्ती पर लिख दिया है वह रेगिस्तान में भी निश्चय से प्राप्त होता है।और स्वर्णगिरी / सुमेरु पर भी उससे अधिक नहीं मिलता। इसलिए धैर्य से काम लो, संम्पन्न लोगों के पास जाकर भिखमंगे जैसा आचरण मत करो। देखो, घड़ा कुएं में से और समुद्र में से भी, एक- समान ही जल ग्रहण कर पाता है।

13 यदि सहनशीलता का गुण है तो कवच की क्या जरूरत है, यदि क्रोध से जलता भुनता रहता है तो वैरियों की क्या आवश्यकता है। यदि सच्चा मित्र साथ है तो दिव्य औषधों से क्या लाभ, यदि दुर्जनों से सांठगांठ है तो सांपों की क्या जरूरत, यदि लज्जा लोक लाज और मर्यादा में रहने का स्वभाव है तो नकली अलंकरणों की क्या आवश्यकता? यदि लोभ लालच है तो बुराई में फंसने की क्या आवश्यकता, यदि चुगली खाने की आदत है तो पापों की क्या जरूरत। यदि सत्य में प्रवृति है तो तप करने की क्या आवश्यकता, यदि मन (चंगा तो कठौती में गंगा) पवित्र है तो तीर्थों में क्या धरा है, यदि सज्जनता से मन ओत प्रोत है तो अपनों की क्या चिन्ता, यदि यशस्वी और महिमा मंडित है तो सजने संवरने में क्या धरा है और आभूषणों की क्या आवश्यकता, यदि उत्तम विद्या (जैसेआत्मविद्या) का धनी है तो सांसारिक धनों के पीछे क्या दौड़ना, यदि अपयश फैला रखा है तो मौत की क्या आवश्यकता?

14 भले लोगों से घुलने-मिलने की कामना, दूसरों की अच्छाइयों को ग्रहण करने की रुचि, बड़े-बूढ़ों गुरुजनों के प्रति विनम्रता, ज्ञान प्राप्त करने की ललक, अपनी ही पत्नी से प्रेम-प्रीति, लोगों में बदनाम होने से डरना, कल्याण स्वरूप परमात्मा में भक्ति भाव, अपने मन इंद्रियों को वश में करने की शक्ति, बुरे लोगों की संगति से बचे रहना। विपत्ति आने पर धैर्य से काम लेना, युद्ध में छक्के छुड़ा देना, वेदादि श्रुतियों-स्मृतियों के

स्वाध्याय में लगन। ये शुभ गुण जिन लोगों में विद्यमान है उन महानुभवों के लिए हमारा नमस्कार है।

15 दशों दिशाओं और भूत-वर्तमान-भविष्यत आदि सभी कालों में (व्याप्त), अखण्ड, अन्तहीन एवं चेतन-स्वरूप (परमात्मा) को जानने के लिए अपने आत्मा में अनुभव करना ही एकमात्र मापदण्ड है-उस शांत ज्योतिस्वरूप को प्रणाम है।।

।।भर्तृहरि शतक से।।

1 जीवन के युद्ध में सहनशीलता और स्थिरता ही दुर्जेय अस्त्र है, वे सशस्त्र सेना से भी अधिक शक्तिशाली है।और समस्त संकटों को निष्क्रिय तथा निष्कासित करने में सक्षम है।और सत्य पर आधारित हमारी इच्छा, दृढ़ तथा अटल रहे।

2 विजय उसी के हाथ लगती है जो सर्वाधिक काल तक समय तक सहन करते हुए लंबे समय तक डटा रहता है। कठिनाइयां तथा दुर्भाग्य, संकट और कष्ट अपरिहार्य है। साहस तथा धैर्य के साथ उन्हें सहन करना ही-उन पर विजय पा लेना है।

3 हमें अपनी अंतर्जात शक्ति तथा अपने आंतरिक संसाधनों में अविश्वास नहीं करना चाहिए। हमारे भीतर ही दरिद्रता को दूर करने वाला अक्षय भंडार पड़ा है। अतः सहायता के लिए अपने बाहर न देखें।

4 हे अहुर मजद!मुझे अपने ही प्रयासों से रहना और जीवन के कठोर संघर्ष में सफलतापूर्वक लगकर अपना रास्ता बनाना सिखाओ। मुझे आत्म निर्भरता के अदम्य भाव का वर दो। मुझे अपने आप में अटल श्रद्धा और सबल विश्वास प्रदान करो।

5 श्रमपूर्ण कार्य ही जीवन के उद्देश्य को सार्थकता प्रदान करता है,और विश्राम व मनोरंजन को सुखद बनाता है। मनुष्य कर्म के द्वारा समृद्ध होने के लिए पैदा हुआ है।अन्न का एक दाना ले जाने के लिए परिश्रम करने वाली एक चींटी को भी तंग मत करो, क्योंकि उसमें भी जीवन है और जीवन वस्तुतः मधुर है।

6 अपने पड़ोसी के दोषों को ढूंढकर नुक्ताचीनी मत करो। अपने अन्तर में झांक कर देखो, कहीं वहां बुराइयां तो नहीं है।

7 अहुर मजद(परमात्मा), प्रथम और सर्वोत्तम संगीतज्ञ है। उसकी सृष्टि ही उसका उदात्त संगीत है। एक पवित्र नारी अहुर मजद की सर्वोत्कृष्ट सृष्टि है। उसका संगीत पूरे ब्रम्हांड में व्याप्त है-उसे वृक्षों के बीच हवा की सरसराहट में, झरनों से जल की मरमर ध्वनि में, चिड़ियों की चहक में और निष्ठावान भक्तों के हार्दिक उद्गारों में सुना जा सकता है।

8 गीत ही वाणी की सबसे मधुर और सुंदर, सबसे मृदु और प्रिय-अभिव्यक्ति है। तुम्हें महिमान्वित और गौरवान्वित करने वाले मेरे भक्तिगीत तुम तक पहुंचे।

9 ज्ञान ही मनुष्य की सर्वोत्तम उपलब्धि है। ज्ञान का न्यायसंगत प्रयोग ही विवेक कहलाता है। ज्ञान मन को सर्वदा युवा रखता है। संयम, सहिष्णुता और हितैषिता में ही - सारा विवेक निहित है। मनुष्य द्वारा ईट तथा गारे से कुछ भी बनाया हुआ समय आने पर नष्ट हो सकता है, परन्तु ज्ञान तथा विवेक से प्रेरित सत्कर्म सदा सर्वदा जीवित रहेंगे।

।।जरथुस्त्र।।

- जब कोई अपना गलत कदम पहचानने लगता है-तो परिवर्तन प्रारम्भ हो जाता है। जीवन में सुधार प्रारम्भ करना-क्रांति प्रारम्भ करना है।

मनुष्य का जीवन जितना सादा और स्वाभाविक होगा-उतना उसका चित्त प्रसन्न रहेगा। जीवन हंसने का नाम है, रोने से समस्याएं और बढ़ जाती है, घबराने से दुखों की आंधी तेज चलने लगती है। स्वभाव के सुधार होने से आचरण का सुधार अपने आप होने लगता है। भरोसे से, और स्वीकारिता से सब कुछ ठीक हो जाता है। ज्ञान-तलवार है, धारण-धार है, अनुभव-तलवार चलाने की कला है, जो कैसी भी परिस्थिति हो, सामना करके मार भगाती है। चिन्तन से प्राप्त अनुभव से मनुष्य भविष्य में विपदाओं के आने से सामना करते हुए दुःखी व चिन्तित होने से बच सकता है। हमारा भाग्य-हमारे विचारों के साथ परिवर्तित होते रहता है। हमारे अंतःकरण में यदि सौंदर्य की पृष्ट भूमि बैठ जाय-तो हम सृष्टि में सदैव, विवेकमय सौंदर्य का सर्वत्र दर्शन करने लगेंगेभावनाओं, विचारों, हृदय तथा मन्तव्यों का सौंदर्य जो हमारे अंतःकरण में निवास करता है-वही वास्तविक नित्य सौंदर्य है। हमेशा अपने मापदंड स्वयं बनाएं, स्वयं के प्रति ईमानदार रहें, अपनी क्षमता से ही मुकाबला करें। शत्रु है-स्वयं में, स्वयं की-घृणा में, स्वयं के-भय में, स्वयं के-द्वेष व ईर्ष्या में=लेकिन दिखाई पड़ता है, बाहर।मेहनत के बिना-दौलत,अंतरात्मा के बिना-आनन्द, चरित्र के बिना-ज्ञान, नैतिक मूल्यों के बिना-व्यापार, त्याग के बिना-धर्म=इनकी गणना पाप में होती है। मनुष्य अपने अलक्षित वातावरण का-स्रष्टा है, जो चुपचाप बिना जाने पहचाने, अपने चारों ओर सुखद, उत्साहप्रद अथवा दुःखद परितापमय वातावरण की सृष्टि किया करता है। वर्तमान वह कल है, जिसके बारे में आप-कल चिंतित थे। दृढ़ता-पुरुषार्थ प्रदान करती है, दृढ़ व्यक्ति अपने कार्यों में खरा और पूरा होकर अपने कर्तव्य पर डटा रहता है। मनुष्य अपनी सामर्थ्य के द्वारा अकेला समय के प्रवाह और गति को मोड़ सकता है। दुर्बलता में ऐसी गुप्त आकर्षण शक्ति होती है-जो अत्याचारी को दूर से खींचकर, आपके ऊपर अत्याचार करने आमंत्रित करती है। सौंदर्य के लिए, मन

में-यौवन, उत्साह, प्रफुल्लता, प्रेम, सहानुभुति आदि के उदार विचार प्रचुरता से आने चाहिए। प्रयत्न कीजिये इन मनोभावों का आलोक आपके मुखमंडल पर सदैव के लिए हो। कुदरत के नियम तोड़ोगे-तो सजा अवश्य मिलेगी। कष्ट हमारे पापों के प्रायश्चित है। आत्मानुशासित व्यक्ति, संसार का स्वामी होता है। पवित्रता के बिना, एकाग्रता का कोई मूल्य नहीं है। अनुशासन वह चीज है-जिस पर जीवन मर्यादा का समुद्र लहराता है। आंतरिक परिवर्तन ही-जीवन का दिव्यीकरण है।

।।आनन्द सागर से।।

1 दण्डी वह है जो अहंकार को दंडित करता है और आती कामना को खण्डित करता है। पांचों इन्द्रियों का मान मर्दित करता है।

2 जब नीचे के कमल में से उर्ध्व कमल में प्राणपुरुष का वास होने लगे तब प्राण वायु बहिर्गामी होने के बदले उलट कर आभ्यन्तर गामी हो जाएगी और ज्योति का प्रकाश होगा।

3 जो बातें आभ्यन्तर ज्ञान को उत्पन्न करती है वे ही योगमार्ग में सब कुछ है। पंचतत्वों (पंच ज्ञानेन्द्रिय) के बाह्यप्रसारण का निवारण कर अपने आत्मा का स्वयं चिन्तन से सब चिंताएँ दूर हो जाती है।

4 जो असाध्य मन को साधते है, पवन को उलटकर सुषुम्ना के मार्ग में लगा देते है, और अमृतपान करते है।

5 साधु सन्तों के सत्संग और उपदेश श्रवण से जो लाभ होता है, वह किसी यात्रा से सम्भव नहीं। सद्गुरु के मिलने और उन्हें सिर झुकाने से यह जगत रात्रि जागते जागते ज्ञानमय अवस्था मे बीत जाती है।

6 वही शुद्ध निरंजन ब्रम्ह रह जाता है और शाखा का कोई भेद नहीं रह जाता, वही सर्वव्यापी रह जाता है, जो न सूक्ष्म है न स्थूल।

7 ब्रम्हरन्ध्र में कुंडलिनी प्रवेश से ब्रम्हांड फोड़ना चाहिए, शून्य रूप नगर को लूटना चाहिए, जिसका भेद कोई नहीं जानेगा।
।। गोरखनाथ जी ।।

1 जो सद्गुरु के ज्ञान को ग्रहण करता है, कुण्डली बेध किए हुए से बोध प्राप्त करता है, सिद्ध से निर्लिप्तता। वह भ्रम में नहीं बहता, उस पर गुरु की अखण्ड कृपा रहती है।

2 मन या तो कामिनी के क्रोड़ में, आशा के फंदे में या गुरु के ओट में रहता है। निरालम्ब रहना दुःसाध्य है। उसे न कुचलकर मारो न खाली रखो। ब्रम्हाग्नि का योगाग्नि का भेद जानने से बूढ़ी (माया) बन्धन में डालने वाली, विद्या रूप से गुरुआनी होकर मुक्ति दे देती है।

3 ब्रम्हज्ञान का ही अध्ययन मनन करो। यह तत्व कोई विरला ही समझ पाता है। माता के रज और पिता के बिंदु से निर्मित इस शरीर को वश में कर लो। रक्त और मांसमय काया को ब्रम्हाग्नि में भस्म कर दो, और उसकी ओर से अनासक्त हो जाओ।

4 पंच वायु को पांचों इन्द्रियों को विषयों से वापस हटा लेता है, दिन रात सचेत रहता है, ऐसा स्वयं ब्रम्हस्वरूप हो जाता है।

5 जब इड़ा पिंगला का, आधार पर के सूर्य, सहस्त्र के चन्द्रमा से, मेल हो जाता है। सत रज तम, दबा लिये जाते है, तब अनाहत रूप तूर बजता है। नाद बिंदु दोनों को बजा लो (साधो) अनाहत रूप बाजे को भरो, अर्थात संगीत ध्वनि निकालों।

6 सुषुम्ना मार्ग में जब पवन का निरोध हो जाता है तब वह अमर हो जाता है, आयुरूप तेल समाप्त नहीं होता, जीवन रूप शिखा नहीं बुझती। नित्य स्वरूप हो जाता है।
।। गोरखनाथ जी ।।

1 वही भक्त धन्य है, जो प्रभु के चरण नहीं छोड़ता और वे प्रभु धन्य है, जो अपने भक्त को नहीं छोड़ते।

2 दुर्भाग्यवश यदि सेवक कभी अन्य स्थान पर चला भी जाये, तो वही स्वामी धन्य है जो उसके बाल पकड़कर खींच लाता है।

3 देहत्याग के द्वारा नहीं, भक्ति को छोड़ उन्हें पाने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। बिना भक्ति के प्रेम का उदय नहीं होता और प्रेम के बिना उनकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

4 तुमने मुझे आत्मसमर्पण किया है, अतः तुम्हारी देह मेरी निजी सम्पदा है। दूसरे की सम्पत्ति को नष्ट करने का तुम्हें क्या अधिकार है? क्या तुम धर्म अधर्म का विचार नहीं कर पाते?

5 तुम्हारा शरीर एक महत्वपूर्ण यन्त्र है, इसके द्वारा अपना बहुत सा कार्य सिद्ध करूँगा।

6 उनका भजन करने वाला ही बड़ा है और जो उनकी भक्ति नहीं करता, वह हीन और तुच्छ है।

7 दीनों पर ही भगवान की अधिक दया होती है, क्योंकि कुलीन, पण्डित और धनिकों में बड़ा अभिमान होता है।

8 भगवदार्पित भक्तों का शरीर अतिपवित्र होता है।

9 यद्यपि तुम जगत्पावन हो और तुम्हारे स्पर्श से देवतागण भी पवित्र होते है, तथापि मर्यादा का पालन भक्त का स्वभाव है, साधु का आभूषण है।

10 मर्यादा का उल्लंघन करने से लोग उपहास करते है तथा इहलोक और परलोक दोनों का नाश होता है।

11 तुम्हारा मर्यादा का रक्षण करने से मेरा मन सन्तुष्ट हुआ, तुम्हीं यदि ऐसा न करो तो दूसरा कौन करेगा!

12 सच्चे त्याग वैराग्य के बिना भगवान की कृपा नहीं होती, बल्कि केवल विडम्बना ही हाथ लगती है।

13 जीव की देह प्राकृत तथा देही चैतन्य होता है, ईश्वर की देह और स्वरूप एक ही वस्तु चिदानन्द है।
।। चैतन्य महाप्रभु ।।

1 देह से लेकर सृष्टि के सभी पदार्थ परमात्मा के है। मैं और मेरा कुछ नहीं है। यह जड़ आत्म निवेदन है।
2 चंचल जीवात्मा जगदीश का ही अंश है, जीवात्मा अलग नहीं है, मैं कर्ता नहीं हूँ। यह भाव चंचल आत्म निवेदन है।
3 चंचल माया तो स्वप्नवत है, परमात्मा ही निश्चल एवं निराकार है, चंचल माया के अभाव में मैं की कल्पना ही व्यर्थ है। इसका ज्ञान और भान होना निश्चल आत्मनिवेदन है।
4 इन तीनों प्रकार के आत्मनिवेदन से स्पष्ट होने लगता है, कि हम का कहीं अस्तित्व ही नहीं है और न कहीं द्वैत भाव है। इस अवस्था में अहंकार समूल नष्ट हो जाता है।
5 यह स्थिर होने पर, पूर्ण ज्ञान के प्रकट होने पर कहने सुनने की आवश्यकता ही नहीं रहती। स्वयमेव हम उसी में विलीन हो जाते है। यह सच्चा आत्मनिवेदन है। इस दशा का वर्णन करने में वाणी कुंठित हो जाती है।
।। समर्थ रामदास जी ।।

1 तुमने अपने बहुत से नामों में अपनी सारी शक्ति पूरित कर दी है और उनका स्मरण करने में काल आदि का भी कोई नियम नहीं है।
2 ऐसी तो तुम्हारी कृपा है, परन्तु हे प्रभो, मेरा ऐसा दुर्भाग्य है कि इस जन्म में मुझे उनमें अनुराग ही नहीं हुआ।

3 घास के तिनके से भी विनम्र और वृक्ष से भी अधिक सहनशील होकर, अपने अभिमान को त्यागकर और दूसरों को सम्मान देते हुए सर्वदा हरि का संकीर्तन करते रहना चाहिए।

4 हे जगदीश्वर मैं धन जन सुन्दर स्त्री अथवा सर्वज्ञत्व की कामना नहीं करता, हे प्रभो, जन्म जन्म में तुम्हारे प्रति मेरी अहैतुकी भक्ति बनी रहे।

5 वह दिन कब आयेगा, जब तुम्हारा नाम लेते ही मेरे नेत्रों से अश्रुधारा बह चलेगी, वाणी गदगद होकर मेरा कण्ठ अवरुद्ध हो जायेगा और शरीर रोमांचित हो उठेगा।

6 गोविन्द के विरह में मुझे क्षणमात्र भी युग के समान प्रतीत होता है, नेत्रों से वर्षा ऋतु के समान अश्रुधारा बहती है और सम्पूर्ण जगत शून्य सा प्रतीत होता है।

।। श्री चैतन्य महाप्रभु ।।

1 भजन करते समय निर्लज्ज चित्त में मकान के, खानपान के,अपनी मान, अपनी जान के ध्यान आ जाते है। मूर्ख को इतनी समझ नहीं कि ये चीजें चिंतन योग्य नहीं, चिंतन योग्य तो एक राम ही है।

2 लोग कहते है भजन में मन नहीं ठहरता, एकाग्रता नहीं होती। एकाग्रता भला हो कैसे?

3 कृपणता के कारण बन्दर की तरह मुटठी से पदार्थों को छोड़ते नहीं और मुट्ठी में लिया चाहते हो राम को। आखिर ऐसा अनजान भोला तो वह भी नहीं कि अपने आप ही हत्थे चढ़ जाय।

4 भक्ति तो चित्त की उस दर्जे की उदारता का नाम है, जिसमें अपने आप को उछाल कर हरिनाम पर वारकर फेंक दिया जाय।

5 तंग दिलवाला क्या जाने उपासना के आनन्द को? जिसका दिल बादशाह नहीं, वह क्या जाने भक्ति रस को!

5 और बादशाह वह है, जिसका अपने दिल के भीतर से एक कौपीन के साथ भी दावा न हो।

6 उपासना की जान समर्पण और आत्मदान है। जब तक तुम अपनी खुदी और अहंकार को परमेश्वर के हवाले न करोगे, तब तक तुम्हारें पास बैठना तो दूर, तुमसे कोसों भागता फिरेगा।

7 शिशु की तरह नन्हा सा तन भोला भाला मन माता की गोद में डाल दिया।तो सारे जहान में उसके लिए कौन सा आराम शेष रहा और कौन सी चिंता बाकी रही।

8 कैसा निर्भय है, आंधी हो तूफान हो वर्षा हो भूकम्प हो कुछ भी हो, उसका बाल बाँका नहीं होगा।क्या मीठी नींद सोता है और सलोनी जाग्रति उठता है।

।। स्वामी रामतीर्थ ।।

1 सब देवताओं का मूल यह अंतरात्मा है। भूमण्डल के सब लोग इसी को प्राप्त होते है। यही अनेक प्रकार के देवताओं का रूप धारण करके बैठा है, यही अनेक शक्तियों के रूप में प्रकट हुआ है। यही सब वैभवों का भोग करने वाला है। विचार करने से जान पड़ता है कि इसका विस्तार बहुत अधिक है।

2 सद्गुरु स्वरूप निश्चल और कभी न मिटने वाला है। सद्गुरु को अमृत की उपमा भी नहीं दी जा सकती क्योंकि अमृत प्राशन करने वाले देवता भी अन्त में मृत्यु को प्राप्त होते है, पर सद्गुरु कृपा शिष्य को अमर बना देती है।

3 उन्हें कल्पतरु कहें तो कल्पतरु केवल इच्छानुसार ही देता है, जब कि सद्गुरु इच्छाओं का अन्त कर निर्विकल्प पद प्रदान करते है। फिर उस कल्पवृक्ष को स्वीकार कौन करेगा?

4 सद्गुरु कृपा से मन बिल्कुल चिन्ता मुक्त है, फिर चिंतामणि की इच्छा कौन करेगा? और जो निष्काम हो जाता है, उसे काम धेनु के दुग्धधान की भी आवश्यकता नहीं होती।

5 सद्गुरु के द्वार पर तो मोक्ष लक्ष्मी हाथ जोड़े खड़ी रहती है। स्वर्गलोक, इंद्र का वैभव यह सब कालान्तर में नष्ट हो जाते है पर सद्गुरु कृपा से प्राप्त होने वाला सुफल कभी नष्ट नहीं होता।

6 सब सृष्टि नाशवंत है अतः उसके पदार्थों की उपमा सद्गुरु को कैसे दी जाय?

7 अतः सदगुरुदेव! आपकी जय हो। आप विश्व के मूल कारण है और विश्व का पोषण भी आप ही करते है। आप परम् पुरुष, दीनबन्धु और मोक्षध्वज अर्थात शरणागत के मोक्ष दाता भी है।

8 आपका अभय हस्त शरणागत के मस्तक पर पड़ते ही जैसे सूर्य प्रकाश से अंधकार का तत्काल नाश हो जाता है, वैसे ही यह अनिवार्य माया भी तिरोहित हो जाती है। सूर्यास्त के पश्चात रात्रि में अंधकार से सारा ब्रम्हांड भर जाता है, पर सद्गुरु आप वैसे नहीं है। इसलिए आप अज्ञान का समूल नाशकर उसे जन्म मरण से मुक्त कर देते है। जो गुरुभक्त सद्गुरुकृपा से ब्रम्हरूप हो जाता है, वह पुनः देह बुद्धि के संशय में नहीं पड़ सकता।

9 पारस लोहे को सोना बना देता है पर अपना वह गुण नहीं देता। परन्तु सद्गुरु का जो सच्चा सेवक है, वह अनेकों को ब्रम्हज्ञान के उपदेश देने का अधिकारी बन जाता है। उनकी कृपा से वह सद्गुरु बन सकता है। इसलिए सद्गुरु को पारस की उपमा शोभा नहीं देती।

10 यदि उन्हें क्षीरसागर कहें तो कल्पान्त में वह नाशवान है जबकि सद्गुरु स्वरूप सदा शाश्वत है।

11 जिस प्रकार आंखों में अंजन लगाने से जमीन में छिपा धन दिखाई देने लगता है, वैसे ही सद्गुरु के उपदेश से, कृपा से, शिष्य के अन्तःकरण में ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। बिना सद्गुरु के कल्पान्त तक मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता।

।। समर्थ रामदास जी ।।

1 संसार में सब आश्चर्य है, शांति को कोई नही चाहता। कठिन साधना के द्वारा पूर्व के कर्मो को नष्ट किया जा सकता है, पुरुषार्थ और कृपा दोनों अनन्योन्याश्रित होते है।

2 क्रिया करो, अभ्यास करो, उसी से निर्भरता आयेगी। गुरुदेव का नाम ही एकमात्र सहारा है और गुरुदेव पर पूरी निर्भरता यही कर्म है। यह निर्भरशीलता ही साधना का अंतिम अध्याय है।

3 साधना आदि के द्वारा स्वभाव में प्रतिष्ठित हो सकने पर सारे अभाव मिट जायेंगे, स्थूल भाव के केंचुली का त्याग ही मुक्ति है।

4 स्थूल के साथ प्रिय और अप्रिय का भाव जगता है, सुख दुःख रूप द्वन्द का जन्म होता है।

5 चिन्मय रूप ही दिव्य पुरुष का यथार्थ स्वरूप है, उसकी पूजा बिना हम अपने भीतर की चित्शक्ति को कभी जगा नही सकते।

6 जड़ को पकड़कर उससे अपने को अलग करके चैतन्य में पहुँचना होगा।

7 जो निर्मल होकर परमेश्वर की शक्ति के साथ जितना युक्त हो सकते है, उनमे उतनी ही उनकी शक्ति की स्फूर्ति होती है, यह युक्त होना एक दिन में नही होता, क्रमशः होता है। परमेश्वर ही तो आदर्श योगी है, उनके सिवा महाशक्ति का पूरा पता और किसी को प्राप्त नही है।

8 शुद्धि या पवित्रता जब सम्यक प्रकार से सिद्ध हो जाती है, तब ईश्वर सायुज्य की प्राप्ति होती हैं। तब योगी की शक्ति की कोई सीमा नही रहती।

।। स्वामी विशुद्धानन्द जी के जीवनी और दर्शन से संग्रहित ।।

1 माया बुलबुले की तरह अपने लुभावनेपन के बिना अपना वजूद व हस्ती नहीं रखती।

2 बुलबुले का अस्तित्व क्षण भंगुर है और यह पानी में से पैदा होकर पानी में ही समा जाता है।

3 माया की असलियत भी यही है की इसे परमात्मा ने पैदा किया है और परमात्मा में ही समा जाना है।

4 यह संसार परमात्मा का खेल है और द्वैत माया का पैदा किया हुआ भ्रम है। इसका दूसरा नाम अहंकार है।

5 यही अहंकार जीवन के मन में बुलबुले की तरह अपना अलग वजूद का भ्रम पैदा करता है।

6 जो जीव माया से प्यार करता है, वह बर्बाद होता है, दुःख पाता है।

7 और जो परमसत्य परमात्मा से प्यार करता है, वह सुख शांति से रूहानी आनन्द का अनुभव करता है।

8 असलियत का ज्ञान प्राप्त करने में ही छुटकारा है, नहीं तो दिखती अनेकता की भूल भुलैयाँ में खो जाने का संताप सहना पड़ता है।

9 यह सन्ताप परमसत्य से जुदा होने का दर्द है।

10 परमात्मा सर्वव्यापक है। परमात्मा निर्मल है उसका अनुभव खुशबू की तरह महासूक्ष्म व आनन्ददायक है, पर वह अदृश्य है।

11 परमात्मा परम् कृपालू है, वह हर जीव के हृदय में बसता है। इसकी महानता इतनी बेअंत है कि बयान से बाहर है।

12 परमात्मा अंतर्यामी है। इसकी प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन गुरु कृपा और नाम सुमिरन है। इससे जीवन का अर्थ बदल जाता है, माया के मोह को छोड़कर मनुष्य परमात्मा से जुड़ जाता है।

13 गुरु मनुष्य को दैवीय गुणों का धारक बनाता है,अहं से पैदा होने वाले अवगुणों से बचाना ही दैवी गुणों का धारक बनाना है। सतगुरु की प्राप्ति से सारे भ्रम और दुविधा मिट जाते है।

।। संत नामदेव जी ।।

1 विष्णु का अर्थ है सर्वव्यापक। यदि विष्णु बनना है तो सभी को अपना समझो, जानो। संसार में सारे ईश्वर के विराट रूप को देखो और संकुचितता छोड़ दो। विशाल हृदयी बन जाओ।

2 विष्णु को पाना है, विष्णु की ऊँचाई तक पहुँचना है तो सूर्य बन अर्थात सूर्य के गुणों को धारण कर।

3 सूर्य का पहला गुण है चमक, आकर्षण। ज्ञान की, योग्यता की, योगाभ्यास की, भक्ति की, ब्रम्हचर्य की, अपने अंदर यह चमक रूपी आकर्षण पैदा कर। और दूसरों को भी दे।

4 सूर्य अपने केंद्र पर सदैव स्थिर रहता है। मानवता तेरा केंद्र है। मानव बन, पशु न बन।दानव न बन। दुनियां को रोशनी देने का काम कर। रास्तों को रोशन बना दे। यह कभी अपने कर्तव्य से हटता नहीं, इधर उधर नहीं होता, दो अरब वर्ष हो गये कभी भी, अवकाश नहीं माँगता। कर्तव्य के पालन में एक क्षण भी प्रमाद नहीं करता। हम अपने केंद्र पर स्थिर न रहे, तभी तो देश में गिरावट आई।

5 सूर्य कुओं, तालाबोंनदियों, झीलों, सागरों से जल लेकर। बादल बनाकर उसे वर्षा के रूप में सबको वापस करके भरपूर कर देता है। पहाडों,

झरनों, नदियों, जंगलों, सबमें। सभी ओर नये जीवन की शहनाइयाँ बजने लगती है। मानव तू भी जीवन निर्वाह के लायक दौलत रख, बाक़ी सब जरूरतमंदों को बाँट दे।

6 सूर्य का यह भी गुण है की दल के दल बादल आ जायें, घनघोर घटाएं उसे कई दिनों के लिये छुपा ले, तो भी वह निराश नहीं होता। किन्तु तब एक दिन बादल फट जाते है। और सूर्य हँसता हुआ चमक उठता है। तू भी निराश न हो, आपत्ति और क्लेश आये है तो तप की भावना से उनको सहन कर। तुम आत्मा हो। अजर, अमर और सदा रहने वाले हो। यह दुःख, कष्ट, मुसीबतें सब अस्थायी है। अपने आपको अपने मन में विश्वास और स्वामी में विश्वास रखकर प्रसन्न रखो। ईष्ट में आत्मा में लगन और विश्वास से दुःख भी सुख बन जाता है।

7 सूर्य जहाँ भी बुरे कीटाणु हो, उनके साथ नरमी न बरतते हुए पूर्णतः नष्ट कर देता है। बुराई, अत्याचार, अन्याय के विष को तू भी जला कर राख कर दे।

8 सूर्य एक बात और सिखाता है, कि गन्दगी हो, कीचड़ हो, खारी समुद्र हो सबसे उसकी अच्छाई को ले लो और बुराई को छोड़ दो। उसकी गन्दगी को दूर कर दो। स्वयं गन्दा न बनो।

9 सूर्य का हमारी संस्कृति से गहरा सम्बन्ध है। हम सूर्य को नमस्कार करते है, ईश्वर जानकर नहीं। किन्तु उनकी इन्हीं गुणों को धारण करने के लिए। यजुर्वेद का अंतिम वाक्य है।

10 यह जो सूर्य में चमकने वाला, दिखाई देने वाला, जगमगाता हुआ पुरुष है। वह मैं हूँ। मेरी और उसकी आत्मा एक है। यह आत्मा ही सारे संसार की रक्षा करने वाला। अनन्त आकाश में फैला हुआ।ब्रम्ह यही है।

।। स्वामी आनन्द सरस्वती ।।

1 परम् ईश्वर तत्व से निकली हुई अनन्त शक्ति का ही नाम महाशक्ति है। महाशक्ति कोटि कोटि ब्रह्मांडो की जननी है। सत्य सनातन सत्ता का आदि नारी तत्व है, और वह सदैव पुरुष तत्व (ब्रम्ह या शिव) से संयुक्त है।

2 असंख्य ब्रह्मांड और उसमें कोटि कोटि जीव और वस्तु उस महाशक्ति के विकास है। समस्त जीव और प्राणी उसके रूप आकार है।

3 पंचमहाभूत, इंद्रियाँ, मन, तथा सृष्टि के मूल में बुद्धि से परे जो दिव्य चेतन ज्योर्तिमयसत्ता आत्मा है, वही उसका मूल स्वरूप है। सृष्टि, विकास और प्रलय उसकी क्रीड़ा के चिन्ह है।

4 सभी वस्तुओं में वह जगतजननी ही नाम और रूप के द्वारा प्रकट हो रही है। अज्ञान के कारण हम उन्हें पुरुष या स्त्री विशेष मान लेते है।

5 वस्तुतः ये विश्वजननी के रूप और आकार है, वह प्रत्येक व्यक्ति में शारारिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यत्मिक आदि सभी रूपों में शक्ति के रूप में कार्य कर रही है।

6 विश्व की विविध विभिन्नता और संकुलता में माँ की परम् एकता और एकरसता ही समस्त सत्ता का सर्वोपरि रहस्य है। वह सर्वेसर्वा है।

7 वही, चल, अचल, साकार, निराकार, दृश्य, अदृश्य, व्यक्त, अव्यक्त है। बुद्धि की समझ से परे है।

8 उसे आत्म समर्पण द्वारा प्राप्त करना ही मानव जीवन की एकमात्र सर्वोपरि उपलब्धि है।

9 यही परम् पूर्णता, सिद्धि और चरमलक्ष्य है। ऐ, विश्वमाता तेरी जय हो, सदा ही जय हो।

।।स्वामी श्रीरामदास जी।।

1 जब तक मलिन देहात्मबोध है, तब तक मैं के रूप में कर्ताबोध है, सुख दुःख रूप फल का भोक्ता भी मैं ही हूँ। यह भावबोध बद्धावस्था है, अर्थात निरन्तर जन्म मृत्यु का प्रवाह चल रहा है।

2 अविवेक कट जाने पर समझ में आता है कि मैं वस्तुतः कुछ करता नहीं हूँ, गुणमय प्रकृति ही सब करती है। करने का अभिमान मात्र मुझमें होता है।

3 जब अहंकार की निवृति होती है और किसी कर्म का कर्तृत्वाभिमान नहीं रहता, तब कर्म के लिए मैं के रूप वह उत्तरदायी नहीं रहता। प्रकृति के गुणों से सब कर्म क्रियमाण होते है अतः वस्तुतः वह कर्मफल का भोक्ता भी नहीं रहता।

4 विचार में ऐसा आता है कि मैं कुछ भी नहीं करता हूँ, सब कुछ वे ही करते है। वे अर्थात प्रकृति के अधिष्ठाता, त्रिगुण के संचालक अर्थात साक्षात परमात्मा।

5 ज्ञानमय भक्ति से विचार आता है, परमात्मा ही सब कुछ करते है यह ठीक नहीं है। वह कराते है प्रेरित होकर मैं करता हूँ, वह जैसे नचाते है, ठीक ठीक वैसे मैं नाचता हूँ। वही इस भवनाट्य के सूत्रधार है। शुद्धप्रकृति से कार्य होने से, सुख दुःख भिन्न भिन्न रस के आकार में उदय होते रहते है, यही लीलारस का आस्वादन है।

6 एक और स्थिति होती है, साधक सोचता है। मैं कर्ता नहीँ हूँ, प्रकृति भी कुछ करती नहीं है, पुरुष, भगवान भी कर्ता नहीं है न सूत्रधार है। फिर भी कर्म अपने आप स्वभाव से हो रहे है। तब कर्म और अकर्म में पार्थक्य नहीं रहता।

7 फिर एक ऐसी निगूढ़ स्थिति है जो मानवीय भाषा के अगोचर है। उसकी आलोचना की चेष्टा भी व्यर्थ है।

।।पंडित गोपीनाथ कविराज जी।।

1 मैं सर्वत्र अकर्ता हूँ, इस भावना की दृढ़ता से परम अमृता नाम की समता ही शेष रहती है। जो कुछ भी यह प्रपञ्च है तत्वतः सब प्रणव रूपा है। चित्त से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है ऐसी भावना करो।

2 समस्त कर्तव्य व अकर्तव्य का त्याग करके, मन को पीकर तुम जो हो, उसी स्थिति में स्थित हो जाओ। अंत में जिससे तुम त्याग करते हो, उसका भी त्याग कर दो।

3 हृदय से सारी वासनाओं का त्याग करके जो निराकुल होकर रहता है, वह मुक्त है, परमेश्वर है।

4 वासनाओं के साथ दृष्टा दृश्य व दर्शन तीनों का त्याग करके साक्षात्कार के रूप में आत्मा की हम सम्यक उपासना करते है।

5 इन्द्रिय रूपी शत्रुओं को चाहे ये उठे हो या न हों, बारम्बार विवेक रूपी दण्ड से उसी प्रकार मारना चाहिए जैसे इंद्र वज्र से पहाड़ों को मार गिराते है।

6 हेय पदार्थों के लिए खेद न करो, उपादेय पदार्थों में अनुरक्त न होओ। दोनों दृष्टि त्यागकर शेष में स्थित होकर सुस्थिर होओ।

7 कुल्हाड़ी के द्वारा वृक्ष के समान मन से मन को काटकर पावन पद पर स्थिर हो जाओ। न मैं हूँ न जगत है, इस चिन्तन से दृश्य की आस्था छोड़ दो, अपने को सर्वदा दर्शनस्वरूप आत्मा ही समझते रहो।

8 जो तृष्णा बाह्यविषयों की वासना से उत्पन्न होती है वह बंधनकारक होती है। और जो तृष्णा सब प्रकार के विषयों की वासना से मुक्त होती है वह मोक्षकारक होती है।

9 सब कुछ मैं ही हूँ, इस प्रकार का जो निश्चय है, उसको ग्रहण करके बुद्धि पुनः विषाद को प्राप्त नहीं होती है।

10 उच्चपद की प्राप्ति के लिए अत्यंत बुद्धिमत्तापूर्वक वासनारूपी पुष्पों से गन्ध लेकर उससे शीघ्र ही अपनी चित्तवृत्ति को दूर हटा लो। भावना का केवल अभाव हो जाने पर संकल्प स्वयं ही नष्ट हो जाते है। संकल्प के द्वारा संकल्प का व मन के द्वारा मन को छिन्न करके तुम आत्मस्वरूप में स्थित हो जाओ।

11 अहंता के क्षीण हो जाने पर शांत चेतन भेदभाव शून्य चित्त की अवस्था, स्वरूपस्थिति कहलाती है।

12 जिन जिन वस्तुओं की ओर मन जाता है उनका त्याग करता हुआ व मन में उत्पन्न आस्था का त्याग ही मोक्ष है निर्वाण है। मन का चंचलतारहित होना अमृतरूप है। सब कुछ ब्रम्ह है, इस संकल्प की दृढ़ता पर मन मुक्त हो जाता है।

13 निश्चयपूर्वक विषयविहीन चित्त ही आत्मा है, यह समस्त वेदान्त सिद्धान्त का सार है।

।। सामवेदीय महोपनिषद से ।।

1 गृहस्थ धर्म और परमार्थ दोनों का उचित ध्यान रखोगे तभी विवेकी कहलाओगे। जो अपने आत्मतत्व में सावधान रहता है, वही प्रपंच और परमार्थ दोनों का यथोचित निर्वाह कर सकता है। अर्थात जिसका प्रपंच ठीक से है उसका ही परमार्थ ठीक से हो सकता है। और प्रपंच कार्य में असफल हुआ उसका परमार्थ भी मिथ्या है। जो प्रपंच और परमार्थ दोनों में सावधान रहता है, वही धन्य है, ऐसा पुरुष ही आत्महित के साथ साथ जनकल्याण भी साध सकता है।

2 जो न्याय नीति को छोड़कर मनमाना बर्ताव करेगा, उसे दुःख भोगना ही पड़ेगा। हमारे गुणों की परीक्षा प्रत्यक्ष व्यवहार द्वारा होनी चाहिए। जनता

ही जनार्दन का स्वरूप है, आदरयुक्त प्रेम व्यवहार से वे हमारे वश हो जाते है। जैसा बोया जायेगा, वैसा ही पैदा होगा। भलाई के आचरण से सबको सुख मिलता है। हर घड़ी अपने मन को अच्छी सीख देते हुए उसे सुबुद्ध और सुसंस्कारी बनाते रहना चाहिए। एक दिन हमें यह संसार छोड़कर जाना है, हमेशा इस बात का ध्यान रखते हुए सबके साथ सज्जनता और भलाई का बर्ताव हम करें। समय और प्रसंग के अनुकूल बर्ताव न करने से विपरीत परिणाम हो सकता है, प्रयत्न निष्फल हो जाते है, इस का हमें ध्यान रखना चाहिए। सारे प्रयत्नों की सफलता इसी में है कि हम परब्रम्ह को और अपने आपको पहचाने।

3 तत्व विवरण, पंचीकरण और महावाक्य का विचार करने पर देह का संग छूट जाता है, निःसंग वृति से आत्मनिवेदन करने पर परमात्मा और आत्मा का मिलन हो जाता है। तत्व निरसन होने पर मैं पन का नाश हो जाता है।

4 विवेक के बिना वैराग्य निष्फल है, बिना विवेक के वैराग्य से अनर्थ परम्परा का ही विस्तार होता है। विषय और प्रपंच में रचे बसे व्यक्ति द्वारा विवेक की बातें ऐसी ही होती है जैसे जेल में पड़े हुये बन्दी का अपना पराक्रम बघारना। बिना वैराग्य के कोरा ज्ञान केवल दम्भ है, लोभ दम्भ से गुलाम हुआ मूर्ख, जंजीर से बंधे हुए कुत्ते के समान वह व्यर्थ ही भोंकता है। तात्पर्य है, विवेक और वैराग्य के समन्वय बिना दुःख शोक का नाश नहीं हो सकता। सच्चा आनन्द दोनों के समन्वय से ही प्राप्त हो सकता है। विवेक से अंतरंग के बन्धन टूटते है और वैराग्य से बाह्य प्रपंच छूटता है, इस प्रकार अंतर्बाह्य मुक्त नित्संग पुरुष ही सच्चा योगी है।

5 वह विचार पूर्वक जैसा बोलता है वैसा ही आचरण करता है। तीनों लोक का राज्य तक उनके लिए तुच्छ होता है। इसलिए विवेक और वैराग्य का

समन्वय होना ही महदभाग्य है, विवेक वैराग्य सम्पन्न पुरुष साक्षात परमात्म स्वरूप है।विवेक का विस्तार करते हुए उसमें सारे ब्रम्हांड को समा लेना चाहिए तभी हमारा भाग्योदय होगा।
।। समर्थ रामदास जी ।।

1 धर्मजीवन का आदर्श अनुभूतिलाभ न होकर श्रीगुरुचरणों में आत्मनिवेदन है।
2 आत्मनिवेदन रहने पर अपना लाभ या अनुभव की प्राप्ति आदर्श नहीं रह सकता।
3 इष्ट या भगवान के श्रीचरणों में आत्मनिवेदन करने से आश्रित को आत्मसात कर लेते है। शक्ति,अनुभूति ये सब बाहर की वस्तुएं है, इनमें आसक्ति रहने से परमवस्तु से दूर रहना पड़ता है।
4 साधक का मुख्य उद्देश्य है उनकी गोदी में बैठा हुआ हूँ, इस भाव की उपलब्धि, इस स्थिति में भय नहीं रहता।
5 उनकी कृपा से साधक को शत शत अनुभूतियों का क्रमशः स्फुरण होता है, आत्मनिवेदन के पश्चात अहंकार का सर्वथा लोप होने के कारण, उन पर सतृष्ण दृष्टि नहीं पड़ती।
6 जो श्रीगुरुचरणों का आश्रय लेकर पड़े रहते है, उन्हें कुछ करना शेष नहीं रह जाता, उनके सारे कार्य समय से शनैः शनैः स्वतः हो जाते है। गुरु ही सब कर लेते है।
।।मनीषी की लोकयात्रा से।।

1 संसार ईश्वर की सृष्टि है, उन्होंने अपनी लीला के लिए इसकी सृष्टि की है। उनके इस खेल में हम लोग कठपुतली है।

2 ईश्वर हमें जहाँ रखे और जैसा भी रखे हमें उससे संतुष्ट रहना चाहिए।

3 स्वयं के कर्म के कारण हमें कष्ट भोगना पड़ता है। दूसरे पर दोष मढ़ना अनुचित है।

4 हमें श्रद्धा और भक्तिभाव से ईश्वर की पूर्ण शरण लेनी चाहिए।

5 यथासम्भव दूसरों की सेवा करनी चाहिए और दूसरों को दुःख देने का कारण नहीं बनना चाहिए।

6 जैसा कर्म होता है, अनुरूप ही फल मिलता है। तथा उन्हीं के अनुसार अवसर प्राप्त होते है।

7 जहाँ तलवार से बड़ा घाव होने वाला था, वहाँ कम से कम एक सुई तो गड़ेगी ही। जैसा प्रारब्ध वैसा ही फल मिलेगा।

8 मनुष्य अपने ही कर्मों के फल को भोगता है, अतः दूसरों को दोषी न ठहराकर उनसे (भगवान से) प्रार्थना करनी चाहिए।

9 उनकी कृपा पर निर्भर रहते हुए धीर भाव से सब अवस्थाओं को सहते जाना चाहिए।

10 संतोष के समान धन नहीं, धैर्य के समान गुण नहीं। सहनशीलता एक महान गुण है, उसके जैसा दूसरा गुण नहीं।

11 तुम लोगों पर विपत्ति नहीं आएगी ऐसा नहीं है। वह आएगी ही, पर वह पैरों के नीचे के पानी की तरह निकल जाएगी।

।। श्री माँ सारदा देवी ।।

1 अनादिकाल से हृदय रूपी घर में अज्ञान का अँधेरा है।

2 यह हृदय का अंधकार जन्म जन्म का अज्ञान यह नही कहता कि हम नहीं जाएंगे।

3 जब भी परम् ज्ञान, ब्रम्हज्ञान का बोध होगा, अज्ञान का नाश स्वयं हो जायेगा।

4 नदी का घर समुद्र है और जब तक वह समुद्र में नहीं पहुँच जाती तब तक वह अचल नहीं होती।

5 यह गलत धारणा छोड़ दो की तकदीर से, प्रारब्ध से भगवान मिलते है। उनको प्राप्त करना स्वयं के उत्कट अभिलाषा पर निर्भर है।

6 सर्व संकल्पों से जो मुक्त है, वही बन्ध और मोक्ष दोनों से मुक्त है।

7 ब्रम्हा से लेकर तृण पर्यन्त सभी मैं हूँ। तस्वीर और तसव्वर एक ही है।

8 जो मैं, यही तसव्वर है। यही तुलसी का राम, सूर का श्याम, गोपियों का कृष्ण, मीरा का गिरधर, हिंदुओं का ईश्वर, मुसलमानों का खुदा, ईसाइयों का ईसा, यहूदीयों का मूसा, बौद्धों का बुद्ध, आस्तिकों का हैं और नास्तिकों का नहीं है।

9 शरीर तो हमेशा ही बेहोश है, शल्य क्रिया में क्लोरोफार्म से मन को बेहोश किया जाता है। मैं बेहोश नहीं होता। मैं कार्य कारण से परे है। समाधी के उदय अस्त को मैं जानता हूँ। सब समय एक रस रहने वाला, शाश्वत है। मैं आत्मा पुरूषोत्तम हूँ।

10 यह नहीं कि मैं आज ही हूँ। आज के पहले भी मैं ही था और आज के बाद भी मैं ही रहूँगा।

11 मैं आत्मा सर्व का सर्व हूँ। सारे जहान का वजूद, उसकी आत्मा मैं ही हूँ। मैं के भाव और अभाव का साक्षी मैं ही तो था।

12 प्रपंच को देखने वाले मुझ आत्मा से प्रपंच संसार की सत्ता भिन्न नहीं है। सभी वासुदेव है। नाम रूप ही संसार है, और यह वाणी का विकार है। सत्य एक ही है।

13 सारे चराचर का आधार, सर्व का सर्व परमात्मा राम है, उनसे तो तुम्हें वैराग्य हो गया है। आत्मा से तुम वैराग्य लिए बैठे हो, और विषय से प्रेम है। फिर तुम्हें कैसे समझ में आएगा।

14 यह जगत विकल्प है और विकल्पाभाव मैं आत्मा हूँ। विकल्प के अभाव में भगवान है, अतः विकल्प का अभाव कर दो।

15 सबसे पहले परमात्मा ने अपने आप में जीवभाव का विकल्प किया, की मैं अज्ञानी जीव हूँ। जीव ने प्रपंच का जाल बिछा दिया, फिर संसार दिखने लगा। शब्द का तो ज्ञान हो, परन्तु वस्तु का अभाव हो। यानी केवल शब्द सुनने में आवे, ढूंढने पर जिसका अस्तित्व किसी काल में न मिले, उसे कहते है विकल्प। देश काल वस्तु और कर्ता का विकल्प हो गया। विकल्प पर विकल्प बनते गये।

16 सभी प्रकारों के विकल्प जीवभाव में निहित है। जीवभाव गया तो सभी विकल्पों का नाश स्वयं हो गया। जीवभाव सत्ताहीन, अस्तित्वहीन है।

17 आत्मा ही जीव का सहज स्वरूप है। सनातन है,व्यापक है, अखण्ड है।

18 विकल्प है ही नहीं उसका नाम अध्यात्म है।

19 मैं आत्मा अन्वय भाव से सर्व में हूँ और व्यतिरेक भाव से नहीं भी हूँ। यही मैं का गुण है।

20 कार्य रूप डंडे में कारण रूप लकड़ी का अभाव है, यह व्यतिरेक है। कार्य रूप डंडे में कारण रूपी लकड़ी की व्यापकता अन्वय है। जो हो उसे कार्य कहते है, जिससे हो उसे कारण कहते है। लकड़ी के डंडे में कार्य डण्डा और लकड़ी कारण है।

21 मैं आत्मा सर्व में व्यापक हूँ यह अन्वय है। मुझ आत्मदेश में प्रपंच का अभाव है, यह व्यतिरेक है। मुझ आत्मा के अतिरिक्त दूसरी कोई चीज हो, तो मैं उसमें व्यापूं। जब मैं परिपूर्ण हूँ, तो कहाँ नही हूँ। सर्व ही हूँ।

।। श्रीमद्भागवत् रहस्य से ।। (महर्षि मुक्त)

1 सौम्य श्री राम!समुद्र की जलराशि शांत हो या तरँगयुक्त दोनों दशाओं में उसकी जल रूपता समान ही है।

2 उसी तरह देह के रहते हुए और उसके न रहते हुए भी मुक्त महात्मा, मुनि की स्थिति एक सी होती है। उसमें कोई भेद नहीं होता।

3 सत्पुरुषों के बताये मार्ग से चलकर अपने कल्याण के लिए जो मानसिक वाचिक कायिक चेष्टा की जाती है, वही सफल चेष्टा है। पुरुषार्थ है।

4 इसके विपरीत मनमाना आचरण ही पागलों की सी चेष्टा है, जो अनर्थ की प्राप्ति, कराने वाला होता है।

5 इस संसार मे सदा अच्छी तरह पुरुषार्थ करने से सबको सब कुछ मिल जाता है।

6 असफल होना, सम्यक प्रयत्न का अभाव है। परमात्म प्राप्ति रूप आत्यंतिक आनन्द प्रयत्न से ही प्राप्त होती है। प्रयत्न पर ही निर्भर होनी चाहिए।

7 इस जन्म के शुभ पौरुष से पूर्व जन्म का दोष अवश्य कट जाता है, अतः ऐसा प्रयत्न हो कि पूर्व जन्म के प्रारब्ध को शीघ्र जीत ले।

8 जो साधन नहीं करते और चित्त में सदा विषयों का चिन्तन करते रहते है, उन मूढ़ पुरुषों की अत्यंत दूषित भोगेच्छा को धिक्कार है।

9 जो पुरुषार्थ को छोड़कर देवरूपी मोह में निमग्न होता है, वह मूढ़ है।

10 पूर्व जन्म में किया गया प्रयत्न ही देव् है।

11 अपनी प्रबल वासना ही कर्म है, जिस प्रकार की वासना होती है, वह शीघ्र वैसे ही कर्म करता है।

12 वासना मन से भिन्न नहीं है। मन चित्त वासना कर्म दैव और निश्चय ये सब मन की संज्ञाएँ है। मन ही पुरुष है।

13 बुद्धि मन कर्मेन्द्रियों द्वारा की जाने वाली चेष्टाएँ पौरुष के रूपP है।

14 श्री राम ! तुम (उत्तम) पुरुषार्थ का आश्रय लेकर पाँचों इन्द्रियों को जीतकर शुभ वासना से युक्त हो जाओ।

15 पश्चात, शुभ वासना का भी परित्याग करके परब्रम्ह परमात्मा में भली भाँति स्थित हो जाओ।

।। योग वाशिष्ठ से ।।

1 विचारबुद्धि कब तक? जब तक ईश्वर का आनन्द नही पाया जाता, मधुपान का आनन्द प्राप्त करने पर मधुमख्खी और भन भन नही करती। ग्रन्थ पढ़कर ढेरों तर्क युक्ति करने में समर्थ होने से कुछ नही होगा।

2 भक्त के समस्त शारीरिक कर्म ईष्ट के लिये ही अनुष्ठित होते है, वे समस्त यज्ञ, दान, जप, तप, सदाचार पालन, स्त्री, पुत्र, गृह और प्राण ,जो कुछ भी स्वयं को प्रिय है, उन सबको ईष्ट के चरणों में निवेदित करते है।

3 भक्त जब सुख दुःख से विचलित नही होते, विषय -वासना जब और उनके हृदय में नही जगती, तब उन्हें समय का किंचित अभाव नही रहता। नित्य स्मरण-मनन में लगे रहकर, आधा क्षण भी व्यर्थ नही गवांते, सदैव ईष्ट को लेकर ही मतवाले बने रहते है।

4 उनका हृदय प्रतिक्षण ईष्ट के श्री चरणों के स्मरण, चिंतन में लगा हुआ मग्न रहता है। संसार के समस्त भोग, सारे सुख उनको अत्यंत तुच्छ प्रतीत होता है। तीनो लोको के राज्य की प्राप्ति की सम्भावना आने पर भी उस चिंतन, स्मरण से विरत नही होते।

5 भक्त की दृष्टि में सदा ईष्ट का चिंतन, स्मरण ही उनकी सेवा का तथा स्वयं के देह, मन, चित्त को पवित्र करने का एक मात्र उपाय है।

6 ईष्ट का उनके केवल हृदय में दर्शन होने के साथ ही सर्वत्र उनके प्रकाश का दर्शन होता है। भीतर, बाहर ईष्ट का अनुभव करना ही जीवन की सार्थकता है।

।।नारद भक्ति सूत्र से संग्रहित।।

1 आतां विश्वात्मकें देवें। एणें वायगतोज्ञेन षावें। तोखौनि मज देयावें। पयासदान हें। .....किं बहुना सर्वमुखीं..... अखंडित।

2 अब विश्वात्मक देव मेरे वाग्यज्ञ से तुष्ट हो, तुष्ट होकर मुझे यह प्रसाद दान देवे। जिससे दुष्टों के कुचक्रों का दलन हो। सत्संग में प्रेम बढ़े। जीवों में प्राणिमात्र में और भूतमात्र में परस्पर मैत्री बढ़े।

3 दुरितों का तिमिर जाए। विश्व, स्वधर्म सूर्य देखें। जो जो कुछ चाहते है, प्राणिमात्र को मिले।

4 सब ओर मंगल वर्षा हो, ईश्वरनिष्ठों का समूह बढ़े। महोत्सव हो और भूतल में सब जीवों को अनवरत आनन्द मिले।

5 चलों कल्पतरु के वन में चलें, चिंतामणि का गाँव हम चैतन्य से प्रेरित करें, अमृत का समुद्र हम मुखर बना दें।

6 चन्द्रमा लांछन विहीन हो, सूर्यतापहीन हो वैसे सदा सबको सज्जन सम्बन्धी मिले।

7 किंबहुना। तीनों लोकों में पूर्ण होकर सबके मुख से आदिपुरुष का अखंडित भजन होता रहे।

।।संत ज्ञानेश्वर।।

1 जब तक मन विक्षिप्त रहता है, नाद की उपलब्धि नहीं होती। मन को अंतर्मुख करने पर नाद सुनने में आता है।

2 जब मन बिन्दु में पहुँच जाता है तब उसकी चंचलता नहीं रहती। वह स्थिर हो जाता है, यह मन की जाग्रत अवस्था है, इसी का नाम प्रज्ञा है। बिन्दु ही चिदाकाश है। कुण्डलिनी या चिदाकाश ही बिन्दु स्वरूपा महामाया है। मन के बिन्दु में प्रतिष्ठित होने पर बिन्दु का क्षोभ मिट जाता है।

3 चैतन्य का आश्रय लिये बिना मन को निरोध करने का प्रयत्न तमोभाव और जड़त्व का आवाहन करना है। मन ही साधन का यन्त्र है। मलिन मन ही साधक का रिपु है, स्वायत्त और निर्मल मन ही परम् मित्र है।

4 मन में सदा एक अभाव जग रहा है,एक अस्पष्ट विपुल अतृप्ति उसको शांत रहने नहीं देती,अतः मन सदा चंचल,अस्थिर और भ्रमणशील है।

5 मन माँगता है, ऐश्वर्य ज्ञान आनन्द, इनको न पाकर मन निरन्तर हाहाकार कर रहा है, रो रहा है, यही ऐश्वर्य ज्ञान आनन्द मन का खाद्य है। मन की क्षुधा निवृत होने पर ही उसकी अस्थिरता चंचलता भ्रमणशीलता सदा के लिए नष्ट हो जायगी।

6 एक शब्द में समाधान है। मन चाहता है आत्मा को।आत्मा ही मन का प्रभु है, ऐश्वर्य है, परमआनन्द है, ज्ञान है, सखा है, सर्वस्व है।

7 इसको ही खोकर मन फिर इसकी प्राप्ति हेतु (ज्ञात या अज्ञात रूप में) विरहाग्नि में जल रहा है। मन एकमात्र आत्मा का ही अन्वेषण कर रहा है। अतः वह अन्य किसी वस्तु से उपाय से तृप्त नहीं हो पाता। आत्मा को ही मन चाहता है।

7 आत्मा मन में सन्निहित है, साधना का मुख्य उद्देश्य है मन को अंतर्मुख करना, तब वह आत्मा को लाभ कर सकेगा और परमानन्द तथा शांति प्राप्त कर सकेगा।

8 मन को हृदय में लेकर शुद्धप्रकृतिस्त्रोत में डालना पड़ता है। अखण्ड

अभ्यास से समझ आता है की शब्द हृदय से लेकर जगत की सभी वस्तु में समरूपेण व्याप्त है। नाद में डूबने के बाद अन्तःस्थित विशालज्योति का अनुभव होता है। हम सभी लोग, जगत, जागतिक वस्तुएँ सभी सर्वव्यापी महाज्योति में विद्यमान है।

9 शब्द और ज्योति ब्रम्ह के विविध स्वरूप है, ये ध्यान के परिपक्व फल है।

10 यह ज्योति अरूप है, इसमें किसी प्रकार का रूप देखने में नहीँ आता, यह निजबोधस्वरूप चैतन्य है। मन अपनी कल्पना के अनुसार रूप का गठन इससे कर लेता है।

11 दिव्यरूप का आविर्भाव ज्योति से होता है, मानवीय जगत रूप अदिव्य वस्तु का आविर्भाव शब्द से होता है।

12 साधारणतया शब्दब्रम्ह में डूब जाना सविकल्पसमाधि तथा ब्रम्हज्योति या परब्रम्ह में डूब जाना निर्विकल्पसमाधि है।

13 नाद, बिन्दु, कला। नादसाधन ही शब्दसाधन है। बिन्दु ही ज्योति है। कला चिद्रूपा शक्ति है, चितशक्ति ही चितकला अथवा कला है।

14 कलासिद्धि ही रूपसिद्धि है, इसके बाद जो कलातीत है। वही यथार्थ सत्य है।

15 मन कलात्मक होकर,कलातीत आत्मस्वरूप में अभिन्न रूप से अवस्थान करता है। नाद बिन्दु कला का यही रहस्य है।

16 कलातीत है जो, वही अशब्द, अरूप, निष्कल और निरंजन है।
।।गोपीनाथ कविराजजी।।

1 साकार पदार्थ के भीतर इनको निराकार आकाश का दर्शन होता है, किसी प्रकार का मोह का सम्बंध नहीं है।

2 एक अवस्था आती है, तब समझ आती है, ज्योति घनीभूत हो गयी है, रूप नहीं। रूप से ही ज्योति चारों ओर विकीर्ण हो रही है।

3 सभी वस्तुएँ वस्तुतः आत्मा है, इसका प्रत्यक्षानुभव होना चाहिए।

4 जैसे घट टूटने पर अनन्तव्यापी आकाश है, वैसे ही मायारूपी घट टूटने पर माँ को अनन्तव्यापी रूप में समभाव से देखोगे।

5 जो किसी की अपेक्षा नहीं करता वही धन्य है। सम्पूर्ण रूप से निर्भरशील को छोड़कर कौन इस संसार मे स्वर्ग का तत्व ला सकता है। जो सर्वदा महाशक्ति का चिंतन करते है वे भाषा के द्वारा देवकार्य प्रकाश करते है।

6 भेदहीन मातृचिन्तन से ही माँ को जाना जा सकता है।

7 सर्वदा द्रष्टा के भाव मे रहकर जब स्वभाव का खेल देखते है तब सुख दुःख का किसी प्रकार का सम्बंध नहीं रहता। शांत आनन्दमय निर्लिप्त भाव ही स्वभाव दर्शन है।

8 निराकार आकाश में साकार जगत के सब प्रकार के खेल दिखाई देते है।

9 शुद्ध आत्मदर्शन एक बार होने पर फिर नष्ट नहीं होते। दिव्य दर्शन में ज्योति का प्राधान्य रहता है। चिन्मय दर्शन में विशुद्ध प्रकाश रहता है।

10 हृदय से अंधकार जब सदा के लिए हट जाता है, तब एकमात्र आलोकमय आकाश ही व्यापक रूप से दिखाई पड़ता है, यही चित्ताकाश है। इसी का नामान्तर ज्ञान है।

11 चिदाकाश का दर्शन ब्रम्हरन्ध में उर्ध्वनेत्र से होता है, यह अभेद दर्शन है। चिदाकाश शब्दब्रम्ह का नामान्तर है। द्रष्टा परब्रम्ह है। चित्ताकाश से गुण आवरण हट जाना चिदाकाश है। इसमें कोई आवरण नहीं है, निर्मल है।

।।गोपीनाथ कविराज जी।।

1 भारतवर्ष मेरा शरीर है। कोमोरिन मेरे पैर और हिमालय मेरा सिर है।

2 मेरी जटाओं से गंगा बहती है और मेरे सिर से ब्रम्हपुत्र और सिन्ध निकली है।

3 विंध्याचल मेरे कमर की लँगोटी है। कोरोमण्डल मेरी बायीं और मालावार मेरी दाहिनी टाँगे है।

4 मैं समूचा भारतवर्ष हूँ। उसका पूर्व और पश्चिम मेरी बाँहें है, जिन्हें मैंने समूचे मानव समाज का आलिंगन करने के निमित्त फैला रखा है।

5 मेरा प्रेम सार्वभौमिक है, मेरी अन्तरात्मा विश्वात्मा है।

6 जब मैं चलता हूँ तो सोचता हूँ भारत चल रहा है। जब बोलता हूँ तो भारतवर्ष बोलता है, जब श्वास लेता हूँ तब भारत ही श्वास लेता हुआ प्रतीत होता है।

7 मैं भारतवर्ष हूँ, मैं शंकर हूँ, मैं शिव हूँ। यही देशभक्ति का सर्वोत्तम साक्षात्कार है, व्यावहारिक वेदान्त है।

।।स्वामी रामतीर्थ।।

1 मेरी देह में जो वस्तुरूप में है, वही वस्तु तदाकार में सब जीवो में विहार करती है, वह अक्षय, अव्यय वस्तु सब जगह हैं, राम के रमण के सिवा कोई प्राणी नही है।

2 सद्गुरु जब कृपा करते है तो शब्दातीत परब्रम्ह को आँखों से दिखला देते है, तब साधक राम को श्याम रूप में संसार में सर्वत्र भरा देखता है।

3 नशा ग्रस्त सी अवस्था में जब मैं रहता न मेरा । यही सन्यास की अवस्था है,इसमें शीघ्र शान्ति मिलती है।मन लगाकर सर्वदा अभ्यास करने पर यह अवस्था मिलती है।

4 सर्व कर्मफल त्याग कैसे हो सकता है? आत्मा ही सबके आश्रय है, कर्मो के कर्ता भी वही है, यह समझ लेने पर सारे कर्म आत्मा में ही अर्पित होंगे। चित्त संयम के बिना यह समझ नही आएगा।

5 अभ्यास से प्रयत्न करते करते लक्ष्य के अतिसमीप पहुँचकर भी सम्भव है, नीचे गिर जाय, तो भी अभ्यास में लगे रहना। जितनी बार गिरे उतनी बार उठने की चेष्टा करो, बारम्बार चेष्टा करने पर उद्देश्य प्राप्ति सहज हो जाएगा।

6 मन जितना ही निर्विषय होता है, उतना ही सूक्ष्म होता है। मन विश्वात्मा में मिलते मिलते पूर्ण रूप से मिल जाता है, यह अवस्था ही ध्यान है। मन का स्थिर भाव या एकाग्रता है जिसको बुद्धि कहते है, उसमे प्रवेश करा देने पर बाह्य जगत के साथ साथ मैं ध्यान कर रहा हूँ इसकी भी स्मृति नही रहेगी। मन तब असीम शून्य में मिलकर वही हो जाता है। यही बुद्धि निर्विषय कहने का अभिप्राय है।यही आत्माकार में अवस्थित अवस्था है, इस अवस्था में फिर दर्शन, श्रवण, मनन, कुछ नही होता, देवमूर्ति भी नही दिख पड़ती। सब ब्रम्ह में लय् हो जाते है।

।।लाहिड़ी महाशय की गीता व्याख्या से संग्रहित।।

1 जिस विशुद्ध बुद्धि वाले पुरुष की भोग लिप्सा प्रतिदिन क्षीण होती जाती है, उस वैराग्यवान का ही विवेकयुक्त विचार सफल होता है। भोगेच्छा के क्षीण होने पर ही विवेक जाग्रत होता है।

2 विवेक से पहले राग द्वेष का सर्वथा नाश हो जाता है, विषय भोगों के लिए प्रयत्न तत्पश्चात क्षीण हो जाती है।

3 जिस पुरुष में विवेक जाग्रत है वही परमपवित्र है। देवताओं के उपासक देवताओं को, ब्रम्ह के उपासक ब्रम्ह को प्राप्त होते है।

4 जिसके चित्त की वृतियाँ परमात्मा में विलीन होती जा रही है, जो संकल्पों का त्याग कर रहा है, जो जड़ जगत का परित्याग कर रहा है, जो दृष्टा परमात्मा का अनुभव कर रहा है, जो परमात्म तत्व में जाग रहा है, तथा संसार से सोया हुआ है, जो भोगों से विरक्त है, कामनारहित है ऐसे अधिकारी पुरुष का अज्ञान विगलित हो जाता है।

5 वैराग्य से संसार वासना रूपी जाल टूट जाता है, दृश्य की गांठे ढीली पड़ जाती है।

6 तब अन्तःकरण विशुद्ध होकर निर्मल हो जाती है, मन के शांत होने पर समदर्शिता का उदय होता है।

।।योग वाशिष्ठ से।।

1 अगम अगोचर परब्रम्ह को प्राप्त करने के लिए निष्काम रहना चाहिए। वास्तविक ज्ञान केवल आभ्यन्तर अनुभूति है। व्यर्थ के बाह्य आडम्बरों में न पड़कर सूक्ष्म विचार से चिन्तन की आवश्यकता है।

2 अघाकर खाना मौत है बिल्कुल न खाना भी मौत है, पेट भर भर कर खाने से बिंदु क्षरित होता है। नमकीन से शुक्र नष्ट होता है, खट्टे से झरता है, मीठे से रोग पैदा होता है। संयम धारणकर वायु का संग्रह करना चाहिए।

3 पवन ही योग है,पवन ही भोग है, पवन ही 36 रोगों का हरण करता है। इसका भेद विरले ही जानते है।

4 सत्य का शब्द सोने की रेखा के समान है, जो सब कसौटियों पर सच्चा उतरता है। जिसने समझ लिया है वह भूलता नहीं है। जो समझते नहीं है, वे मार्ग भूल जाते है।

5 अहंकारी। अहंकार से भरा हुआ गुरु मंत्र लेने की इच्छा से सदगुरु की खोज नहीं करता। गुरु की खोज करने वाला सद्गुरु की खोज कर

जीवन सफल करता है,अमर हो जाता है। अहंकारी का और, शरीरपात हो जाता है।

6 जो जननेन्द्रिय के सम्बन्ध में असंयत ढीले ढाले है, जिव्हा से फूहड़ बातें करते है, वे प्रत्यक्ष भंगी है। संयम रखने वाला और मुख से सत्य वचन कहने वाला सत्पुरुष ही उत्तम कहा जाता है।

7 सीख साखकर, बुराई पाकर, स्वप्न देखने वालों ने परख परखकर, धन बटोर लिया। वस्तुतः वह धन न खोटा है न खरा क्योंकि असल में वह तो धन ही नहीं है।

8 वायु कच्चा है शरीर कच्चा है जीवन कच्चा है, बिन्दु भी कच्चा है। वायु शरीर जीवन और बिंदु तब पक्का होता है जब ब्रम्हाग्नि अखण्डित रूप से जलने लगती है।

9 जब आसन पवन और ध्यान ये तीन चीजें निश्चल हो जाते है, तब अग्नि और बिंदु नष्ट नहीं होते।

।।गोरखनाथ जी।।

1 रात दिन ब्रम्हज्ञान का कथन करना चाहिए, संयमपूर्वक हँसते खेलते हुए जो अपने मन को भंग नहीं करते वे निश्चल होकर ब्रम्ह के साथ रमण करते है।

2 शब्दों के बाह्यार्थ पर नहीं जाना चाहिए, खाली कलमा के शब्द भी किसी का उद्धार नहीं कर सकते। कलमा को चलाने वाले मुहम्मद भी बच न रह सके।

3 जैसे सब नदियों का जल समुद्र में ही समाता है,उसी प्रकार शिष्य का विश्वास गुरुमुख वचनों में होना चाहिए।उन्हीं वचनों का मनन चिन्तन द्वारा पाचन करके आत्मीकरण करने में दत्तचित्त रहना चाहिए।

4 जिसने गुरुवचनों को माना उसकी दुविधा नष्ट हो गयी, जिससे आत्म साक्षात्कार के द्वारा वे पूर्ण परमानन्द प्राप्त करने वाले योगी हो गए।

5 जो रातदिन बहिर्मुख मन को उन्मनावस्था में लीन किये रहता है, जगत की बातें छोड़कर अगम्य आध्यत्मिक क्षेत्र की बातें करता है, सब आशाओं को छोड़ देता है, कोई आशा नहीं रखता। वह ब्रम्हा से बढ़कर है।

6 शब्द ही ताला है,वही परमतत्व को बन्द किये रहता है। मूल अधिष्ठान तक पहुंचने के लिए शब्द की धारा पकड़कर वापिस आना पड़ता है। गुरु के शब्द में भी परमतत्व रहता है, जो उसी के मनन चिन्तन से खुलता है।

7 ब्रम्हरन्ध्र में औंधे मुँह का कुआँ है, जिसमें अमृत का वास है। जिसने अच्छे गुरु की शरण ली है, उनके उपाय से वही उसमें से भर भरकर अमृत पी सकता है।

8 जो थोड़ा बोलता और थोड़ा खाता है, उसके शरीर में पवन समाया रहता है, जिससे ब्रम्हरन्ध्र में अनाहत सुनायी देता है।

।। गोरखनाथ जी ।।

1 ईश्वर कोटि के जो लोग है, उनके चरित्रों का अनुकरण नहीं करना चाहिये, उनके उपदेशों के अनुसार ही आचरण करना चाहिये। भगवान शंकर नीलकण्ठ हो गये जहर पीकर, हम तुम जहर नहीं पी सकते।

2 भगवान किसके आत्मा नहीँ है? वे गोपियों के पतियों के भी आत्मा है, वे सबके साक्षी और परमपति है। उनमें औपपत्य नहीं घटता। गोपाङ्गनाओं का निष्काम प्रेमभाव है, काम वासना का कोई सम्पर्क नहीं, भोग मोक्ष की, किसी वस्तु की कोई चाह नहीं, परवाह नहीं। वे श्रीकृष्ण को अपने लिये नहीं, श्रीकृष्ण के सुख के लिये ही चाहती है। मन में कोई काम वासना नहीं।

3 अब तो बंध मोक्ष की इच्छा व्याकुल कभी न करती है। मुखड़ा ही नित नव बन्धन है, मुक्ति चरण से झरती है। मुक्ति को भी एक बन्धन रहता है वह संत महात्माओं महापुरुषों को वरन करती है। यह भी दूसरे लोग बताते है, गोपिकाएँ नहीं बताती कि मुक्ति श्रीकृष्ण चरणों से झरती है। वहाँ तो मुक्ति की भी मुक्ति हो चुकती है।

4 जो सबको जलाकर, सबको फूँककर, लोक परलोक को ध्वंसकर, मुक्ति भुक्ति का धुँआ उड़ाकर, सबके भस्मावशेष पर नाचना चाहता है, वही इस प्रेम को प्राप्त करता है।

5 श्री कृष्ण की इच्छा को पूर्ण करना यही इनका स्वरूप स्वभाव है। भगवान इच्छारहित है, यह गोपीप्रेम का जादू है की जो सर्वथा इच्छारहित है, वे इच्छा वाले बन जाते है। जिनको किसी वस्तु का अभाव नहीं, वे अभावग्रस्त बन जाते है।

6 कामना की कालिमा का लेश भी इनमें नहीं है, ये कामना जानती नहीं, ये तो श्रीकृष्ण कामना कल्पतरु है। अनुसूया, अरुन्धती आदि पतिव्रता शिरोमणियाँ भी चाहती है कि राधा का सा सतीत्व हमें प्राप्त हो जाय।

7 स्वतन्त्र अहम का कहीं अस्तित्व ही नहीं है, ये श्रीकृष्ण को आनन्द देती है। श्रीकृष्ण ही आनन्द है। श्रीकृष्ण हेतु सर्वत्याग-यही गोपी की विशेषता है।

8 गोपी के कोई भी कामना नहीं है,अतएव श्रीकृष्ण उन्हें क्या दें।

9 गोपियों की कामना है केवल श्रीकृष्णसुख की, श्रीकृष्ण इस कामना की पूर्ति करने जाते है तो उनको स्वयं अधिक सुखी होना पड़ता है। अतः इस दान से ऋण और भी बढ़ता है।

10 गोपियाँ सर्वत्याग करके केवल श्रीकृष्ण के प्रति ही अपने को समर्पित कर दिये है। वहां श्रीकृष्ण का अपना चित्त बहुत जगह से बहुत से

प्रेमियों के प्रति प्रेमयुक्त है। अतएव गोपी प्रेम अनन्य और अखण्ड है, कृष्ण प्रेम विभक्त है।

11 गोपियों! तुमने मेरे लिये घर की उन बेड़ियों को तोड़ डाला है, जिन्हें बड़े बड़े योगी यति भी नहीं तोड़ पाते। मुझसे तुम्हारा यह आत्मिक संयोग, यह मिलन सर्वथा निर्मल और सर्वथा निर्दोष है। यदि मैं अमर शरीर से अमर जीवन से अनन्त काल तक तुम्हारें प्रेम, सेवा और त्याग के बदले चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता। मैं सदा तुम्हारा ऋणी हूँ। तुम अपने सौम्य स्वभाव और प्रेम से ही मुझे ऋण कर सकती हो। परन्तु मैं तो तुम्हारा ऋणी ही हूँ। मेरी महिमा को, मेरी सेवा को, मेरे मन के भीतरी भावों को गोपियाँ ही जानती है, दूसरा कोई नहीं जानता।

12 प्रेमी भक्त को चाहिये तन मन वचन से होने वाली प्रत्येक चेष्टा श्रीकृष्ण सुख के लिये ही करे।

13 जब मन प्रतिकूल स्थिति प्राप्त हो तब तब उसे श्रीकृष्ण के सुखेच्छा जनित स्थिति समझकर परम सुख का अनुभव करें। करते करते जब श्रीकृष्ण सुख काम अनन्यता पर पहुँच जाता है। तब श्रीकृष्ण के मन की बात भी उसे मालूम होने लगती है।

14 श्रीकृष्ण को प्राप्त करने की सम्भावना होने पर असीम और भयंकर से भयंकर दुःख में भी सुख की प्रतीति होती है।

15 श्रीराधा श्रीकृष्ण की आराध्या, उपास्या है। श्रीराधा विश्वजननी है, विश्वमयी है, विश्वरूपा है, विश्वातीता है। सबकी आराध्या है, अचिन्त्य है।

।।श्रीराधा माधव चिन्तन से।।

1 वस्तुतः चेतन पुरुष न कभी जन्मता है न कभी मरता है। पुरुष स्वप्नकाल के संभ्रम की भांति केवल भ्रम से ही इन जन्म मरणादि को देखता है,

क्योंकि चेतना मात्र तो पुरुष है फिर वह कब और कहाँ नष्ट हो सकता है।

2 यदि जीवात्मा को चेतन से अतिरिक्त माने तो बताओ दूसरा कौन पुरुष हो सकता है? अतः चेतनामात्र ही पुरुष है, यही बात ठीक है। भला, बताओ तो सही-क्या आज तक इस संसार में किसी ने किसी के चेतन को मरा हुआ देखा है? लाखों शरीर मरते देखे जाते है और चेतन अविनाशी ही बना रहता है। यों वास्तव में न कोई मरता है न कोई जन्म ही लेता है।

3 केवल जीव वासना रूपी आपत्ति के गड्ढे में गोते लगाता रहता है। जीव जब साधना अभ्यास द्वारा भ्रमवश प्रतीत होते हुए जगत प्रपंच को सम्यक रूप से समझ लेता है, तब वह पूर्णतया वासनाओं से रहित होकर विमुक्त हो जाता है। इस प्रकार विमुक्त आत्मस्वरूप ही यहाँ सत्य वस्तु है,अतिरिक्त इसके सब असत है।

4 सर्वव्यापी परमात्मा सबमें शरीर रूप में स्थित है, न तो जड़ता ही कोई पृथक वस्तु है और न चेतन ही।इन पदार्थों की सृष्टि स्थिति और विनाश में कोई भेद नहीं है और न सत्ता सामान्य में ही कोई अन्तर है, सबमें सत्ता समान है।

5 चेतन तो परमार्थ रूप से स्थावर जंगम सबमें वर्तमान है, परन्तु जंगम में वायु के प्रवेश से चेष्टायें होती है और स्थावरों में नहीं होती।

।।योग वाशिष्ठ से।।

1 जब तक मोक्ष की इच्छा है, तब तक स्व सुख वान्छा है ही, बन्धन दुःख रूप है उससे मुक्ति प्राप्त कर वह मोक्ष सुख को प्राप्त करना चाहता है स्व सुख की चाह है। प्रेमी जन पूर्ण त्यागी होते है, अतः वे मोक्ष का भी परित्याग करके प्रेमसेवा में ही सहज सलंग्न रहते है।

2 मैं अतुलनीया ब्रम्हविद्या हूँ, ब्रम्हानन्द से पूर्ण हूँ। परन्तु श्रीकृष्ण विषयक प्रेम मुझे नहीं मिली अतः मैं सदा अपने को सूनी देखती हूँ।

3 चीर हरण तथा रासलीला का अर्थ है-अनावृत, अहंता ममता आसक्तिरूप माया के पर्दे सर्वथा मुक्त, योगमाया के परदे से मुक्त, भक्त और भगवान, जीव और परमात्मा का घुल मिल जाना। एक हो जाना।यही दिव्य भगवत्प्रेम है। समस्त आवरणों का विनाश हो जाता है।

4 प्रेम और परमात्मा में कोई अंतर नहीं है। इसकी प्राप्ति हुए बिना कोई इसे जानता नहीं, और प्राप्ति होने पर वह अपने मन से हाथ धो बैठता है। मन रहता है सदा प्रेमास्पद के पास। प्रेम गुणातीत होता है। प्रेम दिन दूना, रात चौगुना बढ़ता ही रहता है। भगवान में अनन्य प्रेम वास्तव में अमृत ही है।

5 तन मन धन वचन जो कुछ है उन्हीं का तो है। उनकी वस्तु उन्हीं को अर्पण हो जाय।

6 जो वस्तु उनको अर्पण हो जाती है, वही बचती है। वह अनमोल हो जाती है और हमें विपत्तियों के विशाल सागर से पार कर देती है।

7 प्रेम में खोना और अलग होना नहीं होता। खोने और अलग होने में ही पाना होता है। यही तो प्रेम का रहस्य है।

।।श्रीराधामाधव चिन्तन से।।

1 भला उस तेजपुंज आदर्श गुरु गोविन्दसिंह के त्याग का दृष्टान्त संसार में अन्यत्र कहाँ मिल सकता है, जिन्होंने राष्ट्रीय धर्म के पीछे व्यक्तिगत, गार्हस्थ्य और सामजिक धर्मों का परित्याग करके आत्मोत्सर्ग का महानतम आदर्श उपस्थित किया है।

2 एक बार अपनी आत्मा को राष्ट्र की आत्मा के साथ एक कर लो और देखो अनन्त शक्ति तुम्हारें सामने हाथ जोड़े खड़ी रहती है या नहीं।

3 भूतकाल को वर्तमान के अनुसार ढालों और अनुकूल बनाओ और फिर वीरता के साथ अपने शुद्ध पवित्र और शक्तिशाली वर्तमान को भविष्य की दौड़ में सबसे आगे बढ़ने दो। एक साधारण स्थिति का भारतीय परिवार हमारे सम्पूर्ण राष्ट्र का परिचायक है। जहां चाहो उसकी गति तीव्र करो।

4 संघर्ष की जड़ को न मिटाना और लोगों को शांति की शिक्षा देना उपदेश का उपहास करना है। देशकाल और वातावरण की विषम परिस्थितियों में वे बेचारे ईर्ष्या द्वेष और स्वार्थ लिप्सा से कैसे बच सकते है। हृदय से वे शांत और विनीत है। उनका हृदय विद्रोह नहीं चाहता।

5 हमारी पार्थक्य नीति। भारत वर्ष के प्रकाश पर एकछत्र अधिकार करने की लालसा में हमने अन्धकार फैला दिया। सर्वात्मा राम बनने के लिए, हम अपनी क्षुद्र आत्मा का परित्याग कर दें, स्वार्थपरता की आहुति से ही सर्वात्मा परमात्मा का उदय होता है। इसी को एक भाव से भक्ति और दूसरे भाव से यज्ञ कहते है।

।।स्वामी रामतीर्थ।।

1 अद्वैत पद ही ब्रम्हपद विष्णुपद ब्रम्हपद है, इसमें स्थित होने पर दृश्य एवं अदृश्य, साकार एवं निराकार, बाह्यजगत और अंतर्जगत सब अपने ही स्वरूप हो जाते है। अपने से पृथक अन्य वस्तु की अनुभूति नहीं होती। वही परम् सुख का स्थान है।

2 विराट प्रकृति मेरा शरीर है, नदियाँ मेरी धमनियाँ है और पर्वत हड्डियां। जिस प्रकार शरीर के किसी अंग को खुजलाने के लिए हाथ स्वतः उस अंग पर चले जाते है उसी प्रकार मेरी आत्मा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति स्वयं मेरी सेवा में उपस्थित हो जाती है।

3 यहां के लोग (जापान) कितने हंसमुख, कितने शांत, कितने परिश्रमी है। राम मनुष्य के इन्हीं गुणों को वास्तविक जीवन मानता है।

4 मुझसे पूछा, आप किस देश के निवाशी है? मेरी आँखों में आंसू आ गए, प्रेमभरी आवाज में मैंने उत्तर दिया, सारा संसार मेरा घर है।

5 राम कहता है, काम करते करते सफलता की इच्छा मर जाय और सफलता तुम्हारे सम्मुख खड़ी है।

6 सच्चा मनुष्य वह है जिसके प्रेम का विस्तार असीमित होकर जाति वर्ण सम्प्रदाय की परिधि से बाहर निकलकर समस्त देश के मनुष्यों को जो समान भाव से प्रेम करता है।

।।स्वामी रामतीर्थ।।

1 सब समय ही तो सब कुछ किसी मे लग्न है, अलग्न रूप से फिर कौन है? वही तो है। यही होना है।

2 मनुष्य को कठिन अस्वस्थता के बीच कष्ट चिंता न होना चाहिए। महालक्ष्य यात्री के लिए ही यह सम्भव है। सब अवस्थाओं में तदभावना, में मन को रखने की चेष्टा हो।

3 जब तुममें ही तुम, वही आलोक। यत्र जीव तत्र शिव, यत्र नारी तत्र गौरी। वही आत्मा, न पुल्लिंग न स्त्रीलिंग। वही वही वही। साकार निराकार, सगुण निर्गुण, रूप अरूप जो भी कहो। वही जो आत्मस्वरूप, एकमात्र सबसे न्यारा।

4 जब तुम उस परमस्थिति के ऊपर अपने को लेकर रहो, तब क्या पाया, क्या नहीं पाया। क्या मिलता है, क्या नहीं मिलता? इसका प्रश्न ही नहीं उठता।

5 नित्य जीवत्व पकड़ में कब आता है, जानते हो? परब्रम्ह, परमशिवत्व का जब निरावरण उदघाटन होता है।

6 आवरण विक्षेप मानना ही तो विपद है। सम्पदलाभ की ओर दृष्टि रखनी चाहिए।

7 अकेला पथिक न होने पर अनन्त में एक, एक में अनन्त का प्रकाश कैसे हो?

8 तुम मैं द्वंद मिटना चाहिए। शिशु जब चलना आरम्भ करता है तो उसे अकेला छोड़ दिया जाता है, वह जब गिरने लगता है, तभी उसे पकड़ा जाता है।

।।माँ आनन्दमयी।।

1 अमेरिका तो मेरे वेदांत का केवल भौतिक जगत में व्यवहार करता है। राम की अभिलाषा है कि सभी राष्ट्र इस सच्चाई का मानसिक और आध्यात्मिक जगत में भी व्यवहार करें।

2 समस्त पाश्चात्य देश बाह्य दृष्टि से फैले होने पर भी आंतरिक दृष्टि से संकीर्ण है।

3 भारत ने एक ओर आध्यात्मिक जगत का द्वार बंद कर लिया है और कुछ शताब्दियों से मानसिक स्तर भी इतना संकुचित हो गया है कि उसका रोग को तू गुरु के चरण रज से निर्मल कर।

3 भारतीय ज्ञान बताता है की यदि तू विश्व से प्रेम नही कर सका, एक से भी घृणा है तो जान ले कि अभी तेरे घट में ईश्वर के लिये स्थान नही है।

4 यदि तेरे अंतर में अभी असमानता का व्यवहार हो रहा है तो तेरा ज्ञान एक धोखा है जो तुझे भी धोखे में डाले हुये है।

5 यदि तेरे अंतर में धन की, मान की लालसा है। या यह बताने की अभिलाषा है कि वह ईश्वर को जानता है। तो तुम अभी ईश्वर के और निकट जाओ।

6 आत्मा को न जानो तो न सही, परन्तु आपस में शुद्ध भाव रखो, सत्य आचरण करो, प्राणी मात्र से दया और प्रेम का व्यवहार करो।

7 वह जानते थे कि यदि आत्मज्ञानी ने यही नही किया तो आत्मज्ञान का मूल्य क्या रहा?

8 उनका कहना है, कभी किसी से जबरदस्ती मत करो, बहुत संम्भव है, उनका मार्ग तुम्हारे से भी सरल हो। हाँ यदि मार्ग की सरलता जानते हो तो उसे बतला दो, वह स्वीकार करे तो ठीक है। यदि गैर धर्मावलम्बी है, तो कभी उसको बुरा न कहो, न मन में द्वेष करो। हाँ तुम्हारा सुंदर व्यवहार उसे इधर ले आवे, तो उत्तम है।

9 यह हमारे है, हमारे धर्म, जाति वाले है, क्या यह मुक्ति का स्वरूप है। समझदार व्यक्ति इसे कड़ा बन्धन कहेगा, किताबी ज्ञान और है। सन्तों का ज्ञान और।

10 विश्व मैत्री तथा विश्व प्रेम की उदघोषणा से ही भारतीय धर्म विश्व धर्म कहलाया। इस जगत में सब सुखी हो, निरोग हो, कोई दुःख प्राप्त न करे, सब शुभ दर्शन करे। दुर्जन सज्जन हो जायें, सज्जन शांति लाभ करें, शांत बन्धन से मुक्त हो और मुक्त दुसरों को मुक्त करे, ये उच्च कामना निहित है। अतः हम भारतीय ज्ञान को पुनः चैतन्य करे। हाँ इसकी युक्ति ब्रम्हनिष्ठ से जाग्रत मनुष्य से पूछनी होगी। यदि यह हो गया तो वह दिन दूर नही जब भारतीय ज्ञान फिर विश्व धर्म बनकर जलते हुए संसार को शांति देगा।

।।साधन से संग्रहित।।

1 देखता हूँ माँ स्वयं ही सब कुछ बनी है। सर्वत्र उसी को देखता हूँ। माँ ही दुष्ट व्यक्ति भी वही बनी है। रामलाल की माँ को डाँटने गया पर डाँट न सका देखा, वह माँ का ही एक रूप है! कुमारियों के भीतर माँ को देखता हूँ, इसलिए कुमारियों की पूजा करता हूँ। मेरी घरवाली पैरोँ को सहला देती है तो बाद में मैं उसे नमस्कार करता हूँ।

2 मनुष्य, पशु, घास, पानी, पहाड़-पर्वत सभी रूपों के भीतर वही एक अखण्ड सच्चिदानन्द विद्यमान है। बिलकुल स्पष्ट देखता हूँ, माँ मानो किस्म किस्म की चादरे ओढ़कर विभिन्न रूपों में सजकर भीतर से झाँक रही है।

3 एक दिन माँ का ध्यान कर रहा था, बहुत प्रयत्न करने पर भी माँ की मूर्ति को मन में न ला सका। फिर देखा रमणी नाम की एक वेश्या जो घाट पर स्नान करने आती थी, उसी का रूप धारण कर माँ पूजा के घट की ओट से झाँक रही है। देखकर मैं हँसते हुए कहने लगा, वाह वाह आज तुझे रमणी बनने की इच्छा हुई? बहुत अच्छा, आज इसी रूप में पूजा ग्रहण कर।

4 इस तरह माँ ने समझा दिया, वेश्या भी मैं ही हूँ, मेरे सिवा कुछ नहीं है।
।।श्री रामकृष्ण देव।।

1 मन में सोच विचार करके गर्व को हृदय से निकाल दो। जब तुम स्वयं को छोटा समझने लगोगे तो विनम्र हो जाओगे और विनम्रता के आने से सब विकारों से मुक्त हो जाओगे।

2 विनम्रता के आने से काम क्रोध लोभ मोह आदि विकार भी निकल जाएंगे।

3 चाह संसार का दास बना देती है, चाह रखने वाला बाधाओं से घिरा रहता है, वस्तु की इच्छा उसे उस इच्छा के अधीन रहना पड़ता है। जो उसकी चाह की पूर्ति करता है उसके अधीन रहना पड़ता है, उसके मन के अनुकूल चलना पड़ता है। इच्छा के कारण उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इच्छा के दास को भगवान भी नहीं अपनाते।

4 जो लोभ पर विजय पा लेता है, उसे सन्तोष आ जाता है। उसके अंदर त्याग और सत्य का उदय हो जाता है।

5 जिसके कारण मन से कलह क्लेश निकलकर शांति आ जाती है। ।।संत चरनदास।।

1 अंतर्मुखी आत्मकर्म करते करते जब पंचप्राण स्थिर हो जाते है, तब श्वास की गति बाहर नहीं आती व भीतर ही भीतर सुषुम्नागामी हो जाती है। तब मन स्वतः स्थिर हो जाता है।

2 मन चिन्ताशून्य होकर दर्पणस्वरूप कूटस्थ में शून्य ब्रम्ह देखता रहता है, स्थिर मन ही ब्रम्ह का दर्शन करता है। देखने का कार्य होने से यह भी द्वैत अवस्था है। जब (पूर्ण) शून्य ब्रम्ह के अतिरिक्त और कुछ भी नही रहता एवं निजसत्ता की अवलुप्ति हो जाती है। तव कौन किसकी देखेगा या प्रणाम करेगा? प्रणाम करना द्वैतावस्था है।

3 यह एक विचित्र अवस्था है जो मात्र अनुभव किया जा सकता है, इस अवस्था में केवल ब्रम्ह ही रहने से अहं ब्रम्हास्मि भावोदय होता है। और तब स्वयं ही स्वयं को प्रणाम होता है, यही वास्तविक प्रणाम है। तब भक्त व भगवान की सत्ता नही रहती।

4 मां नमस्कुरुः।मैं ही यथार्थ मैं। ब्रम्ह मैं।एक मैं है। अंगुष्ट प्रमाण उस महापुरुष का एक ही रूप है और वे समग्र विश्व ब्रम्हांड में व्याप्त है।

5 इस जगत में सभी वस्तुओं में मेरा ही रूप है, मेरे अतिरिक्त इस जगत में कुछ भी नहीं है। योगी जब ब्रम्ह में लय प्राप्त कर स्वयं ब्रम्ह हो जाते है, तब यह अवस्था स्वयंमेव ही हो जाती है।

6 ब्रम्ह ही सब कुछ का उत्पत्ति स्थल एवं आदिकारण है। सर्व ब्रम्हमय जगत होने से शून्य के भीतर जो महाशून्य है वहां वे अवस्थान करते है। इस अवस्था में न तो दिन होता है और न ही रात, स्वयं प्रकाश स्वतः प्रकाश रहता है।

7 दर्पण के सम्मुख प्रतिबिम्ब अनेक रूपों प्रतिबिम्बित होने के कारण अहंकार उत्पन्न होता है। जब मैं और मेरा प्रतिबिम्ब दोनों मिलकर एक हो जाते है और केवल मैं ही रह जाता है।

8 प्रतिबिम्ब के अभाव में दो के न रहने से अहंकार भी नही रहता।
।।क्रियायोग एवं अद्वैतवाद से।।

1 जीव का मन क्षण भर भी विषय त्याग नही कर सकता। उसका मन क्षण क्षण में एक विषय से दूसरे विषय की ओर दौड़ते रहता है।

2 इस प्रकार विषय में विक्षिप्त, व्यभिचारिणी स्त्री की तरह पतित मन को जो अपने चरण प्रान्त की ओर खीचकर पवित्र करते है, वही सतच्चिदानन्द विग्रह श्रीकृष्ण है। अपनी ही ओर जीव को आकर्षित कर खीच लेना ही उनका स्वभाव है।

3 मन आनन्द की खोज में भटकता तो है, पर उसे विषयो में वह आनन्द कभी भी नही मिलता जिसे पाकर सदा के लिये तृप्त हो जाये और कह सके की मैं पूर्ण काम हो गया अब और कुछ नही चाहता।

4 यही कारण है कि अतृप्त मन पुनः पुनः लोभातुर के समान विषयो में आकृष्ट होता रहता है। वह भोग करते करते समझने लगता है, जिस आशा से वह निकला था वह परमानन्द इसमें नही है।

5 वह जो आत्मा के शुद्ध आनन्द की ज्योति है, उस परमानन्द का नित्य श्रोत भीतर ही विद्यमान है, उसे बाहर अन्वेषण करने से क्या हाथ आयेगा? वह बड़ी कठिनता से समझ पाता है।

6 आनन्द ही आत्मा का स्वरूप है, इसमें आनन्द के सिवा और कुछ नही है। यही कारण है कि जीवों में आनन्द के प्रति इतना आकर्षण होता है। इसी आनन्द को लक्ष्य करके सब जीव दौड़ लगा रहे है। आत्मा ही जगत

के समस्त आनन्द का श्रोत है। हमारा जो कुछ प्रिय या प्रियतम है, सब आत्मा को लेकर है। यह आकर्षण ही जगत का मोहन है। गोविंद सदा गोलोक धाम में भ्रूमध्य में स्थित आज्ञा चक्र में (समस्त इन्द्रियों और मन के परिचालक के रूप में) अखण्ड मण्डलाकार में विराजित है।

7 मन जब विषयो से निवृत होकर अंतर्मुखी होता है तो उसका मनत्व दूर हो जाता है। तब निर्मल बुद्धि प्राप्त होकर उसके भीतर आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है। प्रतिबिम्ब स्थायी होने पर जीव की मुक्ति हो जाती है।

8 तब यह बुद्धि हमारी तुम्हारी न रहकर, सब उनके चरण में अर्पित हो जाती है। तब सब प्रकार की चाह में एक मात्र उन्ही की चाह रह जाती है। और सभी प्राप्य वस्तुओ में एक मात्र वही प्राप्त होते है।

9 कृष सत्तावाचक शब्द है तथा आनन्दवाचक । इन दोनों के संयोग से ही कृष्ण बनता है, जहाँ सत्ता है वही आनन्द है। इन दोनों का ऐक्य ही परब्रम्ह है और उसे ही कृष्ण कहते है। आनन्द की घनीभूत मूर्ति ही श्रीकृष्ण है, अतएव श्रीकृष्ण ही सब जीवों के प्रियतम है।

।।लाहिड़ी महाशय की गीता व्याख्या से संग्रहित।।

1 जब तक भोगों की प्रति वासना का क्षय नहीं होता तब तक ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा ही जाग्रत नहीं होती।

2 हे राम, सबसे पहले शास्त्रों के श्रवण से, सज्जनों के सत्संग से और परम वैराग्य से मन को पवित्र करो।

3 तब बुद्धि दीपक के समान चमकने वाली होकर सार वस्तु को पहचानने योग्य होती है।

4 चित्त शुद्धि से ही निर्मल बुद्धि होती है, निर्मल बुद्धि ही उस उच्च ज्ञान को ग्रहण करने योग्य होती है।

5 जिसे ग्रहण करके आत्मानुभव होता है, यही ज्ञान जीव के मुक्ति का कारण है। अन्य कोई उपाय नहीं।

6 स्वभाव के अनुकूल व्यवहार करने से पाखण्ड नही होता, और दुर्गति भी नहीं होती। स्वाभाविक प्रक्रिया से मानसिक संतुलन बना रहता है।

7 आत्मानुभूति एक अवस्था है जो मन के स्थिर होने पर कहीं भी प्राप्त की जा सकती है।

8 १ तत्व के अभ्यास,२ प्राणों की गति का निरोध, ३ मन का निग्रह। इनमें से किसी एक के अभ्यास से तीनों सिद्ध हो जाते है। वैराग्य का अर्थ (मन से) वासना त्याग है न कि घर छोड़कर जाना।वैराग्य भावना पूर्व संस्कारों का ही फल है।

।।योगवाशिष्ठ से।।

1 भक्ति का अर्थ है ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम।प्रेम का अर्थ है, भगवान के प्रति ऐसा प्यार जिससे वह शरीर के साथ सारे जगत को भूल जाये।

2 ईश्वर को भक्त का प्रेम ऐसे प्रिय है जैसे खली मिला हुआ भूसा गाय को प्रिय होता है। भक्त का हृदय ईश्वर का निवास स्थान होता है। विषय सुख की ओर जितनी आसक्ति कम होती है, उतने ही ईश्वर के प्रति भक्ति बढ़ती ही जाती है।

3 ऊँट कटीली घास पसन्द करता है, जितना खाता है, उतनी ही उसके मुँह से धर धर खून निकलते जाता है, किन्तु वह खाना नहीं छोड़ता। इसी प्रकार संसार में संसारी लोग इतना दुःख कष्ट पाते है, फिर भी कुछ ही दिन में सब भूलकर ज्यों के त्यों हो जाते है।

4 जब ईश्वर ने तुम्हें संसार में रखा है, तो तुम क्या कर सकते हो? सब कुछ उनके ऊपर छोड़ दो, उनके चरणों में अपने को समर्पित कर दो, फिर कोई कष्ट न रहेगा। मन से सब कुछ त्यागना पड़ता है, इसके बिना नहीं होता है।

5 जब अहं मर जाता है तब सारे क्लेश मिट जाते है। निरन्तर अभ्यास, सद्गुरु कृपा यही उपाय है।

6 समस्त संसार में तुम्हीं केवल एकमात्र कर्ता हो। मैं तुम्हारे हाथों का एक क्षुद्र यंत्र मात्र हूँ। मेरा कुछ भी नहीं सब कुछ तुम्हारा है। यही सर्वोच्च ज्ञान है।
।। श्री रामकृष्ण देव् ।।

1 आत्मा जब अपने आप में रहता है तब सारे कर्म बन्द हो जाते है, अतः आसक्ति भी किसी वस्तु में रहती नहीं, जैसा सुषुप्ति में होता है।

2 मन जैसे ही जाग उठता है वैसे ही पांचों (ज्ञानेन्द्रिय) इन्द्रिय, आसक्तिपूर्वक, पांचों विषयों की ओर दौड़ने लगता है। संसार चारों ओर से फूट उठता है।

3 देहेन्द्रिय और मन को लेकर ही संसार है। और ये सब उस स्वरूपावस्था (आत्मा) के ही विकार है, उससे ही सब होता है। आत्मा न होता तो यह जगत्प्रपंच ही व्यक्त न हो सकता।

4 संसार के ताप से सन्तप्त होकर जीव निरन्तर हाहाकार करता है, कहाँ जाने पर शांति प्राप्त कर सकता है, यह भूलकर अपना घर छोड़कर दूसरे के घर में आश्रय पाने के लिए वह रोता हुआ भटक रहा है।

5 प्रकाशशील स्थिर आत्मा में एक दिन संकल्प का प्रचण्ड वेग उठा, उस वेग से स्थिर समुद्र विक्षुब्ध हो उठा, तब मन रूपी तरँगराशि ताण्डव नृत्य करते करते बाहर की ओर निकल पड़ा और असंख्य जलकणों से

व्याप्त हो गया, जलकण अपने को भूल गये, मूलकारण को भूल गये।

6 जब मैं देहाभिमान से युक्त होता है, तो उसे बोध होता है मैं विश्व से भिन्न हूँ। तब नानात्व का खण्ड ज्ञान स्फुरित होता है। वही अज्ञान का समुद्र है, जिसमें जीव मग्न रहता है।

7 तब भूख से व्याकुल होकर कुत्ते के समान दृश्य वस्तुओं का भोग करने को उन्मत्त हो उठता है। कौन भोग करेगा, किसको भोग करेगा और क्यों करेगा। इन सब बातों की वह विवेचना ही नहीं करता, यही विकृति का लक्षण है। तब वह सर्वत्र ही आसक्ति के साथ दृष्टि करता है।

8 गुरुकृपा से उसे अपने घर की स्मृति होती है, तब वह व्याकुल होकर साधनाभ्यास करता है। साधन करते करते भीतर का कपाट खुल जाता है, तब वह अपने स्थान को पहचानकर प्रतिष्ठित हो जाता है। तब उसकी किसी और वस्तु की ओर आसक्ति नहीं होती। जो लोग भीतर ही भीतर आघात करते है, बाहर के नामरूप में नहीं भूलते अर्थात साधन द्वारा अन्तर्मुख करते है उनका अन्तर का आवरण हट जाता है। तब वे सत्यस्वरूप के आवरणहीन मुख को देखकर कृतार्थ होते है।

9 आत्मा के सिवा अन्य वस्तु में दिशा में आसक्ति होने पर जीव की जो दुर्गति होती है, जगत्प्रपंच होता है, वह हम प्रत्यक्ष देखते है। यह सब देहासक्ति के कारण होता है।

10 यह देह ही प्रकृति है, प्रकृति ही जीव को संसार में खींचती है। जो क्रिया करके परावस्था में रहते है, उनको फिर विकृत भाव में आना नहीं पड़ता।

11 परावस्था माने वह अवस्था जहां किसी प्रकार का कर्म शेष नहीं रह जाता, यहां तक कि प्राण का स्पंदन भी नही, क्योंकि स्पंदन भी प्राण का कर्म है। कर्म की अतीतावस्था। त्रिगुणातीत, महाशून्य ही मात्र जब रह

जाय। प्राण का केवल सुषुम्ना में रहना। सब कुछ ब्रम्हमय हो जाना।

12 मन के अन्य दिशा में अन्यत्र न जाने के कारण अन्य का अनुभव नहीं होता, यही स्थिरावस्था ब्रम्ह का स्वरूप है। यही विज्ञानपद है। आत्मा में मन संल्लीन होने पर फिर प्रपंच नहीं दिखता। इस अवस्था में सब वस्तुओं में ब्रम्हदर्शन होता है।

।। लाहिडी महाशय की गीता व्याख्या से ।।

1 प्रेम का अर्थ है भगवान के प्रति ऐसा प्यार कि जिसमें मनुष्य सारे जगत को भूल जाता है। अपना शरीर जो इतना प्रिय है, उसे भी भूल जाता है। जिस प्रकार का प्रेम सती स्त्रीअपने पति के प्रति अनुभव करती है, जैसा माँ अपने बच्चे से, जैसे संसारी अपने धन दौलत से, इन तीनों के आकर्षण को भगवान की ओर लगाओ, निश्चित ही दर्शन तुम पाओगे। विशुद्ध भक्ति होना बड़ा कठिन है, ऐसी ही भक्ति के द्वारा के द्वारा मन प्राण भगवान में विलीन हो जाते है।

2 भक्त का बल उसकी भक्ति के आंसू में निहित है। जब तुम देखो कि भगवान के नाम सुनते ही तुम्हारी आँखों में आंसू आ जाते है और शरीर में रोमांच हो उठता है तब जान लो कि तुम कामिनी और कांचन के आसक्ति से मुक्त हो गए हो और तुमने भगवान को पा लिया है। भगवान को छोड़ और कुछ है ही नहीं, भगवान स्वयं ही सब कुछ बने हुए है, जो कुछ देखता हूँ वह भगवान का रूप मात्र है।

वे ही माया, जगत व समस्त जीव बने है।

3 सर्वोच्च ज्ञान क्या है? समस्त संसार में केवल तुम्हीं एकमात्र कर्ता हो, मेरा कुछ नहीं, मैं मेरा परिवार,धन, गुण सब कुछ तुम्हारा है। तुम्हारें हाथों का एक क्षुद्र यंत्र मात्र हूँ।

4 सच्चाई और सरलता के बिना भगवान को नहीं पाया जा सकता। जब बच्चा माँ से अलग होता है, तब वह घबड़ा कर व्याकुल होकर रोने लगता हैऔर जैसे किसी के सिर को पानी में डूबा रखने पर, सांस लेने के लिए उसे जैसे छटपटाहट होती है, वैसे ही भगवान के लिए व्याकुल होने पर उनके दर्शन हो सकते है। जो भगवान के लिए व्याकुल होता है, वह खाने पीने जैसी तुच्छ बातों पर ध्यान नहीं देता।

5 भगवान निराकार है, और साकार भी, फिर वे इन दोनों अवस्थाओं से परे जो है, वह भी है।केवल वे ही जानते है, वे क्या क्या है।

।। श्री रामकृष्ण देव् ।।

1 महामाया का ध्यान करना ही श्रेष्ठ है। उनकी चिंता ही उचित है, तब अन्तर्दृष्टि स्पष्ट होती है, इन्द्रियों के सारे दुष्ट बन्धन क्षीण होते है, एवं मर्म प्रविष्ट वासनाओं की ग्रन्थियों के समूह खुलते है। धीरे धीरे चित्त की तीव्र भाव से बहिर्मुख वृतियां, धीरे धीरे अंतर्मुखी होकर विलीन हो जाती है।

2 एक महाशक्ति को छोड़कर दूसरा कुछ नहीँ है। एक महाशक्ति ही सगुण निर्गुण, साकार निराकार और सकल प्रकार के रूपों में नित्य प्रदर्शित है। विकार और निर्विकार भी महाशक्ति के ही रूप है। सुख दुःख, हाय हल्ला चाहे जो कुछ जहाँ कहीं भी हो, समझ लो की वह महाशक्ति ही उत्तम तथा अधम दोनों तत्वों का स्वाद ले रही है। मन बुद्धि अहंकार आदि का प्राण कौन? वही महाशक्ति।

3 ब्रम्हमयी महामाया ही द्वैताद्वैत, नित्य अनित्य लीला, सुख दुःख, हाय हल्ला, पिता पुत्र, पति पत्नी, सेव्य सेवक आदि के रूप धारण कर लीला कर रही है। केवल चैतन्य ही सत्य है, जगदम्बा ही सब कुछ है। उनकी इच्छा से ही सब कुछ होता है, मैं मेरा यह सब कुछ भी नहीं है। जगत की

सारी चीजे एक न एक आवरण से ढँकी है जैसे केला छिलके से ढँका है, छिलका उतारने पर ही असली स्वाद मिलता है। उनको पाने के लिए एक प्रकार की तीव्र विकलता व्याकुलता व्यग्रता चाहिए, जब ऐसे उन्हें कभी पुकारोगे तभी मन में एक प्रकार की शांति का अनुभव करोगे।

4 जो अंधे को आँख देकर, अनन्त महाशक्ति की विराट विश्वलीला दिखा , शिष्य को आत्म स्वरूप दर्शन की स्थिति लाभ की योग्यता दे देते है। वही सद्गुरु है। गुरु कृपा से कुण्डलिनी की निद्रा टूटने पर ही जीव मुक्त होता है। ब्रम्हतेज रूपी प्रज्वलित अग्नि ही गुरु है, इस अग्नि की सहायता से सहस्त्रार के ज्योतिर्मय धाम को गमन करना पड़ेगा। सद्गुरु का श्रेष्ठ रूप अव्यक्त ईश्वर है।

।। स्वामी विशुद्धानन्द जी ।।

1 दीक्षा के समय गुरु शिष्य के अंतर में प्रविष्ट होकर अन्तर्यामी रूप से शब्द ब्रम्हमय ज्ञान का दान करते है। यह शब्दज ज्ञान है।

2 इसके अतिरिक्त विवेकज ज्ञान है, जो सद्गुरु की विशिष्ट कृपा के उदय होने पर, शिष्य के विवेक पर अपने आप उदभूत होता है। यही प्रत्यक्षज्ञान है, प्रातिभज्ञान इसका नामान्तर है। वस्तुतः यही तारक ज्ञान है, इससे अविषय कुछ भी नहीं है। इस महाज्ञान का संचार गुरु मौखिक रूप से नहीं करते अपितु अलक्षित रूप से करते है। इससे हृदय के मर्म में प्रविष्ट सभी ग्रंथियां खुल जाती है।

3 सद्गुरु की मंगलमयी इच्छा की सहायता से भाँति भाँति की अवस्थाओं को पार करते हुए शिष्य आगे बढ़ता है। नाना प्रकार के प्रलोभन एवं परीक्षा से उसका चित्त प्रकृत सत्यान्वेषण के मार्ग पर सजग बना रहता है। उसके विश्वास और धैर्य की इसी समय परीक्षा होती है। जिसके चित्त के जिस अंश में दुर्बलता होती है, उसके उस अंश की परीक्षा होती है।

4 धैर्य संयम सहनशीलता तथा प्रबल उत्कंठापूर्वक अवश्यंभावी गुरुकृपा पर अटल श्रद्धा रखना यही, इस समय एक मात्र कर्तव्य है। इसी अवस्था में अतर्कित भाव से सद्गुरु की महाकरुणा आत्मप्रकाश करती है। शिष्य साधक के हृदय में शांति और आनन्दमय चैतन्य की ज्योति प्रस्फुटित हो उठती है। जो सर्वदा सर्वत्र समभाव से विद्यमान है, यह उसी का साक्षात्कार है। यही विवेकज ज्ञान का उदय है, ज्ञानचक्षु का उन्मीलन है।

5 इसके बाद प्रेम की प्रक्रिया का आरम्भ होता है। रससाधना के लिए भाव का विकास आवश्यक है, इसके पहले प्रत्यक्ष ज्ञान का उदय आवश्यक है।

6 आत्मभाव में निष्ठा उतपन्न होने से साधक की सम्पूर्ण चेष्टा अर्चना में परिणत हो जाती है, सम्पूर्ण वाक्य मंत्रजाप जैसे हो जाता है। भक्त साधक को अपनी देह की सेवा या परिचर्या करनी होती है वह इष्ट के परिचर्या के रूप में परिणत हो जाती है। इष्ट को प्राप्त कर लेने पर उसके भजन की अनुकूलता उतपन्न होती है। भक्त के संग योग से इष्ट अनुराग से अनुष्ठित उसकी सेवा ग्रहण करते है।

7 वह भगवान जैसा ही सर्वज्ञ और सर्वकर्तृव्य सम्पन्न हुआ अनुभव करता है। भक्त भगवान की समता प्राप्त कर लेने पर भी विशुद्ध अभिमान से अपने को दास ही समझता है। दास भाव, दासीभाव में परिणत हो जाता है, वह देखता है एक अद्वैत पुरुष है, शेष सब दासी है।

8 जीव अजीव सभी प्रकृति है, देखता है एक अखण्ड अद्वैत माँ महाशक्ति है, शेष सब उनकी संताने है। वह अखण्ड सत्ता एक होकर भी अनंत भावों से स्वयं अपने आप से खेल रही है।

9 उसी एक में उनके सर्वभेदों का समन्वय हो जाता है।

।। मनीषी की लोकयात्रा से ।।

1 मौन रहो, जिससे कि ईश्वर जिसने तुम्हें भाषा प्रदान की है बोल सके। मौन सृजनात्मक प्रतिभा का विकास करता है। मौन और धैर्य एक साथ चलते है। संसार में निराशा तथा अप्रत्याशित घटनाएं होती रहती है, इन सब विपत्तियों के बावजूद यदि हमने मन और आदत की मौन वृत्ति को प्राप्त कर लिया है तो हम सुरक्षित और सन्तुलित रह सकते है।

2 मौन हमारे कार्यकुशल और एकाग्र विचार के लिए एक सुस्पष्ट तथ्य बन जाता है। मौन का अभिप्राय हमारे शरीर, मन और हमारी सभी क्षमताओं का ऐसा संयोजन है जिससे प्रत्येक कण एक सामंजस्य में क्रियाशील रहे। जब तक मन ग्रहणशील नहीं बनता, तब तक अध्ययन अभ्यास में लगाया कितना भी समय बहुत कम लाभकारी होता है। मौन सर्वोत्तम विश्रामदाता है, मौनवृत्ति से अधिक तीव्र विश्रामदायी कुछ भी नहीं है और प्रत्येक व्यक्ति को इसको पाने का अधिकार है। हमारे शरीर और स्नायुतन्त्र के लिए निद्रा जो कार्य करती है, वही कार्य हमारे मन और आत्मा के लिए मौन करता है।

3 जो मौन कार्य कुशलता में वृद्धि करता है, वह मात्र बैठने और कुछ न करने की स्थिति नहीं है, यह तभी अनुभव होता है जब सम्पूर्ण चैतन्य सत्ता एकीभूत हो जाती है और पूर्ण सामंजस्य में सूत्रबद्ध होकर प्रवाहित होती है। मौन धारण के क्षणों में सभी प्रकार के आध्यात्मिक दर्शन और गहन विवेक का प्रकटन होता है। मौन के क्षणों में हम अनन्त सत्ता के स्वर को सुनते है।

4 बृहतर अनुभूति के द्वारा जिस व्यक्ति की दृष्टि व्यापक हो चुकी है, वह मूक हो जाता है। और उसका मौन ही सर्वाधिक वाग्मिता पूर्ण अभिव्यक्ति होती है। हमें कभी कभी स्वयं को मूक बना लेना चाहिए जिससे हमारा हृदय अनन्तसत्ता की महिमा का गान कर सके। हमें स्वयं

को अन्तरात्मा की आवाज को सुनने का अवसर देना चाहिए। आध्यात्मिक मनोवृत्ति वाले व्यक्ति की एक पहचान उसका मौन और सहिष्णु भाव है। सद्‌गुणी और सच्चरित्र व्यक्ति केवल अपने मौन के प्रभाव से अन्य व्यक्तियों को समुन्नत कर सकता है। वास्तविक सहायता दीर्घस्थायी और दूरगामी होती है तथा यह हमारे मौन जीवन के माध्यम से मिलती है। मौन उतना ही गहरा है जितनी अनन्तता। ईश्वर मौन प्रेम की भाषा को सर्वाधिक सुनते है। सन्तों का मन प्रशांत होने के कारण ब्रम्हांड का दर्पण और सम्पूर्ण सृष्टि का परावर्तक होता है।

5 मौन सभी रोगों की औषधि है। मौन साधना के दो मार्ग है। पहला है विचारों को निर्मूल कर देना है और दूसरा विचारों को परिपूर्ण बना देना है। दूसरा मार्ग महान शक्ति उत्पन्न करने वाला है। जब हम मन को रिक्त करने का प्रयास करते है तो नकारात्मक भाव अवसाद निराशा विक्षिप्तता आदि में मन के पतन का खतरा रहता है। इसके विपरीत जब हम मन को गतिशील विचारों से भरने में समर्थ होते हैं, तो यह न केवल आन्तरिक और बाहरी खतरों से हमारी रक्षा करता है बल्कि यह मन से अवांछनीय विचारों को भगा देता है।

।। साइलेन्स एस योगा से ।।

1 जाग्रत चित्तशक्ति क्षुधार्थ है, सबसे पहले वह बाह्यजगत को आत्मसात कर लेती है। अपने अंतर में ले जाती है।

2 जब तक प्रमेयशुद्धि नहीं होती तब तक जीव का रूपांतरण नहीं हो सकता। प्रमेयशुद्धि का साधारण लक्षण है, उस समय विराट विश्व स्वयं से बाहर प्रतीत नहीं होता। देह से आत्मा पृथक है, यह बोध में आयेगा, तब विश्व बाह्यरूपेन प्रतीत नहीं होगा यही प्रमेयशुद्धि है। वाह्याभाष कि निवृति ही इसका लक्षण है।

3 जागतिक स्थूल दृष्टि से जिसका नाम रूपदर्शन है, श्रोत द्वारा शब्द श्रवण है, यह सब व्यापार ही भगवदुपासना स्वरूप है, पूजास्वरूप है। प्रत्येक इन्द्रिय से इस समय भगवान की पूजा होती है।

4 प्रमेयशुद्धि के अनंतर प्रमाणशुद्धि पश्चात प्रमातृशुद्धि हो जाने पर पूर्णादशा का आविर्भाव होता है।

5 प्रमेयशुद्धि से बाह्यज्ञान के चिन्मयत्व की सूचना मिलती है, प्रमाण के साथ प्रमाता भेद भी जब शुद्ध हो जाता है तब पूर्ण जागृतिदशा का उदय होता है। यही महाशक्ति की पूर्णावस्था है।

6 काल के ऊपर महाकाल है, महाकाल के ऊपर संवित स्वयं है। अंत में काल की निवृत्ति हो जाती है, यहां तक कि महाकाल की निवृत्ति हो जाती है। यही पूर्णत्व है।

।। मनीषी की लोकयात्रा से ।।

1 परम् कारण भगवान शिव प्रत्येक जीव की आत्मा है और उनके पूजन का तरीका केवल आत्मबोध है।

2 यदि विष्णु आदि देवताओं को प्रसन्न करने का यत्न कर सकते हो, तो अपने मन को ही शुद्ध करने का यत्न क्यों नहीं करते?

3 आकार वाले जितने संसार के पदार्थ है वे सब आत्मा ही है। वह सात्विक बुद्धि द्वारा अपने आप ही जाना जाता है।

4 आपत्तियों के नाश करने के लिए वैराग्य शास्त्र और उत्तम गुणों द्वारा यत्नपूर्वक मन को ऊँचा उठाना चाहिए।

5 अधिकारी शास्त्र और (सद) गुरु तीनों के संयोग होने पर ही आत्मानुभव का प्रकाश होता है।

6 जिसका चित्त अचित्त हो जाय और कर्मफल की चिंता न रहे वह ज्ञानी है।

जिसके मन की इच्छाएं शांत हो गई है और जिसकी शीतलता बनावटी नहीं है, वास्तविक है, उसे ज्ञानी कहते है।

7 अनेकों जन्मों में अनुभूत होने के कारण बहुत दृढ़ हुई संसार भावना का क्षय बिना बहुत समय तक (ज्ञान का) अभ्यास और योग (आत्म) किये नहीं होता। बिना अभ्यास के आत्म भावना का उदय नहीं होता। योग का अर्थ है चित्त वृतियों का निरोध करना, और ज्ञान का अर्थ है, यथा स्थिति वस्तु को जानना। ज्ञानियों का मन ब्रम्ह ही है।

8 प्राण और अपान के बीच की अवस्था, जिसमें दोनों की गति का अनुभव नहीं होता, आत्मा की निजी अवस्था है। इसमें स्थित होना योगी का ध्येय है। परमज्ञान। बिना मन के अस्त हुए असम्भव है।

।।वशिष्ठ जी।।

1 जीवन में शक्ति, भक्ति के लिए काम आनी चाहिए, शक्ति पाने के लिए भक्ति नहीं चाहिए। भक्ति का महत्व हमेशा शक्ति से अधिक होनी चाहिए। शक्ति का उपयोग केवल ईश्वरीय अभिव्यक्तियों और भक्ति बढ़ाने के लिए होनी चाहिए।

2 योग न तो सिद्धियां प्राप्त कर अहंकार बढ़ाने के लिए है, न ही शरीर को अमर बनाने के लिए है। यह तो अहंकार को शून्य कर परमतत्व पाने के लिए है। इसका उद्देश्य कुछ बनना नहीं बल्कि कुछ न होकर रह जाना है। अपने मैं और अलग होने के अहंकार को मिटाकर परमतत्व के साथ एक हो जाना ही योग है।

3 मृत्यु का असली अर्थ है अहंकार की मृत्यु। जब वह जान लेता है कि वह शरीर नहीं है अपितु एक परम चैतन्य, सेल्फ है, और किसी से अलग नहीं है, तो ही उसके मृत्यु पर असली विजय होती है।

4 शक्ति तभी लाभ देती है, जब शक्ति के उपयोग की सही समझ हो। उनकी शक्तियों ने हमेशा भक्ति की ही सेवा की। यदि शक्ति का कभी प्रदर्शन हुआ तो लोक कल्याण के लिए, स्वार्थ के लिये नहीं।

5 साधारण भोले भाले लोगों में सत्य का ज्ञान का आलोक फैलाया यही उनकी सबसे बड़ी अभिव्यक्ति थी।

।।सन्त ज्ञानेश्वर से।।

1 जब भोग तृष्णा रूपी विष का आवेश नष्ट हो जाता है, तब अज्ञान नष्ट हो जाता है। अमुक वस्तु ग्रहण करने योग्य है, यह मन का निश्चय विश्वास ही वासना कहलाती है। वासना के अनुसार चेष्टा होती है, चेष्टा अनुसार फल भोगता है, यह वासना ही कर्तव्य शब्द से प्रतिपादित होती है। अतः कर्तृत्व से फल भोगतृत्व होता है। वह कर्म करे या न करे वासना अनुसार वैसा ही अनुभव करता है।

2 वासना को ही चित्त कहते है, वासना का विनाश होने पर प्राण और चित्त का वियोग हो जाता है। मुनिगण वासना को ही मन जानते है। चित्त का स्वरूप वासना ही है, चित्त के अभाव होने पर परमपद प्राप्त हो जाता है।

3 मन का चलना रुक जाने पर प्राण वायु का चलना रुक जाता है। प्राण और चित्त वैसे ही है, जैसे अग्नि और उसकी उष्णता का सम्बंध परस्पर हैं।

4 अग्नि और उष्णता के समान दोनों में से एक का विनाश हो जाने पर दोनों विनष्ट हो जाते है। और जीवात्मा के लिए एक महान मोक्ष नामक कार्य सम्पन्न कर देते है।

5 जिसमें संसार की बीज रूपी वासना दग्ध हो गई है, वह चित्त फिर कभी ब्रम्हरूपता से अलग नहीं होता। वासना से रहित होना ही चित्त की शुद्धि

है, एक ब्रम्हाकार होना ही उसका वासना से रहित होना है। चिन्मय परमात्मरूप हो जाना या उसमें लय हो जाना ही उसकी वास्तविक शुद्धि है।

।। वशिष्ठ जी ।।

1 शिष्य के रूप में तुम जितने अच्छे बनते जाओगे, गुरु के महत्व के बारे में तुम्हारी समझ उतनी ही बेहतर होती जाएगी।

2 वास्तव में गुरु अनमोल है, सब कुछ न्योछावर करने के बाद भी उनकी कृपाओं का मूल्य चुका पाना सम्भव नहीं है। किंतु सब शिष्य अपनी अपनी बुद्धि व समझ के अनुसार कम ज्यादा आँकते है।

3 शिष्य जब भक्त बनता है, तो वह जानने लगता है कि वास्तव में गुरु तो अनमोल है।

4 गुरु एक अलग क्रम से सृष्टि चलाते है, वे ज्ञान देकर नया जन्म देते है, अहंकार को नष्ट करते है, और ज्ञान आत्मज्ञान में जीना सिखाते है। गुरु इस प्रकार जन्मदाता, पालनकर्ता व संहारकर्ता है।

5 गुरु जो सतगुरु है तक पहुँचने में अहंकार ही सबसे बड़ी बाधा है, गुरु ही अहंकार को मिटाकर अंदर के गुरुतत्व को उजागर करते है।

6 बिना गुरु के जीवन जीनेवाले लोग बहुत थोड़े (सीमित रहने से, अनन्त की चाह न होने से) में खुश हो जाते है। एक इंच का जीवन भी वे सही ढंग से नहीं जी पाते। जीवन की पूर्ण सम्भावना, पूर्णता हेतु गुरु का मिलना अति आवश्यक है।

7 गुरु वह दरवाजा है जिससे गुजरकर, माया के बन्धनों से, मौत के डर से, गलत धारणाएं टूटकर ज्ञान से मन निर्मल पवित्र शांत प्रसन्न हो जाता है। एवं सत्य की प्राप्ति वे करा देते है।

।।सद्गुरु नानक, से।।

1 अपने में विशेषता देखना अहंता को देहाभिमान को पुष्ट करता है।

2 एक परमात्मप्राप्ति का दृढ़ उद्देश्य होने से अन्तःकरण की जितनी शीघ्र और जैसी शुद्धि होती है, वैसी किसी भी अन्य अनुष्ठान से नहीं होती।

3 एक परमात्म प्राप्ति का उद्देश्य होने पर कोई भी साधन छोटा बड़ा नहीं होता।

4 वास्तव में परमात्मप्राप्ति के सिवाय मनुष्य जीवन का अन्य कोई प्रयोजन है ही नहीं। आवश्यकता केवल इस प्रयोजन को पहचानकर इसे पूरा करने की है।

5 शरीर भी संसार का ही अंग है। अतः शरीर से सम्बन्ध विच्छेद होना अर्थात उसमें अहंता ममता न रहना ही वास्तविक एकांत है।

6 साधक में एकांत सेवन की रूचि होना, बढ़िया है। पर उसका आग्रह, राग होना बढ़िया नहीं है।

7 करेंगे यह निश्चित नही है। पर मरेंगे यह निश्चित है।

8 निश्चित समय पर चलने गाड़ी के लिये भी, जब पहले से ही सावधानी रहती है। फिर जिस मौतरुपी गाडी का कोई समय निश्चित नहीं है। अतः इसके लिये तो हरदम सावधान रहना चाहिये।

9 जब तक नाशवान वस्तुओं में सत्यता दिखेगी, तब तक बोध नहीं होगा।

10 जब तक अपने में राग द्वेष है, तब तक तत्वबोध नहीं है। केवल बातें सीखी है।

11 सन्तोष से काम, क्रोध और लोभ। तीनों नष्ट हो जाते है।

12 सबमें भगवद्भाव करने (रखने) से सम्पूर्ण विकारों का नाश हो जाता है।

13 गुणों की कमी का नाम ही दोष है। वह कमी असत् को महत्ता और सत्ता देने से आती है।

14 मनुष्य की इज्जत धन बढ़ने से नहीं है। प्रत्युत धर्म बढ़ने से है।

15 जो होता है, वह ठीक ही होता है।बेठिक होता ही नहीं। इसलिए करने में सावधान। और होने में प्रसन्न रहना चाहिये।

16 प्रारब्ध चिंता मिटाने के लिए है।निकम्मा बनाने के लिए नहीं।

।।स्वामी रामसुखदास जी।।

1 स्थूल, सूक्ष्म और कारण-ये तीनों शरीर कर्मफल है।इनका आश्रय न लेकर इनको सबके हित में लगाना चाहिए।

2 स्थूल शरीर से क्रियाओं और पदार्थों को संसार का ही मानकर, उनका उपयोग संसार की सेवा, हित में करे।

3 सूक्ष्म शरीर से दूसरों का हित कैसे हो, सब सुखी कैसे हों, सबका उद्धार कैसे हो-ऐसा चिन्तन करे।

4 कारण शरीर से होने वाली स्थिरता, समाधि का भी फल संसार के हित के लिए अर्पण करे।

5 कारण यह है तीनों शरीर अपने व्यक्तिगत नहीं है और अपने लिए भी नहीं है, अपितु संसार केऔ र संसार की सेवा के लिए ही है।

6 इन तीनों का संसार के साथ अभिन्नता तथा अपने स्वरूप के साथ भिन्नता है, इस तरह इन तीनों का आश्रय न लेना ही कर्मफल का आश्रय न लेना है।

7 और इन तीनों से केवल संसार के हित के लिए कर्म करना ही कर्तव्य कर्म करना है।

8 अपने लिए कर्म न करने से नयी आसक्ति बनेगी नहीं, केवल दूसरों के लिए कर्म करने से पुरानी आसक्ति मिट जायगी।

9 उत्पत्ति विनाशशील वस्तुओं को पकड़ने का नाम बन्धन है और छूटने का, आसक्ति छूटने का नाम मुक्ति है।

10 उपाय है उनका आश्रय न लेना ममता न करना।

11 संसार से मिली हुई वस्तु संसार को दे दें, संसार की सेवा में लगा दें, तो संन्यासी हो गये। और मिली हुई चीज में वस्तु में अपनापन, ममता छोड़ दें तो त्यागी हो गये।

12 कर्मफल का आश्रय न लेकर कर्म करने से उसके कर्तृत्व व भोक्तृत्व का नाश हो जाता है।

13 उसका न तो कर्म के साथ न फल के साथ सम्बन्ध रहता है, कर्म को दूसरों के हित के लिए कर्तव्य बुद्धि से करता है, अतः वह संन्यासी है। फल की प्राप्ति अप्राप्ति में सम रहने से वह योगी है।

।।श्री रामसुखदासजी।।

1 मैं तेरा वह प्रज्वलित सौंदर्य देखना चाहता हूँ, जिस पर गोपिकायें दीन हीन पतंगों की भाँति टूटती थीं।

2 सच्चे प्रेमियों के नौ लक्षण होते है। प्रियतम की प्रतीक्षा, व्यग्रता, बेसब्री, आहें, अश्रुयुक्त आँखें, अल्पाहार, कम वार्तालाप, पीला मुख, अनिद्रा।

3 ओह जीवन कितना छोटा है, और कितना बड़ा है तू! मैं तो अधीर हो रहा हूँ! या तो मेरे मन की प्यास बुझा दे या फिर मुझे मार डाल! तू तो सूर्य को चमक देता है, चन्द्रमा को शीतलता सौंदर्य, फूलों को सुंदर रंग और सुगंध, फिर मुझे दिखने और ज्ञान देने में क्यों कृपण बनता है?

4 सेवक को तो केवल काम करने और उनको चित्त में धारण रखने से वह सुख मिलता है, जो किसी बाह्य विषयसुख, आडम्बर और ठाठबाट की किंचित भी आवश्यकता नहीं रखता। मुझे तो जो ईश्वर निमित्त काम करने से सुख होता है, वही वेतन काफी है।

5 मैं इच्छाओं की स्थिति से ऊपर उठ चुका हूँ, मेरी समस्त इच्छाओं की समाप्ति हो चुकी है। ये इच्छायें ही इच्छित वस्तु की प्राप्ति में बाधाएं है।

6 ईश्वर पर भरोसा करने वाले पशुओं के लिए भी परमेश्वर, आप रसोईया बना रहता है। ईश्वर कृपा का द्वार खुला हुआ है, कठिनाइयों के भय से निराश होकर मत बैठ।

7 हृदय की समस्त ग्रंथियां खुल चुकी है, संसार के राग द्वेष, हर्ष विषाद, आशा निराशा आदि द्वन्द समाप्त हो गए है।

8 बुदबुदा के सदृश हमने अपना काम तमाम कर लिया है।

9 सामग्री रहित अवस्था में भी बादशाहियाँ करते है, द्रव्य इत्यादि से रहित रहने की प्रीति लोक परलोक का अधिकारी बनाती है।

10 अन्तःकरण के दर्पण में उनका चित्र है, जब भी किंचित सर झुकाया, तब उसे देख लिया।

11 हमारे चित्त की बदमाशियाँ है कि परमात्मा पर विश्वास भरोसा न लाकर हमें दुःखी किया करती है, यह अभ्यास से वश में आता है।

12 मन ऐसो निर्मल भयो जैसे गंगा नीर। पीछे पीछे हरि फिरै कहत कबीर कबीर।

13 मैं बड़े आनन्द में हूँ, मेरी इच्छा है कि उनके चरणों की रज मेरी आँखों का काजल बन जाय।

।।स्वामी रामतीर्थ।।

1 मनोजय के बिना परमार्थ मिथ्या है, संसार का साम्राज्य मिल सकता है, पर मनोजय करना बड़ा ही कठिन है।

2 सार्वभौम राज्य प्राप्त करने वाले चक्रवर्ती राजा की अपेक्षा मन को अपने वश में रखने वाले साधु की योग्यता सभी देशों में बड़ी मानी जाती है।

एक ओर से वैराग्य की धूनी रमाकर चित्त से विषयों का त्याग करना और दूसरी ओर से हरि चिन्तन का आनन्द लेना, इस प्रकार वैराग्य और अभ्यास दोनों अस्त्रों शस्त्रों की मार से मनो दुर्ग दखल करना होता है।

3 गुरु, सगुण और निर्गुण तीनों तत्वतः एक ही है, यथारुचि कोई भी अभ्यास दृढ़ हो जाना चाहिए। इस मन में बड़ा भारी गुण यह है कि यह जहाँ लग जाता है वहाँ लग ही जाता है, फिर वहाँ से हटता नहीं है।

4 ऐसा वैराग्य दृढ़ करना चाहिए कि मन विषयों से ऊब जाय और दूसरी ओर से उसे परमार्थ का चस्का लगाते हुए हरि भजन में समाधि देनी चाहिए।

5 मन को छोड़ और कोई देवता नहीं, पहले इसे प्रसन्न कर लो। मन को प्रसन्न करना उसे, विषय प्रवाह से खींचकर हरिभजन के लंगर में बांधना है।

6 मन की बड़ी रखवाली करनी पड़ती है, यह जहाँ जहाँ जाय वहाँ वहाँ से उसे बड़ी सावधानी से खींच लेना पड़ता है। नित्य जागकर इस मन को संभालना पड़ता है, मदोन्मत्त हाथी जैसे अंकुश बिना नहीं संभलता वैसे ही यह चंचल मन अखण्ड सावधान रहे बिना ठिकाने नहीं रहता। उत्तम गति अथवा अधोगति देनेवाला मन है।

7 एक क्षण में पचासों जगह चक्कर लगा आने वाले इस मन को भगवान दया करें तो ही रोक सकते है।

8 मन को रोकना चाहें तो यह दुर्जन नहीं रुकता। मेरा मन मुझे ही हानि पहुँचाता है। इसके अन्तर में संसार भरा हुआ है, भक्ति केवल बाहर है। इसलिए यह अन्तर आपके चरणों में रखता हूँ। तेरे मेरे बीच यही एक बड़ी बाधा है, यह मन संसार की ही बातें ही सोचता रहता है। अंदर मन संसार का ही ध्यान करता रहता है। हे नारायण! आओ दौड़ आओ तुम्हीं इस अन्तर में आकर भरे रहो।

9 इस मन के कारण, हे भगवन! मैं बहुत ही दुखी हूँ। क्या मन के इन विकारों को तुम भी रोक नहीं सकते।

10 तेरे रोके भी ये (विकार) नहीं रुकते, यह तो चित्त को बड़ा अचरज लगता है। यह मेरे ललाट की कर्म रेखा है, तुझे कोई क्या हँसेगा?

11 इसे बहुत रोको, बन्द कर रखो तो यह खीज उठता है, फिर चाहे जिधर भागता है, विषय देखकर उसी ओर भागता है। यह तो बेबस विषय लोभी है। अपने बल से इसे रोक रखना चाहता हूँ पर इस उलझन को सुलझाने का कोई उपाय न देख निराश होता हूँ। आपके बिना इस मन का दूसरा कौन चालक है, हे नारायण! यह तो बताइये। कृपाकर उसका पता ठिकाना बता दीजिये, तो आपको क्यों कष्ट दें, उसी को जाकर पकड़ें?

12 विषयों के द्वाररूप ये इन्द्रियाँ बड़ी कठिन है, ये सदा ही बाहर से विषयों को अंदर ले आया करती है। हे नारायण! आप ही अन्तःकरण को व्यापे रहें तो ही निस्तार है। अन्तर में आपको आसन जमाये देखकर ये विषय बाहर के बाहर ही रहेंगे। अब वेग से आओ, मेरे अन्तर में भरकर आप ही यहाँ सदा विराजें।

13 अंधे की सी हालत मेरी हो गयी है। हे हरे! अब आप मुझे हाथ पकड़कर रास्ता बताओ। मेरे अंदर क्या क्या दोष है, उन सबको मैं जानता हूँ, पर क्या करूँ? मन पर बस चलता नहीं, इन्द्रियों को खींचते नहीं बनता, कथनी जैसी करनी नहीं बन पड़ती। मन और इन्द्रियाँ एक तरफ हो गयी है और दूसरी तरफ मैं हूँ,आप ही मध्यस्थ होकर इस कलह को मिटाइये, इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। चित्त शुद्धि के पूर्ण होते ही, आस्था की भूमि के तपकर तैय्यार होते ही वह करुणा घनश्याम

बरसे। इस तरह तुकाराम जी अपने चित्त को शुद्ध करने के कैसे कैसे उपाय कर रहे थे।

।।श्री तुकाराम चरित्र से।।

1 सदा हरि का चिन्तन ही जिसका धन है। हरि के बिना वे सब कुछ व्यर्थ समझते है।

2 सन्त जब घर आते है तब दशहरा दीवाली का आनन्द मिलता है। पहले सन्त पीछे देवता।

3 बड़े आदमी (गुरुजी) का लड़का (शिष्य) यदि चिथड़ा ओढ़े तो सब लोग किसको हँसेंगे?

4 जिससे हरि मिलें वह (लोकदृष्टि में) अधर्म भी हो तो करे (बलि गोपियाँ ऋषि पत्नी की तरह) जिससे वे छूट जायँ वह कर्म न करे।

5 भक्तों के यहाँ वे अपने तन से काम करते है।

6 श्रीगुरु बोलते चालते ब्रम्ह है, उनकी चरण धूलि में लोटे बिना कोई भी कृतकृत्य नहीं हुआ।

7 यह कहो कि मैं ब्रम्ह हूँ, मैं मुक्त हूँ, मैं सुखी हूँ तो तुम सचमुच ही ब्रम्ह मुक्त सुखी हो। प्रवाह छोड़ उदगम की ओर मुड़ो तो तुम मुक्त हो, सुखी हो, ब्रम्ह स्वरूप हो।

8 यदि अहं और मम दोनों संकल्प छोड़ दे तो यह उसी क्षण ब्रम्ह ही है।

9 यह सब संकल्प की माया है, मन जैसा संकल्प करता है वैसा ही चित्र उस पर खींच जाता है। जिस संकल्प से जीव बंधा है, उसके छूटते ही वह मुक्त है।

10 अहं और मम की रस्सियों को काटते ही व संकल्प के खाद के जलते ही जीव का कालापन कट जाता है, उज्ज्वल सोना होता है।

।। संत तुकाराम चरित्र से ।।

1 प्रत्येक को देखना चाहिए कि ईश्वर ही सब कुछ कर रहा है, सम्पूर्ण प्रणाली में, तुम्हारे सम्पूर्ण प्रणाली में केवल ईश्वर है।

2 वह सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है, परन्तु वास्तव में सम्पूर्ण इन्द्रियों से रहित है। आसक्तिरहित होने पर भी सबका पालन पोषण करने वाला। और निर्गुण होने पर भी गुणों को भोगने वाला है।

3 योग का मूलतत्व है ईश्वर एवं मनुष्य के मध्य एकत्व या समागम लाना। समागम की स्थिति हर क्षण है, किन्तु यह स्वयं की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह इसे कैसे एहसास करता है।

4 ज्ञान विज्ञान व प्रज्ञान को चित्त में बिठाकर, जीवन की बहिर्मुखी वृत्ति को नष्ट करने से अंधकार (माया का) नष्ट होकर, व्यक्ति का जीवन दिव्यज्योति की चमक से भरपूर होगा।

5 हमारे मन की हर स्थिति को सुषुम्ना से गुजरना है, यह मूलाधार से सहस्त्र तक उठती है एवं आज्ञा (पीयूष) में अनुभूत होती है। साधक मन को नीचे से ऊपर विभिन्न छः केंद्रों से सुषुम्ना के भीतर से ले जाता है। तो जीवात्मा की वास्तविक शुद्धि होकर मन अंतर्मुखी स्थिति प्राप्त करता है।

6 सुषुम्ना की गति व स्थिति के अनुसार मन की दशा व गति में भी परिवर्तन परिलक्षित होता है। सुषुम्ना जब खुलती है तब प्राण, मन आज्ञा व सहस्त्र तक पहुंचता है, जिससे बुद्धि व अहंकार मानसिक संतुलन की स्थिति प्राप्त करते है। जीवन सीधे ईश्वरीय दिव्यता आनन्द से अमृतोपम बनता है।

7 जिस प्रकार बर्फ पानी में, पानी गैस में, गैस गति में, गति विधुत धारा में, फिर अंधकार को दूर करने वाली ज्योति में परिवर्तित हो जाती है। उसी प्रकार गुरु के सीधे संपर्क कर अभ्यास से शरीर अज्ञान को दूरकर,

दिव्य ज्ञान की ज्योति पैदाकर, आध्यात्मिक महानता अनुभूत होती है।

8 दिव्य ज्योति, दिव्यध्वनि एवं दिव्य स्पंदन शरीर में अनुभव होता है।
।। परमहंस हरिहरानन्दजी ।।

1 जहाँ कामना का कलंक है, वहाँ सौंदर्य नहीं है। जिसमें कामना की कालिमा का लेश नहीं है, जो कामना जानती ही नहीं, जो श्रीकृष्ण कामना कल्पतरु है, जो नित्य निरन्तर श्रीकृष्ण की कामना पूर्ण करती रहती है। जो कामना कलंक शून्य परम् सुंदर है। वही श्रीराधा है। श्रीकृष्ण अपने ही स्वरूप सौंदर्य माधुर्य रस का समास्वादन करने के लिए, अपने ही आनन्दस्वरूप को सदा सर्वदा श्रीराधा के रूप में अभिव्यक्त किये हुए है। श्रीकृष्ण रसमय है, श्रीराधा भावमयी है।

2 निरन्तर श्रीकृष्णानुराग ही इनका चरित्र है, ये श्रीकृष्ण को आनन्द देती है, ये अपने सुख के लिये नहीं मिलती, श्रीकृष्ण से मिलना उन्हें आकांक्षित है क्योंकि उनके मिलने से श्री कृष्ण को सुख होगा। इनके स्वतंत्र अहम का कहीं अस्तित्व ही नहीं है। अनसूया आदि पतिव्रता शिरोमणियाँ भी चाहती है कि श्रीराधाजी का सा सतीत्व हमें प्राप्त हो जाय। श्रीराधा भाव की साधना काम के कलुष को सदा के लिए धो डालने वाली है।

3 कामरूप अंधकार का प्रभाव वहीं तक है, जहाँ तक दिव्य गोपी या राधा भाव का निर्मल भास्कर उदय नहीं होता। राधाभाव के रस साम्राज्य में कलंकी काम का प्रवेश ही नहीं है। शरीर में केंद्रित कामना का नाम काम है, श्रीकृष्ण (आत्मा) में केंद्रित कामना का नाम प्रेम है। श्रीकृष्ण सुख के लिए सर्वत्याग यही राधा, गोपी भाव की विशेषता है। मन में जरा भी लोक परलोक भोग मोक्ष आदि की कामना रहती है तब तक सर्व त्याग हो ही नहीं सकता।
।। राधा माधव चिन्तन से ।।

1 केवल मन से और मात्र नयनों से प्रभु कहाँ दीवाने होते है।

2 जो प्रभु मूरत को निहारकर पूरे सम्मान भाव से तन मन वचन से उन पर अपनी भक्ति को न्यौछावर करता है,परमात्मा उसी पर अपनी कृपा करते है।

3 परमात्मा की जिस पर कृपा होती है, वह उसके भविष्य को सँवार देता है। श्रीकृष्ण ने अपने संसर्ग से पांडवों के भविष्य को सुदृढ़ता प्रदान किये और उन्हें समर्थ बनाये।

4 यह संसार नजर का धोखा मात्र है। कोई नहीं जानता कि उसे क्या करना है, जो कुछ भी करना होता है, उसके पीछे परमात्मा ही खड़े होते है।

5 वही सबके कर्म निश्चित करता है और वही उन्हें कठपुतली की भांति बांधकर नचाता है। अतः हम जो भी करें, उसे परमात्मा की ही इच्छा मानकर करें। ऐसा होने पर हमें कभी दुख या असन्तोष नहीं होगा।

6 भगवान के प्रति अलौकिक प्रार्थना दैन्य भाव मे क्या आनन्द है, अंधा हुआ संसार भला क्या समझ सकता है? दीनता स्वयं अपने आप में सुंदर है। परमात्मा के प्रति प्रेम रखने में जो अद्‌भुत शक्ति विद्यमान है। मोह माया पड़े मूर्ख तथा अज्ञानी व्यक्ति इसे नहीं समझ सकते।

7 मछली को काटकर पानी से धोना पड़ता है और मछली खाकर अधिक प्यास लगती है। ऐसे मछली के प्रेम की प्रशंसा करनी चाहिए क्योंकि वह अपने प्रिय (जल) से मिलने की आशा में ही मृत्यु को प्राप्त होती है। जल से दूर होकर मछली फिर से जीवन देने वाली जल को प्राप्त कर लेती है।

8 इसी प्रकार ईश्वरीय प्रेम प्राप्ति के लिए अपने सुख व सर्वस्व देने वाले व्यक्तियों को फिर से ईश्वरीय सुख की प्राप्ति हो जाती है। और उन्हें किसी सुख सम्पदा की आवश्यकता अनुभव नहीं होती।

।। रहीम जी ।।

1 समर्थ रामदास जी का भोलाराम नाम का प्रिय शिष्य भोजनोपरान्त पान खिलाया करता। स्वामीजी के दाँतो में दर्द होने से पान को वह कूटकर दिया करता था।

2 एक दिन समर्थ ने जल्दी पान लाने कहा, खलबत्ता न दिखाई देने से उसने मुख प्रक्षालन कर अपने दाँतो से चबाकर गुरुदेव के समक्ष पेश किया। समर्थ बोले आज तो पान बड़ा ही मीठा लग रहा है। अब भोलाराम नित्य ही पान को चबाकर उन्हें खिलाने लगा।

3 एक दिन संध्या समय शिवाजी मठ में आये। समर्थ ने भोजनोपरान्त भोलाराम को पान लाने को आवाज दी, तो शिवाजी बोले मैं लाता हूँ। अंदर गये, तो यह देखकर स्तब्ध रह गए की भोलाराम पान को अपने मुँह में चबाकर उसे ही स्वामीजी को देने जा रहा है। भोलाराम ने शिवाजी को देखा, इससे पहले की वह उनके गुस्से का शिकार बनता।

3 उसने समीप रखी छुरी उठायी और बाँयें हाथ में अपने सिर की चोटी पकड़कर और दाहिने हाथ से गर्दन काटकर शिवाजी महाराज के हाथों में अपना सिर रख दिया।

4 यह देख शिवाजी हतप्रभ रह गये, तभी भोलाराम के कण्ठ से ध्वनि निकली, गुरुदेव को पान दे आये। देर होते देख समर्थ जी स्वयं अंदर आये, दृश्य देख मन ही मन मुस्कराये।

5 उन्होंने भोलाराम के कटे सिर के समक्ष हाथ पसारे, इससे उसके मुख का पान उनके हथेली पर गिर पड़ा। उसे उन्होंने प्रेमपूर्वक मुँह में डाला।

6 शिवाजी को हैरान देख उन्होंने मस्तक को धड़ से लगाने को कहा। शिवाजी ने ज्योहीं मस्तक धड़ पर रखा, वह पूर्ववत् लग तो गया, लेकिन हाथ काँपने से किंचित टेढ़ा लग गया। भोलाराम बोला, सिर कुछ टेढ़ा हो गया है शायद श्री की यही इच्छा है।

7 तब समर्थ ने भोलाराम के मस्तक की ओर इंगित करते हुए शिवाजी से हँसते हुए बोले, क्यों शिवबा,इस खल का पान खाना चाहिए या नही? शिवाजी शर्मिन्दा हुए और सिर झुकाकर क्षमा मांगी।
।। प्रेरक प्रसंग से ।।

1 अखण्ड नाम स्मरण का आनन्द प्राप्त हुए बिना चित्तशुद्धि का साक्षात्कार नहीं हो सकता। अखण्ड नाम स्मरण का चस्का लगा लिया जहां एक बार यह लगा फिर एक पल भी नाम से खाली नहीं जाता। नामस्मरण यह है कि चित्त में रुप का ध्यान हो और मुख में नाम का जप हो। अन्तःकरण में ध्यान जमता जाय, ध्यान में चित्त रँगता जाय, चित्त की तन्मयता हो जाय, यही वाणी में नाम के बैठ जाने का लक्षण है।

2 श्रीपाण्डुरङ्ग का ध्यान में लाने से तुकारामजी के चित्त में प्रेमानन्द हिलोरें मारने लगता था और वे स्वयं उस आनन्द में नाचते गाते हुए तल्लीन हो जाते थे।

3 जीभ को एक बार नाम की चाट लग जानी चाहिए, फिर प्राण जाने पर भी नाम को वह नहीं छोड़ती। चीनी और मिठास जैसे एक है, वैसे ही नाम और नामी भी एक ही है। नाम केवल साधन नहीं है, नाम छन्द से साध्य साधन की एकता प्रत्यक्ष होती है। नाम चिन्तन से जन्म जरा भय व्याधि सब छूट जाते है। भव रोग जैसा रोग भी जाता है, फिर और चीज ही क्या है?

4 हरि प्रेम बढ़ने से इन्द्रियों की दौड़ कैसी थमी, अनुपम सुख कैसे ढूंढता हुआ चला आया, मन तुम्हारें रंग में रंग गया, तुम्हारें चरणों में स्थिर हो गया। मेरे सब हौसले पूरे हुए, सब कामनाएं श्री पाण्डुरंग ने पूरी कीं।

5 नाम लेने से कण्ठ आर्द्र और शरीर शीतल होता है, इन्द्रियाँ अपना व्यापार भूल जाती है। यह मधुर नाम अमृत को भी मात करती है, इसने मेरे चित्त पर अधिकार कर लिया है। प्रेमरस से शरीर की कान्ति को प्रसन्नता और पुष्टि मिली। यह नाम ऐसा है इससे क्षणमात्र में त्रिविध ताप नष्ट हो जाते है। यह जीव को हरि प्रेम का आनन्दामृत पान कराकर उसका जीवत्व हर लेता है। नाम स्मरण से वह ज्ञात होता है जो अज्ञात है। वह दिखायी देने लगता है जो पहले नहीं दिख पड़ता। वह वाणी निकलती है जो पहले मौन रहती है। वह मिलन होता है जो पहले चिरविरह में छिपा रहता है। और यह सब आप ही आप होने लगता है।
।। श्रीतुकारामजी ।।

1 प्रेम का वास्तविक अर्थ, भगवत्प्रेम ही है। जब भगवान के प्रति प्रेम होने लगता है, तब दूसरी समस्त वस्तुओं से प्रेम हटने लगता है। विशुद्ध प्रेम, निःस्वार्थ प्रेम जब होगा, तब भगवान में ही होगा।

2 भगवान, ईष्ट जिसे अपना प्रेम देते है, उसका सब कुछ हर लेते है। समस्त ममता भगवान में जुड़ जाती है। मोक्ष की भावना भी भगवच्चरणों में समर्पित हो जाती है।

3 भगवान, ईष्ट प्रेम के साथ अपने आपको भी दे डालते है। प्रेमास्पद भगवान का रूप अनन्त होने से प्रेमी की प्रेममयी अवस्था भी अनन्त है।

4 प्रेम का विकास होने पर सर्वत्र भगवान दीखते है। जब तक स्वार्थ का त्याग नहीं है, तब तक भगवान में प्रेम नहीं है। जहाँ प्रेम है, वहाँ त्याग होगा ही। जैसे जैसे प्रेम बढ़ता जायगा, वैसे वैसे स्वार्थ का त्याग होता चला जायगा। सब प्रकार की तितीक्षा प्रेम में होता है।

5 श्याम के सिवा और कुछ सुहाता नहीं। जित देखूँ तित स्याममयी है। प्रेमास्पद सब जगह से प्रेमी की दृष्टि को छा लेता है, एक ही प्रेमास्पद सर्वत्र फ़ैल जाता है।

6 प्रेम उत्पन्न होने पर मन बुद्धि अर्पण करने नहीं पड़ते, ये स्वतः अर्पण हो जाते है। मन बुद्धि प्राण आत्मा सब पर अधिकार हो जाता है प्रेमास्पद ईष्ट श्री भगवान का। प्रेमानन्द बड़ा ही विलक्षण आनन्द है, इसका एक कण प्राप्त करके ही मनुष्य निहाल हो जाता है।

7 प्रेम में वस्तुतः ईष्ट का भगवान का कभी वियोग नहीं होता। प्रेमास्पद प्रेमी का ही बन जाता है। प्रेम का ऋण चुकाने के लीये भगवान के पास कुछ भी नहीं रहता, पर प्रेमी उन्हें ऋणी नहीं बनाता।

8 प्रेमी प्रेमास्पद को अखण्ड सुखी देखना चाहता है। उसको सुखी देखकर ही वह सुखी होता है। हमारे दुःख से यदि प्रेमास्पद सुखी होता हो तो वह दुःख हमारे लिये सुख है, यह प्रेमी का हार्दिक भाव होता है। ऐसे दुःख को वह परमसुख परमसम्पत्ति मानता है, और ऐसा सर्वथा ही अनुभव करता है।

9 प्रेम का स्वभाव विचित्र है, इसमें त्याग ही त्याग है, देना ही देना है। प्रेम का विकास और तुच्छ स्वार्थ बुद्धि का नाश, दोनों साथ साथ होते है। भगवान जब अपने आपको किसी के हाथ बेच देना स्वीकार कर लेते है, तभी किसी को अपना प्रेम देते है। जहां लोक परलोक के अर्पण की तैयारी होती है, वहीं प्रेम का दर्शन हो सकता है।

10 हमारा सब कुछ जाय और बदले में भगवान मिल जायँ, इसके समान कोई लाभ नहीं। यह परमलाभ है। भगवत्प्रेम अंतिम चरम और परम् पुरुषार्थ है।प्रेम परम् तपरुप है।जहां स्व भगवान में जाकर मिला कि प्रेमी बन गये। प्रेमी के लिये वैर का स्थान कोई पात्र रहता नहीं। उसके

लिये सदा आनन्द ही आनन्द है। क्योंकि उसकी दृष्टि में सब कुछ प्रेमास्पद ही होता है। उसे प्रेमास्पद ही दीखते है।

11 प्रेमी के पास कोई बन्धन नहीं रहता। एकमात्र प्रेम का बन्धन रहता है, जो उसके परमसुख का आधार होता है। इस प्रेम के बन्धन में जो उसे आनन्द होता है, उसकी तुलना लाख मुक्तियों से भी नहीं हो सकती। भगवान मोक्ष देना चाहते है, पर प्रेमीजन इसे स्वीकार नहीं करते।

12 प्रेम में पवित्रता अपने आप आ जाती है, क्योंकि छल, कपट, बेईमानी आदि स्वार्थ में ही रहते है। प्रेम में स्वार्थ रहता नहीं। प्रेमी का अपना कुछ रहता नहीं सब कुछ ईष्ट, भगवान का हो जाता है। पुत्र, धन, प्रतिष्ठा ज्यों के त्यों रहते है, कहीं चले नहीं जाते। समस्त जगत से ममता निकलकर ईष्ट भगवान में जाकर ठहर जाती है।

13 प्रेमास्पद के सुखी होने में यदि प्रेमी को भयानक नरक यंत्रणा भोगनी पड़े तो उसमें भी उसे सुख ही मिलता है। यह प्रेम वह पञ्चम पुरुषार्थ है, जिसमें मोक्ष का भी संन्यास हो जाता है। यही जीवन का परम् फल है।

।। श्रीराधामाधव चिन्तन से ।।

● गुरुनिष्ठा अमर हो! आप किसी प्रकार की चिंता नहीं करना, घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं, गुरुनिष्ठा से आपके सभी संकल्प बिना प्रयास ही पूर्ण होते जा रहे है। संसार में ऐसा कौन सा कार्य है जिसके सफल अथवा सिद्ध होने में कोई भी सन्देह हो। निश्चिन्त होकर कर्तव्य पालन करो, विश्वास करो चराचर का अस्तित्व भगवान आपका स्वरूप मैं आत्मा है। विद्यार्थी बनो अर्थार्थी न बनो, ज्ञानोपार्जन की विद्या जो पढ़ता है उसे विद्यार्थी कहते है। यह विद्या कामधेनु व कल्पतरु है जो माता के समान रक्षा करती है, पिता के समान हित चाहती है, पत्नी के समान सुख

पहुंचाती है। देश विदेश में उज्ज्वल कीर्ति फैलाती है। मस्त रहो। अलं।
।।आपका ही स्वरूप मुक्त।।(महर्षि मुक्त)

1 असत या अभाव पदार्थ की कोई सत्ता नहीं है, केवल भाव पदार्थ ही चिरस्थायी है।
2 केवल तत्वदर्शी गण ही भाव-अभाव के पार्थक्य से अवगत हो सकते है।
3 तुम्हें क्या विदित नहीं कि तुम, तुम्हारा शरीर तथा मन, यह सब मेरे है, तुम्हारे नहीं।
4 जैसे भक्तगण मेरे दर्शन तथा सेवा के लिए प्रार्थना किया करते है। वैसे ही मैं भी भक्तों के दर्शन सेवन को अपनी आनन्द प्राप्ति का एकमात्र उपाय समझता हूँ।
5 अपनी भक्ति के बल से सर्वदा अपने गुरुदेव का अपने हृदय में दर्शन पाने के कारण उन्हें विरह ताप में दग्ध नहीं होना पड़ा।
6 हे नाथ! मैं जो भी हूँ और जो कुछ भी मेरा है, वह सब वस्तुतः तुम्हारा ही है। जब मुझे ऐसा ज्ञान हो गया है कि सदा सब कुछ तुम्हारा है-तो फिर मैं तुम्हें क्या समर्पित करूंगा।
7 हे प्रभो! इस जगत में जिनके पास अपना कहने को कुछ भी नहीं है, उन सभी भक्तों के एकमात्र धन तुम्हीं हो। धर्म,अर्थ, काम के परे रहकर तुम सतत अपनी आत्मा में रमण करते हो। वासनाहीन होने के कारण सब प्रकार से शांत हो। अखिल जीवों के मुक्तिदाता हो। मैं तुम्हारी वंदना करता हूँ।
।। श्री रामानुज चरित से ।।

1 जीव प्राण पर आरूढ़ होकर ही भ्रमण करता है, इसके बिना नहीं कर सकता।

2 अष्टधाप्रकृतिरूपा आठ प्रकार की कुण्डली करके कंद को घेरे हुए है और वायु व अन्नजल के संचार को रोकती है, उससे ब्रम्ह रन्ध्र के मुख को अपने मुख से ढंका हुआ है।

3 योगाभ्यास द्वारा यह कुन्डलिनी शक्ति पवन द्वारा जाग्रत, अग्नि के समान हृदयाकाश में नागरूप से अत्यंत उज्ज्वल स्फुरित होती है।

4 प्राण व अपान से संयुक्त सुषुम्ना नाड़ी चार प्रकार से प्रकाशित होती है।

5 कंद के मध्य भाग में जो सुषुम्नानाड़ी स्थित है वह पद्मसूत्र के समान अत्यंत सूक्ष्म व सीधे ऊपर की ओर गई है।

6 ब्रम्हरन्ध्र तक जाने वाली यह वैष्णवी ब्रम्हनाडी विस्तृत के समान प्रकाशयुक्त और निर्वाण प्राप्त करने वाली है। अगल बगल में इड़ा व पिंगला है, इड़ा कंद से निकलकर बांये नासापुट तक गई है, पिंगला दायें नासापुट तक।गान्धारी व हस्तजिहवा दो नाड़ियां भी है जो उनके आगे पीछे बाँयी और दाँयी आंख तक गई है। पूषा और यशस्विनी दो नाड़ियां गुदा मूल से निकलकर दायें और बांये कान तक गई है।

7 अलम्बुजा नाम की नाड़ी मे मेढ़ स्थान के अंत तक गई है। कंद से पैर के अंगूठे तक कौशिकी नाम की नाड़ी गई है। इस प्रकार से ये दस नाड़ियां कंद से निकली हुई कही गई है। अन्य बहुत से सूक्ष्म व स्थूल नाड़ियां है जिनकी संख्या सब मिलाकर 72000 है।

8 प्राण अपान समान उदान व्यान नाग कूर्म कृकर देवदत्त व धनंजय ये दश वायु भी नाड़ियों में चलते रहते है। इसमें प्राण व अपान, अथवा प्राणवायु ही सबसे मुख्य है जो जीव की धारणा किये रहता है। प्राण के स्थान है-मुख, नासिका का मध्य भाग, हृदय, नाभिमण्डल, पैर का

अंगूठा। अपान-गुदा, मेढ्र, जंघा, और घुटने में रहता है। समान वायु - सब अंगों में व्याप्त है। उदान-दोनों हाथ, दोनों पैरों में व सन्धि स्थानों में स्थित है। व्यानवायु- श्रोत, जंघा, कमर, ऐड़ी, कन्धे व गले में रहता है। नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय उपवायु त्वचा अस्थि आदि में स्थित है।

9 आमाशय में स्थित जल, अन्न रसादिक को प्राणवायु एकत्र करके फिर पृथक पृथक करता है। मल और मूत्र के विसर्जन का कार्य अपान वायु द्वारा होता है। प्राण अपान वायुओं की चेष्टाएं व्यान वायु के योग से की जाती है। शरीरस्थ उदान से उर्ध्वगामी हुआ जाता है। शरीर का पोषण सदैव समान वायु द्वार होता है। डकार आदि कार्य नाग से होती है। आंखे खोलने बंद करने का कार्य कूर्म का कार्य है। भूख लगना कृकर का। निद्रा आदि देवदत्त का। मृत शरीर की शोभा आदि धनञ्जय वायु का कार्य है।

।। त्रिशिख ब्राम्हणोपनिषद से ।।

1 साधक का सारा पुरुषार्थ यहीं तक है कि वह अपने अंतःकरण में सब प्रकार की भोगवासनाओं का अंत करके उसे शुद्ध कर ले। उसके पश्चात उसे कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता।

2 नाम जप और स्मरण में यही अंतर है कि जप तो प्रेम की उपलब्धि के लिए कर्ता भाव से किया जाता है। इसमें क्रिया की अधिकता व भाव की न्यूनता रहती है।

3 अपने प्रेमास्पद का स्मरण या चिन्तन कर्म नहीं है, क्योंकि वह प्रेमास्पद के विरह में अपने आप होता रहता है।

4 इस स्मरण चिंतन में कर्तापन और भोक्तापन का अस्तित्व नहीं रहता एक मात्र प्रेम ही प्रेम रहता है। उस समय साधक का शरीर से सम्बन्ध नहीं रहता।

5 जो कुछ कर्तापन के भाव से किया जाता है, उसका फल कालांतर में मिलता है। भगवत्प्राप्ति और उसका प्रेम वर्तमान में मिलता है। इसमें कालांतर की अपेक्षा नहीं। इससे भी यही सिद्ध होता है कि वह प्रयत्नसाध्य नहीं है।

6 जब साधक अपने आपको सर्वथा भगवान के समर्पण करके उन्हीं पर निर्भर हो जाता है, तब उसका कर्तापन सर्वथा गल जाता है। करने की वासना का अंत हो जाता है। उसकी अभिलाषा भगवान की अहैतुकी कृपा से अपने आप पूर्ण होती है। हृदय प्रेम से छका रहता है। करने के द्वारा जो कुछ मिला है, उसके राग की निवृत्ति हो जाती है।

7 और जो वर्तमान में सदा विद्यमान है, उस पर विश्वास करने से चित्त शुद्ध हो जाता है। है / परमात्मा, की प्रीति, जो (प्रपंच संसार) वास्तव में नहीं है उसकी निवृत्ति में। और जो है / परमात्मा, की प्राप्ति में समर्थ है।

8 इसलिए भगवत्प्रीति का महत्व भगवान से भी अधिक है।अतः साधकों को भगवत्प्रीति और विश्वास सर्वदा सुरक्षित रखना चाहिए।

9 हरएक परिस्थिति में सर्वत्र और सर्वदा भगवान की कृपा का दर्शन करने वाले, उन पर निर्भर परम विश्वासी भक्तों की मान्यता होती है। वे अनुकूल में उनकी अहैतुकी कृपा का अनुभव करके प्रेम में विभोर हो जाते है कि वे परम सुहृद प्रभु हमारी हरएक आवश्यकता का कितना ध्यान रखते है। मुझ अधम पर कितनी दया है। प्रतिकूल होने पर सोचते है, इस संसार में जो प्रमादवश सुख मान लिया था और उनसे विमुख हो रहा था, अतः पुनः अपनी ओर आकर्षित करने के लिए भगवान ने कृपावश यह परिस्थिति दी है।

10 उनकी कितनी दया है जो दास को हर समय, हर एक प्रकार से अपना प्रेम प्रदान करने के लिए उत्सुक रहते है। इस प्रकार कृपा का अनुभव कर उनके प्रेम में विभोर होते रहते है।

11 जब साधक सुख दुःख का कारण दूसरे को न मानकर प्रारब्ध को, या प्रमाद / प्राप्त का सदुपयोग न करना, को, अथवा भगवान की अहैतुकी कृपा को मान लेता है, तब अनुकूल के समान प्रतिकूल परिस्थिति भी प्रसन्नता और विकास का कारण बन जाती है।

12 साधक भोग से योग की ओर, मृत्यु से अमरता की ओर, तथा राग-द्वेष से त्याग और प्रेम की ओर आकर्षित हो जाता है। उपर्युक्त भावना से सुख उदार बनाने में व दुःख विरक्त बनाने में समर्थ है। और वास्तविक जीवन का अनुभव सुख दुःख से रहित होने पर होता है।

।।संत सौरभ से।।

1 बाधाएं जन्म ही लेती है, नष्ट होने के लिए वे कोई अमृत पीकर नहीं आती।

2 प्रेम ही सफलता का उत्तम मार्ग है।

3 प्रेम की उत्तम सन्तति है। क्षमा,दया एवं नम्रता।

4 क्षमा ही प्रेम का प्रतीक है। नम्रता, दया और उदारता जैसे सदाचार का जन्म क्षमा को धारण करने से हो जाता है।

5 मैथली जी का कहना है- उसी उदार से धरा कृतार्थ भाव मानती। उसी उदार को समस्त सृष्टि पूजती।। अखण्ड आत्मभाव जो, असीम विश्व में भरे। वही मनुष्य है,जो मनुष्य के लिए मरे।

6 घृणा राक्षसों की सम्पत्ति है। क्षमा मनुष्यत्व की पहचान है। प्रेम देवताओं का स्वभाव है। प्रेमानुभूति का अखण्ड आनन्द ही उत्कृष्ट सफलता की पहचान है।

7 बिहारी जी का कहना है-या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहीं कोय। ज्यों ज्यों बूढ़े श्याम रंग, त्यों त्यों निर्मल होय।

8 जीवन एक वरदान है इसे धारण कीजिए। जीवन एक प्रेम है, इसका विनिमय कीजिए।

9 अन्तःकरण की प्रसन्नता प्राप्त होने पर समस्त कष्टों का अभाव हो जाता है।

10 क्षत्रिय के लिए धर्म युद्ध से बढ़कर, व्यक्ति के लिए कर्तव्यपालन से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी मार्ग नहीं।

11 अंधियारी रात विद्वता की माँ है,अपने को, अपनी चिंताओं और समस्याओं को इसी श्याम रात्रि को सौप दीजिये और निश्चिन्त राह प्राप्त करिए। ऊर्जा भण्डार की वृद्धि, आत्मशक्ति की समृद्धि प्राप्त करें।

12 सत्यता,सत्यनिष्ठा वह श्रेष्ठ सदाचार है। जो युगों से सर्वोच्च स्थान पर विराजमान है।

13 शीतल मन्द समीर से शीतलता, वृक्षों से दान एवं आश्रय, पाषाणों से सहिष्णुता, मिट्टी से अपने गोद में शरण में आये बीज आदि का पोषण संवर्धन, विपरीत स्थिति में उत्साह धैर्य का न खोना, अनुकूलता बनाये रखना, धर्म कर्म से विमुख न होने का पाठ ग्रहण किया जा सकता है।

14 सृष्टि को सियाराममय जानना, देखना। समस्त पृथ्वी को घर, कुटुंब मानना, बनाना। समष्टि हेतु शुभकामना, शुभ भावना, । आत्मा में प्रतिष्ठित, सत्यनिष्ठ होना। उत्तम दृष्टिकोण, उत्तम अभिवृत्ति, उत्तम अनुभूति, उत्कृष्ट धन, उत्कृष्ट कर्म, उत्कृष्ट धर्म है, प्रेम है।
।।द पॉवर ऑफ़ मोटिवेसन से।।

1 पूर्व जन्मों के किये हुए धर्माधर्म के जो संस्कार वर्तमान जन्म में जो अभिव्यक्त होते है उन्हीं संस्कारों का नाम प्रकृति है।

2 पञ्चतत्वों में जब मन रहता है, तब सब प्रकार के कार्य मन से होंगे ही। सहस्त्रों बार समझाने पर भी स्वभाव नहीं बदलेगा।

3 प्रकृति को बाधा देने से काम देने से तो काम न चलेगा और उपदेश देना व्यर्थ है।

4 तब उसको आत्ममुखी कैसे किया जाय? आत्ममुखी करने का एकमात्र उपाय है अभ्यास। प्रतिदिन (सदगुरुदीश) अभ्यास करने से एक स्वतंत्र स्वभाव उतपन्न होगा, जो भगवदमुखी बना देगा।

5 वही एक मात्र प्रभु है यह समझ लेने पर अहंकार संकुचित हो जायगा।

6 प्रकृति जब सत्वभावापन्न होती है तब वह ईश्वराभिमुख हो जाती है, होते होते गुणातीत अवस्था को वह प्राप्त हो जाती है।

7 परमपुरुष के सन्निधान के कारण प्रकृति चैतन्यमयी हो जाती है। चैतन्यमयी प्रकृति ही भगवती (स्थिर प्राण) है।

8 बहिर्मुख वृतियाँ स्वयमेव सिमट कर आत्मा में स्थिर हो जाती है।

9 पञ्च तत्वों का अतिक्रमण करके सहस्त्रार में परमशिव रूप में युक्त होना पड़ता है। तब सारी इन्द्रियाँ अपने आप शांत हो जाती है, तब समझ में आता है कि आत्मा नित्यमुक्त और परमानन्दस्वरूप है।
।।लाहिड़ी महाशय के गीता व्याख्या से।।

1 आत्मानुभूति का अर्थ है, अपने हर स्थिति में आपको अपने आत्मा का अनुभव करना चाहिए।शरीर सदैव बाह्य है।शरीर के माध्यम से अनुभव करना।

2 यदि आप अनुभव करते है कि वह श्वास प्रश्वास ले रहा है तो आप सदैव जागतिक कठिनाई में,आत्मा का अनुभव करेंगे।

3 हर कोई मरेगा, किन्तु गुरु सदैव के लिए शिष्य के शरीर मन एवं आत्मा में विद्यमान रहेगा।गुरु नहीं मर सकता।आप गुरु से दूर नहीं रह सकते।गुरु सदा सदा रहेंगे,गुरु अनश्वर है।

4 गु का अर्थ है,अव्यक्त आत्मा शिष्य में अंतर्निहित।रु का अर्थ है,प्रव्यक्त आत्मा,अर्थात स्थूल शरीर।

5 गुरु आपका स्थूल शरीर,ज्ञान शरीर और आत्मा है।आप जहां कहीं भी अपना अस्तित्व पायेंगे आप गुरु की उपस्थिति का बोध प्राप्त करेंगे।तुम्हारें शरीर के अस्तित्व का अर्थ है,तुम्हारें अंदर गुरु का अस्तित्व।गुरु तुममें कर्ता है।अपनी उपस्थिति भूलकर गुरु की उपस्थिति को अपने हृदय में सँजोये रखना।गुरु के बिना तुम कैसे रह सकते हो।

6 तुम अपने शत्रु हो अपने मित्र हो।यदि तुम अपने गुरु की उपस्थिति अपने भीतर अनुभव करते हो,तुम देखोगे कि कितने अच्छे से अपने पत्नि बच्चों की समस्याओं का प्रबंध करते हैं।

7 तुम अपने गुरु हो।यदि तुम अपनी पत्नि को गुरु बनाओगे फिर परिवार का अपने प्रबंध कैसे करोगे?

8 केवल इतना तुम्हें जानना चाहिए, जब कभी भी दिव्य ध्वनि सुनाई दे,दिव्य स्पंदन हो,दिव्य प्रकाश हो,तुम्हारी कुंडलिनी जाग्रत है।प्रत्येक दिन मैं अपनी दिव्य शक्ति तुम्हें भेज रहा हूँ।

।।क्रियायोग सार से।।

।।रास लीला।।

1 श्रीकृष्ण का शरीर पांचभौतिक मायिक नहीं है,वे नित्य सच्चिदानंद विग्रह है।गोपीजन भी दिव्य शरीर युक्ता भगवान के स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्ति की घनीभूत दिव्य मूर्तियाँ है।उनकी नित्य संगिनी,नित्यकान्ता स्वरूपा शक्तियों ने परस्त्री का साज,सजा था।वे ऋषियों के अवतार थे,मनुष्य कभी नहीं है।

2 रास लीला के श्रवण वर्णन से हृदरोग काम का समूल नाश और प्रेमा रूपा पराभक्ति की प्राप्ति,श्री शुकदेव जी ने बताया है।रास शब्द का मूल रस है,रस स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ही है।जिस दिव्य क्रीड़ा में एक ही रस अनेक रसों के रूप में होकर अनन्त अनन्त रस का समा स्वादन करे,लीला धाम और विभिन्न आलम्बन के रूप में क्रीड़ा करे वह रास है।यह रासलीला भी लीलामय भगवान का स्वरूप है।यह देह है और यह देही है,यह सब केवल प्रकृति के राज्य में होता है।अप्राकृत लोक में जहां प्रकृति भी चिन्मय है,सब कुछ चिन्मय ही होता है।यह रास वस्तुतः परम् उज्ज्वल रस का एक दिव्य प्रकाश है।जड़ जगत की बात दूर रही,ज्ञानरूप या विज्ञानरूप जगत में भी यह प्रकट नहीं होता।साक्षात चिन्मय तत्व में भी इस परम् दिव्य उज्ज्वल रस का लेसाभास नहीं देखा जाता।इस रस की स्फूर्ति केवल परम् भावमयी श्री कृष्ण स्वरूपा गोपिजनों के मधुर हृदय में ही होती है।

3 यह भगवान के अप्राकृत अचिन्त्य दिव्य चिन्मय पवित्रतम प्रेम रस का महास्वादन है।इस दिव्यरस में लौकिक काम गाथा का कोई सम्बन्ध ही नहीं है।गोपियों के परम् त्यागमय प्रेम का नामान्तर काम है।श्रीकृष्ण का आत्मरमण, दिव्यक्रीड़ा ही रति है।भागवत में आये काम और रति का यही अर्थ है।रासलीला की महिमा काम पर विजय,भगवान का दिव्य

विहार आदि कहा गया है।कामी पुरुष दिव्य स्वरूपा शक्तियों की उपासना का अधिकारी कदापि नहीं है।गोपी भाव की प्राप्ति विषय लोलुप विषयासक्त को कदापि होना सम्भव नहीं।जब तक भोग या मोक्ष की पिशाची इच्छा हृदय में वर्तमान है,तब तक वहाँ प्रेमानन्द का उदय कैसे हो सकता है।भगवान श्रीकृष्ण और उनकी स्वरूपाशक्ति श्रीराधाजी के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान उन्हीं को है,दूसरा कोई नहीं कह सकता की इनका स्वरूप ऐसा ही है।उनका पूर्ण स्वरूप सदा पूर्ण है,सब ओर से पूर्ण है,सब लीलाओं में पूर्ण है।वे विज्ञानानन्द घन निराकार निर्विकार मायातीत ब्रम्ह है,वे ही अक्षर आत्मा है,देवता है,जीवात्मा प्रकृति और जगत है।जो कुछ है सो वे ही है।जो कुछ नहीं है,सो भी वे ही है।है और नहीं से जिसका वर्णन नहीं होता,वह भी वे ही है।वे रसराज है,महाभाव है।रसेश्वर और रसरेश्वरी का महामिलन ही महारास है,जो नित्य अनन्त और अखण्ड है।श्रीराधाकृष्ण सबसे परे सबमें भरे और सर्वरूप है।यह जड़ चेतन जगत सब बस राधाकृष्णमय है।

4 महारास के समय श्रीकृष्ण की अवस्था दस वर्ष की थी,कामवृत्ति और स्त्री पुरुष के स्थूल सम्बन्ध से रहित,दुर्भाव रहित अवस्था थी।भगवान श्रीकृष्ण आत्मा है,आत्माकारा वृति श्रीराधाजी है,और शेष आत्मभिमुख वृत्तियाँ गोपियाँ है।उनका निरन्तर आत्मरमण ही रास है।हे गोपियों तुम सती साध्वी हो,तुमने मेरे लीये गृह की कठिन बेड़ियों को तोड़ डाला है,जिन्हें तोडना बहुत ही कठिन है।तुम्हारा यह आत्ममिलन निर्मल निर्दोष है।मैं देवताओं की आयु में भी तुम्हारा ऋण नहीं चुका सकता,तुम अपने सौम्य स्वभाव से ही मुझे ऋण मुक्त कर सकती हो।जिन्होंने गोपियों को पहचाना है,वे गोपियों की चरणधूलि का स्पर्श

प्राप्त करके अपनी कृत्कृत्यता चाही है।ब्रम्हा,शंकर,उद्धव और अर्जुन ने गोपियों की उपासना करके भगवान के चरणों में वैसे प्रेम प्राप्त करने की अभिलाषा की है।गोपियाँ भगवान के दिव्य जगत की उनकी स्वरुपभूता अन्तरंग शक्तियाँ है।चीरहरण अर्थात आवरणभंग के अनन्तर जब भगवान स्वीकृति देते है,तब इसमें प्रवेश होता है।चीरहरण में भगवान के प्राकृत देह की अवस्था केवल आठ वर्ष थी।भगवद्देह तो साक्षात भगवत्स्वरूप ही है,यह अप्राकृत शरीर महाप्रलय में भी नष्ट नहीं होते,इसीलिए भगवान को उपनिषद में अखण्ड ब्रम्हचारी (एक हजार एक सौ आठ रानियों के होते हुए)बतलाया गया है।उनकी सृष्टि आदि उनके संकल्प से हुई थी।श्रीकृष्ण का एक एक अंग पूर्ण श्रीकृष्ण है।उनका पदनख भी पूर्ण श्रीकृष्ण है।गोपियों के साथ भगवान का रमण सर्वथा दिव्य भगवत् राज्य की लीला है,लौकिक काम क्रीड़ा नहीं।सर्वधर्म त्याग रूप ,स्वधर्म का आचरण गोपियों जैसे उच्चस्तर के साधकों में ही सम्भव है।

5 श्रीकृष्ण जीव नहीं है की जगत की वस्तुओं में उनका हिस्सेदार कोई दूसरा जीव भी हो।जो कुछ भी था,है और आगे रहेगा के पति श्रीकृष्ण ही है।योग सिद्ध पुरुष कायव्यूह के द्वारा एक साथ अनेक शरीरों का निर्माण कर सकते है तो सर्व समर्थ भगवान यदि एक ही साथ अनेक गोपियों के साथ क्रीड़ा करें तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है?

6 भगवान की बांसुरी जड़ को चेतन,चेतन को जड़,चल को अचल और अचल को चल ,विक्षिप्त को समाधिस्थ और समाधिस्थ को विक्षिप्त बनाती रहती है।गोपियाँ विषयासक्ति शून्य सन्यासी के समान,जिनका हृदय वैराग्य की प्रदीप्त ज्वाला से परिपूर्ण थी,वे धर्म अर्थ काम मोक्ष के काम में लगी हुई,वंशी ध्वनि सुनते ही श्रीकृष्ण की ओर चल पड़ी।वे

साधना के उच्च स्तर में परम् आदर्श थी,उनकी सारी वृत्तियाँ श्रीकृष्ण में निमग्न थी।इसी से उन्होंने देह गेह पति पुत्र लोक परलोक कर्तव्य धर्म सबको उल्लंघन करके एक मात्र परम् धर्म स्वरूप श्रीकृष्ण की प्राप्ति हेतु अभिसार किया था।यह स्वधर्म त्याग ही उनके स्तर का अनुरूप धर्म है।भगवत् प्रेम की ऊँची स्थिति का यही स्वरूप है।

7 गोपियाँ श्रीकृष्ण को अन्तर्यामी योग योगेश्वर परमात्मा के रूप में पहचानती थी।जैसे नन्हा शिशु जल में पड़े अपने प्रतिबिम्ब से खेलता है,वैसे ही भगवान और गोपियों ने रमण किया।अपनी प्रतिबिम्ब स्वरूपा गोपियों से आत्मक्रीड़ा की।पूर्ण ब्रम्ह रस राज रसिक शेखर परब्रम्ह अखिल रसामृत विग्रह भगवान की इस चिदानन्द मयी दिव्य क्रीड़ा का नाम ही रास है।यह था चिदानन्दमय भगवान का दिव्य विहार।।।श्रीराधामाधव चिन्तन से।।

1 देहबुद्धि का परित्याग और अनुभव करो कि मैं अस्तित्व हीन हूँ केवल तू है। देहभाव नष्ट होने के बाद ही आत्मभाव प्रकट होता है।

2 ध्यान अनवरत होना चाहिये, इसमें समय, स्थान, साधन की आवश्यकता नहीं।

3 सद्गुरु का वरदहस्त सदैव शिष्य के ऊपर रहता है चाहे पास हो या दूर। सद्गुरु हृदय में निवास करते है।

4 नाम ही रूप है,रूप ही नाम है। नाम प्रेमपूर्वक लो, रूप में विलीन होकर लो, नाम लेते लेते रूप दर्शन की अभिलाषा बनी रहे।

5 जहां द्वैत की क्रिया नहीं होती वहां नाम स्वतः परमात्मा स्वरूप व्याप्त है।

6 माया दृश्य भेद के कारण है, निज दृष्टि को ज्ञानयुक्त करके जगत को

चेतनमय देखो। इससे माया और जगत दोनों लुप्त हो जायेंगे केवल सत्यवस्तु सत्ता रह जायेगी।

।।महर्षि रमण।।।गुरुप्रसाद भैय्या की डायरी से।।

1 ओंकार में व हिंदी वर्णमाला में प्रथम अक्षर अ है,अ अविनाशी है, अव्यय है, वैखरी वाणी स्वरूप है, अ सर्गात्मक है,यह ब्रम्ह का स्थूल रूप है, यह सूक्ष्म से सूक्ष्म भी है,अतः श्रेष्ठ है, प्रकृष्ट है। विद्युत की तरह प्रकाशित होने से इस मात्रा का नाम वैधुती है।अंगूठे (पैर) से हृदय पर्यन्त अकार की गति है। इसकी आठ (सिद्धि, रिद्धि, धृति, लक्ष्मी, मेघा, क्रान्ति, द्युति और स्वधा) कलाएं है। ऋग्वेद, गार्हपत्य अग्नि, पृथ्वी तथा ब्रम्हा। यह तत्व ब्रम्हवादियों ने ओंकार के प्रथम अक्षर अकार में बताये है अर्थात ये सब अकार रूप है। आंखों में जो रूप देखने की शक्ति है, वह अकार मात्रा वाली अग्नि की ही शक्ति है। रूप गुण अग्नि का है, नेत्रों में यह अग्नि अकार रूप में प्रतीति होती है। ब्रम्हग्रंथि अकार नासाग्र औऱ आंखों में है।अकार पीले रंग का रजोगुणी है, यह जाग्रत अवस्था वाला नेत्रों में रहने वाला है। यह स्थूल, विराट व विश्व है।अग्नि नामक ऋषि द्वारा ऋग्वेद प्रकाश में आया, ऋग्वेद से भूलोक की जानकारी मिली एवं मनुष्यों के पार्थिव ज्ञान में वृद्धि हुई। यह विश्व प्रथम मात्रा अकार से पैदा हुई है, यह संसार अकार ही है। ज्ञानवान साधक सभी को आत्मवत मानकर उनमें अकार भावना (सब ईश्वर रूप है) रखते हुए उकार व मकार से पार होते हुए परमात्मा में लीन हो जाते है।

2 पांच, मुख्य स्वरों में मध्य का स्वर उ है, ओंकार में भी यह मध्य में आता है, उ रक्षात्मक है। अ और उ के सम्मिलन से ओ ध्वनि निकलती है, यह शब्द रूप लेकर दया और करुणा का रूप हो जाता है, इसके द्वारा ब्रम्ह

की दया, करुणा, कृपा प्राप्त होती है। प्रलय काल के रौद्री शक्ति से इस मात्रा का नाम तामसी है। हृदय से कण्ठ पर्यन्त उकार की गति है, इसकी तेरह वाम कलाएं (रजा, रक्षा, रति, पाल्य, काम्या, तृष्णा, मति, क्रिया, वृद्धि, माया, नाड़ी, भ्रामनी और मोहिनी) है। यजुर्वेद, दक्षिणाग्नि, आकाश तथा विष्णु, दूसरी मात्रा उकार रूप है। उकार में जो अग्नि है वह हृदय में रहती है, यह अग्नि हृदय को गतिमान रखते हुए रक्तसंचार क्रिया में मुख्य कारण होती है, तब फुफ्फुसों से शुद्ध होकर आये हुए रक्त को समूचे शरीर में पहुंचा देती है। विष्णु ग्रंथि उकार हृदय में है। उकार श्वेत वर्ण का सतोगुणी है, यह स्वप्नावस्था वाला कण्ठ में रहता है। यह सूक्ष्म, हिरण्यगर्भ और तैजस है। वायु नामक ऋषि द्वारा यजुर्वेद प्रकाश में आया, यजुर्वेद से अंतरिक्ष और उससे सम्बंधित तत्वों की जानकारी मिली। विश्वचर, अणु परमाणु जो सभी विचरण कर रहे है, उकार से सम्बंधित है। वही सबको घुमाता है सभी उसके संकेत पर घूम रहे है।

3 वर्णमाला के पांचों वर्गों में व ओंकार का अंतिम अक्षर म है, म प्रलयात्मक है, म से माया है। म ही अनुस्वार का रूप ले लेता है, यही अनुस्वार बिंदु कहलाता है। प्रलय काल के पश्चात जब समस्त संसार लय हो जाते है एक मात्र प्रणव ब्रम्ह ही शेष रह जाता है, उसकी तुरीयावस्था शेष होती है, इसी तुरीयावस्था का सूचक इस मात्रा का नाम निर्गुणी है। इसकी आठ (तमा, मोहा, क्षुधा, निदर्य, मृत्यु, माया, भया, और जरा) अघोर कलाएं है। इसकी अवस्थिति कण्ठ से तालु तक है। सामवेद,आवाहनीय अग्नि, स्वर्गलोक तथा शिव, तीसरी मात्रा मकार इनमें विद्यमान है, अर्थात ये मकार स्वरूप है। मकार में स्थित अग्नि भौहों के मध्य आज्ञाचक्र में रहती है, मनुष्य की प्रसुप्त प्रतिभा यही पर

प्राणशक्ति को संलग्न करने पर प्रखर होती है। रुद्र ग्रंथि मकार भौहों के मध्य स्थित है। मकार कृष्ण वर्ण का तमोगुणी है, सुषुप्ति अवस्था वाला हृदय में रहता है। यह कारण, अव्याकृत और प्राज्ञ है। आदित्य नामक ऋषि देवता से सामवेद उतपन्न हुआ, सामवेद से घु लोक के सम्बंध में जानकारी मिली, प्रकाश में आया। विश्वातीत मकार से सम्बंधित है, ओंकार ब्रम्ह सबमें व्याप्त है, किन्तु लिप्त नहीं है, विश्व में व्याप्त होते हुए भी उससे परे है।

4 जब संसार का लय होता है तो ब्रम्हा (पृथ्वी, अग्नि, ऋग्वेद, भूलोक) अकार में, विष्णु (अंतरिक्ष, यजुर्वेद, वायु, भुवर्लोक) उकार में, महेश्वर (स्वर्ग, सूर्य, सामवेद, स्वर) का मकार में लय हो जाता है। ॐ के द्वारा ही परब्रम्ह को प्रणाम किया जाता है। इच्छा, क्रिया और ज्ञान ही ओंकार ब्रम्ह की जीवोपकारिणी शक्तियां है। ओंकार ही इस संसार चक्र का चालन कर्ता है। ज्ञानमय तप से वृद्धि पाकर इच्छा कि, कि मैं एक से अनेक रूपों में प्रकट हो जाऊं तब तीन अक्षर अ, उ, म, तीन आकृतियां प्रकट हुई, वही तीन पद वाली गायत्री, तीन वेद, तीन वर्ण, तीन अग्नियां पैदा हुई, के पश्चात संसार का कुशल संचालन उनकी क्रिया है। ज्ञान से मनुष्य को आत्मा परमात्मा की अभिन्नता का बोध होता है। जो दिखाई देता है वह भी, अदृश्य है वह भी सभी ओंकार है, यह सभी लोकों में ओत प्रोत हो रहा है, सर्व व्यापी है, यह हृदय में परम की परायणता उत्पन्न कर, हृदय रूपी वीणा को झंकृत कर देता है, इसलिये इसे परब्रम्ह कहते है। ॐ के उच्चारण में ओ की ध्वनि उच्च व तीव्र करनी चाहिए, इससे नाड़ी समूहों में सजगता आने लगती है। प्लुत उच्चारण का सर्वाधिक महत्व है, प्लुत का शाब्दिक अर्थ है तैरता हुआ, डूबा हुआ,

बढ़ा हुआ। हृदय प्रदेश में जो कमल है, उसका मुख नीचे की ओर है, डंडी ऊपर की ओर है, नीचे बिंदु स्थित है, उसी में मन रहता है। अकार में रेचित कमल उकार में भेदा जाता है और मकार में नाद को प्राप्त होता है। अर्धमात्रा निश्चल, शुद्ध स्फटिक के सदृश्य निष्कल और पापनाशक है। विश्व की सृष्टि, स्थिति, प्रलय ओंकार की ही तीन मात्रा रूप से है। यह तीन मात्रा क्रमशः प्रकृति, जीव, ईश्वर तीनों से है। वेद में विद्युत का सम्बंध रुद्र से जोड़ा दिखाई देता है, वैज्ञानिक फ्रेंकलिन ने माना ऊंची इमारत में त्रिशूल लगाने से दैवी प्रकोप से बचा जा सकता है, भारत में यह प्रथा प्राचीन से है। त्रिशूल से विधुत का सम्बंध होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। त्रिशूल उसी ओंकार की त्रैमासिक अभिव्यक्ति है। ज्ञान स्वरूप तपस्या से सत रज तम इन तीन गुण वाले त्रिपुरासुर का नाश करने त्रिनेत्र भगवान त्रिशूल धारण कर त्रिपुर स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर को भेद करते है, जो आत्मा के बंधनकारक है।

5 प्रणव की चौथी मात्रा में नादात्मक अर्धमात्रा का आभास मिलता है, वेद अथर्ववेद है, छंद विराट है, यह विश्व स्वरूपिणी होने के कारण अत्यंत प्रकाश वाली है। यह ओंकारवाची है। साम का चतुर्थ पाद भी यही है। अर्धमात्रा युक्त ओंकार मोक्ष का देने वाला है। तत्पुरुष की चार (निवृति, प्रतिष्ठा, विद्या और शांति) कलाएं है। स्थान भौहों के मध्य है यह बिंदु रूप से परमात्म तत्व में प्रतिष्ठित है। शिवजी के मस्तक पर अर्धचन्द्र ओंकार बिंदु का प्रतीक है।ओंकार ब्रम्ह की तुरीयावस्था ही आनंदावस्था है, उसी में प्रेम, अनुराग, हर्ष और उल्लास रहता है। पूर्ण शांति मिलती है तो यहीं। इसके लिए शुद्ध मन वाला साधक चाहिए।

।। ओंकार का अर्थचिन्तन से ।।

1 यदि इंद्र का पद माँगूँ तो वह शाश्वत नहीं है, पूर्ण स्वर्गभोग माँगूँ तो पुण्य समाप्त होने पर लौटना पड़ेगा।

2 संसार का बोझ ढोने वाला और ढोवाने वाला हे अनन्त! तेरे बिना कोई नहीं है। आप ही तारने वाले है,आप ही मारने वाला है, आप ही उद्धार करने वाले है। योगक्षेम चलाना आप ही का काम है।

3 संसार में गृह सुत दारा और द्रव्यादि के पीछे भटकने वाले मनुष्य को इस भवारण्य में प्रचण्ड बवण्डर से उड़ने वाली धूल से भरी हुई दिशाएं नहीं सूझती। इस लोक के व्यवहार से आंखें धुंए से भरी हुई न रखो।

4 मूल का सिंचन करने से उसकी तरी समस्त वृक्ष तक पहुंचती है, जो सार वस्तु है उसे पकड़े रहो, पृथक के फेर में मत पड़ो।

5 जिसने मुझे आत्मार्पण किया है वह मेरे सिवा कुछ भी नहीं चाहता। सत्यलोक, इन्द्रपद, सार्वभौमपद, पाताल का आधिपत्य, योगसिद्धि, मोक्ष की भी इच्छा नहीं करता। ।।श्रीतुकाराम चरित्र से।।

1 देहत्माभिमान ही समस्त अज्ञान का मूल है, इस देह को भूलकर आत्मस्वरूप में स्थिति लाभ ही मुमुक्षुत्व है।

2 पाप का मूल अज्ञान है, अज्ञान के नाश के साथ पाप भी नष्ट हो जाता है। आत्मा के भीतर डूबते डूबते संसार का मूल बीज अज्ञान नष्ट हो जाता है। अपवित्र भाव ही कामभाव है, कामभाव के न रहने पर मन शुद्ध और परम् निश्चिन्त हो सकेगा। यह निश्चिन्तभाव ही ज्ञानानन्दमय अवस्था है।

3 श्रद्धा तत्परता इन्द्रियसंयम इन तीनों के रहने पर ज्ञान लाभ होता है और स्थिरता शीघ्र उदित होती है।

4 अश्रद्धालु को गति प्राप्त होना बहुयत्नसाध्य है किन्तु संशयात्मा को बिल्कुल ही असाध्य है, संशयात्मा को इहलोक परलोक कहीं भी सुख नहीं होता।

5 अभ्यास में पटुता से परावस्था होती है, वही ज्ञानमय भाव है, इसमें आत्मा का प्रत्यक्ष बोध होता है, संशय मिट जाते है। मैं मेरा नहीं रहता सर्व ब्रम्हमय जगत हो जाता है। किसी वस्तु में स्पृहा नही रहती, यही स्पृहा रहित अवस्था ही निष्काम भाव या अपरोक्ष ज्ञान है। उस समय एक आत्माकार बुद्धि को छोड़कर और कोई बुद्धि उदित नहीं होती।
।। लाहिडी महाशय की गीता व्याख्या से ।।

1 जो एक ही परमानन्द रसरूप है, वही सदा दो प्रकार का बनकर लीलारत है, वह श्रीराधा कृष्णरूप है। मेरा उन्हें बारम्बार नमस्कार है।

2 वे सहस्त्र सहस्त्र गौरी की अपेक्षा भी अधिक गौरवर्णा है, तथापि श्रुतियों में वे श्यामा के नाम से प्रसिद्ध है। सम्पूर्ण गुण जिनके वश में है, जिनके आधार पर ही सबका प्रकाश और निवास है। वे प्राकृत अप्राकृत सौन्दर्य रूप से जगत को मोहित करने वाले मोहन को भी मोहित करती है। ये श्रीराधा नित्य सच्चिदानंद घन स्वरूपा है।

3 श्रीराधाजी का तात्विक स्वरूप श्रीकृष्ण से सर्वथा अभिन्न है। वह अनादि पुरुष एक है, पर अनादि काल से वह अपने को दो रूपों में बनाकर अपनी ही आराधना के लिये तत्पर है। ये राधा और ये कृष्ण रस के सागर है, एक है पर खेल के लिये दो रूप बने है। जो श्रीकृष्ण है, वही श्रीराधा है और जो राधा है वही श्रीकृष्ण है। श्रीराधामाधव के रूप में एक ही ज्योति दो प्रकार से प्रकट है।

3 मुझमें (श्रीकृष्ण) और तुझमें जो अधम भेद मानता है, वह कालसूत्र नामक नरक में रहेगा, चन्द्र सूर्य के रहने पर्यन्त। दूध की धवलता, अग्नि की दाहिका जैसे हमारा अभिन्न सम्बन्ध है। मिट्टी न हो तो कुम्हार घड़ा कैसे बनाये, वैसे ही तुम न रहो तो मैं सृष्टिरचना नहीं कर सकता। तुम सृष्टि की आधार रूपा हो और मैं उसका अच्युत बीज हूँ।

4 प्रेम की उत्कृष्टता के कारण प्रियतम के समीप रहने पर भी उसके न रहने के निश्चय से होनेवाली पीड़ा का अनुभव होना प्रेम वैचित्र्य कहलाता है। जब विरह और मिलन का एकत्र मिलन होता है, तब एक महान मधुर माधुर्य का उदय होता है।

5 गोपरमणियाँ घरों के भीतर थी, वे अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के पास न जा सकी, अतः उन्हें विरह की इतनी तीव्र वेदना हुई कि उनके सारे अशुभ संस्कार नष्ट हो गये और उसी के साथ साथ ध्यानावस्था में आये हुए प्रियतम श्रीकृष्ण का दर्शन मिलन से इतना महान सुख हुआ की उनके समस्त शुभ संस्कारों का सर्वथा क्षय हो गया। यहाँ एक ही समय विरह की तीव्र वेदना और मिलन का महान आनन्द प्राप्त हो रहा है।

6 श्यामसुन्दर का प्रेम जिसके अन्तर में प्रकट हो जाता है, उस प्रेम के वक्र मधुर विक्रम को वही व्यक्ति जानता है। इसमें इतनी महान पीड़ा है कि वह कालकूट विष की कटुता के गर्व को भी दूर कर देती है। उधर जब इस प्रेम की आनन्दधारा बहने लगती है, तब वह अमृत के माधुर्यजनित अहंकार को संकुचित कर देती है। इसी विरह वेदना और मिलनानन्द ने गोपियों के शुभ अशुभ को समाप्त करके उनको कर्मबीज शून्य बना दिया।

7 उपयुक्त समय पर अपकार करने वाली वस्तुएँ भी प्रिय हो जाती है। सर्प डस तो नहीं रहे है, उल्टा स्पर्श सुख दे रहे है।

8 प्रेम के बिना आनन्द नहीं रहता। आनन्द के बिना प्रेम नहीं रहता। श्रीकृष्ण आनन्द के श्रीविग्रह एवं श्रीराधा प्रेम की घनीभूत मूर्ति है।

9 श्रीराधाजी की लाखों करोड़ों अन्तरंग वृत्तियाँ मूर्तिमती होकर प्रतिपल श्रीराधामाधव की सेवा और सुख संवर्धना में लगी रहती है। इन्हें सुखी देखना प्रसन्न करना ही इनका एकमात्र लक्ष्य और स्वभाव है। ये सखी

सहचरियाँ सदा सर्वदा सेवा में लगी रहती है और श्रीराधामाधव के सुखार्थ इनके सहयोग से जो दिव्य क्रीड़ा प्रकट होती रहती है, उसी का नाम रास है। यह नित्य चलता रहता है।

10 सच्चा सौन्दर्य तो हृदय का है। जिसमें कामना वासना का कलंक शेष नहीं, विषयासक्ति रूपी मलिनता की तनिक भी छाया नहीं, स्वसुख की किंचित भी कल्पना नहीं, अहंता नहीं। जिनमें केवल प्रियतम श्रीकृष्ण के सुख की ही चाह सहज है। जो प्रियतम के प्रेम स्वरूप सुधा से जो परिपूर्ण है। ऐसे दिव्य अखण्ड अनन्य अनन्त सौन्दर्य की जीती जागती प्रतिमा है-श्रीराधाजी।

11 श्रीराधिका श्रीकृष्ण की आत्मा है।उनमें सदा रमण करने के कारण ही रस के मर्मज्ञ ज्ञानी पुरुष श्रीकृष्ण को आत्माराम कहते है।

12 ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य तेज-इनका नाम भग है। ये सब अनन्तरूप से जिसमें वर्तमान है, वे भगवान है।ये सभी गुण भगवान श्रीकृष्ण में नित्य निरन्तर स्वरूपतः वर्तमान है, वे महान भोगी होकर भी परम् योगी, विभक्त होकर अविभक्त, दृश्य होकर अदृश्य, सापेक्ष होकर भी निरपेक्ष, भक्त प्रेमवश पराधीन होकर भी परम् स्वतन्त्र, भक्तिगम्य होकर भी परम् अगम्य, अनेक होकर भी सदा एक है। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म महान से भी महान है। उनका अलौकिक अप्राकृतिक दिव्य रूप, निर्मल प्रेम का पुंज है, सच्चिदानंदमय है।

13 अरी सखी! मैं क्या साधन बताऊँ, मेरे पास तो कुछ और है ही नहीं। मेरे तन, मन, प्राण, धन, जन, कुल, घर, शील, मान, अभिमान सभी कुछ एकमात्र वे श्यामसुन्दर ही है। इस राधा के पास अश्रुजल को छोड़कर और कोई धन है ही नहीं, जिसके बदले प्रेमधन स्वयं नीलकांतमणि को प्राप्त किया जाय। तुम यह परमसार का सार समझो, अमूल्य श्यामप्रेम

का मूल्य केवल पवित्र अश्रुओं की धारा ही है। सब कुछ उन्हीं का समझकर, समर्पण कर, उन्हीं के लीये, उन्हीं के प्रेम से, निरन्तर प्रेमाश्रुओं की धारा बहती रहती है, बस, यह पवित्र अश्रुजल ही उनके प्रेम को प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है। यही साधन है।

।। श्रीराधामाधव चिन्तन से ।।

1 शरीर मन की छाया है, यह मन के द्वारा एक साँचा है, जिसमें मन अपनी शक्तियों को वितरित करता है। शुद्ध मन का अर्थ है स्वस्थ शरीर, यद्यपि यह सर्वथा ऐसा नहीं होता।

2 जो रोग भौतिक शरीर को पीड़ित करते है वे गौण रोग है, मुख्य रोग तो वासना है जो मन को पीड़ित करती है। रोगों के प्रारम्भिक कारण जो शरीर को पीड़ा पहुँचाते है बुरे विचार है, यदि बुरे विचार नष्ट कर दिये जायँ तो शारीरिक रोग भी अंतर्हित हो जायंगे। मन की पवित्रता का ही अर्थ है स्वस्थ शरीर।

3 वासनामय दृष्टि से मानसिक व्यभिचार का का पाप लगता है। मनुष्यों के कर्मों का निर्णय उसके मानसिक प्रवृत्ति / मनोवृत्ति, के अनुसार होता है। याद रहे मानसिक कर्म ही वास्तविक कर्म है।अपने बलवान चिंतन से अपने को बलवान करिये। मन के प्रतिपक्ष भावना (बीमार हो तो आरोग्य का भाव, व्यथित हो तो आनन्द का भाव, क्रोधित हो तो प्रेम का भाव आदि)का अभ्यास कीजिये, इससे आपको अक्षय निधि प्राप्त होगी। मन विद्युत है, विचार एक महान शक्ति है।

4 जहाँ शरीर जाता है मन भी उसके साथ जाता है, मन उत्तेजित होता है तो शरीर भी उत्तेजित हो जाता है, जब दोनों उत्तेजित होते है तो प्राण विषम हो जाता है। प्राण के विषम गति से कंपन करने से भोजन का उचित

रीति से परिपाक नहीं होता और रोग उत्पन्न होते है। यदि वास्तविक सत्वगुण से मन को शुद्ध रखा जाय तो सारे शरीर में अनायास ही प्राण संचालन होगा। भोजन का ठीक ठाक परिपाक होगा और कोई भी रोग उत्पन्न न होगा।

5 सत्य, धार्मिक और शुद्ध कर्मों व सतत सत्संग के द्वारा मन की शुद्धि निश्चित है। मन के इस प्रकार से शुद्ध हो जाने पर अपूर्व आनंद प्राप्त होता है। शम के अभ्यास से मन में जो शांति उत्पन्न होती है उसे उपरति कहते है। साधना / अभ्यास के द्वारा मन को हृदय में स्थिर रखना शम है। वासना का त्याग ही शम है। सत्वापत्ति मन की वह अवस्था है जब वह सत्व से, निर्मलता से परिपूर्ण हो जाता है।

6 आध्यात्मिक साधना, विचार, ध्यान, प्राणायाम, जप, शम और दम से एक बिल्कुल नया मन निर्मित होता है। जिसके साथ ही नये भाव, नये स्नायु तंतु, नयी धमनियाँ और मस्तिष्क में मन को नये रूप से गतिशील और संचालित होने के लिये, नये नये क्षेत्र, नवीन मस्तिष्क को शादि व स्नायुधारा का निर्माण हो जाता है। तब वह उन विषयों के विचार से जो अहंमन्यता व आत्मश्लाघा की ओर झुकाते है से हटकर, सारे विश्व के कल्याण के लिए चिंतन करते हुए वह एकता के लिए सोचता है, विचारता है कार्य करता है।

।। स्वामी श्रीशिवानंद जी।।

1 सुषुम्ना वायु का आसन मणिपुर चक्र है। यह अग्नि के समान है।यदि प्राण का बाह्य प्रवाह मणिपुर केंद्र से सहस्त्रार केंद्र पर केंद्रित रहती है, तो यह ब्रम्हाग्नि है। महान ऋषि मुनियों ने पाया की रीढ़ कि हड्डी में एक पोली नली में नाड़ी है, जो सुषुम्ना कहलाती है। सुषुम्ना की गति एवं स्थिति

के अनुसार मन की दशा और स्थिति में परिवर्तन होता है, मन के हर स्थिति को सुषम्ना से गुजरना है। यदि साधक मन को मूलाधार से स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, कूटस्थ चक्रों में होते हुए सुषुम्ना के भीतर से सहस्त्रार तक ऊपर ले जाता है, तो मन अंतर्मुखी स्थिति प्राप्त करता है।

2 उर्ध्व व निम्न वायु के प्रतिच्छेदन का स्थान समान वायु है। समान वायु सुषुम्ना है। हृदय चक्र से सहस्त्रार में गतिमान वायु प्राणवायु कहलाती है। यह इड़ा प्रवाह है। पिंगला वायु की प्रवाह निम्न केंद्रों स्वाधिष्ठान और मूलाधार में रहती है। पिंगला प्रवाह की वायु अपान वायु है।

3 उच्च ज्ञान की बातें व्यर्थ है, यदि प्राण सुषुम्ना में प्रविष्ठ नहीं हुई हो तो। इड़ा और पिंगला में श्वास की सन्तुलित स्थिति सुषुम्ना को जाग्रत करती है।

4 श्रेष्ठ ज्ञान का अभ्यास सुषुम्ना नाड़ी में किया जाता है, जब प्राण वायु सुषुम्ना में प्रविष्ठ करती है,आध्यात्मिक साधना सफल बनाती है। सुषुम्ना अमृत की राह है, दिव्य पथ है।जैसे ही सुषुम्ना खुलती है प्राण कूटस्थ (आज्ञा चक्र) एवं सहस्त्रार तक पहुँचता है।

5 नाड़ियों की शुद्धि के कारण प्राण सुषुम्ना में प्रविष्ठ करती है। अभ्यास नाड़ी केन्द्रों की अशुद्धियों को हटाता है, परिणाम स्वरूप सुषुम्ना का द्वार खुलता है, एवं जीवनदायी वायु सुषुम्ना को आसानी से भेदती है। सुषुम्ना में प्राण के प्रवाह के कारण मन, शून्यता की स्थिति प्राप्त करता है। सुषुम्ना में प्राण का निरन्तर प्रवाह योगी को कर्म के बन्धन से मुक्त करता है।

6 इड़ा पिंगला सुषुम्ना तीनों नाड़ियों का आज्ञाचक्र में मिलन बिन्दु, त्रिवेणी कहलाता है। ये तीन नाड़ियाँ क्रमशः तीन पवित्र नदियाँ गंगा यमुना और सरस्वती को प्रदर्शित करती है।

7 जब जीवनशक्ति सुषुम्ना में प्रवेश करती है, इड़ा और पिंगला में जीवन का प्रवाह रुक जाता है।पिंगला नाड़ी में जीवन शक्ति का प्रवाह दिन और इड़ा नाड़ी में जीवन शक्ति का प्रवाह रात्रि कहलाता है। जीवन शक्ति का सुषुम्ना में प्रवेश दिन और रात के विलय का कारण बनता है, ध्याता काल विहीनता की स्थिति प्राप्त करता है। वह समय की सीमा या बन्धन से मुक्त हो जाता है। सूर्य और चन्द्र समय के चक्र को बनाये रखते है, सुषुम्ना समय के चक्र को समाप्त कर देता है। सुषुम्ना अत्यधिक शक्तिशाली है, मृत्यु उनके अधीन हो जाती है।

8 जीवन शक्ति के गति का इड़ा और पिंगला से सुषुम्ना नाड़ी में परिवर्तन योग कहलाता है।

9 सुषुम्ना नाड़ी के भीतर ब्रम्ह नाड़ी हमें ईश्वर के साम्राज्य तक ले जाती है। ब्रम्ह नाड़ी पवित्रतम नाड़ी है।

10 सुषुम्ना नाड़ी सभी प्रमुख नाड़ियों को शरीर में समाहित रखती है, इसके बिना किसी भी अन्य नाड़ी का अस्तित्व नहीं है। तीनों प्रमुख नाड़ियों का गृह स्थान मेरुदण्ड है। ये नाड़ियां मेरुदण्ड के भीतर कार्यरत रहती है। इनकी संरचना कमल की डण्डी की तरह है। सुषुम्ना के अंतर्गत चित्रा अत्यंत महीन और सूक्ष्म नाड़ी है, यह पांच प्रकाश के साथ चमकती है। यह दिव्य पथ, पवित्र आनन्दमय, ईश्वर की राह कहलाती है। यह कुण्डलिनी शक्ति का धारक है। योगीजन इस पवित्र नाड़ी पर अभ्यास करते है, हर प्रकार की अस्थिरता से छुटकारा पाकर सम्पूर्णता को प्राप्त करते है।

11 गोरखनाथ जी कहते है। कोई ज्ञान नहीं हो सकता, सिवाय प्राण के सुषुम्ना में स्थापित होने के।

12 सुषुम्ना नाड़ी कुम्भक की नाड़ी है, केवल यह एक नाड़ी है जहां समबुद्धि

की स्थिति प्राप्त की जा सकती है। धारणा की दक्षता प्रत्येक चक्र में ईष्ट स्मरण की तकनीक से। या सुषुम्ना के भीतर प्रत्येक चक्र में प्रकाश, ध्वनि एवं कंपन की अनुभूति से प्राप्त किया जा सकता है।

13 सुषुम्ना विवेक नाड़ी है। विभिन्न चक्रों में कमल की पंखुड़ियां अज्ञान को प्रदर्शित करती है। पंच इन्द्रियों के प्रभाव से ये घूमती है। सुषुम्ना सात्विक गुण से सम्बंधित है, सात्विक गुण की वृद्धि के साथ मन स्थिरता और विवेक प्राप्त करती है। मन में आनन्द का उदय होता है।

14 अभ्यास के द्वारा मेरुदण्ड के स्नायु केंद्र शुद्ध हो जाते है और सुषुम्ना का द्वार खुल जाता है। मन इस दरवाजे के माध्यम से उठकर पीयुष (आज्ञाचक्र) तक जाती है। सभी मानवीय वृतियां निरपेक्ष होकर आनन्दमय दिव्यता हृदय से अभिव्यक्त होती है।

।।क्रियायोग सार से।।

1 वे हमें प्राप्त है, प्राप्ति में वर्तमान है, भविष्य नहीं,इस पर दृढ़ रहना, ध्यान बने रहना उत्तम है।

2 कमी तो रहती नहीं, पूर्णता दिखती नहीं, वह प्रतिक्षण वर्धमान होता है, सब रोग मिटता है। शरीर भाव हटते ही सब रोग मिटता है।

3 वियोग का स्वरूप है, सन्तोष न होना, सन्तोष होने पर, प्राप्ति स्वरूप मिल जाता है।

4 अपने प्रति प्रियता रहती है,अपना अभाव कोई नहीं चाहता, अपने से कभी अरुचि नहीं होती। वे अपने है अपने होने से रक्षा करते रहते है, यही खास बात है, जो सम्बन्ध है।

5 बोध के बिना जो खिंचाव है वह आसक्ति है,विशेष राग के बिना बोध शून्य है। बोध होने पर बुद्धि में स्वतः विकास होते रहता है, नयी नयी

युक्तियां मिलती रहती है। सत असत को जानना, बोध है, ज्ञान है, विवेक है, इसमें रहना वर्तमान है। इन्द्रियों में जागृत रहना, निद्रा आलस्य न रहना-प्रकाश है, सतोगुण है।

6 सुख की इच्छा रहने से प्राप्ति में कठिनाई है, खेल में न्यारा मिल गया फंस गया। असत के अस्त होते ही स्वयं सुख राशि है। खेल को सच्चा मानना उसको सत्ता देना है, जो असार है।

7 जो हृदय है वो भारत है, पृथ्वी का हृदय भारत है। भारत, भ=ज्योति, प्रकाश। आ=आनन्द, आत्मा। रत=लगे रहना। लगे रहना=विवेक।

8 भोग में भी दूसरे को जो तीसरा है, सुख कैसे हो, तब वह योग है। तत्सुखे सुखित्वम।

9 स्वयं लगने से मन लग जायेगा, लेकिन मन लगने से स्वयं लग जाय कोई जरूरी नहीं है। लगने में मन की सत्ता रहती है, लीन होने पर नहीं रहती।

10 मख्खी सब जगह मीठा मवाद सबमें बैठती है, मगर अग्नि पर बैठ जाए तो? नरक दुःख मृत्यु सब इनके सुधार के लिए है।

11 स्वार्थ व अभिमान उन्हें बिल्कुल पसंद नहीं है। जो मिथ्या है।महत्ता देने से कामना है, कामना से पाप है। आकर्षण कैसे छूटे-अहं मन विषय तीनों छोड़ दें, विरोध न करें वरना दृढ़ होगी। जिसको वास्तविक आकर्षण का ज्ञान होता है, उसे आकर्षण नहीं होता। उसे हटाना है न कि मिटाना है।उपेक्षा हो।

12 रात्रि में अर्धरात्रि में जागृत- भाव से प्रभाव से विश्वास से शरीरमन से जैसे भी रहने से जागृति हो जाती है। पहचान है सब सुखासक्ति मिट जाए। केवल है रहे।

13 ज्ञान दृष्टि है, सर्वम है। कृतघ्नता से बचकर लोकसंग्रह हो जाता है। भोक्ता भोग व भोग्य तीनों, एक है जो स्वरूप है। भेद अलग होने से अहं

से है। अपने अंदर तीनों को जब देख ले, दिख जाय, बिठा ले, अंदर से उसे प्रकट करें, तो अभाव नहीं है। मीरा के पास सिंह को भेजा गया, पर सिंह का भाव बदल गया। किससे?

14 भोग्य जड़ है, भोग वृत्ति है, भोक्ता चेतन है जो स्वयं है, सब स्वयं है, दूसरा जो भेद है होने से भ्रम है, जो भोक्तापन है।

15 उनकी दृष्टि के सामने हमारी दृष्टि का मूल्य हो, वरना मूल्य ही क्या है?

16 उनकी दृष्टि है सब वही है, अलग कौन है? और जो हो रहा है प्रवाह रूप में वह ठीक ही हो रहा है। तब अलग है जो सबका अहं है, दीवार है।

17 मेहंदी में लाली न दिखे तो सन्देह होता है क्या? रहित है जो वे सहित है।

18 प्रह्लाद ने अपने भाव प्रकट किया तब आफत आई, अतः गुप्त ही अच्छा है।

19 जोर लगाकर समझने की अपेक्षा मानकर चुप रहना अच्छा है। चुप होने से है, में स्थिति हो गयी।

20 विपरीत ज्ञान, बुद्धि की जड़ता है। प्रार्थना से मिटती है। मैं=परम, परमात्मा। अलगाव=भेद।

21 एक ही शरीर के विभिन्न अंग है, शुद्ध है, अशुद्ध है, पर है शरीर एक ही। अनेक में एक, एक में अनेक।

22 रुपये रखने वाले भी अच्छे सज्जन हो चुके है, संत भी हो चुके है।इनके लोभ का ही खंडन हो।

23 विवेक अनादि है, सुखी दुखी होना मूर्खता का फल है।

24 कागज का फूल खूब सुंदर दिखता है, उसमें खुशबू कहाँ से आये! रावण ने साधु का वेश धारण किया, पर साधु नहीं कहलाया। महत्व भीतर के भावों का होता है।

25 विभीषण ने रावण को सीख दी, तो रावण ने लात मारी, हर कोई को कैसे दे?

26 कृपणता है वस्तुओं को महत्व देना, उनको महत्व न देना, उदारता है।

27 काम का आकर्षण अत्यंत प्रबल है। विवेक विचार से बहुत जल्दी काम मिट जाता है, इसकी अपेक्षा भक्ति में भगवान / इष्ट की शक्ति काम करती है,एक सत्ता रहने से काम का आकर्षण नहीं रह पाता।

28 लाभ उसको होता है जो उनकी कृपा को स्वीकार करता है जो मानता है कि मेरे पर कृपा है।

29 मनुष्य उतना ही चाहता है, जितना उसे दिखता है, परन्तु आगे अनन्त है! वह ज्यों आगे बढ़ेगा, बढ़ता ही चला जायगा। आगे बहुत विलक्षण ऐश्वर्य है। ब्रम्ह भी उस ऐश्वर्य का अंश है।

30 प्रेम में सूक्ष्म अहं अथवा मन है ही नहीं, केवल भगवान / इष्ट की इच्छा है। प्रेम में ह्रास अथवा नाश नहीं होता, सिर्फ वृद्धि होती है, उस वृद्धि का नाम रास है, प्यास बढ़ती जाती है, जल घटता नहीं। प्रेम की वृद्धि केवल चेतन में होती है।

।।श्री रामसुखदासजी।।

1 श्याम को परम सुख देने के लिये श्याम वर्ण से ही जिनकी गौर कान्ति प्रकट होती है, सुखदान की लीला की सम्पन्नता के लिये जो श्याम से अलग अस्तित्व स्वीकार करती है, श्याम से अलग होकर भी जिनकी गौर कांति श्याम वर्ण में ही सदा डूबी रहती है, उन श्याम स्वरूपा श्रीराधा के चरण मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

2 जो उड़ते बादलों से कहती हैं-मुझे श्याम दिखा दो। जो मौन पक्षियों से कहती है-मुझे श्याम बता दो। जो शून्य कुंजों से कहती हैं-मुझे श्याम मिला दो। उन श्यामन्वेषिनी श्रीराधा के श्रीचरण मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

3 जो कण से कण से मांगती रहती हैं-प्रियतम श्याम में मेरा अनुराग प्रतिपल बढ़ता रहे। जो क्षण क्षण में चाहती रहती हैं-प्रियतम श्याम का मेरे प्रति तिलभर भी अनुराग न रहे। जो पद-पद पर मनाती रहती हैं - मेरे एकांगी प्रेम का सपना अवश्य अवश्य पूरा हो। उन एकांगिनी श्रीराधा के श्रीचरण मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

4 प्यार की प्रतिदान की भावना से निरपेक्ष होकर जिन्होंने श्याम को अपने हृदय से प्यार किया है, लोकिकी-अलोकिकी मर्यादा से निरपेक्ष होकर जिन्होंने श्याम को अपने हृदय में स्थान दिया है। जगत की सराहना और आलोचना से निरपेक्ष होकर जिन्होंने श्याम पर अपने हृदय को लुटा दिया है, उन परम निरपेक्षा श्रीराधा के श्रीचरण मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

5 जो अपने श्याम की भगवत्ता को जानती है, जना सकती हैं, पर जनाने की स्फुरणा नहीं। जो अपने श्याम की गरिमा को देखती है, दिखा सकती है पर दिखाने की इच्छा नहीं, जो अपने श्याम के प्रभाव को समझती है, समझा सकती है, पर समझाने की चाह नहीं, उन श्याम तत्त्वज्ञा श्रीराधा के श्रीचरण मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

6 तेरे प्रियतम का परिचय क्या है? इस प्रश्न का उत्तर जिनकी वाणी में सिमट नहीं पाता। तेरे प्यार की परिभाषा क्या है? इस प्रश्न का उत्तर जिनके अधरों पर उतर नहीं पाता। तेरे प्रणय की परिधि क्या है? इस प्रश्न का उत्तर जिनके अन्तर में उभर नहीं पाता। उन मौनावलम्बिनी श्रीराधा के श्रीचरण मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

7 जिनके भावनात्मक लीला वपु का जगती ने आज तक न देखा है और न आगे कभी देख पायेगी। जिनकी भावभरी दिव्य चेष्टा को जगती ने न भूत में समझा है न भविष्य में कभी समझ सकेगी। जिनके भावपूर्ण कुञ्ज

केली के दर्शन से जगती सदा वन्चित रही है और सर्वदा ही वन्चित रहेगी। उन केवल भाव गम्या श्रीराधा के श्रीचरण मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

8 जिनके सामर्थ्य का सहारा पाकर प्रियतम श्यामसुंदर ने मन्मथ के मन का मंथन किया। जिनकी क्षमता का आश्रय लेकर प्रियतम श्यामसुंदर ने पञ्च पुष्प के शर के मद का मर्दन किया। जिनकी शक्ति से शक्तिमान होकर प्रियतम श्यामसुंदर ने मकरांकित केतु को झुका दिया। उन श्याम शक्ति स्वरूपा श्रीराधा के श्रीचरण मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

।।प्रणाम वल्लरी से।।

1 जो क्षण क्षण पर अपने प्रियतम श्याम के मन को देखती रहती है जो रह रहकर अपने प्रियतम श्याम के मन की जुटाती रहती है। जो पद पद पर अपने प्रियतम श्याम के मन को भजती रहती है, उन श्याम आनन्दिनी श्रीराधा के श्रीचरण मेरा प्रणाम करें।

2 जिनके अन्तर में अहर्निश एक श्याम प्रकाश फैला रहता है, जिनके नयनों में सर्वदा एक श्याम शोभा बसी रहती है, उन श्याममयी श्रीराधा के श्रीचरण मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

3 जिनके श्रीवपु के एक एक अंग का निर्माण घनीभूत रस के सारतिसार से हुआ है, जिनके श्रीवपु में नख से शिखतक, शिख से नखतक, रस का सागर लहराता है, जिनका श्रीवपु अवनी को, अम्बर को, अणु-अणु को अविरल रस का दान करता है, उन रसमूर्ति श्रीराधा के श्रीचरण मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

4 जिनके स्वर में नहीं की ध्वनि है ही नहीं, जिनके द्वार से कोई निराश कभी लौटा नहीं, जिनके याचक को फिर से मांगते देखा नहीं, उन परमोदारा श्रीराधा के श्रीचरण मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

5 लीला-विस्तार के समय सखीरुप में सागर की उठती लहरों के समान जो एक से अनेक होती है, लीला-संवरण के समय आत्मरूप में सागर की गिरती लहरों के समान अनेक से एक होती है। विस्तार और संवरण से अतीत तत्त्वरूप में सागर के व्यापक जल के समान जो प्रत्येक रूप में एक रहती है। उन एकानेक रूपा श्रीराधा के श्रीचरण मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

6 जिनकी चरणरज व्रज की गोपियों के नयनों का अन्जन है, जिनकी चरणरज प्रियतम श्याम के भाल की शोभा है, जिनकी चरणरज रसिकों की भावनाओं की विहार स्थली है, उन महिमामयी श्रीराधा के श्रीचरण मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

।प्रणाम वल्लरी से।।

1 इष्ट भगवान कल्पवृक्ष है, चिंतामणि है,चित्त जो जो चिन्तन करे उसे पूरा करने वाले है। इष्ट भगवान सतगुरु बोलते चालते ब्रम्ह है।

2 सिद्धांत अद्वैत का और मजा भक्ति का, यही तो भागवत धर्म का रहस्य है।

3 दिन रात का पता नहीं, यहां तो अखण्ड ज्योति जगमगा रही है, इसके आनन्द कैसे हिलारे मारता है, उस सुख परमसुख का कहाँ तक और कैसे वर्णन करूँ।

4 देह तो नहीं रहेगी इसे काल खा जायगा। पर उपकार करो, निंदा मत करो, पर स्त्रियों को मां बहन / पर पुरुष को पिता भाई, समझो। सबमें दया भाव / ईश्वरीय भाव, रखो।

5 जो आने वाले काल की चिंता किये बिना इष्ट प्रभु में रत रहता है, वही सच्चा सहनशील है।

6 जिस स्थिति में वो रखना चाहे उसी स्थिति में सन्तुष्ट होना सीखो तभी इष्ट परमात्मा के प्रीति के पात्र हो पाओगे।

7 प्रत्येक कार्य को करते समय याद रखना कि मैं जो काम कर रहा हूँ, जो कुछ बोल रहा हूँ, उसे इष्ट परमेश्वर देख,सुन रहे है। मौन धारण करते समय भी उसका कारण ध्यान में रखना, क्योंकि इष्ट ईश्वर उसे भी जानते है।

8 स्पृहा तीन प्रकार की होती है-भोगने, बोलने व देखने की। भोग भोगते समय ध्यान रखना कि इष्ट ईश्वर देख रहे है। बोलते समय ध्यान रखना सत्य का विनाश न हो, देखते समय ध्यान रखना साधुता / सब में ईश्वर देखने की भावना, नष्ट न हो जाय।

9 इन बातों में सदैव आत्मपरीक्षण करते रहना-१,कोई भी शुभ कर्म करते निष्कपट हो न? जो कुछ भी बोल रहे हो निःस्वार्थ भाव से ही है न? जो दान -उपकार कर रहे हो बदले की आशा के बिना ही है न? जो कुछ धन संचय कर रहे हो कृपणता को छोड़कर ही है न?
।।संत वाणी से।।

● दृश्य से दृष्टा अनोखा अनूठा विलक्षण होता है। भ्रांतिमूलक, कर्तापन, भोक्तापन, संसारीपन व परिच्छिन्नपन का बाघ कर दीजिए। कर्म होते है तो होने दीजिए, नहीं होते है तो जाने दीजिए। आप मस्तमौला आपका व्यक्तित्व मस्तमौला है। परमानन्द है, जीवन्मुक्त है। चाहे जैसे रहे। विचार की अंतर्मुखता ही अन्तःकरण शुद्धि का आलोक है, इसी आलोक में अनात्मा, दृश्य/द्वैत का भावाभाव प्रकाशित होता है।आत्मा की अद्वितीयता का बोध होता है। कार्य करने का प्रयोजन होता है वह कार्य से विलक्षण होता है-जो छूट जाता है वह कार्य है जो साथ मिलकर

रहता है वह प्रयोजन है। प्रयोजन क्या है? सदाचार के संस्कार, सद्भाव, भक्ति / तत्वज्ञान-ये मिलेंगे तो अपने साथ रहेंगे। किसी कार्य से वासना की पूर्ति / निवृत्ति कहाँ तक हो सकेगी, इसका फल कितना स्थायी होगा-विनश्वर या अविनाशी। विवेक से विचार कर लेना चाहिए, ताकि संकल्प हो व संकल्प को बल मिले / न मिले।मुख्य बात यह नहीं है कर्म सकाम या निष्काम हो रहे है-मुख्य यह है आप अपने को कर्ता मान रहे है कि नहीं मान रहे है। अनिवर्चनीय कारण से हुए कर्म का अपने को कर्ता मानना बताना आकाश में चमकते तारों को अपनी रचना बताने के समान है। कर्म का कर्ता, भोक्ता, मानना यही सब अज्ञान है।कर्म पूरा करने के लिए नहीं किया जाता, करते जाइये बस आगे बढिये। आपका कर्तापन दुःखी करेगा, अकर्तापन यह भी अभिमान ही है। फलासक्ति कर्मासक्ति कर्तृवासक्ति, अकर्तृवासक्ति-इन चारों से जब छूटेंगे तब-आत्मा की पूर्णता का बोध होगा। आप पूर्ण है। यदि आप, बाह्य पदार्थो के संस्कार से मुक्त अन्तर्यामी से प्रेरणा प्राप्त करेंगे और उनसे अपने को व अपनी मति को मिलाकर रखने का प्रयास करेंगे तो-अपनी इच्छाओं में एकरूपता आ जायेगी, स्थिरता मिलेगी तथा उस अन्तर्यामी से जो सर्वज्ञ व सर्वशक्तिसम्पन्न है एकता हो जायेगी।

।।आनन्द उल्लास से।।

1 विश्वरूप का तात्पर्य है, भगवान निर्गुण,निराकार व निष्फल होते हुए भी सर्वाकार सम्पन्न है।

2 अतः हम जो कुछ भी जगत में देखते है, वे सभी आकार विश्वरूप के अंतर्गत है।

3 मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि के रूप में विश्व में जो भी है चारों ओर, उन्हीं का आकार है, समझना चाहिए।

4 सभी वस्तुओं में भगवान का दर्शन करना, यही विश्वरूप दर्शन है।

5 मृत्युकाल में देवतादि के चित्र सामने रखते है, उपरोक्त भाव इससे श्रेष्ठ है। क्योंकि सब समय दृष्टि के सामने जो कुछ भी होगा, वह ईश्वर का ही रूप होगा। सभी उनकी मूर्ति है का भाव रहने पर परागति हो जायगी।
।। मनीषी की लोकयात्रा से ।।

1 अब प्रयोजन है गीता के सिंहनादकारी श्रीकृष्ण की, धनुषधारी श्रीरामचन्द्र की, महावीर (हनुमानजी) की, माँ काली की पूजा की। इसी से लोग महा उद्यम के साथ कर्म में लगेंगे और शक्तिशाली बनेंगे।

2 घोर तमोगुण से देश भर गया है, वर्तमान काल में जो धर्म की रट लगा रहे है, उनमें से बहुत लोग पाशवी दुर्बलता से भरे विकृत मस्तिष्क है अथवा उन्मादग्रस्त। हमने सूत्रों और सिद्धांतों का तो अध्ययन किया है पर जीवन में अनुभूति या साक्षात्कार कुछ नहीं किया है। धर्म के सम्बंध में यहां हम सब बच्चे ही है, धर्म न बातों में है, न सिद्धांतों में न पुस्तकों में, वह है प्रत्यक्ष अनुभव में। छोटे से छोटा कीड़ा भी जिस दिन इन्द्रियातीत हो जायगा और परमेश्वर तक पहुंच जायगा। जो केवल सांसारिक सुख का साधन मात्र है, वह अन्य चाहे जो कुछ हो, पर धर्म नहीं है। सम्प्रदाय, जाति या राष्ट्र की भावना पर आधारित सभी धर्मों का परित्याग करना होगा। धर्म ईश्वर की प्राप्ति है।

3 देशभक्त बनो-जिस जाति ने अतीत में हमारे लिए इतने बड़े बड़े काम किये है उसे प्राणों से भी अधिक प्यारी समझो। इस मायामय जड़ जगत की पहेली ही कुछ ऐसी है, जो हो तुम इसकी परवाह मत करो! अन्त में आत्मा की ही जय अवश्य होगी। अपने आप पर विश्वास रखो, दृढ़ धारणाएं महत कार्यों की जननी है, हमेशा बढ़ते चलो। मेरे वीर हृदय

युवकों, यह विश्वास रखो अनेक महान कर्मों के लिए तुम सबका जन्म हुआ है, कुत्तों के भूँकने से न डरो, नहीं स्वर्ग के वज्र से डरो। उठ खड़े हो जाओ और कार्य करते चलो।

4 सारा संसार आलोक चाहता है उसे बड़ी आशा है। एकमात्र भारत में यह आलोक है। यह रहस्यपूर्ण निरर्थक धार्मिक अनुष्ठानों में या छलकपट में नहीं है अपितु उन उपदेशों में है जो सर्वोच्च आध्यात्मिक तत्व की, यथार्थ धर्म के सारतत्व की महिमा की शिक्षा देती है। यही कारण है कि प्रभु ने इस जाति को इतने सारे उतार चढ़ावों के बावजूद आज भी सुरक्षित रखा है।

5 इस समय चाहिए गीता में भगवान ने जो कहा है-प्रबल कर्मयोग, हृदय में अमित साहस, अपरिमित शक्ति। तभी तो देश में सब लोग जाग उठेंगे। धर्म के विभिन्न मार्गों का समन्वय और निष्काम (निःस्पृह) कर्म, ये गीता की प्रमुख दो विशेषताएं है। क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्वय्युपपद्यते। क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप, इस श्लोक में सम्पूर्ण गीता पाठ का सन्देश का लाभ मिलता है। समस्त वेदान्त दर्शन गीता में समाविष्ट है।

6 जिस दिन भारतवासी धर्मशिक्षा के लिए पाश्चात्यों के कदमों पर चलेंगे उसी दिन इस अधःपतित जाति का जातित्व सदा के लिए नष्ट हो जाएगा। मेरा विश्वास है कि वेदान्त की चर्चा व सर्वत्र प्रचार होने से हमारा व उनका दोनों का ही विशेष लाभ होगा। यदि आप समझते है कि किसी दूसरे उपाय से भारत का कल्याण होगा तो उसी उपाय का अवलम्बन कर आगे बढ़ते जाइए।

7 भारत तभी जागेगा जब विशाल हृदय वाले सैकड़ों स्त्री पुरुष भोगविलास और सुख की सभी इच्छाओं को विसर्जित कर मन वचन

शरीर से उन करोड़ों भारतीयों के कल्याण के लिए सचेष्ट होंगे जो दरिद्रता तथा मूर्खता के अगाध सागर में निरन्तर नीचे डूबते चले जा रहे है। भारत के भाग्य का निपटारा उसी दिन हो चुका जब उसने म्लेच्छ शब्द का आविष्कार किया और दूसरों से नाता तोड़ दिया। वेदान्त की बातें बघारना खूब सरल है पर इसके छोटे से छोटे सिद्धान्त को कार्य में लाना कितना कठिन है। तोते के समान बातें करना हमारा अभ्यास हो गया है। आचरण में हम बहुत पिछड़े हुए है, शारीरिक दौर्बल्य दुर्बल मस्तिष्क कुछ नहीं कर सकता, बलवान इन्हें बनाना होगा।

8 उत्तम लक्ष्य, निष्कपटता और अनन्त प्रेम से विश्व विजय की जा सकती है। ऐसे गुणों से सम्पन्न एक भी मनुष्य करोडों पाखंडी एवं निर्दयी मनुष्यों की दुर्बुद्धि को नष्ट कर सकता है।

9 आशा तुम लोगों से है जो विनीत, निरभिमानी और विश्वास परायण है, ईश्वर के प्रति आस्था रखो।किसी चालबाजी की आवश्यकता नहीं उससे कुछ नहीं होता।

10 इन दो चीजों से बचे रहना, अधिकार लालसा और ईर्ष्या, सदा आत्मविश्वास का अभ्यास करना।

11 प्राचीनकाल की तरह राजमहल से लेकर दरिद्र की झोपड़ी तक सर्वत्र समान भाव से धर्म का प्रवेश हो। याद रहे धर्म ही इस जाति का साधारण उत्तराधिकार एवं जन्मसिद्ध स्वत्व है। कभी कोई सार्वभौमिक धर्म होगा तो यह होगा जो किसी देश या काल से सीमाबद्ध नहीं होगा, वह उस असीम ईश्वर के सदृश ही असीम होगा।

12 हमारी कार्यविधि बहुत सरलता से बतायी जा सकती है वह केवल राष्ट्रीय जीवन को पुनः स्थापित करना है। भारत के राष्ट्रीय आदर्श है त्याग और सेवा, इन धाराओं में तीव्रता उत्पन्न होने से सब अपने आप

ठीक हो जायगा। त्याग का अर्थ है स्वार्थ का सम्पूर्ण अभाव। वही समाज श्रेष्ठ है जहाँ सर्वोच्च सत्य को कार्य में परिणत किया जा सकता है। यदि समाज उच्चतम सत्य को स्थान देने में समर्थ नहीं है तो उसे इस योग्य बनाओ। स्त्री और पुरुष का भाव दूर करो सब आत्मा है। आत्मा के सम्बंध में जाग्रत होओ, सत्य के अभ्यास का साहस करो।

13 कार्य वे करते है जिनकी कोई कामना नहीं है, वे ही कार्य करते है जो बदले में किसी लाभ की आशा नहीं रखते, कार्य वही कर सकते है जो किसी वासना के द्वारा किसी स्वार्थपरता के द्वारा परिचालित नहीं होते। मनुष्य को प्रथम चरित्रवान होना चाहिए, आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए फिर सारे फल अपने आप प्राप्त हो जाएंगे। मानवमात्र के लिए स्नेह और दया ही सच्ची धार्मिकता की परख है। ।।स्वामी विवेकानंद।।

1 मैं कुछ नहीं हूँ,मेरा कुछ नहीं है-इस बात को हमेशा याद रखना। मैं नामक जो देह है, यह कुछ नहीं है,सब ईश्वर की देह है। भगवान हमेशा हमारे साथ रहते है, उन्हें देखने या जानने की इच्छा विरले किसी को होती है। व्याकुल भाव से उन्हें जो पुकारेगा, वह उन्हें प्राप्त करेगा, गुरुकृपा से दर्शन प्राप्त होती है।

2 वासना त्याग करना ही मुक्ति का श्रेष्ठमार्ग है, ऐसे कार्य करो कि जन्मजन्मान्तर का भोगदण्ड न सहना पड़े। अगर सत्कर्म ब्राम्हणोचित कार्य करते हुए सन्मार्ग पर रहोगे तो आत्मोन्नति होगी।

2 जब तक हृदय व्याकुल न होगा, उसके लिए आशा बलवती न हो, तब तक सतगुरु नहीं मिलते। उपयुक्त गुरु न मिलने के कारण ही मानव की यह दुर्दशा है।

3 साकार चिंतन के बिना ईश्वर की महिमा शक्ति गुणादि को हृदयंगम

नहीं किया जा सकता है। ईश्वर जिन स्थानों पर व्याप्त है उसकी सीमा नहीं है। वह भी असीम व अनन्त है, इसलिए निराकार है।
।।योगिराज त्रैलंग स्वामी।।

1 यदि तुम अकेले रहने के लिये बाध्य किये जाते हो, तो सत्य में जिओ और सत्य में ही प्राण विसर्जन करो।
2 प्रसन्नता से बढ़कर कोई भी शक्तिदायिनी औषधि नहीं है।
3 अपनी ही आत्मा में ईश्वर के दर्शन का उपाय है, समस्त इच्छाओं का परित्याग।
4 कृष्ण क्यों वंशी को प्यार करते चूमते थे? क्योंकि वंशी ने सारा द्रव्य निकाल कर अपने को शून्य बना डाला है।
5 ॐ का भावार्थ ग्रहण करो, उसे क्रियाओं में उतारो, शरीर के रोम रोम से गाओ, वह तुम्हारे धमनियों में दौड़ने लगे। तुम्हारें शरीर के प्रत्येक अंग अंग से, रक्त के बिंदु बिंदु से सत्य की झंकार उठे कि तुम प्रकाशों के प्रकाश, सूर्यों के सूर्य, ब्रम्हाण्डों के शासक, स्वामियों के स्वामी स्वयं सत्य स्वरूप हो।
6 तुम इधर सांसारिक सुखों का उपभोग करो, छोटे छोटे सांसारिक सुखों, वासनाओं और भोग विलास के चक्कर में पड़े रहो और इधर अपने ब्रम्हत्व का भी दावा करो-यह हो नहीं सकता, यह हो नहीं सकता।
7 मनुष्य को व्यसनों पर विजय प्राप्त करनी होगी या मरना होगा।
।।स्वामी रामतीर्थ।।

1 मन आत्मा की परछाई है। मन की प्रशांत स्थिति आत्मा को प्रतिबिंबित करती है, और अशान्त रूप में यह जीव बनती है।

2 मन पर बलपूर्वक नियंत्रण नहीं की जा सकती, यह आप ही आप अभ्यास से स्थिर बनती है। मनुष्य अपने आप को शरीर मन इंद्रियों से पहचानता है, हमने अपने आप को सामान्य चेतना में बाँध रखा है। सभी सुख दुःख से परे ब्रम्ह की अनुभूति ही जीवन का लक्ष्य है।

3 जीव और आत्मा का एकत्व योग है, मन की अंतर्मुखता ही एकता है। वह स्थिति जिसमें मन के सब उथल पुथल समाप्त हो जाये एवं स्वयं में सम्मिलित हो जाये योग कहलाता है।

4 मन आनन्द के किसी भी वस्तु से कभी भी सन्तुष्ट नही होता, एक दूसरे पर डोलते रहता है। यह क्षिप्त मन कहलाता है।

5 मन की असंख्य इच्छायें है, वह सदैव बहिर्मुखी जागतिक सुख भोगने हेतु पंचेंद्रियों को उकसाती है। जब मन उर्ध्वगामी, अंर्तगामी अर्थात आत्मा की ओर प्रवृत होती है, तब वह बुरे प्रवृतियों से दूर करते हुए मन पर नियंत्रण देती है। मन के पूर्ण अंतर्मुखी होने पर योग की स्थिति स्वतः आ जाती है।

6 मन की विक्षिप्त स्थिति जिज्ञासुपूर्ण स्थिति है। जहां मन अस्थिर स्थिति में स्थिरता प्राप्त कर लेता है।

7 अपने मन को सिर के ऊपर सहस्त्रार में स्थिर करो, सोचो कि तुम्हारा नाक उस बिन्दु पर है उससे श्वास लेते रहोगे तो उस बिन्दु पर भारीपन स्पंदन महसूस करोगे और मन की अस्थिरता धीरे धीरे समाप्त हो जायेगी। जब मन स्थिरता के किसी आधार के बिना अटल और स्थिर बन जाये, तो यह मन की एकाग्रता कहलाती है। एकाग्रता आत्मा की वेदी है।

8 बिना विचार के मन की एकाग्रता की स्थिति निरुद्ध मन कहलाती है। जहां कोई भी विचार कार्यरत नहीं होती। एकाग्र और निरुद्ध मन की अवस्था ही योग के उपयुक्त है।

9 जब मन क्रोध दुःख अकर्मण्यता तर्कपरता की स्थिति में बन्ध जाता है, तब वह मुधा मन कहलाता है, मन यहां निर्णय नहीं ले पाता। अस्थिर मन बन्धन है, स्थिरता ब्रम्ह है, मन की स्थाई स्थिरता, मुक्ति है।

10 आत्मा मन की भावना विहीन स्थिर प्रशांत शांतिमय स्थिति है। मन की अंतर्मुखता सांभवी मुद्रा है जो शरीरचेतना से परे, बन्धन मुक्त प्रशांत स्थिर ईश्वर चेतना की स्थिति है।

11 आत्मा की अस्थिर स्थिति मन है। मन इंद्रियों के माध्यम से आनन्द प्राप्त करता है। मन की बुराइयों का नाश ज्ञान की ओर ले जाती है, वास्तविक ज्ञान की उत्पात्ति ही मुक्ति की राह है।

12 इंद्रियों का नियंत्रण मन को प्रज्ञा के स्थिति में ले जाकर, अन्तःदर्शिता शक्ति को स्थापित करती है। सत्वापत्ति में मन सभी इंद्रियों से परे होकर ब्रम्ह के साथ बन्ध जाता है, हमें ईश्वर सर्वत्र अनुभव करना चाहिए, जिससे मन ईश्वर में विलीन हो जाये।

13 मन के सात्विक होने पर, सुषुम्ना में जब प्राण बहती है तब मन शून्य की स्थिति प्राप्त करता है। सुषुम्ना में प्राण का निरन्तर प्रवाह कर्म के बन्धन से मुक्त कर देता है।

14 मन के इंद्रिय आनन्दों से आहरण प्रत्याहार है। प्रकृति के प्रत्येक स्थिति में मन की स्थिरता, प्रत्याहार है। मन की उच्चतम स्थिति ध्यान है, ध्यान में मन समचित्तता प्राप्त करता है। प्रत्येक मन अन्य दूसरे व्यक्ति के मन से जुड़ा हुआ है।

15 जब हम शरीर से निर्लिप्त हो जाते है, तो साक्षी भाव प्राप्त होने से काम, क्रोध, लोभ, दुःख सभी शारीरिक दुर्गुणों का अंत होता है।

16 प्राणमय कोष को पार करने से प्राण स्थिर होता है, तब मनोमय कोष को पार करना आसान हो जाता है। मनोमय कोष को पार करने पर वह पूर्व

जन्मों को जानने में सक्षम होता है। विचार प्रवाह ईश्वर की ओर चली जाती है, यह स्थिति साक्षी है। लगातार यह बने रहने पर सर्वज्ञ स्थिति प्राप्त होता है।

17 इच्छाओं से संयुक्त मन अशुद्ध मन कहलाता है, यह बंधनकारी है। इच्छाविहीन मन,शुद्ध मन है, मुक्त स्थिति है।इच्छाओं के कारण हम जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और रोगों के बन्धनों का सामना करते है।
।।क्रियायोग सार से।।

1 तुम्हारी तैयारी का तभी पता चलेगा, जब तुम्हारे मन में कुछ भी न रहकर केवल उनका मोहन मुखड़ा के दर्शन और कोमल चरण स्पर्श करने की ही अनन्य भावना रह जायगी।

2 ठहरो प्रभु ! अभी मैं आपके दर्शन पाने के योग्य नहीं हूँ। जब अपना सारा हृदय आपकी कृपा से पूर्णरूप से खाली हो जाय। उसमें केवल आपको सुख पहुँचाने वाली सामग्री ही रहे,और कुछ भी न रहे। तभी आप मुझे दर्शन देना।

3 पूर्ण समर्पण कोई कर नहीं सकता। वह तो बरजोरी से ही करा लिया जाता है। बस, समर्पण की तैय्यारी भर होनी चहिये। वे ही परम् प्रियतम है, उनके सिवा मेरा कोई नहीं है, यह कह देने मात्र से प्रेमरस की अनुभूति नहीं होती, उनके लिए प्राणों के उत्सर्ग की भावना आवश्यक है। तभी हृदय रस से भर सकेगा।

4 साधक के मन में चित्त में नित्य निरन्तर केवल एक धारणा दृढ़ता के साथ बद्धमूल हो जाय कि इस लोक में परलोक में सर्वत्र सर्वदा एकमात्र इष्ट ही मेरे है, उनके सिवा मेरा और कोई भी किसी काल में भी नहीं है। अतः यहाँ दूसरी वस्तुमात्र और तत्व का ही अभाव हो जाता है, तब काम क्रोध

लोभ मोह ईर्ष्या और असूया आदि दोषों के लिए स्थान नहीं रह जाता। इस भाव की प्राप्ति घर में रहते हुए सर्वस्व मन से त्यागने पर होता है। किसी बाह्य क्रिया से नहीं। समर्पण ही इसका साधन है, वास्तव में यह भाव साधन साध्य न होकर केवल कृपासाध्य ही है।

5 प्रेमी के लिये तो सब कुछ प्राणनाथ का ही है, उसका है क्या, जिसे वह छोड़े। छोड़ने के साथ तो सूक्ष्म रूप से ममता का पुट लगा हुआ है। जो प्रियतम के श्रीचरणों में आत्मोत्सर्ग कर देता है, उसका अपना कुछ रहता ही नहीं। किसी में आसक्ति ममता नहीं है, अतः वह किसे छोड़ेगा?

6 मैं जो कुछ भी हूँ और इस लोक परलोक में मेरा जो कुछ भी है, वह सभी आज मैं आपके श्री चरण कमलों में समर्पण कर रहा हूँ। मैं अपराधों का भण्डार हूँ, मेरे अपराधों का कोई पार नहीं है, सर्वथा साधनहीन, गतिहीन हूँ। मैं तन मन वचन से आपका ही हूँ, मैं आपके शरण में हूँ, आप कृपा की खान है। आपके श्रीचरणों पर पड़ा हूँ। आप ही एकमात्र मेरी गति है।

7 उनके बुद्धि मन इन्द्रिय शरीर आत्मा सहित सदा प्रियतम को ही अर्पण है। कभी भूलकर भी चित्त दूसरें विषय को ग्रहण नहीं करता। इष्ट को सुखी देखकर ही परमसुख का अनुभव करते है। चित्त में इष्टमय भगवत्भाव के सिवा अन्य किसी भी संकल्प का उदय ही नहीं होता।

8 उन्हीं की ही चर्चा, चेष्टा होती थी, वे जब घरों का काम करती थी तब वे अपने मन में, वाणी में, और अपनी आँखों में निरन्तर इष्ट, भगवान का ही स्पर्श, उन्हीं के दर्शन पाती थी।

9 कैसे हमारे प्रियतम की इच्छा पूर्ण हो!ये धन धाम, ये मन प्राण, ये देह गेह कैसे उनको सुख पहुँचाने वाले हो, अरे ये तो उन्हीं के है, उन्हीं की

सामग्री है। दी जाती है वह वस्तु जो अपनी होती है, यहां तो सब कुछ उन्हीं का है। मुझ पर भी तो उन्हीं का एकाधिकार है। फिर कैसे कहूँ, तुम मुझे ले लो अपनी सेवा में लगा लो। अब कुछ नहीं कहना है। तुम नचानेवाले हो मैं कठपुतली हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो बस वही करो।

10 यहाँ सर्वसमर्पण भाव है।निज सुख की इच्छा का सर्वथा त्याग है।

।। राधा माधव चिन्तन से ।।

1 मन के स्पंदन (गति, हलचल) के शांत हो जाने पर प्राणों की गति रुक जाती है। मन के लय होने पर ही कल्याण होता है। मन के क्षीण होने पर प्राणी जीवन्मुक्त होता है।

2 जैसे मतवाला दुष्ट हाथी बिना अंकुश के नहीं जीता जा सकता वैसे ही मन भी बिना ठीक युक्ति के नहीं जीता जा सकता।

3 इच्छित वस्तु का त्याग करके जो विकार रहित स्थित हो जाता है, वह मन को ऐसे जीत लेता है जैसे हाथी को अंकुश।

4 मन को जीतने की एक युक्ति यह है कि सब विषयों के प्रति अनास्था उत्पन्न हो जाय। यह मन कभी जड़ (दृश्य रूप से) कभी चेतन (ब्रम्ह रूप से) हो जाता है।

5 मन की वासना (नाम वाली चंचलता है, अविद्या है) को विचार द्वारा नष्ट कर देना चाहिए। वासना और प्राण स्पंदन दो अलग वस्तुएँ नहीं है, इन दोनों का बीज विषय ज्ञान है। किसी वस्तु को प्राप्त करने की दृढ़ भावना होती है वही वासना है। जड़ पदार्थ के भीतर ऐसे वासना मौजूद है जैसे बीज के भीतर पुष्प।

6 मन के निग्रह की छः युक्तियां है १ ज्ञानयुक्ति २ भोगों से विरक्ति ३ वासना का त्याग ४ इन्द्रियों का निग्रह५ तृष्णा का त्याग ६ अहंकार का त्याग।

7 जो कुछ नहीं लेता, उसी को सब कुछ दिया जाता है। परमपुरुष के संकल्पमय होने का नाम ही 'चित्त' मन है। मन संकल्प से भिन्न किसी प्रकार का नहीं है। मन में सब प्रकार की शक्तियां है। मन (शुद्ध) सब कुछ कर सकता है। जैसा मन वैसा मनुष्य होता है। तीनों जगत मन के मनन से ही निर्मित है।

8 आत्मतत्व में मन को स्थिर करने से प्राणों सहित मन लीन हो जाता है। एक तत्व के गहरे अभ्यास से मन सहज में शांत हो जाता है। मन के शांत होने पर संसार विलीन हो जाता है। मन ही ब्रम्हा का रूप धारण कर लेता है, ब्रम्हा संकल्प करने वाला मन है, मन का रूप बनाकर ब्रम्हा सृष्टि उत्पन्न करता है।

।। वशिष्ठ जी ।।

1 सर्वसमर्पण से वे आठों पहर श्यामसुन्दर के प्रेमरस सागर में सदा निमग्न रहने लगीं।

2 वे मिलें या न मिलें इसकी तनिक भी परवा न करके वे रात दिन अकेले में बैठी मन ही मन किसी विचित्र दिव्य भावराज्य में विचरण किया करती।

3 प्रिय सखी! मेरे प्रभु के श्रीचरणों मैं और जो कुछ भी था, सब समर्पित हो गया। मैंने किया नहीं, हो गया। जगत में पता नहीं किस काल से जो मेरा डेरा लगा था, वह डेरा सारा सदा के लिये उठ गया। मेरी ममता सभी प्राणी पदार्थ परिस्थितियों से हटकर एक प्रियतम प्रभु से केवल सम्बन्ध रह गया।

4 जगत में जहाँ कहीं भी, जितना भी, जो भी मेरा प्रेम, विश्वास और आत्मीयता का सम्बन्ध था, सब मिट गया।

5 सब ओर से मेरे सारे बन्धन खुल गये और मैं केवल उन्हीं के श्री चरणों में

बंध गयी। उन्हीं का एक भाव रह गया। यह सारा संसार भी उन्हीं में विलीन हो गया। और कोई सत्ता शेष नहीं रह गयी, जिससे मेरा कोई व्यवहार हो।

6 मैं सुंदर मन से सदा उनकी पूजा बहुत ही छिपाकर करती रहती हूँ,और केवल यही चाहती हूँ कि मेरी पवित्र पूजा अनन्तकाल तक चलती रहे, सुरक्षित। मैं कहीं भी कैसे भी रहूँ, इस पूजा में मेरी रूचि बढ़ती ही रहे, इस पूजा का कभी अन्त न हो।

7 हुआ समर्पण प्रभु चरणों में जो कुछ था सब, मैं, मेरा। अग जग से उठ गया सदा को चिरसंचित सारा डेरा।।प्रेम उन्हीं में, भाव उन्हीं का, उनमें ही सारा संसार। उनके सिवा, शेष कोई भी बचा न, जिससे हो व्यवहार।।

8 प्रेमास्पद के सुख के लिये ही उनका जीवन है। उनके जीवन का प्रत्येक कार्य, प्रत्येक चेष्टा, प्रत्येक विचार, प्रत्येक कल्पना, प्रभु को सुखी बनाने हेतु ही है। उनकी सेवा ही उसके जीवन का स्वभाव है।

9 प्रेमाग्नि में भोग मोक्ष की इहलोक पररलोक की पाँच प्रकार के मुक्तियों की, सारी कामना, संसार की सारी आसक्तियां और ममताएं सर्वथा जलकर भस्म हो जाती है।

10 प्राण प्रियतम प्रभु को समस्त आचार विचार अर्पण करके नित्य निरन्तर उनके मधुर स्मरण को ही अपना जीवन बना लेते है। न कोई कामनापूर्ति न कोई गुणजनित होने से उनका यह पवित्र प्रेम सदा ही बढ़ता जाता है। उनके द्वारा सर्वस्व का त्याग सहज स्वाभाविक ही हो जाता है। सूक्ष्मतर रूप से नित्य निरन्तर अनुभूति होती रहती है। तार उसका कभी टूटता ही नहीं।

11 मिलन और वियोग नित्य नूतन रसवृद्धि में हेतु, होते है। बुद्धि मन प्राण और इन्द्रियाँ निरन्तर परम् प्रियतम के साथ जुड़े रहते है। वह केवल प्रेम की चर्चा सुनता है, प्रेम का ही मनन करता है, प्रेम में ही सन्तुष्ट रहता है और प्रेम में ही नित्य रमण करता है। प्रियतम के सुख अभिलाषा के अतिरिक्त अपनी कोई चिंता नहीं।

12 परमत्यागमय पवित्र प्रेम अंत में जिस स्वरूप को प्राप्त होता है, उसे महाभाव कहा गया है। इसके उदय होने पर क्षणभर भी प्रियतम का वियोग नहीं होता। आत्मनिवेदन की पराकाष्ठा ज्योतिस्वरूपा प्रेमरूपा शरीर रूपी श्रीराधा इसी भाव की विराट धारा है, प्रत्यक्ष मूर्ति है।इनका मिलन सुख और वियोगव्यथा दोनों ही अतुलनीय और अनुपमेय है।

13 वेणुधर ! तुम्हारे वियोग अदर्शन से राधा की दशा आज कैसी हो रही है! उनके नेत्रों से जल की वर्षा हो रही है कि उससे यमुनाजी का जल बढ़कर दूना हो गया है। उनके शरीर से इस प्रकार पसीना झर रहा है जैसे चांदनी रात में चन्द्रकान्तमणि पसीजकर रस बहाने लगती है। उनका शरीर भी चन्द्रकान्त मणि की भाँति ही निश्चेष्ट हो गई है उनका वर्ण भी उस मणि के सदृश पीला पड़ गया है। वाणी रुक रुककर निकलती है और स्वर भंग हो गया है। उनका सर्वांग कदम्ब के केसर की भाँति पुलकित हो रहा है। भयंकर आँधी पानी में जैसे केले का वृक्ष काँपकर पृथ्वी पर गिर जाता है, वैसे ही उनकी अंगलता भूमि पर गिर पड़ी है।

।।श्रीराधा माधव चिन्तन से।।

1 चिरकाल से मलिना माया के मोहवश काम को ही प्रेम समझ बैठे है, इसलिये प्रेम हमसे छिप गया है।

2 उनके मधुर चिन्तन के प्रभाव से जगत के समस्त रस, नीरस कटु और त्याज्य हो जायेंगे। सुप्त प्रेम को जगाकर हमें उनके दिव्य दर्शन करायेंगे।

3 वस्तुतः त्याग ही प्रेम का आधार है। प्रेम में प्रेमास्पद से कुछ पाने की आशा आकांक्षा नहीं रहती।

4 यहाँ तो देना ही देना पड़ता है, देह मन प्राण ले लो।धन ऐश्वर्य समृद्धि ले लो, मान यश प्रतिष्ठा ले लो। अर्थ धर्म काम मोक्ष ले लो। जो चाहे सो ले लो। आत्मविसर्जन ही प्रेम का मूलमन्त्र है।

5 प्रेमास्पद का हित और सुख ही प्रेमी का परमसुख है। बातों से नहीं, इसके लिये त्याग चाहिये। जब उसकी प्रत्येक क्रिया में त्याग की अनुभूति होगी, तब उसका (प्रेम का) पता लगेगा।

6 प्रेम का तो आचरण होता है, वह किया नहीं जाता बरबस होता है। उसका चित्त तो प्रेमास्पद में सहज ही लगा है।

7 जो उनको चाहते है, उन्हें मन से उनके अतिरिक्त सभी को निकाल देना पड़ता है। वे दूसरे के साथ रहना पसन्द नहीं करते।

8 प्रेम में,होने पर भी न होने की अनुभूति होती है। नित्य संयोग में वियोग की अनुभूति प्रेम ही कराता है। और यह वियोग समस्त योगों का सिरमौर होता है।

9 उन पर जो गुस्सा आता है, यह भी तो प्रेम का ही एक अंग है। वस्तुतः लड़ाइयाँ प्रार्थना से बहुत ऊँचे पर हुआ करती है। गुस्सा प्रेम का एक अंग है।

10 यदि तरसाने में ही उन्हें सुख मिलता है तो बड़ी ख़ुशी की बात है। वे छिप छिपकर यों ही झाँका करते है, वे पकड़ में न आकर, स्वयं फंसने के लिये फंसाया करते है। और अपना सर्वस्व देने के लिये ही लिया करते है।

11 आत्मा ही सब प्राणियों के लिये प्रियतम है। यह सारा चराचर जगत [पति पत्नी पुत्र सम्बन्धी भूमि भवन साम्राज्य सुख्याति आदि] आत्मा के सुख के लिये ही प्रिय हुआ करता है।

12 वियोग तड़प दुःख से बढ़कर उनके प्रेम की प्राप्ति का और क्या उपाय हो सकता है? उन्हें क्षण भर के लिये भी भुलाया नहीँ जा सकता, हृदय मन्दिर से अलग नहीं किया जा सकता। वह उनके दर्शन चिन्तन मनन स्मरण में यन्त्र की भांति सदा कार्य करता रहेगा। अनन्यचेता नित्य स्मरण में लगे प्रेमी को वे सहज ही प्राप्त है। अंतर्दृष्टि से वे कभी ओझल हो ही नहीं सकते। सूरदास जी ने कहा है-हाथ छुड़ाये जात हौ, निबल जानि कै मोहि। हिरदै तै जब जाहुगे, सबल बंदोंगों तोहि। जब क्षण भर की प्रियतम की स्मृति नहीं हटती, तब हिसाब किताब, अमुक समय तक, अमुक संख्या, अमुक दिन, दिनों तक कहाँ रह जाती है? माँ सीता का कहना है-नाम पाहरु दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट। लोचन निज पद जन्नीत जाहिं प्रान केहिं बाट। प्राण कैद हो गये, आठों पहर आपके ध्यान में किवाड़ लगे रहते है। आपकी माधुरी मूर्ति मन के नेत्रों से अलग होती ही नही। कभी किवाड़ खोले भी जाय, तो बाहर रात दिन आपके नाम का पहरा लगा रहता है। क्षण भर के लिये आपके नाम से, मन को विराम नही। प्राण कैसे निकले? प्रियतम का चिन्ह ही हृदय में हर्ष पैदा कर देता है। भरतजी श्रीराम के पदचिन्ह कुशशय्या के तृणों को देखकर वहां की धूलि को और तृणों को सिर माथे पर चढ़ाने लगते है। जब मन में उनके मन मिल जाते है, तो स्मरण मनन के अभ्यास की आवश्यकता नही रह जाती। नख तै सिखा लौ सब स्याममयी बाम भई, बाहर और भीतर न दूजौ (देव) लेखियै।

13 अप्राप्त की प्राप्ति को और प्राप्त के अभाव को कहते है वियोग। इस वियोगमय योग के आश्रय में रहिये। नित्य तड़प और जलन में ही अनन्त शान्ति का अनुभव करना, यही तो प्रेमास्पद की ईष्ट की प्रेमोपासना है। जगत के समस्त प्रियतर और प्रिय पदार्थ परमप्रियतम के चरणों पर सहज ही न्योछावर कर दिये जाते है। प्रेम का स्वभाव है, तत्सुखसुखित्वम। सरग न चाहै, अपबरग न चाहै। सुनौ, भुक्ति मुक्ति दोउ सौं बिरक्ति उर आनै हम।। एक ब्रजचन्द कृपा मन्द मुसकानि ही मैं, लोक परलोक कौ अनंद जिय जानैं हम । जाके या वियोग, दुखहुँ मैं सुख ऐसौ कछू। जाहि पाइ ब्रम्ह सुखहू मैं दुःख जानै हम।।
।। श्रीराधामाधव चिन्तन से ।।

1 हर समय मन को घुमा घुमा कर इष्ट, भगवान के विविध रूपों में विविध प्रकार से दर्शन में लगाने से मन एक में इष्ट में प्रतिष्ठित हो जाता है।

2 सत्य बोलने से मन की मलिनता दूर होकर मन रूपी दर्पण में इष्ट, भगवान के स्वरूप का प्रतिबिंब साफ पड़ने लगता है।

3 जैसे जैसे मन में वासनाएँ उठती जायँ, वैसे वैसे ही उसी समय उनको काटते जाने से, इष्ट को सौपते रहने से, ऐसे अभ्यास करते करते वासनाएँ कम उठती है, नष्ट हो जाती है।

4 इष्ट प्रेम से जितना मन वश में हो जाता है, उतना किसी साधन से नहीं होता। जब तक नयनों से जलधारा न चले, प्रेम नहीं कहा जा सकता।

5 आत्मभाव से इष्ट का रूप देखकर चीटीं कुत्ते मछली गौ बन्दर चिड़ियां कबूतर आदि पशु पक्षियों जंतुओं को अन्न अवश्य देते रहना चाहिए।

6 जब नाम रूप सब इष्ट नारायण ही है, तब विभिन्न रूपों में इष्ट से भगवान से द्वेष कैसे हो सकता है? अपने एक इष्टदेव को अन्य मंदिरों में जाकर

अलग रूप में देखकर उन्हें प्रणाम करना चाहिए। और इष्ट के सिवा कोई दूसरा कोई भिन्न मन से देखना दिखना न चाहिए।

7 जिस स्थिति में समस्त प्रपंच ज्ञानी पुरुष के लिए आत्मा रूपी इष्ट ही हो जाता है, उस स्थिति में शोक व मोह कैसे सम्भव है?

8 गुरु इष्ट की कृपा से सब साधन होते है, सदा अन्तर के आत्मरूप से वे अनुभव कराते रहते है। यह देह मन जब दयालु इष्ट के चरणों में अर्पण हो चुकी है, दास जानकर वे अवश्य कृपा करते ही है।

9 न मोक्ष, न चौदह लोक राज्य, न ज्ञान, न भक्ति की इच्छा है यह आपके अनन्तव्यापी रूप का आशिक हो जाय। केवल इतना ही हो, क्या? तुम मुझे देखा करो, मैं तुझे देखा करूँ। मैं मैं न रहूँ, तुम तुम ही रहो।
।।परमहंस नारायणदास जी।।

1 प्रेम अपने से होता है भिन्न से नहीं, गहराई से देखे, अपने समान और कोई प्रिय नहीं, अत्यंत प्रिय अपने में ही, प्रेम पात्र का अनुभव करना ही सच्चा सम्बन्ध है। प्रेमी के सिवाय संसार में प्रेम पात्र को स्थान नहीं मिलता अतः प्रेमी से अधिक प्रेमपात्र को प्रेमी की आवश्यकता होती है।

2 अपनत्व साधन है, प्रेम साध्य है। प्रेमी अपनत्व के बल पर प्रेमपात्र को पाता है। त्याग व प्रेम दोनों एक ही वस्तु है। प्रेम किसी व्यक्ति से नहीं होता, प्रेम जो संसारातीत है जो शरीर से परे है-उससे होता है। प्रेमास्पद / प्रेमपात्र के आते ही प्रेमी की सत्ता का अंत हो जाता है, उस प्रेमी के रहते प्रेमपात्र आ नहीं पाता। अर्थात प्रेम की प्रथम व अंतिम भेंट है-अहं और मम को अर्पित करना। त्याग रूपी भूमि में ही प्रेम रूपी वृक्ष उत्पन्न होता है अर्थात त्याग का फल प्रेम ही है। प्रेम के साम्राज्य में प्रेमास्पद से भिन्न कुछ हुआ ही नहीं।

3 प्रीति का उदय तभी होता है जब अनेक विश्वास एक विश्वास में, अनेक सम्बन्ध एक सम्बन्ध में,अनेक चिन्तन एक चिन्तन में जब विलीन हो जाते है। जिनके सम्बन्ध मात्र में ही देहाभिमान गल जाता है उनकी प्रेम की प्राप्ति में भला देहादि की क्या अपेक्षा होगी? प्रेम रूपी धन को अधिक से अधिक छुपाकर रखना चाहिए, यहां तक मन इन्द्रियों को भी पता न चले, कहीं ये निर्मल प्रेम को गंदा न कर दे।

4 प्रेम का उदय होने पर एक ही दो मालूम होते है। प्रीति एक में दो और दो में एक का दर्शन कराती है, या यों कहें यह एक या दो की गणना से विलक्षण है, इसमें भेद और भिन्नता की तो गन्ध ही नहीं है। यह ऐसी निर्मल धारा है जो किसी में आबद्ध नहीं रहती अपितु सबको पार करती हुई अनन्त में ही समाहित हो जाती है। प्रेम प्रेमास्पद की ही अभिव्यक्ति है और कुछ नहीं। प्रेम में निर्दोषिता व निर्दोषिता में प्रेम ओत प्रोत है। आरम्भ चाहे इसका किसी प्रतीक में हो स्वभाव से प्रेम विभु हो जाता है।

5 जिसे भोग व मोक्ष नहीं भाते, उसे ही यह प्रीति मिलती है। आसक्ति का अत्यंत अभाव हुए बिना अनुरक्ति के साम्राज्य में प्रवेश ही नहीं मिलता। जिसे कुछ नहीं चाहिए उसी को वे प्रेमतत्व प्रदान करते है। जहाँ प्रेम प्रकट होता है वहां इन्द्रियों के द्वार बंद हो जाते है। प्रेमी का मन इन्द्रियाँ आदि कुछ भी भौतिक न रहकर चिन्मय हो जाते है, उसके प्रत्येक प्रवृत्ति में प्रीति आ जाती है।

6 जिसे कुछ नहीं चाहिए, जिसके पास अपना करके कुछ नहीं है-वही प्रेम दे सकता है। जिसके पास सब कुछ है वही केवल प्रेम से प्रसन्न हो सकता है। तो प्रेम का पात्र कौन होगा? जिसके पास सब कुछ हो और जिसे कुछ नहीं चाहिए। प्रेम देने के लिए दो बातें जरूरी हो गयीं-मेरे पास मेरा करके कुछ नहीं है और मुझे कुछ नहीं चाहिए। तीसरी बात, जिसको प्रेम देना है, वही मेरा अपना है और कोई नहीं है। प्रेम इस बात

पर होता है कि वह अपना है, वह कैसा है इस पर नहीं होता।

7 प्रीति स्वरूप से दिव्य चिन्मय तथा अनन्त है, ऐसा अलौकिक तत्व है जो वियोग में मिलन व मिलन में वियोग का भास कराता है। इस रहस्य को वे ही प्रेमी जानते है जो भक्ति मुक्ति की दासता से मुक्त है।

8 प्रेम का यह स्वभाव है कि वह प्रेमी का सर्वस्व हर लेता है, बीच में जो दूरी थी मिट जाती है अर्थात प्रेमी भी गलकर प्रेम ही हो जाता है। अतः इसके समान और कोई अलौकिक महानतत्व नहीं है।

9 प्रेमी का स्नान क्या है- रोना। प्रेमी का ध्यान क्या है-अपने आप को मिटा देना। प्रेमी की पूजा क्या है-सच्ची व्याकुलता। प्रेम का भोजन क्या है-हर्ष और शोक। प्रेमी निवास कहाँ करता है-जहां और कोई न हो। प्रेमी का पाठ क्या है-मौन।

।।क्रांतिकारी संतवाणी से।।

1 हर वस्तु ऊर्जा है, आप ऊर्जा के चुम्बक है, हम स्वयं को विदयुत ऊर्जा (आत्मा) से आवेशित करके हर पदार्थ पा लेते है।

2 ब्रम्हांड विचार से प्रकट होता है, हम न सिर्फ अपने तकदीर के, बल्कि ब्रम्हांड के भी निर्माता है।

3 यह संकल्प है, मैं पूर्ण, शक्तिशाली, प्रेमपूर्ण, सद्भावपूर्ण और आदर्श हूँ। मैं हर दिन ऊर्जावान हूँ। मैं खुश हूँ, स्वस्थ हूँ। मैं स्वयं तकदीर का निर्माता हूँ।

4 शरीर और भौतिक अस्तित्व तो सिर्फ हमारे आत्मा का पात्र है। मैं आत्मा हूँ। आपकी आत्मा इतनी बड़ी है कि, आप अनन्तव्यापी जीवन है।

5 आप ईश्वर का ऐसा मानवीय रूप है जिसे आदर्श बनाया जा सकता है।

।।रहस्य से।।

1 हम कानों से कल्याण सुनें, आंखों से कल्याण को देखें, सुदृढ़ अंगों व देह के द्वारा आपकी स्तुति करते रहें।

2 जैसे पूजा के लिए धूप दीप गन्ध नैवेद्य प्रदक्षिणा नमस्कार आदि अपेक्षित होती है वैसे ही परब्रम्ह की प्राप्ति आगे बताई वस्तुओं / बातों का साधन कर लेना ही तद तद धूप दीप आदि है, इन्हीं से ब्रम्ह दृष्टिगोचर हो जाता है।

3 ब्रम्ह व आभ्यांतर कारणों की रूप ग्रहणयोग्यता ही आव्हान है।

4 आभ्यांतर व बाह्य कारणों का एकरूपविषयों का ग्रहण करना ही आसन है।

5 केवलकुम्भक से सुषुम्ना प्रवेश के अनन्तर मूलाधार व भौहों के मध्य स्थित प्रत्येक और पर-नाम के लाल तथा सफेद पदों का एकीकरण ही पाद्य है।

6 ब्रम्हाभिन्न सदोज्वल दामोदानन्द रूप से हमेशा स्थिति, अर्ध्य है।

7 स्वयं स्वच्छ व स्वतः सिद्ध हो, यही आचमनी है।

8 चिदरूपचन्द्रमयी के सर्वाङ्गों का स्मरण हो, यही स्नान है।

9 चिदअग्निस्वरूप परमात्मक शक्ति का स्फुरण / प्रकाशित होना, वस्त्र है।

10 इच्छा आदि तीन शक्तियों के त्रिगुणात्मक होने से प्रत्येक के जो सत्ताईस भेद तथा इच्छा ज्ञान व क्रिया शक्ति स्वरूप ब्रम्हग्रंथि भद्रससत्ता नाड़ी सुषुम्ना यही ब्रम्हसूत्र है।

11 अपने / आत्मा से भिन्न वस्तु का स्मरण न करना ही आभूषण है।

12 स्वच्छ निर्मल स्वरूप जो ब्रम्ह उससे भिन्न कुछ नहीं है यही स्मरण करना भिन्न है।

13 सब विषयों का मन की स्थिरता से अनुसन्धान ही फूल है, और उन्हीं को स्वीकार करना धूप है।

14 वाख्वात्मक / वायुयुक्त (आंतरिक) योग के समय प्राण अपान की एकता से सुषुम्ना में सत-चित-आनन्द उल्कारूप जो प्रकाश है, आकाश देह है, वही दीप है।

15 अपने/आत्मा से भिन्न सभी विषयों में मन की गति का आना जाना रुकजाना ही, नैवेद्य है।

16 तीनों अवस्थाओं (जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति) का एकीकरण ही, पान है।

17 मूलाधार से ब्रम्हरन्ध्र व ब्रम्हरन्ध्र से मूलाधार पर्यन्त बार बार गतागत / आनाजाना ही, प्रदक्षिणा है।

18 चतुर्थी अवस्था/तुर्या में स्थित रहना ही, नमस्कार है।

19 आत्मा को चैतन्य मानकर देह को जड़ मानकर स्थित रहना ही, बलि है।

20 अपनी/आत्मा सत्वस्वरूप है, यह निश्चित करके कर्तव्य, अकर्तव्य, उदासीनता, नित्यात्मक विलासन आत्म चिन्तनासक्ति ही यज्ञ / होम है।

21 स्वयं उस परब्रम्ह की पादुकाओं में डूबे रहना ही परिपूर्ण, ध्यान है।

22 इस तरह तीन मुहूर्त भी, भावना जो रहता है, वह जीवन्मुक्त होता है। वह ब्रम्ह जैसे स्वरूप का हो जाता है, चाहे हुए काम बिना यत्न के ही सिद्ध हो जाते है, वही शिवयोगी कहलाता है।

।।भावनोपनिषद से।।

1 काम क्रोध का वेग सहने वाले व्यक्ति को योगी कहा गया है, परन्तु संकल्पों का त्याग किये बिना कोई भी योगी नहीं होता।

2 काम क्रोध के वेग को रोकना अच्छा होते हुए भी, साधक के लिए इनके संकल्प को उत्पन्न न होने देना ही उचित है। संकल्प उत्पन्न होने के बाद वेग आता है अन्तःकरण में अशांति, उत्तेजना, संघर्ष आदि होने लगते है जिनके रहते वह सुखी नहीं कहा जा सकता। वेग आने के बाद काम क्रोध को तब

रोकना कठिन हो जाता है, अतः संकल्प न होने देने में सुखी होना बताया गया है।

3 काम क्रोध के संकल्प को रोकने का उपाय है-अपने में काम क्रोध को न मानना। कारण हम / स्वयं रहनेवाले है, काम क्रोध आने जाने वाले है।

4 दूसरी बात हम उन्हें अलग रूप से जानते है, जिस वस्तु को हम अलगरूप से जानते है, वह अपने में नहीं होती। इनको अपने में मानना मानो इनको निमंत्रण देना है।

5 भगवान ने काम क्रोध को प्रकृति के विकार बताये है, अतः ये प्रकृति में ही होते है, हमारा स्वरूप निर्विकार है।

6 साधन / अभ्यास करने से ये कम होते है, जो चीज कम होने वाली होती है, वह मिटने वाली होती है। जिस साधन से ये कम होते है, उसी साधन से ये मिट भी जाते है। ये सूक्ष्म रूप से भी हों, तो जीवन्मुक्त अपने को मान लेना भ्रम ही है।

7 पहले वे जल्दी आते थे साधन / अभ्यास से ये उतने जल्दी नहीं आते।

8 पहले जितने वेग से आते थे, अब उतने वेग से नहीं आते। पहले जितनी देर तक ठहरते थे, अब उतनी देर तक नहीं ठहरते।

9 अन्तःकरण शुद्ध होने से थोड़ी सी भी मात्रा साधक को अधिक प्रतीत होते है। असत का सम्बन्ध सर्वथा न रहने से मन स्वतः वश में रहता है। ध्यानयोग में एकमात्र परमात्मा का ही चिन्तन होने से असत / बाह्यपदार्थों से विमुखता हो जाती है।

।।स्वामी रामसुखदासजी।।

1 आत्मा की दृष्टि से सभी वस्तुओं को देखिये, दूसरों की आंखों से नहीं।

2 वे दुःख भोगते है निजात्मा की अज्ञानता के कारण, जिससे उन्हें अपना

सत्य स्वरूप भूल जाता है। सारे संसार में आप सबसे महान आत्मा हो। अपनी प्रभुता का, दिव्यता का साक्षात्कार करें।

3 संसार में कोई भी व्यक्ति, किसी लौकिक पदार्थ या व्यक्ति में चित्त लगायेगा, उसे अवश्य कष्ट भुगतना पड़ेगा।

4 सत्य के दृढ़ दुर्ग में शरण लो, बाह्य वस्तुओं धन संम्पत्तियों की अपेक्षा, सत्य में अधिक विश्वास रखो। ईश्वरत्व में दृढ़ विश्वास रखो, फिर तुम सुरक्षित हो।

5 प्रतिद्वंद्विता की अपेक्षा सहयोग अधिक अच्छा है।

6 अंतरात्मा के आदेशानुसार कर्म करना ही परमात्मा का आज्ञा पालन है।

7 सब पर विजय पाने के लिए हमें सब कुछ दे देना पड़ता है।

8 जीवन और व्यवहार की एकरूपता धर्म है। मानसिक एकता दर्शन है।

9 शक्ति का गलत दिशा में प्रयोग ही पाप है।

10 विजय की अपेक्षा सत्य को अधिक प्रेम करो।

11 स्वार्थपूर्ण व्यक्तित्व के सभी बंधनों का त्याग करो, सबमें विभु का दर्शन करो।

।।स्वामी रामतीर्थ।।

1 गुरु के आदेश का पालन परमार्थ का प्रमुख लक्षण है। सद्गुरु जो सार असार की बातें बतलाते है, उन्हें श्रद्धा पूर्वक ग्रहण करना चाहिए।

2 जब दृष्टा का दृष्टापन नष्ट हो जाता है, तभी मैं का लोप होता है, मैं पन का निःशेष होना ही अनुभव की पहचान है।

3 है और नहीं दोनों का नाश होने पर शून्यावस्था अर्थात स्वरूपावस्था प्राप्त होती है। इसके पश्चात शुद्ध ज्ञान से जो शून्यावस्था से भी परे है,

उसका समाधान हो जाता है और परमात्म स्वरूप के साध एकाकार हो जाने से उसे अभिन्नता की सहज स्थिति प्राप्त हो जाती है।

4 नाम रूपात्मक सारी सृष्टि भ्रम रूप है और नाम रूपातीत ब्रम्ह केवल अनुभव की वस्तु है। वह सदा सर्वदा सर्वत्र विद्यमान है।

5 ब्रम्ह और माया दोनों का एक साथ निरीक्षण करने वाली सर्व साक्षी अवस्था को तुरीया कहते है, जहां जहां मान का लोप होकर ज्ञान का भी भान नहीं रहता। जहां अज्ञान ज्ञान विज्ञान कुछ भी शेष नहीं रहता वह है, परब्रम्ह विमल ब्रम्ह। वह शाश्वत निर्विकल्प और योगी जनों का एकांत विश्राम है।

6 वृत्ति रहित ज्ञान ही सच्चा समाधान है, जहां माया और ब्रम्ह का अनुसन्धान छूट जाता है। ब्रम्ह कल्पनातीत निर्विकल्प है। ब्रम्ह मन बुद्धि के उस पार है।

7 ब्रम्ह की शुद्ध कल्पना से माया की मिथ्या कल्पना सहज ही नष्ट हो जाती है। कल्पना से कल्पना का विनाश हो जाता है। जैसे बाण से ही बाण का प्रतिकार किया जाता है, वैसे ही निर्गुण की शुद्ध कल्पना से सगुण द्वैत की अशुद्ध कल्पना का प्रतिकार हो जाता है। अतः दृढ़ निश्चय के साथ अखण्ड श्रवण मनन करते रहना चाहिए और जिसे द्वैत का आभास हो रहा है, वह मैं नहीं है, इसका सदैव स्मरण रखना चाहिए।

।।श्रीदासबोध से।।

1 ज्ञानधर्म के विषय में शांतिमय भगवान के चरण में शान्तिधाम में पहुँचने का उपाय बताइए जिससे उनको पुकार कर उन्नत हो सकूँ और उनके स्नेहमय गोद में आश्रय पा सकूँ।ऐसा उपदेश देकर, इस अशांति के देश से उद्धार कीजिये।

2 अनाथशरण करुणामय भगवान को पुकारने से सब ज्वालाओं से मुक्त हो जाओगे। एक स्वर से सब कहो, हे भगवान हमें बताइए किस प्रकार से पुकारने पर हम श्रीचरण में पहुँच सकेंगे, और आपके शांतिमय अंक में स्थान पा सकेंगे। कृपया हमें आश्रय दीजिए। उनके श्रीचरणों में तुम्हें स्थान मिलेगा।

3 पृथ्वी पर जितने दिन रहा जाय उतना ही लोग कुसंग और कुकार्य में लिप्त हो जाते है। भगवान का नामगान ही जीवन का महा औषध है। क्या मृत्यु को समय असमय का विचार है? हम लोग अनन्तधाम के मुक्त जीव है। हमें मृत्यु भय नहीं है। हा मृत्यु! तुम कितनी शांतिमय हो। लोग न समझकर ही तुमसे डरते है। मृत्यु के पूर्व जो आत्मा ऊर्ध्वगमन करती है उसके साथ देह की समानवायु का आकर्षण रहता है। तुम जिस प्रकार मृत्यु की बात सोच रहे हो, मृत्यु वैसा नहीं है। जीव की मृत्यु हो जाने पर ठीक समय पर लौट आकर वह सुक्ष्मदेह में अवस्थान करता है। यथार्थ ज्ञानी मृत्यु भय से नहीं डरते, वरना आनन्द ही प्रकाश करते है। क्योंकि जो देह ज्ञानोलोचना में नाना प्रकार से बाधाएं देती थी, जिसकी इंद्रियों की चंचलता मन को स्थिर होने नहीं देती थी, वही देह आत्मा को स्पर्श नहीं कर सकती, यह भी उसके लिए आनन्द का विषय है। जब भी प्रभु कहते या स्मरण करते है तभी कार्य यह सिद्ध होता है।

4 भगवान को पुकारो, वे ही विपत्ति से उद्धार करेंगे। केवल ईश्वरचिन्ता करके मन का अन्धकार दूर करो। यह होने पर ज्ञान का प्रकाश होगा और पुण्य की ज्योति देख सकोगे। तुम्हारी आत्मा निर्मल होगी, प्राण में शांति आयेगी।

5 संयम में रहकर ईश्वर चिंता करो, इसी से आशा पूर्ण होगी।

6 अब मेरी कोई वासना कामना नहीं है, अब सब कुछ स्वप्नवत् प्रतीत होता है, सब विषयों से अतीत हो गया हूँ।

7 अंतिम समय पर्यन्त समझ न पाया मेरी मृत्यु इतनी निकट है, जीने की आशा बनी रही। आत्मा ज्योतिर्मय है। मैं आत्महारा हो गया हूँ। पहले माया का उच्छेद करने की चेष्टा की पर कर न सका। भगवान को पुकारा कि माया बन्धन कट जाय, उन्होंने प्रार्थना सुन ली है, मैं अत्यंत शीघ्र ही अब सब मायामोह, स्नेह प्रेमादि के सम्बन्ध बन्धनों से मुक्त हो गया हूँ। अब देख रहा हूँ इससे अधिक शांति और है ही नहीं। हे भगवान, तुम्हारी लीला अपार है।

8 इस मृत्यु ने ही मुझे मुक्ति दी है। मृत्यु के बाद सब समाप्त नहीं होता। आत्मा रहती है। हे भगवान तुम्हारी क्या लीला है। लोग शोकताप पाकर मृत्यु की ही कामना करते है, मृत्युशय्या पर पड़े हुए कितने कष्ट से आर्तनाद करते है किन्तु भूलकर भी भगवान का नाम नहीं लेते। समझते है की मृत्यु के बाद सब दुःख दूर हो जायेगा। परन्तु मृत्यु के बाद क्या है?सो जानते नहीं।

9 हे जीवगण ! संसार के जाल में आबद्ध न रहो, मृत्यु की चिंता किसी को नहीं है, समय रहते रहते भगवान को पहचान लो। क्योंकि जब मृत्यु वेला निकट आयेगी तब किसी को पहचानने नहीं देगी। देह निस्तेज, चक्षु ज्योतिहीन और मुख वाकशून्य हो जायेगा। अभी से थोडा थोडा माया का बन्धन काट डालो। जिससे बन्धन छूट जाय। इसके लिए भगवान से प्रार्थना करो। ।।परलोक वार्ता से।।

1 मनुष्य मकड़ी की तरह जाल के ऊपर जाल तैयार करता है। जन्म मृत्यु के यंत्रणादायक घात प्रतिघात में मूढतावश इस जाल में अपने को अनन्त काल के लिए वह जड़ित रखना चाहता है।

2 वर्तमान जन्म में ही कर्मबन्धन शेष करना होगा। यह-अटूट संकल्प

लेकर आत्म शक्तिबल से विजित सेनापति की भांति मायाजाल को दोटूक फाड़ना होगा। या, अवरुद्ध सैन्यदल की तरह विश्वपिता के नाम में धरना देकर पड़े रहो-वे तुम्हारी व्यवस्था कर देंगे।

3 जन्मजन्मान्तरों के संस्कार ही बन्धन के कारण है मूल है। कर्म द्वारा बनते है कर्म द्वारा उनका नाश होता है।

4 पूर्वकृत कर्म व भाव को लेकर मनुष्य का चित्तपट ग्रामोफोन के रिकार्ड की तरह तैयार रहता है, अन्तर में स्मृति की अनुकूल हवा बहती रहती है, तब मन नीडिल का काम करते अनुरूप कर्म प्रेरणा देता है।

5 शुभ कर्म / आत्मकर्म / सत्कर्म करते करते जितने ही शुभ संस्कारों की वृद्धि होती है उतने ही अशुभ संस्कार दूर होते है।

6 अंत में जैसे अग्नि कूड़ा करकट को भस्म करके स्वयं बुझ जाती है, उसी तरह शुभ संस्कार भी लुप्त हो जाते है। (गुरुजी के शब्द थे एक काँटा से दूसरा काँटा निकालना, और दोनों को फेंक देना, सम्भवतः यही हो)।
।।मां आनन्दमयी।।

1 हे तृष्णा तू व्यर्थ ही रात दिन इधर उधर भटकती है, लोगों को छलती रहती है। तू हत्यारी, पापिनी, कोढिनी है। तेरे से भेंट होते ही व्यक्ति बन्धन में पड़ जाता है। तू जिस दिन मर जावेगी, तभी लोग मोक्ष की प्राप्ति करेंगे। तुझे और क्या कहूँ-हे तृष्णा अब तो तू संतोष कर ले और विदा हो जा।

2 इस तृष्णा ने तीनो लोकों का भक्षण कर लिया है, इसने सातों समुद्र का पानी पी लिया है। यह इधर उधर ताकती फिरती है,आंखें निकालकर प्राणियों को डराती है। यह दांत दिखाती है, जीभ दिखाती है,लम्बे समय से यह खा रही है, पर हे तृष्णा तू आज तक सन्तुष्ट नहीं हो सकी है।

3 काल ही संसार को पैदा करता है, काल ही उसे नष्ट कर देता है। काल आदमी को पकड़कर मिट्टी में मिला देता है, काल ही हराता है, काल ही चलाता है, काल ही गुर या सब कला सिखाता है। काल बुलाता है, काल वन व घाटी में आदमी को बुलाकर नष्ट कर देता है। यह काल तभी मिट सकता है जब मनुष्य ब्रम्ह विचार का ज्ञान सीख लें।

4 हे दुष्ट मानव, तू संसार में चार दिन रहकर चला जाता है। तू प्रत्येक वस्तु को मेरी मेरी कहता है, पर क्या तेरे कहने भर से ये सब तेरी हो जाती है। जैसे तेरे बाप, दादा सब कुछ यही छोड़कर चले गये वैसे ही तू भी पल भर में सब कुछ छोड़कर चला जावेगा और राख की ढेरी बन जावेगा। कोई भी वस्तु को तू साथ नहीं ले जा सकेगा, ये यही पड़ी रहेगी फिर इनको मेरी कहने की भूल क्यों करता है।

5 वे ही कान है, वे ही जीभ है, आंख और नाक भी पहले की ह तरह ही है, वैसे ही असंख्य रोमकूप है। यह देह जो निश्चेष्ट पड़ी है यह भी पहले की ही तरह है, पर एक वस्तु बिना सब खाली नजर आ रहे है, यह कोई नहीं जानता जो पक्षी बोल रहा था वह कहां उड़ गया। यह देह बोलती थी, चलती थी, पीती थी, खाती थी। लेते समय देते समय मानव प्रसन्न होता था और ताली दे देकर तान तोड़ता था। जिस देह से सब कर्म करता था, वह अब निश्चेष्ट पड़ी है। इस देह से खेल खेलने वाला न मालूम खेल खेलकर कहाँ चला गया।

6 स्नान वही अच्छा है जिससे मन के मैल हट जावे। सज्जन वही है जो रहस्य को खोल कर बता दे। गंजन / दमन करने वाला- वही अच्छा है जो इन्द्रियों का दमन करें।रंजन वही अच्छा है जो अबूझ बात को बता दे।पात्र वही अच्छा है जो रस से भरा हुआ हो।विद्वान वही अच्छा है जो किसी वाद विवाद में नहीं उलझे।व्यंजन वही अच्छा है जो रुचि को

बढ़ावे।और अंजन वही अच्छा जिसके लगने पर निरंजन दिखायी दे। ।।सुंदर विलास से।।

1 लगातार कोशिश माने कमिटमेंट और दृढ़ संकल्प, बढ़ते रहने में एक प्रकार का आनन्द मिलता है।चाहे हालात जितने भी बुरे हो, हिम्मत न हारो, डटे रहो।

2 चरित्र का बनना जन्म से शुरू होता है और मरने तक चलता रहता है।

3 चरित्र को सफलता की जरूरत नहीं, वह खुद ही सफलता है।

4 चरित्र सत्यनिष्ठा (ईमानदारी) निःस्वार्थ भाव आपसी समझ नम्रता धारणा साहस वफादारी और आदर जैसे गुणों का मिला जुला रूप है। यह चमत्कार है।

5 चरित्र का दौलत और जन्म से कोई वास्ता नहीं। यह असलियत है, दिखावा नहीं। यह निरालापन है जो जीत की बात देता है। यह स्वयं में एक ओहदा है।

6 यह विनम्रता है, अच्छी नजर है नेक मुस्कान है, मीठी जबान है, छिपा हुआ है, जो असत्य अन्याय के खिलाफ खड़ी रहती है। यह कमाल करती है।

7 यह आत्म अनुशासन है, ज्ञान है, उदार विजेता है (समझदार पराजित है) आत्म सन्तुष्टि है, यह नाम और यश नहीं है। यह दूसरों को बर्बाद कर अपना निर्माण नहीं करती। यह लिहाज रखना है।

8 चरित्र संयमित है, स्थायी है, आत्मविश्वासी है, यह सहज है, उदार है, यह निराकार है। यह सत्य है, यह आत्मधर्म है। यही जीवन है, निर्माण है, वैश्विक सामाजिक प्राण है।

9 चरित्र व्यक्ति के नैतिक मूल्यों विश्वासों और शख्सियत से मिलकर बनता है, जो हमारे व्यवहार और कार्यों में झलकता है। इसे दुनियाँ की बेशुमार दौलत से भी ज्यादा संभालकर रखने की जरूरत होती है।

10 जीतने के लिए चरित्र का होना जरूरी होता है। रुकावटों को पार करने के लिए चरित्र और बहुत सी मेहनत लगन की जरूरत होती है।

11 वोटों से नहीं, जनता की राय से नहीं, एक सच्चे लीडर के चरित्र से ही इतिहास की दिशा तय होती है।

12 अच्छे चरित्र वाले व्यक्ति जिम्मेदारियों को स्वीकार करते है। जिम्मेदारी जब हमारी दिली इच्छा बन जाती है तो उसमें संतोष और खुशी मिलती है।

13 आदर्श परिस्थितियां कभी नहीं होती और न कभी होंगी, कहीं भी पहुँचने के लिए। हमें कभी हवा के रुख के साथ और कभी खिलाफ नाव चलानी पड़ती है। आवश्यकता रहती है, सदैव चलते रहना। चरैवेति, चरैवेति।

।।संकलित।।

1 इस शरीर का रूप ॐ कार है। इस शरीर में क्रिया, साधना, अभ्यास करते करते जब मन अन्य दिशा में न जाकर स्थिर हो जाता है, तब अज्ञान अन्धकार को भेदकर स्वज्योति स्वरूप आत्माराम गुरु प्रकट होते है। मूलाधार स्थित शक्ति को जब हृदय में स्थिर करते है तो स्थित पद प्राप्त होता है। यह शक्ति मृणाल तन्तु के समान हृदय में गमनागमन करती है, तब इसका नाम हंस होता है।

2 स्थिर वायु जब भ्रू मध्य में जाती है, और बिंदु दिख पड़ता है तो उसका नाम रूप होता है। यही कूटस्थ रूप है। परावस्था में मैं ही सब हूँ ऐसा होने पर परम् ब्रम्ह का दर्शन होता है, वही अव्यक्त पद है। इस अवस्था में मन दूसरी ओर नहीं जाता।

3 इस परम् ब्रम्ह को अवलोकन कर जीव सर्व संग से विमुक्त होकर सबके भीतर उस एक ब्रम्ह को देखता है। इसी का नाम एकांत है। जब सबके भीतर एक का ही अनुभव हो गया, तो फिर और स्पृहा कैसे रहेगी? इस प्रकार जो इच्छारहित हो जाता है, वह शान्तिपद को पाता है।

4 हृदयग्रंथि को भेदकर सर्वब्रम्हमय जगत हो जाता है।वहाँ मनोवृति और इंद्रियवृति ब्रम्ह में लीन हो जाती है।ब्रम्ह के साथ मिलन होने पर परमात्मा में स्थिति होती है।जब सर्वदा सुषुम्ना में रहता है तभी सर्वब्रम्हमयजगत होता है।।।लाहिड़ी महाशय।।

1 शरीर की ओर देखने पर पाते है कि शरीर पंच भूतों से बना हुआ है। ब्रम्हा से लेकर कीट तक देह ही प्रधान है, प्राण को देखते है तो प्राण सभी में एक जैसा है। मन की ओर देखते है तो मन का स्वभाव एक सा पाते है, यह अज्ञानी है और संकल्प विकल्प करता रहता है।आत्मा के संबन्ध में विचार करने पर पाते है कि आत्मा एक दिखाई देती है। आत्मा को छोड़कर कोई दूसरा नहीं है।

2 जिसको धन धूल के समान लगता है, सांसारिक सुख कंटक के समान लगते है और भाग्य को भूल के समान मानता है और जो मित्रता को मृत्यु के समान मानता है। जिसे प्रभुता पाप के समान दिखायी देती है और मान सम्मान सांप जैसा दिखता है, बड़ाई जिसे बिच्छू के डंक की तरह दुःखदायी लगती है। स्त्री जिसे भुजंगनी जैसी लगती है, इंद्रलोक अग्नि के समान, ब्रम्हलोक विघ्न के समान, कीर्ति कलंक के समान, सिद्धियां ठगनी सी लगती है। जिसके मन कोई वासना या इच्छा नहीं रहती ऐसे लोग वंदनीय पूजा करने लायक होते है।

3 उस गुरु ने हमें इस बात का ज्ञान करा दिया कि वह एक अखंडित परमात्मा विश्व में व्यापक है, जो मूल में है वही शाखाओं में है, जब परमात्मा सब में व्याप्त तो किसी से भी राग द्वेष करना उस परमात्मा से राग द्वेष करना है। गुरु ने तत्वज्ञान का निर्धारण कर हमें उसे बता दिया, उन्होंने मन की अशुद्धियों को दूर कर हमें परम विशुद्ध बना दिया। ऐसे गुरु की मैं बलिहारी जाता हूँ।

4 उन गुरुदेव के न कोई मित्र है न कोई शत्रु है, ये सभी को समान मानते है, वे देह में ममत्व की भावना नहीं रखते है और आत्मा को ही परमेश्वर मानते है, उनके कभी भी कोई व्याधि और विपत्ति नहीं है और वे रात दिन सुख सागर में निमग्न रहते है। संसार की ऋद्धि और सिद्धियां हाथ जोड़े उनके आगे खड़ी रहती है, सभी उनके गुलाम है। हम ऐसे गुरु की अधिक प्रशंसा करने में असमर्थ है, उन्हें हमारा प्रणाम है।

5 गुरु के बिना ध्यान की साधना नहीं हो सकती है तथा न गुरु बिना ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, उनके बिना शील व संतोष का ग्रहण भी नहीं हो सकता। उनके बिना धर्मशास्त्रों का अभ्यास कठिन है और बुद्धि का प्रकाश असम्भव है, उनके दिव्य वचनों के बिना भ्रम का नाश नहीं होकर मन में सन्देह बना रहता है। गुरु के अभाव में व्यक्ति सत मार्ग ग्रहण नहीं कर सकता। जिस प्रकार अंधेरे में दर्पण में अपना मुँह जरा भी दिखायी नहीं देता है उसी प्रकार गुरु (सद्गुरु) के बिना आत्मज्ञान असम्भव है। ।।सुन्दरविलास से।।

1 जो बद्ध है उससे साधना नहीं होती, सिद्धि कहाँ से होगी?

2 नामांतर है संदेह भंजन। सद्गुरु कृपा करके पहले मुक्त कर देता है, अपने बल से। उसके बाद शिष्य शिष्य गुरुशक्ति के सहारे चलता है और लक्ष्य तक पहुंच जाता है, यही सिद्धि है।

3 पूर्व संस्कार व फलाकांक्षा वर्जित वर्तमान में स्थित व योगस्थ होकर जो कर्म किया जाता है, वही यथार्थ कर्म है। मनुष्य का लक्ष्य नित्य वर्तमान में रहना चाहिए।

4 गुरु का आदेश पालन साधारण बात नहीं, क्योंकि उसमें विचार नहीं उठना चाहिए और अपने भविष्य की चिंता नहीं करनी चाहिए। केवल आदेश पालन के प्रति ही लक्ष्य रहना चाहिए।

5 गुरु में पूर्ण विश्वास कर गुरु आदेश का जो बिना विचारे पालन कर सकता है, वही शिष्य है।शिष्य होना कठिन है, गुरुलाभ करना कठिन नहीं है। गुरुप्राप्ति का उपाय है, शिष्य बनना।

6 गुरु स्वयं भगवान है, गुरु की मृत्यु कभी नहीं होती। जो मृत्यु से उद्धार करने वाले है वही गुरु है, मनुष्य कभी गुरु नहीं होता।

।।मनीषी की लोकयात्रा से।।

१ साधक जब सुख दुख विषय वासना से विचलित नहीं होते, तब उन्हें समय का किंचित अभाव नहीं रहता।

२ साधक में दैवी भाव का विकास होने पर दोष दुर्बलता आदि अपने आप दूर हो जाते है।

३ ज्ञानाग्नि काम क्रोध आदि रिपुओं को जला देती है फिर अहम् भाव को भी नष्ट कर देती है।ज्ञान से इंद्रिय सुखों का उपशम होता है और आत्मानंद की प्राप्ति होती है। ज्ञानी तृप्त आवश्यकता रहित व वासनारहित होता है।

४ मनुष्य का उत्थान पतन भाव से होता है। हमारा स्वरूप चिन्मय सत्ता मात्र है, उसमें अहम नही है।

५ सारे कर्म ब्रम्ह की शक्ति से होते है, भोग्य वस्तु भी ब्रम्हमय है, वही कर्म, वही कर्मफलप्रदाता भी है।

६ साक्षी में कर्ता भोक्तापन नहीं होता है। मैं कर्ता भोक्ता भूतकाल में भी नहीं था, अब भी नहीं हूँ और भविष्य में भी नहीं रहूँगा।

७ मै साक्षी भाव से सबके हृदय में विराजमान हूँ, मैं आत्मा जिसका अनुभव करता हूँ, वही होकर करता हूँ। साक्षी स्वयं निर्दोष होता है, तटस्थ होता है।

८ मैं इतना नजदीक हूँ कि जिसको मैं जानता हूँ, वही होकर जानता हूँ।आत्म चिंत्य का चित्त चिंतारहित होता है, यह करना है यह नहीं करना है, इस दुराग्रह से वह मुक्त होता है। प्राप्य अप्राप्य की चिंता नहीं करता।

९ प्रेम ही एक ऐसी संपत्ति है जो सर्वश्रेष्ठ है, सतगुरु से प्रीति होने से वासना रूपी विष भाग जाते है। प्रेम घर तक पहुँचने के लिए मृत्यु भय को पार करना होगा।

१० सतत इस भाव को जाग्रत रखो कि जो कुछ भी करते हो सब उन्हीं का है, उन्हीं की सेवा है।

११ सौ कामों के बीच ध्यान आदि करना होगा, उसी से ठीक ठीक चित्त की प्रसन्नता होगी।

१२ अपने आपको अपने मन में विश्वास और अपने स्वामी सतगुरु इष्ट में विश्वास रखकर प्रसन्न रखो। इनमें लगन व विश्वास से दुख भी सुख बन जाता है।

१३ सब कुछ उन्हीं का आशीर्वाद है समझकर विचलित न होकर सहन कर लो, उन्हें पकड़े रहो, दुख मत करो, नैराश्य भाव न लाओ, वे सब देंगे। आनंदित रहो। परस्पर प्रेम स्नेह, भगवद्भक्ति विश्वास प्रेम स्थिरता पवित्रता प्रीति, यही सब जीवन का उद्देश्य है। मन की मलिनता दूर करना ही यथार्थ शुचिता है, उपाय अनासक्ति है। अंदर बाहर उनको अनुभव करते रहना ही जीवन की सार्थकता है।

।। संकलित।।

1 पूर्व जन्म के संस्कार और वासना के नष्ट होने पर कर्म में आनन्द आता है।

2 परमार्थ सरल है व्यवहार कठिन है, व्यवहार के समय भगवान को नहीं भूलना।

3 पहले अपने मन को सुधारो, पीछे दुनिया का सुधारना, तुम्हारे चरित्र से तुम्हारी अन्तरात्मा को संतोष हो तो मानना कि स्वभाव सुधरा है।

4 निरन्तर भजन करने से भक्तों का शरीर दिव्य बनता है, निर्भयता तभी आती है जब मनुष्य हमेशा भगवान के सानिध्य का अनुभव करता है। निर्गुण / ब्रम्ह में जब तक निष्ठा नहीं होवे तब तक मन के राग द्वेष नष्ट नहीं होते।

5 ध्यान में मन स्थिर न हो तो उसे मृत्यु का भय दिखाओ, इससे मन स्थिर होगा, मन को समझाओ।ध्यानावस्था में मन शुद्ध न हो तो आनन्द नहीं आता। ग्यारह इन्द्रियाँ जब एकाग्र होकर ध्यानस्थ हों तो साक्षात्कार होता है। ज्ञान वैराग्य के साथ भक्ति फले फूले तो ईश्वर का साक्षात्कार होता है।

6 तुम्हारें मन को तुम्हीं काबू में रख सकते हो, तृप्ति भोग में नहीं त्याग है,त्याग से अलौकिक शक्ति आती है, समझ बूझकर विषयों का स्वयं परित्याग करें तो आनन्द की प्राप्ति होती है। धीरे धीरे सयंम बढ़ाओ, तप का प्रथम अंग जीभ पर नियंत्रण करना है, तप से पाप नष्ट होते है, जीवन शुद्ध होता है।

7 ज्यादा जीने की व जल्दी मरने की इच्छा मत रखो। ज्ञानी मृत्यु टालने का नहीं मृत्यु सुधारने का प्रयत्न करते है।

8 जो अच्छे संस्कार मन में दृढ़ होते है, वे दूसरे जन्म और अंत समय में काम आते है।

9 मेरे लिए संसार क्या कहता है-यह जानने की इच्छा मत करो, मेरे लिए भगवान क्या कहते है, इस पर रोज विचार करो। जैसे अन्न का सेवन रोज करते हो वैसे ही बार बार सत्संग सेवन की भी आवश्यकता है।

10 किसी को भी भेद दृष्टि से मत देखो, भगवद दृष्टि से देखो। भगवान से दृष्टि मांगे, दृष्टि सुधरेगी तो सृष्टि सुधर जायगी। किसी के गुरु बनने की इच्छा मत रखो, गुरु बनना हो तो अपने मन के गुरु बनो।

11 ईश्वर की सलाह लो, ईश्वर के साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध जोड़ो, बिना सम्बन्ध मनुष्य भी बेलाग रहता है। ईश्वर को फल अर्पण करने से ईश्वर सब कुछ देता है।ईश्वर सब में है, ऐसा अनुभव करने की आदत डालो।

।। ज्ञान निर्झर से ।।

1 गुरु के आदेश का पालन परमार्थ का प्रमुख लक्षण है। सद्गुरु जो सार असार की बातें बतलाते है, उन्हें श्रद्धा पूर्वक ग्रहण करना चाहिए।

2 जब दृष्टा का दृष्टापन नष्ट हो जाता है, तभी मैं का लोप होता है, मैं पन का निःशेष होना ही अनुभव की पहचान है।

3 है और नहीं दोनों का नाश होने पर शून्यावस्था अर्थात स्वरूपावस्था प्राप्त होती है। इसके पश्चात शुद्ध ज्ञान से जो शून्यावस्था से भी परे है, उसका समाधान हो जाता है और परमात्म स्वरूप के साथ एकाकार हो जाने से उसे अभिन्नता की सहज स्थिति प्राप्त हो जाती है।

4 नाम रूपात्मक सारी सृष्टि भ्रम रूप है और नाम रूपातीत ब्रम्ह केवल अनुभव की वस्तु है। वह सदा सर्वदा सर्वत्र विद्यमान है।

5 ब्रम्ह और माया दोनों का एक साथ निरीक्षण करने वाली सर्व साक्षी अवस्था को तुरीया कहते है, जहां जहां मान का लोप होकर ज्ञान का भी

भान नहीं रहता। जहां अज्ञान ज्ञान विज्ञान कुछ भी शेष नहीं रहता वह है, परब्रम्ह विमल ब्रम्ह। वह शाश्वत निर्विकल्प और योगी जनों का एकांत विश्राम है।

6 वृत्ति रहित ज्ञान ही सच्चा समाधान है, जहां माया और ब्रम्ह का अनुसन्धान छूट जाता है। ब्रम्ह कल्पनातीत निर्विकल्प है। ब्रम्ह मन बुद्धि के उस पार है।

7 ब्रम्ह की शुद्ध कल्पना से माया की मिथ्या कल्पना सहज ही नष्ट हो जाती है। कल्पना से कल्पना का विनाश हो जाता है। जैसे बाण से ही बाण का प्रतिकार किया जाता है, वैसे ही निर्गुण की शुद्ध कल्पना से सगुण द्वैत की अशुद्ध कल्पना का प्रतिकार हो जाता है। अतः दृढ़ निश्चय के साथ अखण्ड श्रवण मनन करते रहना चाहिए और जिसे द्वैत का आभास हो रहा है, वह मैं नहीं है, इसका सदैव स्मरण रखना चाहिए।
।।श्रीदासबोध से।।

1 तुच्छ प्राणी भी बड़ों की शक्ति से ठीक काम करने में सक्षम हो जाते है। जैसे चंद्रमा के संसर्ग से चकोर पक्षी आग को भी खाकर पचा लेता है।

2 मनुष्य को बुरे दिनों में आशा नहीं छोड़नी चाहिए। जब मनुष्य का समय बुरा होता है तब लाख कोशिशें करने पर भी काम बिगड़ते ही रहते हैं, समय ठीक होने पर सब काम आसान हो जाते है।

3 कर्जदार, राजा, भिक्षुक और कामुक स्त्री न प्रार्थना सुनते है न किसी की धमकी से डरते है। ऐसे लोगों से चाहे जितनी विनती करो, वे नहीं मानेंगे। इनके गुण और कर्म ही इन पर हावी रहते हैं।

4 दुर्दिन आने पर किसी को भी किसी से मांगना पड़ सकता है। जैसे वनवास के समय लक्ष्मणजी स्वभाव के विपरीत पराशर ऋषि के पास भूख मिटाने, के लिए कंद-मूल और फल मांगने गये थे।

5 संगति का मनुष्य के जीवन में गहरा प्रभाव पड़ता है। जैसे केले के पत्ते पर गिरने वाली स्वाति नक्षत्र की जल की बूंद कपूर बन जाती है, वही सीप के मुख में मोती और सर्प के मुख में विष बन जाती है। बुरे व्यक्ति के साथ बैठने से बुरा प्रभाव और अच्छे व्यक्ति के साथ बैठने से अच्छा प्रभाव पड़ता है। भावनाएं तो जल की भाँति पवित्र होती है, परंतु संगति उसे दूषित भी, और उत्तम भी बना सकती है।

6 मनुष्य का तन क्षणभंगुर है, फिर भी वह सांसारिक आकर्षणों में उलझा रहता है। जैसे कागज के पुतले को पानी की दो बूंद ही गला देती है, उसी प्रकार मनुष्य के शरीर को - चिंता, रोग, जरा,और मृत्यु क्षण भर में समाप्त कर देती हैं। फिर भी मनुष्य अहंकार में फूला रहता है अतः अहंकार त्यागना ही श्रेष्ठ है।

7 एकनिष्ठ लोगों का जीवन धन्य होता है। जो लोग मछली की तरह अनन्य प्रेम करने वाले होते है, उनका जीवन ही सम्मान्य और गौरवमय है। भौंरे की तरह चंचल मन से सबका रस लेते घूमने वाले के जीवन को तो धिक्कार है।

8 अपने मन को ईश्वर के चरणों लगाना ही श्रेयस्कर है। मनुष्य का मन यदि ईश्वर चरणों में रत रहेगा तो शरीर कर्मफल के कारण होने वाले कष्टों से भी बचा रहेगा - जैसे अथाह जल में नाव उलट जाने पर रस्सी उसको बचा लेती है।

9 जैसे चौसर की गोट को गोट पर मारने से दोनों के सिर पर चोट लगती है

वैसे ही जीवन में सुख दुःख आते रहते है। दुःख से सुख का पता चलता है इसलिए दुःख से दुःखी नहीं होना चाहिए। जीवन है तब तक सुख दुःख मिलते रहते है।

।। रहिमजी।।

1 जिस चित्त में आनंद निरंतर डेरा डाले रहता है, उसमें संसार सम्बन्धी दुःखों की घुसपैठ हो ही नहीं सकती। उसकी बुद्धि तो स्वतः परमात्मा में ही लगी रहती है। स्व स्वरूप में स्थिर रहती है। स्थिर बुद्धि की यह शक्ति जिसके अंतःकरण में नहीं होती उसी पर, सत्व रज तम, तीनों गुणों के सहयोग से विषयों का जाल फैलता है।

2 जो आत्मज्ञान से संतुष्ट हो गया हो, जो परमानंद से पुष्ट हो गया हो, उसी को सच्चा स्थितप्रज्ञ समझना चाहिए। वह अहंकार के मद को दूर भगा देता है, समस्त कामनाओं का त्याग कर देता है। इतना ही नहीं, वह स्वयं ही विश्वरूप होकर विश्व में परमानंद से विचरण करते रहता है।

3 जिस ब्रम्ह वस्तु के विषय में प्राणिमात्र बेखटक होकर सोये रहते है। उस ब्रम्ह वस्तु के विषय में जो अनवरत जागता रहता है।और जिन विषयों के प्रति प्राणिमात्र जाग्रत रहकर यत्नशील रहते है, उन विषयों के प्रति जो अपनी आँखें पूरी तरह मूंद लेता है, वही वास्तव में स्थित प्रज्ञ होता है।

4 वर्षा काल में सारी नदियों का प्रवाह अपने तटों तक लबालब भरकर समुद्र में आ गिरता है, तो भी वह समुद्र लेशमात्र भी न बढ़ता है, न मर्यादा छोड़ता है। अथवा ग्रीष्म काल में समस्त नदियाँ सूख जाती है तब भी समुद्र में नाममात्र को भी कमी नहीं दिखती। इसी प्रकार स्थित प्रज्ञ को सारी रिद्धि सिद्धि मिल जाय तो भी उसकी बुद्धि क्षुब्ध नहीं होती अथवा न मिले तो उसे अधीरता नहीं होती। इस प्रकार रिद्धि सिद्धि आये

या चले जाय, पर स्थित प्रज्ञ उनके आने जाने का स्मरण तक नहीं करता। उसका अंतःकरण सदा परम सुख में निमग्न रहता है। जहाँ स्वर्ग सुख / साम्राज्य, की तनिक भी परवाह न हो, वहाँ इन साधारण रिद्धि सिद्धियों को कौन पूछता है!

।। श्री ज्ञानेश्वरी से।।

1 जो व्यक्ति समस्त, कामनाओं-वासनाओं का परित्याग कर निःस्पृह, निरंहकार, और ममत्व बुद्धि से शून्य होकर विचरण करते है, वे ही वास्तविक शांति प्राप्त करते है। कामना वासना के रहने पर चिरशांति का लाभ करना असम्भव है। फिर भगवत्कृपा के बिना उस कामना - वासना का समूल नष्ट होना भी सम्भव नहीं है।

2 उनने कृपा करके मेरी समस्त कामना - वासनाओं को बिल्कुल मिटा दिया है, कोई वासना अब नहीं रही। यह शरीर केवल उनकी इच्छा से, उन्हीं के कार्य के लिए बचा हुआ है, मैं तो शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव हूँ। अनेक समय तो मन में ही नहीं आता कि यह शरीर है, भी। फिर भी, प्रभु अपने अनेक कार्य इस शरीर से करा ले रहे है, इसलिए उन्होंने अब भी इसे रख छोड़ा है। किंतु मेरी कोई वासना नहीं है, समझा? मैं ब्रम्हानंद स्वरूप हूँ।

3 मैं जानता हूँ कि मैं अपनी देह, मन, प्राण आदि सब कुछ उनके श्रीचरणों में समर्पित कर चुका हूँ, सब उन्हीं का है। अब उनकी जैसी इच्छा होगी, करेंगे। और भी रखने की इच्छा होगी तो रखेंगे, अन्यथा जैसे भी बुलायेंगे, हम चल देंगे। मैं तो उनके लिए तैयार होकर बैठा हूँ। फिर भी इस शरीर की किसी प्रकार की उपेक्षा भी नहीं करता।

4 वे ही सब कुछ है!नाम भी उन्हीं का और शक्ति भी उन्हीं की। उन्हीं की इच्छा से उन्हीं का नाम / लेता हूँ, सबको देता हूँ। वे तो मेरे सर्वस्व ही है। तुम अपनी पूजा कृपा करके मुझसे करा लो, मैं तुम्हारी पूजा क्या जानूँ?

5 हे देव देव, तुम्हीं मेरी माता हो, तुम्हीं मेरे पिता हो, तुम्हीं बन्धु हो, तुम्हीं सखा हो, तुम्हीं विद्या हो, तुम्हीं ऐश्वर्य हो, तुम्हीं मेरे सर्वस्व हो।

6 जो जैसी प्रार्थना करते है, उसे वे उसी प्रकार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चतुर्वर्ग फल देते है। उनके नाम लेने से शांति मिलती है। उनकी सेवा करने से शांति मिलती है। उनका चिंतन करने से शांति मिलती है। उनकी आकर्षण शक्ति भी ऐसी है, लोग अपने आप ही उनकी ओर आकृष्ट होते है, भले ही किसी सम्प्रदाय के लोग हों। जिसने तन - मन - वचन से उनके श्रीचरणों में आश्रय लिया है, उसे फिर चिंता की कोई बात नहीं। वे उसकी सर्वतोभावेन रक्षा करेंगे। अहा, कितनी कृपा है!

7 जो उनके शरणागत होगा, वे उनका अवश्य उद्धार करेंगे। हृदय में अनुराग जगाओ, व्याकुलता बढ़ाओ,उन्हें खूब पुकारों। मन को तैयार करो, देखोगे समय होने पर, सब हो जायेगा। पहले हृदयपद्म को विकसित करने की चेष्टा करो। वे तो अंतर्यामी है, तब गुरु की कृपा आप ही उपस्थित हो जाएगी। वे तुम्हारे हृदय में रहते है, तुम्हारी अन्तरात्मा के रूप में। वे अंतर्यामी है, तुम्हारा भूत, भविष्य, वर्तमान सब जानकर ही उन्होंने तुम पर कृपा की है। तन - मन - वचन् से उनके शरणागत होकर पड़े रहो। अब तुम्हारे पैरों को कुमार्ग पर नहीं जाने देंगे। कोई भय नहीं है, जो तुमने अपनी दुष्कृतियों को सामने प्रकट किया है, इसी से जान लेना सब पाप नष्ट हो गये, उनके भक्त हो गये, उनके आश्रित और शरणागत हो गये। उनके प्रति आंतरिक आकर्षण चाहिए, उनके श्रीचरणों में आत्मनिवेदन चाहिए।

8 यदि तृण या लकड़ी से टुकड़े को यत्नपूर्वक रखा जाए, तो एक युग तक सुरक्षित रह सकता है। पर इस देह को कितनी भी यत्नपूर्वक रखो, इसका नाश अवश्यम्भावी है, फिर भला तुम किसके हो? कौन तुम्हारा है? तुम किसके हो? कौन तुम्हारा है?तुम किसे अपना कह सकते हो?

9 दुःख - कष्ट तो देह का है, देह के भीतर जो है, उन्हें दुःख - कष्ट कुछ भी नहीं, वे तो आंनदस्वरूप हैं। प्रत्येक देह के भीतर ही वे विराजमान हैं। वे ही प्रत्येक का स्वरूप है। उसी स्वरूप की अनुभूति करनी होगी। उनको न जान सकने के कारण ही तो इतनी गड़बड़ी है।

10 तुम्हारा तत्त्व कौन जानेगा, प्रभु? तुम क्या हो, यह कौन जानता है? प्रभु, मैं तुम्हें जानना नहीं चाहता, तुम्हें समझना नहीं चाहता! केवल अपने श्रीपादपद्यों में मुझें शुद्ध भक्ति दो। उन्हें भला कौन जान सकता है?

11 हे ईश्वर नीलगिरी के समान यदि स्याही हो, समुद्र यदि दावात् हो, कल्प तरु की शाखा लेखनी हो, पृथ्वी कागज हो और सरस्वती यदि चिरकाल तक लिखती रहें, तो भी हे नाथ, तुम्हारे गुणों का अंत न होगा।

12 दिन तो बीत गया और संध्या हो गयी - मुझे पार कर दो। यह जानकर कि तुम पार करने वाले हो, मैं तुम्हें पुकार रहा हूँ। मैंने सुना है / नाथ, जिसके पास कौड़ी तक नहीं, उसे तुम पार कर देते हो। प्रभु, मैं दीन भिखारी हूँ, मेरे पास एक फूटी कौड़ी तक नहीं है, इसलिए तुम्हें पुकार रहा हूँ।

13 अरे ब्रज के माखनचोर, तेरा कन्हैया नाम किसने बदल दिया? तेरा पीतवसन कहाँ है रे, किसने तेरी मोहन - चूडा ले ली, जो नदिया में आकर मूँड़ मुड़ा लिया है और कौपीन - डोर बांध ली है? (सम्भवतः चैतन्य महाप्रभु से हो) यह तेरा कैसा भाव है रे कन्हैया? किस अभाव से रे कन्हैया, तूने षडैश्वर्य त्यागकर यह कौपीन बांध लिया है? अहा! कैसा अश्रु, कम्प् और स्वर भंग हो रहा है - सारा शरीर पुलकायमान हो रहा है! दलबल को साथ ले तू हरिनाम में विभोर है!

14 सूर्योदय होने पर जैसे सारा कुहरा दूर हो जाता है, उसी प्रकार वासुदेवपरायण मनुष्य केवल एकांत भक्ति के द्वारा समस्त पापों से मुक्त हो जाते है। नाम - नामी अभिन्न। इस नाम के भीतर ही तो सब कुछ है, नाम ही ब्रम्ह है। वे नाम के भीतर निवास करते है।

15 लग जाइये आज से ही - पल पल तो जीवन ढलता जा रहा है। किसकी कब मृत्यु होगी, सो कोई नहीं जानता, अतएव एक दिन भी व्यर्थ न जाने दें। जो सोचते हैं कि वह सब बाद में कर लेंगे, उनसे कभी भी नहीं होगा। वे इस जन्म - मृत्यु के प्रवाह में अनन्त काल तक डूबते - उतराते रहेंगे। स्त्री, पुत्र, कन्या जिनको आप, अपना मान रहे हैं, उन सभी को जाना होगा। कोई चिरकाल तक नहीं रहेगा। प्रत्येक मनुष्य अपने - अपने कर्म के लिए उत्तरदायी है।

16 मन, सोचकर देख कोई किसी का नहीं है। तू इस संसार में वृथा ही मारा - मारा फिरता है। जिसके लिए तू इतना सोचता है, क्या वह तेरे संग भी जाएगा? वही तेरी प्रेयसी, जब तू मर जाएगा तब मेरी लाश से अमंगल की आशंका से घर में पानी का छिड़काव करेगी! यह सोचना कि लोग मुझे मालिक कहते है, सिर्फ दो ही दिन के लिए है। जब काल-अकाल के मालिक आ जाते है, तब पहले का वही मालिक श्मशान घाट में फेंक दिया जाता है।

17 मुझे ऐसी अवस्था में रखा है कि सब कुछ चिन्मय देख रहा हूँ। घर द्वार, खाट-बिछौना तथा सभी प्राणियों के भीतर उसी एक चैतन्य का खेल चल रहा है। केवल भेद है, नाम का किंतु मूल में सब एक ही है। अत्यन्त स्पष्ट रूप से देख रहा हूँ! काफी प्रयत्न करने पर भी इस भाव को संभाल पा रहा हूँ। सभी चैतन्यमय है। मन को थोड़ा सा उठा लेते ही, देखता हूँ कि सर्वत्र उसी चैतन्य का खेल चल रहा है। नाम- रूप तो अति निम्न स्तर

की बात है। नाम - रूप के ऊपर मन जाते ही बस! तब सभी चैतन्यमय है, आनंदमय है! यह सब वाणी द्वारा नहीं समझाया जा सकता। जिसे वह अवस्था होती है, वही जानता है।

।। आनन्द धाम की ओर से।।

1 काम करते हुए बीच में आने वाले कष्ट को सहते हुए प्रसन्न रहें और काम करते चले जाएं - वही उत्साह है।

2 भय का स्थान दुःख वर्ग में है, उत्साह का वही स्थान आनन्द वर्ग में है।

3 बिना उत्साह के कभी किसी उच्च लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती।

4 दुर्लभ कुछ भी नहीं, यदि उत्साह का साथ न छोड़ा जाए।

5 उत्साह आदमी की मान्यशीलता का पैमाना है।

6 उत्साह सफलता का निमन्त्रण देता है।

7 साहसी लोग अम्बर और धरती को एक करने का प्रयास करते है। ऐसे लोगों के सामने तुम्हारा प्रयास कम है?

8 साहस वह जज्बा है जो अर्जित हुए मौकों के साथ बढ़ता रहता है।

9 साहस् एक सर्वोत्तम मानसिक औषधि है, यदि आप आशा और विश्वास के साथ महान कार्य संपन्न करना चाहते है तो आपकी आत्मा में साहस का वास होना चाहिए।

10 साहस का समय पर संचार न होने से संसार में आधे से ज्यादा लोग, असफल हो जाते है।

11 उत्साह प्रेम का फल है। जिसमें सच्चा प्रभु प्रेम होता है, वही उसके दर्शन के लिए उत्सुक रहता है।

12 आधिकांश अवसरों पर साहस को परीक्षा द्वारा जीवित रखना होता है। संतुलित उत्साह सफलता की कुंजी है। ।। अनमोल वचन से।।

1 जब तक तूने तृष्णाओं को समाप्त नहीं किया है, तब तक तू संतुष्ट मत हो। पाप भावना की समाप्ति-ही सबसे बड़ा धर्म है।

2 अलौकिक सहिष्णुता और धैर्य तथागत का-परिधान है, परोपकार और सर्वभूतों के प्रति प्रेम ही उसका-आवास है, सद्धर्म के विशेष अनुप्रयोग की धारणा ही तथागत का-आसन है।

3 पुरुषों में काम की शक्ति अत्यधिक होती है तथा उसे पूरी तरह से भयभीत होना चाहिए। इसलिए निष्ठापूर्ण अध्यवसाय एवं शराग्र के समान तीक्ष्ण-विवेक जीवन में लाने का व्रत लो।

4 जो श्रमण स्त्री को स्त्री की दृष्टि से देखता है या स्त्री के रुप में स्पर्श करता है, उसने अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दी है।

5 आमूलचूल रूप से वासना का उच्छेद करता, क्रोध का निग्रह करता,'मैं हूँ' के झूठे दर्प का विनाश करता, दुःख के उद्गम को और दुःख से मुक्ति के मार्ग को समझता है और बुद्धत्व की प्राप्ति करता है।

6 इच्छा से मुक्ति ही अच्छाई का मूल है, द्वेष से मुक्ति और भ्रम से मुक्ति; मेरे मित्रो, ये वस्तुएं अच्छाई का मूल है।

7 इच्छा ही बुराई की जड़ है, द्वेष ही बुराई की जड़ है, भ्रम ही बुराई की जड़ है, ये सभी चीजें बुराई की जड़ है। बुरे कार्य को अधूरा छोड़ देना ही उत्तम है। सत्कार्य को पूरा किया जाना अच्छा है।

8 स्व की शरण-स्व है। एक पूर्ण संयमित स्व के द्वारा, व्यक्ति ऐसी शरण करता है, जिसे पाना कठिन है।

9 अनभ्यास ध्यान की अपवित्रता है। अस्वच्छता शरीर की अपवित्रता है। प्रमाद इंद्रियों की अपवित्रता है। और चंचलता मन की अपवित्रता है।

10 निंदा न करना, घात न करना, मूलभूत उपदेशों में वास करना, भोजन में मात्रा जानना, एकान्तवास, चित्त को योग में लगाना-यह बुद्धों की सीख है।

11 तुम्हारा उत्साह विचलित न हो, तुम्हारे अधरों से कोई भी बुरे वचन न निकले, तुम सदा परोपकारी बने रहो, तुम्हारा हृदय प्रेम से परिपूर्ण तथा गुप्त द्वेष से रहित हो।

12 सद्धर्म के लक्षण है: सदिच्छा, प्रेम, सत्यनिष्ठा, पवित्रता, अनुभूति की उददत्ता और दया।

13 जो जाग गया है,वह भय से मुक्त है, वह बुद्ध बन गया है। वह अपनी सारी चिंताओं, अपनी महत्वाकांक्षाओं और अपने दुःखों की निस्सारता को जानता है।

14 वही सुखी है जिसने स्वार्थपरायणता को जीत लिया है।वही सुखी है, जिसने शांति प्राप्त कर ली है। वही सुखी है जिसने सत्य को पा लिया है। संसार में सत्य के अतिरिक्त और कोई मुक्तिदाता नहीं है। सत्य पर आस्था रखो और उसे जीवन में उतारो।

15 जिसमें अहं भाव नष्ट हो गया है, वह काम से मुक्त होता है-ऐसा व्यक्ति न तो सांसारिक सुखों की कामना करता है, न स्वर्गिक सुखों की।

।।भगवान बुद्ध।।

1 तुम्हारे चरणों को सार समझकर, जाति-पाँति का विचार छोड़, लाज और भय को भी मैंने तिलांजलि दे दी।अब रास्ते का बटोही होकर मैं कहाँ जाऊँ?

2 अब तो तुम्हारे लिए मैं कलंक-भागी हो चुका, तुम्हें मैं प्यार करता हूँ, इसलिए लोग मेरी कितनी निंदा करते है। अब मेरा शर्म और भ्रम तुम्हारा ही है।

3 चाहे तुम मेरी रक्षा करो और चाहे न करो, उत्तरदायित्व और भार तुम्हीं पर है। परंतु यह सोच लेना कि दास का मान तुम्हारा ही मान है। तुम मेरे

हृदय के स्वामी हो, तुम्हारे ही मान से मेरा भी मान है। अतएव जैसी तुम्हारी रुचि हो, वही करो।

4 हरि,तुम्हीं नाचते हो, तुम्हीं गाते हो और तुम्हीं ताल ताल पर हथेली बजाते हो। मनुष्य तो एक पुतला मात्र है, वृथा ही वह मेरा मेरा कहता है।

5 जैसे कठपुतली के खिलौने हैं, वैसा ही जीवों का जीवन भी है। मनुष्य यदि सही रास्ते पर चलता है तो वह देवता बन जाता है।

6 देहयन्त्र में यंन्त्रीस्वरूप तुम्हीं हो, आत्म रथ में तुम्हीं रथी हो, जीव तो अपनी स्वाधीनता के फल से केवल पापों का भोग करता है। तुम सब के मूलाधार हो, तुम प्राणों के प्राण और हृदय के स्वामी हो, तुम अपने पुण्य बल से असाधु को भी साधु बना देते हो।

7 ऐ हृदयरमा माँ-प्राणों की पुतली! आओ, तुम हृदय के आसन पर आसीन हो जाओ, मैं दृष्टि को तृप्त करता हुआ तुम्हें देखूँ। जन्म से ही तुम्हारा मुंह जोह रहा हूँ। ऐ माँ, तुम जानती हो, मैं कितना दुःख भोग चुका हूँ। ऐ आनन्दमयी, एक बार तो हृदय-पद्म को विकसित करके वहां अपना प्रकाश दिखा दो।

8 सब कुछ है, वे जादू चला देते है। बाजीगर गले में छुरी मार लेता है, उसे फिर निकाल लेता है। कंकड़-पत्थर खा जाता है।

9 ईश्वर है, यह सम्पूर्ण जीव जगत उनका ऐश्वर्य है, इसे मानने से ही हो गया। जो कुछ देख रहे हो, यह सब वे ही हुए हैं। जैसे बेल के बीज, खोपड़ा, गूदा, तीनों को मिलाकर एक बेल है। जिनकी नित्यता है, उन्हीं की लीला (अनित्यता सम्भवतः) भी है। नित्य को छोड़कर लीला समझ में नहीं आती। लीला के रहने के कारण ही, लीला को छोड़-छोड़कर लोग नित्य में जाया करते है। ईश्वर की सृष्टि में सब कुछ हो सकता है- यह विश्वास ही पर्याप्त है।

11 हे नाथ! तुम्हीं हमारे सर्वस्व हो,तुम्हीं हमारे प्राणों के आधार हो और सब वस्तुओं में सार पदार्थ भी तुम्हीं हो। तुम्हें छोड़ तीनों लोक में अपना और कोई नहीं।

12 सुख, शांति, सहाय, सम्बल, ,संपद, ऐश्वर्य, ज्ञान, बुद्धि, बल, वासगृह, आराम स्थल, आत्मीय, मित्र, परिवार सब कुछ तुम्हीं हो। तुम्हीं हमारे इहकाल हो तुम्हीं परकाल हो, तुम्हीं परित्राण हो और तुम्हीं स्वर्गधाम हो, शास्त्र विधि और कल्पतरुगुरु भी तुम्हीं हो, तुम्हीं हमारे अनन्त सुख के आधार हो। हमारे उपाय हमारे उद्देश्य तुम्हीं हो। तुम्हीं स्रष्टा, पालन कर्ता और उपास्य हो। दण्डदाता पिता, स्नेहमयी माता और भवार्णव के कर्णाधार भी तुम्हीं हो।

13 रथचक्र को न पकड़ो, न पकड़ो। क्या रथ चक्र से चलता है। जिनके चक्र से जगत चलता है - वे हरि ही इस चक्र के चक्री है।

14 यह मुझे पीलिया रोग तो नहीं हो गया? चारों ओर तुम्हीं को देख रहा हूँ। हे कृष्ण, दीनबंधु! प्राणवल्लभ! गोविंद!

15 गुरु की कृपा होने पर फिर कोई भय नहीं। वे बतला देते है, तुम कौन हो, तुम्हारा स्वरूप क्या है। थोड़ा साधन करने पर गुरु सब बातें साफ साफ समझा देते है। तब वह सत क्या है असत क्या है, समझ सकता है।
।।श्रीरामकृष्णवचनामृत-सार से।।

1 सदाचारी के लिए भी कर्तव्य अत्यंत गहन होता है, तथा उसे समझना सहज नहीं होता - हृदयस्थ आत्मा ही जानती है कि क्या सही है, क्या गलत।

2 मुक्ति प्राप्त करने के लिए, सदाचारों का समयानुसार सम्पन्न करना तथा परम्परागत नियमों का पालन करना, विशेष रूप से आवश्यक है।

3 हे भाई! इस संसार को मुझमें व्याप्त देखते हुए पूर्ण श्रद्धा के साथ मेरी सेवा करो। इससे तुम शुद्ध,आनन्द युक्त, बुद्ध और स्वस्थ हो जाओगे। मैं राम-सभी आत्माओं का जीवन हूँ। तुम्हारे मन को मात्र मुझ पर ही केंद्रित होना चाहिए।

4 मूढ़ अपने हृदय में अनुभव करता है कि धन ही परम कल्याणकारी तथा सुख का एकमात्र मार्ग है, वास्तव में वह अज्ञान, दुःख और सभी प्रकार के दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियों का जनक है। जिस प्रकार धूल रत्न की भी चमक को मलिन कर देती है-वैसे ही धन भी विवेकवान पुरुषों के सद्गुणों को दूषित कर देता है। सांसारिक सम्पदा आनन्द के स्थान पर मात्र दुःख ही प्रदान करती है।

5 संपत्ति और सुखोपभोग समस्त प्रकार की चिंताओं की जड़ है। इन्द्रिय सुखों की वस्तुएं यथार्थतः हलाहल है-जो जन्म जन्मांतरों में से ले जाकर असंख्य योनियों में संत्रस्त करता है। जो संसार हमारे सामने है, वह स्वप्न के समान क्षणभंगुर है, जो पर्वत श्रेणियां आज बादलों का चुम्बन कर रही है, वे अल्पावधि के पश्चात समतल भूमि में परिवर्तित हो सकती है। प्रत्येक दिन वस्तुओं और उनकी पीढ़ियों का विनाश हो रहा है, परन्तु यह अभिशप्त संसार कभी भी समाप्त नहीं होता, मनुष्य पशुओं के रूप में जन्म लेते है, निम्नतर पशु मनुष्यों के रूप में जनमते है, देवता पदानवत होते है। हम इस संसार की नित्यता का अवलोकन कहाँ करे?

6 जीवन एक ऐसी नदी है, जो अपना प्रवाह कभी विपरीत नहीं करती, अतः व्यक्ति का जीवन समय के साथ घटता ही चला जाता है। इस संसार में व्यक्ति मरने के लिए उत्पन्न होते है और वे पुनः उत्पन्न होने के लिए मरते है। सभी प्राणी,यहां तक कि ब्रम्हा, विष्णु और रुद्र भी, ठीक वैसे ही विनाश को अनुधावित है, जैसे मरुस्थल से प्रवाहित होने वाली

जलधारा। सुखोपभोग की ये सारी वस्तुएं क्षण स्थायी होती है, तथा ये पापों और विपत्तियों की जड़ें होती है। इस संसार के दुःखों के विचार से मेरे हृदय को श्मशान-भूमि के समान निर्जन और विषण्ण बना दिया है। संसार के अचिरता तथा उसके अन्य दोषों पर विचार करते हुए मैं जंजीरों में बंधे जंगली हाथी के समान छटपटाने लगता हूँ।

7 धन की देवी तरंगों के समान चंचल होती है, वह किसी एक के साथ सदा के लिए नहीं रहा करती। यौवन भी अत्यल्प होता है, स्त्री प्रसंग से तुम्हें जो सुख मिलता है - वह स्वप्नवत होता है।विवेकरहित यौवन चंचल मन की विभिन्न क्रीड़ामयी प्रवृत्तियों का आखेट बन जाता है, तथा वह एक दुःख से दूसरे दुःख में गिराते जाता है। जैसे पाला कमल को नष्ट कर देता है और नदी अपने किनारों के वृक्षों को नष्ट कर देती है, वैसे ही जरा यौवन का अंत कर देती है।आयु मनुष्य के शरीर के अंगों को भयंकरता प्रदान करते हुए उसे कितना कुरूप बना देती है। पत्ते के सिरे पर लटकी हुई जल की बूंदों के समान ही मनुष्य का जीवन भी अप्रत्याशित रूप से इस मलिन शरीर का त्याग कर देता है। हमारा यह जीवन वसंतकालीन मेघों के समान ही क्षणस्थायी है-यह ऐसे दीपक के समान है, जिसका तेल चुक गया है, यह जल की सतह पर उठने वाले एक हिलोर जैसा है। जीवन की इस रिक्तिता के बावजूद मूर्ख लोग दीर्घ जीवन की आकांक्षा करते है, किन्तु परिणामस्वरूप दुःख ही मिलता है। जीवन क्षणस्थायी है, किन्तु मूढ़ व्यक्ति इसे वास्तविक समझते है, तथा इसमें आबद्ध हो जाते है। सूर्य प्रतिदिन आता है और चला जाता है, इसके साथ ही हमारी जीवनावधि न्यून से न्यूनतर होती जाती है। दूसरों के बुढ़ापे और मृत्यु को देखकर भी, कोई यह अनुभव नहीं करता कि उसकी भी यही नियति होने वाली है। समस्त संचयों का अंत अपक्षय से

तथा उत्कर्षों का अंत चूर-चूर होने और गिरने से होता है। संयोग का अंत वियोग से, जीवन का अंत मृत्यु से होता है।

8 जो रात बीत जाती है, वह फिर नहीं लौटती। गंगा अपना जल महासागर में भले मिला देती है, पर कभी भी प्रवाह पीछे नहीं मोड़ती। चाहे तुम खड़े रहो, या चलते रहो, तुम्हारे दिन चुकते ही है-इसलिये अपने लिए अनुताप करो। मृत्यु व्यक्ति के साथ चला करती है, विश्राम करती है, व्यक्ति कितनी भी दूर क्यों न चला जाए, वह मृत्यु को कभी पीछे नहीं छोड़ सकता। इस पृथ्वी पर कोई भी व्यक्ति प्रकृति के नियम से मुक्त नहीं हो सकता, जब समय आ जाता है, तब कोई व्यक्ति बच नहीं पाता।

9 जिस प्रकार स्वप्न में देखी गयी वस्तुएं और मन के द्वारा निर्मित आकाशकुसुम यथार्थ नहीं होते, वैसे ही मनुष्य जो कुछ सदैव देखता, सुनता या सोचता है वह अयथार्थ होता है। जैसे सांप के द्वारा पकड़ा हुआ मेढ़क, जिसका आधा शरीर लील लिया गया है, सांप के मुंह में बैठकर जीभ निकालकर आसपास उड़ती हुई छोटी छोटी मक्खियों को पकड़ने का प्रयास करता है, उसी प्रकार कालसर्प के द्वारा पकड़े जाने पर भी मनुष्य क्षणभंगुर इन्द्रिय-सुखों की खोज करता है। वह इन्हें प्राप्त करने रात दिन कठिन परिश्रम करता है और भारी कष्ट उठाता है। मन इच्छित वस्तु को प्राप्त करने के बाद भी ठीक वैसे ही कभी संतुष्ट नहीं होता, जैसे छिद्रयुक्त पात्र को कितना भी जल डालकर भरा नहीं जा सकता। महत्त्वाकांक्षा से युक्त मन सदैव रिक्त रहता है। आवर्तमान सागर की तरह यह मन व्यक्ति को बहुत दूर ले जाता है।

10 शरीर एक ऐसे कछुए के समान है, जो अभिलाषाओं के गढ़े में निष्क्रिय होकर पड़ा हुआ है, और उससे मुक्त होने का कोई प्रयास नहीं करता। अंतड़ियों और स्नायुओं की जटिलताओं से युक्त यह शरीर दुःखों का

एक अत्यंत उर्वर स्त्रोत भी है। यह शरीर पांच स्थूल तत्वों, पांच तन्मात्रा, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रियों, बुद्धि (मन बुद्धि चित्त अहंकार) से मिलकर बना है। शरीर रूपी इस पत्ते को पीला पड़ने और भूमि पर टूटकर गिरने में कोई समय नहीं लगता। यह शरीर मिथ्या ज्ञान से उद्‌भुत हुआ है, यह स्वप्नवत भ्रमों से परिपूर्ण है। इस शरीर पर-जो कि मृत्यु के बाद साथ नहीं जाता, भला कोई कैसे भरोसा कर सकता है? यह तो मनुष्य को अज्ञान के पर्त में धकेलने का ही काम करता है,अत्यल्प उत्तेजना इसे हर्ष से भर देने या आंसुओं से नहला देने में पर्याप्त है। अतः शरीर के समान शोचनीय और अच्छाई से नितांत रहित कोई वस्तु नहीं है।

11 भले ही यह शरीर क्षण भंगुर है, पर वह मोक्ष प्राप्त करने में सहायता देने की क्षमता रखता है, यही कारण है यह सामान्य भौतिक पदार्थ के समान नहीं है, पर वह पूर्ण चेतन सत्ता भी नहीं है। अपनी जड़ता के बावजूद शरीर चैतन्यवान सा दिखाई देता है-क्योंकि इसमें आत्मा अपने पंचकोशों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय) के साथ निवास करती है। यह शरीर विमुग्ध आत्मा का आवास-स्थल है। शरीर को आत्मा समझने की ही त्रुटि माया है, यह माया ही संसार की सृष्टि के लिए उत्तरदायी है। विक्षेप से सारे संसार की स्थूल और सूक्ष्म शरीरों की सर्जना करती है,और आवरण के द्वारा माया आत्मा के ज्ञान को ढंक लेती है। विक्षेप और आवरण, माया के दो रूप है। माया की शक्ति से, शुद्ध परम आत्मा को, यह संसार समझने का भ्रम हो जाता है। यदि हम गम्भीरता से विचार करें तो संसार तिरोहित हो जाएगा-और मात्र ब्रम्ह शेष रहेगा।आत्मा को शरीर से अभिन्न मानने से ही यह संसार मानसिक रूप से निर्मित हुआ है। इस संसार का कोई पृथक अस्तित्व नहीं है,

हमारी कल्पना में यह उसी प्रकार विराजमान है, जैसे हम रस्सी में सर्प का अस्तित्व कल्पित कर लेते है। जिस क्षण यह साक्षात्कार होता है कि आत्मा, शरीर और इंद्रियों आदि से पृथक है, उसी क्षण माया का-जो इस संसार का मूल कारण है (यह संसार घृणा, लोभ और ईर्ष्या आदि से परिपूर्ण है) नाश हो जाता है। केवल परम ज्ञान से ही इसका विनाश किया जा सकता है, मात्र तर्कों और श्रुतियों के अध्ययन आदि से नाश कैसे हो सकता है? मैं ही यह शरीर हूँ, ऐसा विचार अविद्या है तथा यही भ्रम की जननी है। मैं शरीर नहीं हूँ, आत्मा हूँ, ऐसा अनुभव ही विद्या है, तथा यह भ्रम को नष्ट करने वाली होती है। अविद्या संसार का कारण है तथा विद्या संसार की विनाशक है। आत्मा- शरीर, इंद्रियों, मन, बुद्धि और प्राण से भिन्न है, यह शुद्ध बुद्ध आनन्दपूर्ण निर्विकार तथा निराकार है। जब तक तुम आत्मा को शरीर, इंद्रियों और प्राण से पृथक नहीं जानोगे, तब तक तुम रोग, मृत्यु आदि संसार के दुःखों से प्रभावित रहोगे। जो व्यक्ति सदैव इंद्रियों तथा उनसे मिलने वाले सुखों का चिंतन करता है, उसे यह संसार सत्य प्रतीत होता है, ये सांसारिक सुख बादलों में चमकने वाली विद्युत-वल्लरी के समान चलायमान होते है, हमारी नियति तो वायु के आकस्मिक झोंके से तहस-नहस हो जाने वाले पौधे की भांति है। कुछ विशिष्ट शरीरों में ज्ञान और विवेक के प्रति ग्रहणशीलता होती है तथा इन्हीं को मानव-शरीर कहा जाता है। वह व्यक्ति उत्कृष्टतम है जो ऐसा निर्णय करके शांति प्राप्त कर लेता है:मेरा शरीर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, यह शरीर और मैं तद्रूप नहीं हैं। परमात्मा और जीवात्मा एक ही आत्मतत्व के दो नाम है, इन दोनों में कोई अंतर नहीं है। आत्मा में कोई आवेग या गुण नहीं होते, परन्तु स्वयं (कोई गुण न होते हुए) परमानन्द स्वरूप है, यह अनादि और अनंत है,

यह सर्वव्यापी, अखण्ड, एकमेव (इसके सिवा कोई दूसरा है ही नहीं),अद्वितीय, परम, निर्गुण, निराकार और विश्वमय (विश्व में जो कुछ है यही है) है। इसका साक्षात अनुभव करने के लिए तुम्हें गुरु(सतगुरु) की सहायता लेनी होगी।

12 शुद्ध ज्ञान वह है, जो समस्त कामनाओं (वासनाओं) और आसक्तियों को नाश कर देती है।जब कोई अहंकार नहीं रह जाता, तब कोई कष्ट नहीं होता, अतः उत्तम यह है कि बिना अहंकार के रहा जाय। यह अहंकार ही है-जिसने स्त्री, पुत्रों आदि के प्रति आसक्ति का जाल फैलाया है, ऐसा जाल, जिससे कोई जादुई मंत्र छुटकारा नहीं दिला सकता। अतः जैसे अहंकार का त्याग किया जाता है, वैसे ही समस्त मानसिक पीड़ाएँ स्वयमेव विलीन हो जाती है। यदि सत्कर्मों को अहंकार की भावना से किया जाएगा, तो वे तुम्हें संसार से ही बांधेंगे। अतः ज्ञान प्राप्त करने के लिए बिना लेशमात्र गर्व रखे तुम्हें कर्म करना चाहिए। अपना कार्य ऐसे सम्पन्न करो, मानो तुम स्वयं प्रवाह (सतगुरु, आत्मा) के द्वारा बहाये जा रहे हो, तब तुम उससे आसक्त नहीं होंगे, तुम्हारा मन और चरित्र पवित्र हो। तुम्हारा जो भी प्रारब्ध है वह चाहे सुखपूर्ण हो या विषादमय, उसको सहन करो। अपने हृदयकमल पर निरन्तर आत्मा का ध्यान यह जानते हुए करो कि यह बुद्धि, इन्द्रिय आदि से भिन्न है, तब तुम्हें पछतावा नहीं होगा।आत्मा के स्वप्रकाश से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित होता है। आत्मा अविनाशी है, इसने ही इस शरीर का सृजन किया है।

13 संसार में सत्संग प्राप्त करना कठिन है, इस संसार की धरती दुराचार के लिए अत्यंत उर्वर है। यदि तुम निरन्तर आत्मा का चिंतन करोगे तो तुम पवित्र हो जाओगे। चिन्तन करते हुए तुम्हें संसार को सर्वव्यापी आत्मा में

विलीन कर देना चाहिए। तुम सर्वज्ञ हो,तुम शुद्ध हो, हमेशा ऐसा अनुभव करो। और परमात्मा के साथ अपना एकत्व स्थापित करो तथा स्वयं अपने अंतरतम में आनन्द की उपलब्धि करो। इस बात की जानने की चिंता न करो, कि तुम्हारे बाहर क्या है। जो योगियों की सेवा करता है, जो मेरा अत्यंत भक्त है और जो विशुद्ध ज्ञान एवं परमानन्द से युक्त है, उसके हाथ की हथेली में मुक्ति रखी हुई है।

14 जो मुझ पर भक्ति करते है,वे ज्ञान और वैराग्य प्राप्त करेंगे तथा उन्हें जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति मिलेगी। जिनमें मेरे प्रति भक्ति नहीं है, और जो एक शास्त्र से दूसरे शास्त्र में, सत्य की प्राप्ति के लिए भटकते रहते है, वे अधिकाधिक भ्रमित होते रहेंगे। मेरे समादेश से तुम अत्युच्च लक्ष्य तक पहुंच जाओगे। दूसरे तुम्हें मेरी वैश्विक लीला का वर्णन करना चाहिए। तीसरे मेरे विभिन्न, उत्तमोत्तम गुणों का कीर्तन करना चाहिए। चौथी साधना, मेरे वचनों और उपदेशों का विस्तारपूर्वक मनन और विवेचन करना है। पांचवी साधना, सद्गुरु की खोज तथा आत्म नियंत्रण के द्वारा सद्व्यवहार का अभ्यास करना है। छठे, तुम्हें अत्यंत नियमित होकर मेरी पूजा करनी चाहिए। सातवें, अपने गुरु से मेरा पवित्र मंत्र प्राप्त करना चाहिए। आठवीं साधना, पूरी सामर्थ्य से मेरे भक्तों की पूजा करना तथा सबको मेरी (आत्म) दृष्टि से देखना है। सभी वस्तुओं से अनासक्ति, (ज्योतिर्मय) नौवीं साधना है। यह भक्ति का नवधा मार्ग है।

15 यदि मेरे नाम का जप एकाग्र भक्ति, और मेरे प्रति पूर्ण शरणागति के भाव से किया जाय, तो वह इस संसार के सभी पापों को नष्ट कर देता है। प्रतिदिन अपने शरीर और मन को पवित्र करके भक्तिपूर्वक अपने गुरु की सेवा करो। किसी भी दिन सत्कर्म करने में आलस्य मत करो। सत्य को मत छोड़ों। हमेशा प्रसन्न रहो। इंद्रियों के सुखोपभोग के विचार को

तत्काल दमित करो। जन्म, वार्धक्य और मृत्यु को नियति मानते हुए हमेशा सौम्य बने रहो। कुटिल लोगों की संगति मत करो। एकाकी रहने का प्रयास करो, समस्त वैदिक कर्मों का सम्पादन करते हुए, परमात्मा को जानने की चेष्टा करो। मैं, राम, सभी आत्माओं का जीवन हूँ, तुम्हारे मन को मात्र मुझ पर केंद्रित होना चाहिए। इस प्रकार तुम्हें अनुभूति होगी कि तुम, चिर शुद्ध चिदात्मा हो, जो इंद्रियों, उपाधियों और रूपों से भिन्न है। जब तुम यह अनुभव करोगे कि तुम तथा प्रत्येक जीव परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। तब तुम्हें मुक्ति की प्राप्ति होगी। ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य के बिना मुक्ति प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

16 मेरा भक्त, ज्ञान विज्ञान और वैराग्य अनायास प्राप्त करता है। इस संसार को मुझमें व्याप्त देखते हुए पूर्ण श्रद्धा के साथ मेरी सेवा करो। इससे तुम शुद्ध, आनन्दयुक्त, बुद्ध और स्वस्थ हो जाओगे। जो कोई एक बार भी मानसिक रूप से मुझे सगुण के साथ साथ निर्गुण मानते हुए मेरी सेवा करता है, वह मेरी चरण रज से ठीक वैसे ही पवित्र हो जाएगा, जैसे सूर्य की किरणें तीनों लोकों को पवित्र करती है। जो भी मुझ पर तथा मेरे वचनों पर अटल श्रद्धा और भक्ति रखते हुए इसका अनुशीलन करता है-वह निश्चित रूप से मुझसे (आत्मा से) एक - रूप हो जाएगा।

।।भगवान श्रीरामचन्द्रजी।।

1 मनुष्य का प्रकृत स्वरूप एक ही है, वह अनंत और सर्वव्यापी है। यह प्रतिभाषिक जीव देश - काल - निमित्त के द्वारा सीमाबद्ध है।

2 ईश्वरोपासना करने के लिए प्रतिमा आवश्यक है तो उससे कहीं श्रेष्ठ मानव - प्रतिमा मौजूद ही है। जीवित ईश्वर तुम लोगों के भीतर रहते है, तब भी तुम मंदिर, गिरिजाघर आदि बनाते हो, सब प्रकार की

काल्पनिक झूठी चीजों में विश्वास करते हो। पशु भी भगवान का मंदिर है, पर मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ मंदिर है।

3 मनुष्य का अहंभाव पूर्णतया नष्ट हो जाता है, उसका स्वत्व भाव लुप्त हो जाता है। तब उसके लिए ऐसी कोई वस्तु नहीं रह जाती जिसे वह मैं और मेरी कह सके। तब वह आत्म विसर्जन कर देता है, मानो अपनी आहुति दे देता है। यह है आदर्श व्यक्ति।

4 जिस परिणाम में मनुष्य इंद्रिय परायणता को छोड़कर उच्च भाव जगत में अवस्थान करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है, जिस परिणाम में वह विशुद्ध चिंतन रूपी प्राणवायु फेफड़ों के भीतर खींचने में समर्थ हो जाता है। तथा जितने अधिक समय तक उस उच्च अवस्था में वह रह सकता है - केवल इसी आधार पर उसका विकास आँका जा सकता है।

5 योगी कहते है कि योगी के अतिरिक्त अन्य सब मानो गुलाम है - खाने पीने के गुलाम, अपनी स्त्री के गुलाम, अपने बच्चों के गुलाम, स्वदेशवासियों के गुलाम, नाम-यश के गुलाम, जलवायु के गुलाम, इस संसार के हजारों विषयों के गुलाम! जो मनुष्य इन बंधनों में से किसी में भी नहीं फंसे, वे ही यथार्थ मनुष्य है, - यथार्थ योगी है।

6 आप इस मर्त्य लोक पर देवता है, आप भला पापी, यह मानवस्वरूप पर घोर लांक्षन है।आप उठें! हे सिंहों! आयें। व्यावहारिक और शरीर से सबल होने की शिक्षा देनी चाहिए। ऐसे बारह नर- केसरी संसार पर विजय प्राप्त कर सकते है।

7 मनुष्य मुर्खतावश वह सोचता है कि अपने को सुखी बना सकता है, परंतु वर्षों के घोर संघर्ष के बाद उसकी आँखें खुलती है और वह पाता है कि वास्तविक सुख को स्वार्थपरता को नष्ट कर देने में है। और सिवा अपने, उसे और कोई सुखी बना नहीं सकता।

8 इस जगत में सचमुच सुखी कभी कोई नहीं हुआ। जिसे सुख चाहिए उसे दुःख भी लेना होगा। हम लोग मुर्खतावश सोचते है, कि बिना कोई दुःख के केवल सुख ही सुख मिल जायगा।

9 जितना ही हम सुख की ओर जाते है, उतना ही अधिक हमसे दूर भागता जाता है। हमने देखा है, कैसे सुख देह में अथवा मन में अथवा आत्मा में अवस्थित है। पशुओं एवं पशुप्राय निम्नतम मनुष्यों का समस्त सुख देह में है। मनुष्य में एक उच्चतर स्तर का, विचार - स्तर का सुख देखते है। सर्वोच्च स्तर का सुख ज्ञानी का है - वे आत्मानंद में विभोर रहते है। क्योंकि वे ज्ञान में जिस प्रकार का सुख प्राप्त करते है, विषय समूह अथवा इंद्रिय- भोग से उस प्रकार नहीं पाते। हम जितने प्रकार के सुख के विषयों से परिचित है उनमें से ज्ञान / आत्मा, ही सर्वोच्च सुख है। इस जगत में जो कुछ आनंदकारी है, वह उसी आंनद का प्रकृत आंनद का अंशमात्र है। हम प्रतिक्षण उसी ब्रम्हांनन्द का उपभोग कर रहे है - पर वह उसका आच्छन्न, भ्रांत और उपहासास्पद रूप ही होता है। वस्तुतः वही पूर्णानन्द है, केवल सभी प्रकार की बाह्य वस्तुओं के सम्पर्क से मलीन, धुंधला और भ्रांत हो गया है।

10 अद्वैत ही एकमात्र दर्शन है जो मनुष्य को अपनी पूर्ण उपलब्धि कराता है-अपना स्वामी बना देता है, समस्त पराधीनता और उससे सम्बन्धित अंधविश्वास को उतार फेंकता है। इस प्रकार हमें कष्ट झेलने में वीर, कर्म करने में वीर, बनाता है और अन्ततः परम् मुक्ति लाभ करा देता है।

11 सुख आदमी के सामने आता है, तो दुःख का मुकुट पहनकर, प्रत्येक सुखोपभोग के बाद दुःख आता है। दोनों ही जंजीर है - एक लोहे की दूसरी सोने की। इन दोनों के ही पीछे आत्मा है - जहाँ सुख है, न दुःख।

12 केवल शारीरिक सहायता द्वारा ही संसार के दुःखों से छुटकारा नहीं हो सकता। अपने चारों जो अशुभ और क्लेश देखते है, उन सबका केवल एक ही मूल कारण है - अज्ञान। मनुष्य को ज्ञानालोक दो, उसे पवित्र और आध्यात्मिक बलसंपन्न करो, और शिक्षित बनाओ, तभी संसार से दुःख का अंत हो जायगा, अन्यथा नहीं।

13 जब तक वासना रहती है तब तक यथार्थ सुख नहीं आ सकता। जब कोई मनुष्य - ध्यानावस्था से, साक्षी भाव से सारी वस्तुओं का परिशीलन कर सकता है - तभी उसे यथार्थ सुख और आनंद प्राप्त होता है।

14 अन्य प्राणी इंद्रियों में सुख पाते है। मनुष्य बुद्धि में। और देव मानव, आध्यात्मिक ध्यान में। जो ऐसी ध्यानावस्था को प्राप्त हो चुके है, उनके पास यह जगत सचमुच अत्यन्त सुंदर रूप से प्रतीयमान होता है। जिनकी वासना नहीं है, जो सर्व विषयों में निर्लिप्त हैं, उनके पास प्रकृति के ये - विभिन्न परिवर्तन एक महा सौंदर्य और उदात्त भाव की छबि मात्र हैं।

15 जब मैं प्राण स्वरूप से एक हो जाऊंगा, तभी मृत्यु के हाथ से मेरा छुटकारा हो सकता है, जब मैं आंनद स्वरूप हो जाऊंगा - तभी सब अज्ञान का अंत हो सकता है।

16 यदि किसी कर्म द्वारा हम ईश्वर की ओर बढ़ते है तो वह शुभ कर्म है, और वह हमारा कर्तव्य है। परंतु जिस कर्म के द्वारा हम नीचे गिरते है, वह अशुभ है और वह हमारा कर्तव्य नहीं। प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपना आदर्श लेकर चरितार्थ करे।

17 कर्तव्य के ऊपरी रूप से ही मनुष्य की उच्चता या नीचता का निर्णय करना उचित नहीं। देखना तो यह चाहिए कि अपना कर्तव्य किस भाव और ढंग से करता है। प्रत्येक कर्तव्य पवित्र है और कर्तव्य निष्ठा भगवत्पूजा का सर्वोत्कृष्ट रूप है।

18 हम सब तो उसके हाथ में यन्त्र के समान है। यह शरीर अपार दर्शक है, ईश्वर दीपक है। जो कुछ शरीर के बाहर जा रहा है, वह ईश्वर का है। तुम इसे अनुभव नहीं करते, तुम मैं का अनुभव करते हो, यह भ्रम है।

19 तुम ईश्वर की इच्छा के समक्ष मूक समर्पण करना सीखो, कर्तव्य इसके लिए सर्वोत्तम पाठशाला है- यही कर्तव्य नैतिकता है।

20 अपने को पूर्णतया विनम्र बनाने का अभ्यास करो - मैं से मुक्ति प्राप्त करो। तब तुम कर्तव्य की धारणा से मुक्ति प्राप्त कर सकते हो, क्योंकि सब ईश्वर का है - तब तुम स्वाभाविक रूप से भूलते क्षमा करते आगे बढ़ सकते हो।

21 मनुष्य संसार में धन अथवा किसी अन्य प्रिय वस्तु के लिए एड़ी - चोटी का पसीना एक करता रहता है। यदि उससे पूछे, ऐसा क्यों कर रहे हो? तो झट उत्तर देता है, यह तो मेरा कर्तव्य है। पर वह धन और लाभ के लिए निरर्थक् लोभ मात्र है, लोग उसे कुछ फूलों से ढके रखने की चेष्टा करते हैं।

22 उनका कर्तव्य उन्हें प्रार्थना या स्नान - ध्यान करने का अवकाश नहीं देता। कर्तव्य उन्हें प्रतिक्षण घेरे रहता है, कर्तव्य सदा उनके सिर पर सवार ही रहता है। फिर एक दिन ऐसा आता है कि वे कसे कसाये घोड़े की तरह सड़क पर ही गिरकर मर जाते है! कर्तव्य साधारणतया यही समझा जाता है। परंतु अनासक्त होकर एक स्वतन्त्र व्यक्ति की तरह कार्य करना तथा समस्त कार्य भगवान को समर्पित कर देना ही असल में हमारा एकमात्र सच्चा कर्तव्य है।

23 गीता तो छोटे के अंदर महान को देखने की शिक्षा देती है,धन्य है वह ग्रंथ! गीता का केंद्रीय भाव यह है: निरंतर कर्म करते रहो, परंतु उसमें आसक्त मत होओ। यह वेदांत दर्शन का सर्वोत्तम भाष्य स्वरूप है।

गीता के प्रत्येक पृष्ठ पर जो मत उज्जवल रूप से प्रकाशित है - वह है तीव्र कर्मण्यता, किंतु उसी के बीच अनंत शांत भाव - इसी तत्व को कर्म - रहस्य कहा गया है, और इस अवस्था को पाना ही वेदांत का लक्ष्य है।

24 गीता का कथन है कि यदि हम अपने कर्मों में आसक्त न हों तो हमारी आत्मा पर किसी प्रकार का बंधन नहीं पड़ता। दुःख का एकमेव कारण यह है कि हम आसक्त है, हम बंधते जा रहे है। प्रत्येक वस्तु से अपने आपको स्वतन्त्र कर लेने की शक्ति स्वयं में संचित रखो। जो कभी बदलता नहीं वो कौन है? वह केवल ईश्वर है।उसका स्नेह अनंत और अपरिवर्तनशील है। कर्मयोग में क्षुद्र अहंभाव की चेतना नहीं रह जाती, जब योगयुक्त होकर कार्य किया जाता है, तब मैं यह - वह कर रहा हूँ, ध्यान नहीं रह जाता। जो अपने को सम्पूर्णतः भूलकर एकाग्र चित्त से कार्य करता है, उसका कार्य निश्चय ही अप्रतिम रूप से अच्छा होता है। जो योग के द्वारा प्रभु से एकरूप हो गया है, वह अपने सभी कार्यों को इसी एकाग्रता के साथ करता है, और अपने स्वार्थ की कुछ भी चाह नहीं रखता।

25 विनाश होने वाले सर्व भूतों में जो लोग अविनाशी परमात्मा को स्थित देखते है, यथार्थ में उन्हीं का देखना सार्थक है। क्योंकि ईश्वर को सर्वत्र समान भाव से देखकर वे आत्मा के द्वारा आत्मा की हिंसा नहीं करते।

26 गीता में श्रीकृष्ण जो कह गये है, उनके समान महान उपदेश जगत में और कहीं नहीं है। जिन्होंने उस अद्‌भुत काव्य की रचना की थी, वे उन सब विरले महात्माओं में से एक थे, जिनके जीवन द्वारा समग्र जगत में नव जीवन की एक लहर दौड़ आती है। जिन्होंने गीता लिखी है, उनके सदृश आश्चर्यजनक मस्तिष्क मनुष्य जाति और कभी नहीं देख पायेगी।

27 यह वेदों पर एक प्रकार का भाष्य है - वह हमें दिखाता है कि आध्यात्मिक संग्राम इसी जीवन में लड़ा जाना चाहिए, उससे भागना नहीं चाहिए अपितु उसको विवश करना चाहिए कि जो कुछ उसमें है, वह उसे, हमें प्रदान करे। चूकि गीता उच्चतर वस्तुओं के लिए इस संघर्ष का प्रतिरूप है, उसके दृश्य को रणक्षेत्र के मध्य प्रस्तुत करना और भी काव्यमय हो गया है। विरोधी सेनाओं में से एक के नेता अर्जुन, के सारथी के वेश में, कृष्ण उसे दुःखी न होने और मृत्यु से न डरने की प्रेरणा देते है - क्योंकि वे जानते है कि वह वस्तुतः अमर है, और मनुष्य के प्रकृत स्वरूप में विकारशील वस्तु का स्थान नहीं है। अध्याय के अध्याय में कृष्ण, दर्शन और धर्म की उच्च शिक्षा अर्जुन को देते है, ये इस काव्य को अद्‌भुत बनाती है। वस्तुतः समस्त वेदांत दर्शन उसमें समाविष्ट है।
।। स्वामी विवेकानंद।।

1 मैं भी हमारा नहीं है, अपितु भगवान का ही है, शरीर मन बुद्धि प्राण इन्द्रियाँ आदि सब भगवान के ही है।

2 मेरा कुछ नहीं है, सब कुछ भगवान का ही है, इस सत्य की स्वीकृति होते ही सब कुछ भगवान ही है, यह सत्य प्रकट हो जायगा।

3 सत असत, देश काल परिस्थिति अवस्था घटना वस्तु व्यक्ति आदि में केवल भगवान ही भगवान परिपूर्ण है।

4 वासुदेव सर्वम का अनुभव होने के बाद फिर सर्वम भी नहीं रहता, अपितु केवल वासुदेवः रह जाता है।

5 केवल वासुदेव ही वासुदेव विद्यमान है, अन्य कुछ है ही नहीं, कभी हुआ ही नहीं, कभी होगा भी नहीं, कभी हो सकता नहीं।

6 जब सबमें परमात्मदृष्टि हो जाती है, तब सब कुछ परमात्मा ही है, ऐसा दिखने लगता है। इस परमात्मदृष्टि से भी उपराम होने पर सम्पूर्ण संशय स्वतः निवृत हो जाते है।

7 वृत्ति छूटने पर एक भगवान ही रह जाते है। सर्वत्र परिपूर्ण भगवान के शरणागत होकर अपने आपको भी वह भगवान में लीन कर देता है। फिर शरणागत नहीं केवल शरण्य रह जाते है। मैं नहीं रहता केवल भगवान रह जाते है। यही असल शरणागति है।

8 फिर परमप्रेम की प्राप्ति होती है। प्रेम की प्राप्ति होने पर सूक्ष्म अहं का भी सर्वथा अभाव हो जाता है। भगवान अपनी इच्छा से प्रेमलीला के लिए दो हो जाते है, प्रेम में मिलना व अलग होना, विरह यह भगवान की इच्छा से ही होता है।

।।स्वामी रामसुखदासजी।।

1 मन की नाना प्रकार की वासनाएँ ही चित्त का मल है, चित्तमल के रहते कोई आत्मनिष्ठ नहीं हो सकता।

2 किसी विषय मे आसक्ति होना ही चित्तमल की पहचान है।

3 ब्रम्ह के अणु अतिसूक्ष्म होते है, उस अणु में जिसका मन लग गया है, उस मन को विषय अणु स्पर्श नहीं कर सकते। प्रारब्ध से जो विषयादि उत्पन्न होते है, वह ब्रम्हाणु में मग्न को आकर्षित नहीं कर सकते।

5 ब्रम्हाणु इतने हल्के होते है कि वे विषयाणु के मिलने पर वे विषयों के ऊपर ही ऊपर तैरते रहते है, विषय उनको चिपका नहीं सकते। अतः साधक को कर्मजनित पाप में लिप्त होना नहीं पड़ता।

6 सुषुम्ना के अन्तर्गत ब्रम्हाकाश में स्थिर प्राण के चलने से सब कर्म ब्रम्हार्पण होते है।

7 उनके वाक, काय और मन सभी ब्रम्हरूपी खूंटी से अटके रहते है, उनका चित्त शुद्ध अर्थात संकल्पशून्य होता है, उसकी इन्द्रियाँ स्वेच्छाचारी नहीं होती।

8 उसकी सर्वात्मक दृष्टि खुल जाती है अर्थात वह सर्वत्र अपने को ही अनुभव करता है।

।।लाहिड़ी महाशय की गीता व्याख्या से।।

1 संसार रूपी महारोग के लिए विचार ही महौषध है। लौकिक दुःख से पार होने के लिए विद्वानों के पास विचार के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है। जितने क्रूर, निषद्धाचरण और कुत्सित मानसिक कष्ट है, वे सभी विचार हीनता से ही अविर्भूत होते है। जगत के सारे पदार्थ तभी सत्य की तरह रमणीय प्रतीत होते है जब तक विचार नहीं किया जाता। विचार करने पर वे नष्ट हो जाते है। विचारशील पुरुष गई हुई वस्तु की उपेक्षा कर देता है और प्राप्त वस्तु का शास्त्रानुसार उपयोग करता है। वह मन की प्रतिकूलता में न तो क्षुब्ध होता है, न अनुकूलता में प्रसन्न ही। उस समय जल से परिपूर्ण सागर की तरह उसकी शोभा होती है। जिन उदाराशय महात्मा योगियों का मन पूर्णकाम हो गया है। वे जीवन्मुक्त होकर इस जगत में विचरण करते है।

2 आत्म विषयक विचार करने से बुद्धि तीव्र होकर परम पद का साक्षात्कार कर लेती है।

3 उत्तम विचार से युक्त पुरुष, सामान्य जनों की बात ही क्या, महापुरुषों के लिए आदरणीय हो जाता है। विचार हीनता सारे अनर्थों का निजी स्थान है। अतः उसे परित्याग कर देना चाहिए।

4 विचार से ही तत्व का ज्ञान होता है, तत्व ज्ञान से मन की निश्चलता प्राप्त होती है, और मन के शांत हो जाने से संपूर्ण दुःखों का सर्व नाश हो जाता है।

।। योग वाशिष्ठ से।।

1 मनुष्य के बंधन व दुख का वास्तविक कारण मन की विवेचना है, न कि वास्तविक घटना।

2 हमारा मुख्य प्रयास मन को निरुद्ध करने का है, मुख्य घटक मन ही चेतना के अस्थिरता के लिए जिम्मेदार है।

3 इड़ा और पिंगला आज्ञाचक्र तक जाते है, केवल सुषुम्ना ही सर्वोच्च चक्र सहस्त्रार तक पहुंचती है।

4 जब तक प्राण मध्यमार्ग / सुषुम्ना से नहीं बहती, जब तक बिंदु प्राण के नियंत्रण से सुनिश्चित नहीं हो जाती, जब तक अनन्त का ध्यान सहज नहीं हो जाता। जब तक कोई ज्ञान की बात करता है, वह सब असत्य व दिखावा है।

5 सुषुम्ना के भीतर, एक अन्य नाड़ी स्वाधिष्ठान से निकलकर ऊपर जाती है, वज्रा कहलाती है, एवं इसके भीतर एक अन्य नाड़ी चित्रा के नाम से जानी जाती है, मणिपुर से ऊपर जाती है। इन तीनों नाड़ियों के सम्मिलित होने पर वे ब्रम्ह नाड़ी कहलाती है।

6 ईश्वर की गतिशील शक्ति, श्वास खींच रही है एवं उसे छोड़ रही है जो "हं-स"कहलाती है।

7 प्रत्याहार के सर्वोच्च अवस्था परावस्था में, वास्तविकता में हम चेतना के व्यक्तिगत तरंग नहीं है, ब्रम्हचेतना के सागर से अलग, किन्तु स्वयं सागर है।

8 ईश्वर सभी के हृदय में प्रणव के रूप में रहते है।

9 जब प्राण पूर्ण रूप से दो भौहों के मध्य विलय हो जाती है, दिव्य अस्तित्व स्वयं उसे प्राप्त होती है।

10 जब हृदय केंद्र का भेदन हो जाता है, हम दिव्य आत्मा का अनुभव करते है।

11 जैसे ही साधक की चेतना कूटस्थ पर पहुंचती है, वह सविकल्प समाधि की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त करता है।

12 पीयूष से सहस्त्रार तक पांच आकाश है:चिदाकाश, पराकाश, दहराकाश, आत्माकाश और महाकाश। साधक इन पांचों को पारकर अंततः ब्रम्ह चेतना में विलीन हो जाता है।

13 जैसे ही ये चेतना कूटस्थ पर पहुंचती है, पंचभूतों पर विजय प्राप्त होती है।

14 निर्विकल्प समाधि में न्यूरॉन की शून्य एन्ट्रापी होती है, सभी न्यूरॉन (100 करोड़) एक इकाई की तरह व्यवहार कार्य करते है, व शांत हो जाते है (मृत शरीर जैसा) एवं चेतना पूर्ण रूप से स्थिर हो जाती है। सर्वव्यापी अखण्ड सत्ता बन जाती है।अतः यह चेतन अनुभव किसी भी तरह से अवर्णनीय बन जाती है।

।।चेतना विज्ञान से।।

1 नाम रूपात्मक सारी सृष्टि भ्रम रूप है और नाम रूपातीत, ब्रम्ह केवल अनुभव की वस्तु है। वह सदा सर्वदा सर्वत्र विद्यमान है।

2 वह अनुपम है, पंच महाभूतों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह शरीर में व्याप्त होने पर भी, उसका अनुभव नहीं होता-यही आश्चर्य की बात है। वह हमारे अंतर्बाह्य और सर्वत्र व्याप्त है, उसी में हमारा

अस्तित्व है-पर आकाश के समान अदृश्य होने से हमें उसका भान नहीं है।

3 अनन्त ब्रम्हांड नीचे और ऊपर है, पर सबमें ब्रम्ह भरा है। ब्रम्ह सकल ब्रम्हांड के भीतर भी है बाहर भी है, अतः वह ब्रम्हांड में कैसे समा सकता है?

4 माया और ब्रम्ह की पहचान करना ही अध्यात्म है। ब्रम्ह का स्वरूप जानने के पहले, माया का रूप विदित होना चाहिए।

5 माया दृश्य आंखों से दिखाई देती है, माया नश्वर है। विवेक दृष्टि से देखने पर उसका निरसन हो जाता है, माया नानारूपों में प्रकट, यह विश्व ही है। इस मिथ्या माया का निरसन आत्मज्ञान बिना, असम्भव ही है।

6 ब्रम्ह-निर्गुण, निराकार, निःसंग, निर्विकार, सर्वव्यापक, शाश्वत, निर्विकल्प, अनन्त और दृश्य प्रकृति के उपासक है, पर वह शून्य नहीं है। इन्द्रियगम्य नहीं है, वह अत्यंत सूक्ष्मतम है। मन, वाचा अगोचर अर्थात कल्पना के भी परे है।

7 ब्रम्ह भंडार को खोलने की चाबी सद्गुरु के पास है। उनकी कृपा से जब वह चाबी शिष्य को प्राप्त होती है-तब उसकी बुद्धि प्रकाशमान होती है और द्वैत के कपाट एकबारगी खुल जाते है।

8 ब्रम्हसुख अपार है। वहां किसी वासना को स्थान नहीं है। उसमें सदा सर्वदा पूर्ण संतुष्टि एवं तृप्ति का अनुभव होता है। कल्पना के सार अज्ञान की वहां पैठ नहीं है, मनबुद्धि के लिए वह अगम्य है। वह, परा वाणी के उपासक है। वह निःसंग होने पर ही प्राप्त हो सकता है। ब्रम्ह प्राप्ति में केवल अहंकार ही बाधक है, अहंकार अर्थात अज्ञान उसे त्यागकर, मैं को छोड़कर ब्रम्ह का दर्शन किया जाय।

9 ब्रम्ह में देह बुद्धि की प्रतिष्ठा नहीं है। ऊंच नीच, गरीब अमीर, स्त्री पुरुष सबमें समान भाव से एक ही ब्रम्ह व्याप्त है।देह बुद्धि का लोप होते ही सबको, एक ही ब्रम्ह का परम लाभ प्राप्त होता है।

10 साधु संत देह से भिन्न भिन्न, दिखाई देते हुए भी, स्वस्वरूप में लीन होने के कारण-देहातीत परब्रम्हस्वरूप ही है। देह बुद्धि के सर्वथा नाश होने पर ही, परमार्थ की प्राप्ति होती है।

11 जहां सभी उपाधियों और नामों का अंत हो जाता है, और वहां सहज समाधि का लाभ होता है, उसे ही ब्रम्ह स्वरूप कहा गया है। अतः स्वानुभव से कल्पना का निरसन कर-स्वस्वरूप में लीन होना ही ब्रम्ह का साक्षात्कार है।

12 ब्रम्ह कोई पदार्थ नहीं है, कि जिसे कोई किसी को प्रदान कर सके। वह तो सद्गुरु के उपदेशामृत से प्रेरित अनुभव सिद्ध तद्रूपावस्था है।
।।समर्थ रामदास जी।।

1 प्रेम के दो लक्षण है, प्रथम-ईश्वर के प्रति इतना प्रेम होता है कि संसार विस्मृत हो जाता है, वाह्यज्ञान शून्य हो जाता है। दूसरा-देहात्मबोध पूर्णतया चला जायगा। अपनी देह जो इतनी प्रिय वस्तु है, इसके ऊपर भी ममता नहीं रहेगी।

2 काम के उदय होने से मन विषयचिंता में मग्न हो जाता है, लौकिक प्रेम काम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। किसी लौकिक प्रेम का सम्बन्ध यदि ईश्वर का विस्मरण करा दे तो उसका भी त्याग करना होगा।

3 भाग्यवश भगवत्प्रेम होने से फिर विषयों के भोग में मन लगाना सम्भव नहीं होता, विषयों का अपने आप त्याग हो जाता है। इन्द्रियों का निग्रह सहज भाव से हो जाता है, उनके प्रति जितना प्रेम होगा उतना ही

इन्द्रियसुख स्वादहीन लगेगा। ईश्वरानुराग रूपी बाघ, काम क्रोध आदि रिपुओं को खा जाता है।

4 प्रेम के उदय होने से यदि शरीर का विस्मरण, संसार का विस्मरण हो गया, तो फिर कौन सी भोग वासना मन में जगेगी? सभी वासनाओं का निरोध हो जाता है।

5 विषय वासना का पूर्णतया नाश होने पर ही एकमात्र आत्मा से ही प्रीति होना सम्भव है, और वासना का नाश पूर्णतः मानसिक व्यापार है। यथार्थ भक्ति उसी की है जिसमें आत्मरति के विरोधी विषयों का लेशमात्र भी न हो।

6 भक्ति पक्की होने पर सभी अवस्थाओं में इष्टदर्शन होते है, जैसे किसी के दाँत में दर्द होता है, वह सारे कर्म करता है, पर पीड़ा की ओर मन लगा रहता है।आँख मूंदने पर, आँख खोलने पर, आंखें खुली रहने पर सभी अवस्थाओं में सभी भूतों में वे ही दिखते है।

7 प्रेम में स्वार्थपरता तक की गन्ध नहीं होती। जो प्रेम, साध्यवस्तु का परिपूर्णअनुभूतिस्वरूप है, उसके साथ किसी साधनपथ की तुलना हो नहीं पाती। साधना में इष्ट को प्राप्त करने की सामर्थ्य नहीं है, साधना होने पर उनकी कृपा के अनुभव की सामर्थ्य होती है। प्रेमस्वरूप इष्टभगवान स्वयं ही कृपाकर हृदय में प्रकाशित होते है, सौभाग्य से वे स्वयं आते है।

8 ईश्वर को प्रेम करना, यही सार है। प्रेम तो जीव का स्वभावसिद्ध वस्तु है, यह अपात्र के प्रति होने से इतना सब दुःख है,वास्तविक प्रेमास्पद को ढूंढ पाने पर सारे दुःख मिट जाते है। प्रेमास्पद भक्त के साथ नित्य अनेक प्रकार की लीलाएं करते है। प्रेम का स्वाद जितना मिलेगा उतनी ही आस्वादन की आकांक्षा बढ़ेगी, इस आनन्द का अन्त नहीं है।

।।नारद भक्ति सूत्र से।।

1 जीवन ही ऐसा है-आज है कल नहीं। मनुष्य के साथ कुछ नहीं जाता-सिवाय पाप / बुरे कर्म और पुण्य / अच्छे कर्म, के।

2 कहाँ से क्या हो जाता है, यह समझ पाना कठिन है।

3 इस सृष्टि में कैसी गड़बड़ी है। राम की टोपी श्याम को पहनाते है, इसको लेकर उसको बनाते है, जाने क्या क्या करते रहते है।

4 ठीक ठीक पूर्ण ज्ञान नहीं होने से, विचार जाते नहीं।

5 वे सभी के अपने है। जैसा भाव होगा वैसा ही लाभ होगा।

6 संसार ही स्वप्नवत है । यह / जाग्रतावस्था, भी एक स्वप्न है। ये सांसारिक बन्धन क्षणिक है। आज ये जीवन के सर्वस्व प्रतीत होते है और कल ये लुप्त हो जाते है।

7 भगवान का नाम इंद्रियों से अधिक बलवान है। नियमित रूप से साधना करो।

8 बुरे कर्म करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, अच्छा कार्य करने के लिए आंतरिक प्रयास और लगन की आवश्यकता होती है।

9 काम क्या एकदम से जाता है जी, शरीर रहने पर कुछ न कुछ रहेगा ही। पर बात क्या है जानते हो, सर्प को वश में करने से जैसे वह हो जाता है, वैसा यह हो जाएगा।

10 मन का स्वभाव ही है नीचे की ओर-भोग में। इष्ट / भगवान की कृपा उसे भी ऊर्ध्व गामी बना देती है।

11 शुचिता की सनक जितनी बढ़ाओगे उतनी ही बढ़ेगी। सब जितना ही बढ़ाओगे बढ़ता ही जायेगा।

12 सतत ध्यान करने से मन इतना स्थिर हो जाएगा कि ध्यान छोड़ने की इच्छा ही नहीं होगी। असल ध्यान स्वतः ही होता है।

13 साधना में कथनी में और करनी में सच्चे रहो, तुम धन्य हो जाओगे।

14 हृदय के अन्तःस्थल से भगवन्नाम का जप करो, शुद्ध हृदय से उनके शरण में जाओ। आसपास की चीजों से तुम्हारे मन में क्या विचार आते है उसके बारे में चिंता मत करो।

15 माया के चंगुल से छुटकारा पाना क्या किसी मनुष्य के लिए सम्भव है, जब तक उसे किसी की सहायता न मिले?

16 सिर्फ भगवान की शरण में जाओ, तब तुम उनकी कृपा का अनुभव कर सकोगे।

17 उनके शरणागत होने से विधि का विधान खंडित हो जाता है। विधि को अपना लिखा स्वयं ही काटना पड़ता है।

18 अपने व्यक्तित्व को भूलकर स्वरूपत्व को समझने की चेष्टा करो।

19 भगवान में चित्त लगना ही असल बात है। विद्वान साधु वैसा ही है जैसे कि हाथी के दांत सोने से मढ़े हुए हो।

20 जो उनके प्रति शरणागत है, सब कुछ छोड़ जिनने उनका आश्रय लिया है। जो अच्छे बनने की इच्छा रखते है उनकी रक्षा यदि वे न करें तो यह तो उनके लिए महापाप होगा।

21 वे चाहे अच्छा करें या डुबाएं, फिर भी सत्कर्म करते ही रहना चाहिए, और वह भी जितनी शक्ति दे उसके अनुरूप। उनके ऊपर ही आश्रित होकर ही रहना चाहिए।

।।माँ शारदा देवी।।

1 भय रहित शरीर भक्तों के लिए राजभवन है, तथा भगवान के चिंतन में उत्साह उनकी प्रजा है।

2 काम क्रोध मद लोभ अहंकार आदि विकार लुटेरे थे, किन्तु प्रभु भक्ति से ये सब विनीत एवं आज्ञाकारी हो गए है।

3 दृढ़ विश्वास रूपी सिंहासन पर भक्त राजा रूप में विराजमान होता है।

4 भगवान का निर्मल सुयश उसका छत्र है, जबकि वह प्रतिदिन प्रभु के चरण कमलों के मकरन्द का पान करता है।

5 ज्ञान उसका मंत्री, अर्थ और काम उसके सेवक है। उसके समक्ष धर्म और मोक्ष सदैव नतमस्तक रहती है।

6 सिद्धियाँ हाथ जोड़े द्वार पर खड़े रहती है, वैराग्य रूपी चक्र उन्हें निकट नहीं आने देता।

7 केवल भगवान की कृपा द्वारा ही भक्त, भक्ति के वास्तविक मूल्य को समझता है।

।।सूरदास जी।।